

### **罗尔斯特尔**

# KATRA SUTRA

AND

## ORIGINAL NIRYUKTI

OF

#### STHAVIR ARYA BHADRABAHU SWAMI

AND

A Bhashya by Shri Sanghadas Gani Kshamashramana thereon with a Commentary begun by Acharya Shri Malayagiri and Completed by Acharya Shri Kshemakirti.

Volume V

## FOURTH AND FIFTH UDDESHAS

EDITED BY

#### **GURU SHRI CHATURVIJAYA**

AND HIS

#### SHISHYA PUNYAVIJAYA

THE FORMER BEING THE DISCIPLE OF

PRAVARTAKA SHRI KANTIVIJAYAJI
INITIATED BY

#### NYAYAMBHONIDHI SHRIMAD VIJAYANANDA SURIJI

1ST ACHARYA OF

BRIHAT TAPA GACHCHHA SAMVIGNA SHAKHA.

Publishers:--SHRI ATMANAND JAIN SABHA, BHAVNAGAR

 Yir Samvat
 2465

 Vikrama Samvat
 1994

 A. D.
 1938

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Hirnaya Sagar Press, 26-28, Holbhat Street, Bombay.



Published by Vallabhadae Fribhuvandas Gandhi, Secretary, Shree Jain Atmananda Sabha, Bhavnagar. भीभारमानन्द-जैनमन्यरसमाळाया भएशोतितमं रसम् (८८) स्यविर-आर्थभद्रबाहुस्वामिप्रणीतस्वोपज्ञनिर्युक्तयुपेतं

## बृहत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन भाष्येणोपश्रृंहितम् ।

जैनागम-प्रकरणायनेकग्रन्थातिगृहार्थप्रकटनप्रोहटीकाविधानसमुपलन्ध-'समर्थटीकाकारे'तिख्यातिभिः श्रीमद्भिर्मल्यगिरिस्तरिभिः प्रारन्थया वृद्धपोदाालिकतपागच्छीयैः श्रीक्षेमकीर्स्या-चार्यैः पूर्णीकृतया च वृत्त्या समलक्कृतम् ।

तस्यायं

पश्चमो विभागः

चतुर्थ-पञ्चमाबुद्देशको ।

## तत्सम्पादकौ-

सकलागमपरमार्थप्रपञ्चनप्रवीण-शृहत्तपागच्छान्तर्गतसंविमशाखीय—आद्याचार्य— न्यायाम्भोनिधि—श्रीमद्विजयानन्दसुरीश( प्रसिद्धनाम—श्रीआत्मारामजी— महाराज )शिष्यरत्नप्रवर्त्तक-श्रीमत्कान्तिविजयसुनिपुङ्गवानां शिष्य-प्रशिष्यौ चतुरविजय-पुण्यविजयौ ।

~~~

प्रकाशं प्रापियती— भावनगरस्था श्रीजैन-आत्मानन्दसभा ।

बीरसंवत् २४६५ } ईस्बी सन १९१८ }

प्रतयः ५००

विक्रमसंवत् १९९४

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां कोलभाटवीथ्यां २६-२८ तमे गृहे निर्णयसागर-मुद्रणालये रामचन्द्र येसु शेडगे-द्वारा मुद्रापितम्



प्रकाशितं च तत् ''बल्लभदास विभुवन<mark>दास</mark> गांधी, संकेटरी श्रीआत्मानन्द जैन सभा, भावनगर'' इत्यनेन

## बृहत्तपागाःखास्त्रमतः सविष्ठतास्थायः आधापाये स्यापाम्मीतिथि श्री ३००८ श्री अत्रयासस्य स्रीर पह प्रतिष्टित भाषासभ्यम



HOUR HAR

7.

था १००० थी विजयवस्मार स्थाना

सामित्र १८८ वर्षा । सामित्र १८५ वर्षा १९२० वर्षा







#### बह्रभ-सबण-स्मरणम्

विश्वर्ता महाविभृतिसमा, ज्ञान-त्रपोमृर्ति, जैनशासनप्रभावक,
वृहत्त्रपोगच्छान्तर्गत संविक्ष्यार्ग्वय आद्याचार्य,
न्या या म्भो नि थि
र्क्षा १००८ र्क्षा विजयानस्य सूर्गश्चर

प्रसिद्धनाम श्रीआत्मारामजी महाराजना विश्वमान्य, मुवर्णोज्वलनामधेय, पुनित पद्दधर

## आचार्य भगवान

धं। १००८ श्री विजयव<mark>हभ सृरिवरना</mark>

चारिबार्थशनाब्दिरूप चारिबसुवर्णोस्सवना पवित्र स्मरणमां सुवर्णालङ्कृत बृहत्करूपगृत्रनो पश्चम विभाग तेओश्रीना सुवर्णोज्वल सुकोमळ करकमलमां समर्पण करीण छीए.

संबन् १९९४ ज्येष्ठ बहि ९ ना २२-६-१९३८ पाटण

NAME OF STREET OF STREET

निवेदको⊸गुरु-जिल्य मुनि चतुरविजय-पुण्यविजय

#### बृहत्कल्पसूत्रपञ्चमविभागसंशोधनकृते सङ्गृहीतानां प्रतीनां सङ्गेताः ।

भा॰ पत्तनस्यभाभाषाटकसत्कचित्कोशीया प्रतिः।

हे॰ अमदाबादहेलाउपाश्रयभाण्डागारसत्का प्रतिः।

मो० पत्तनान्तर्गतमोकामोदीभाण्डागारसत्का प्रतिः।

ले॰ परानसागरगच्छोपाश्रयगतलेहेरुवकीलसत्कज्ञानकोशगता प्रतिः।

कां > प्रवर्तकश्रीमस्कान्तिविजयसस्का प्रतिः ।

ताटी० पत्तनीयश्रीसङ्क्षभाण्डागारसत्का ताडपत्रीया टीकाप्रतिः ।

ताभा ० पत्तनीयश्रीसङ्घभाण्डागारसत्का ताडपत्रीया भाष्यप्रतिः ।

पकाश्यमानेऽस्मिन् मन्धेऽस्माभिर्येऽशुद्धाः वाठाः प्रतिचूत्रुव्यव्याक्षेऽस्मत्कस्यनया संशोध्य ( ) एताइ-म्हचकोष्ठकान्तः स्मापिताः सन्ति, इत्थतां पृष्ठ १० पश्चि २६, पृ० १७ पं ३०, पृ० २५ पं० १२, पृ० ३१ पं० १७, पृ० ४० पं० २४ इत्यादि । ये चात्साभिर्गीलताः पाठाः सम्भाविताले [ ] प्ताइकचतुरसकोष्ठकान्तः परिपूरिताः सन्ति, इश्यतां पृष्ठ ३ पंक्ति ९, पृ० १५ पं० ६, पृ० २८ पं० ५, पृ० ४९ पं० १६ इत्यादि ।

## प्रकाइयमानेऽस्मिन् मन्धे टीकाक्रताऽस्माभिश्च निर्दिष्टानामवतरणानां

स्थानदर्शकाः सङ्केताः ।

अनुयोगद्वारसूत्र

अनुयो० आचा० श्रु० अ० उ० आव० हारि० वृत्ती आव० नि० गा० } आव० निर्यु० गा० } आव० मृ० भा० गा० उ० सू० उत्त० अ० गा० ओषनि० गा० करुपबृहद्भाष्य गा० चर्णि जीत० भा । गा० तत्त्वार्थ ० दश० अ० उ० गा० दश० अ० गा० ] देशव० अ० गा० হয়০ ৰু০ যা০ देवेन्द्र० गा० नाट्यशा० पश्चव० गा० पिण्डनि० गा० সন্মাত ঘর মহাদ ০ আ ০ मल० महानि० अ० विशे० गा०

विशेषचूर्णि

आचाराङ्गस्त्र श्रुतस्कन्ध अध्ययन उद्देश आवश्यकसूत्र हारिभद्रीयवत्ती आवश्यकसूत्र निर्मुक्ति गाथा आवश्यकसूत्र मृलभाष्य गाधा उद्देश सूत्र उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन गाथा ओषनिर्युक्ति गाथा **बृहत्करूप** बृहद्भाष्य गाधा **ब्रहत्करूपचू**र्णि जीतकरूपभाष्य गाथा तत्त्वार्थी विगमस्त्रताणि दशवैकालिकसूत्र अध्ययन उद्देश गाथा दशवैकालिकसूत्र अध्ययन गाथा दशवैकालिकस्त्र चूलिका गाथा देवेन्द्र-नरकेन्द्रपकरणगत देवेन्द्रपकरण गाथा भरतनाट्यशास्त्रम् पञ्चवस्तुक गाथा पिण्डनिर्युक्ति गाथा प्रज्ञापनोपाङ्गसटीक पद पशमरति आर्था मलयगिरीया टीका महानिशीथसूत्र अध्ययन विशेषावश्यकमहाभाष्य गाथा **ब्रहत्करपविशेषच्**णि

च्य० भा० पी० गा० च्यव० उ० भा० गा० श० उ० भु० अ० उ० सिक् सिक् सिक् है । जी० स्० है माने० द्विस्य० व्यवहारसुत्रं भाष्य पीठिका गामा व्यवहारसुत्र उदेश भाष्य गामा शतक उदेश श्रुतंकक अध्ययन उदेश सिद्धहेमशब्दानुंशासन सिद्धहेमशब्दानुंशासन औणादिक सुत्र हैमानेकार्यपहृद्ध हिस्सरकाण्ड

यत्र टीकाक्ट्रहिप्रेन्थाभिशानादिकं निर्दिष्टं स्वात् तत्रास्वाभिरुक्तिस्वितं श्रुतस्कन्थ-अध्ययन-उद्देश-गाबादिकं स्वानं तत्त्रहम्यस्तंकं ज्ञेयम्, यथा पृष्ठ १५ पं० ९ इत्यादि । यत्र च तज्ञोक्षित्वतं भवेत् तत्र सामान्यतया स्वितसुदेशादिकं स्वानमेतल्यकाश्यमानश्रृहत्कस्यसुत्रमन्यसस्तकमेव ज्ञेयम्, यथा पृष्ठ २ पंक्ति २-३-४, पृ० ५ पं० ३, पृ० ८ पं० २७, पृ० ११ पं० २७, पृ० ६७ पं० १२ इत्यादि ।

### त्रमाणत्वेनोद्धृतानां प्रमाणानां स्थानदर्शक-ग्रन्थानां प्रतिकृतयः ।

शेठ देवचन्द ठाठमाई जैन पुस्तकोद्धार फंड सुरत । अनुयोगद्वारसूत्र---रतहाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था । अनुयोगद्वारसूत्र चूर्णी---अनुयोगद्वारसूत्र सटीक { (मरुधारीया टीका) शेठ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड सुरत । आगमोदय समिति । आचाराङ्गसूत्र सटीक-रतलाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी श्रेताम्बर संस्था । आवश्यकसूत्र चुणी-आवश्यकसूत्र सटीक आगमोदय समिति । (श्रीमल्यगिरिकृत टीका) ( आवश्यकसूत्र सटीक आगमोदय समिति । ( आचार्य श्रीहरिभद्रकृत टीका ) आवश्यक निर्वक्ति---आगमोदय समिति प्रकाशित हारिभदीय टीकागत। ओघनिर्युक्ति सटीक---आगमोदय समिति करूपचूर्णि----हस्तलिखित । करुपबृहद्भाप्य ---करपविशेषचूर्णि---कल्प-व्यवहार-निशीशसूत्राणि-जैनसाहित्यसंशोधक समिति।

जीवाजीवाभिगमसूत्र सटीक---दश्वैकालिक निर्येक्ति टीका सह---देवेन्द्रनरकेन्द्र प्रकरण सटीक-नन्दीसूत्र सटीक (मरुयगिरिकृत टीका) नाठ्यशास्त्रम्---निश्रीधचूर्णि---पिण्डनिर्युक्ति---प्रज्ञापनोपाङ्ग सटीक---बृहत्कर्मविपाक--महानिशीयसूत्र-राजप्रश्लीय सटीक---विपाकसूत्र सटीक-विशेषणवती--विशेषावश्यक सटीक-व्यवहारसूत्रनिर्युक्ति भाष्य टीका---सिद्धपाशृत सटीक-सिद्धहेमशब्दानशासन---सिद्धान्तविचार ---सूत्रकृताङ्ग सटीक---स्थानाङ्गसूत्र सटीक

आगमोदब समिति । शेठ देवबन्द लालमाई जैन पुरतकोद्धार फण्ड सुरत । शेठ देवचन्द लालमाई जैन पुलकोद्धार फंड सुरत । श्रीजैन आत्मानन्दसभा भावनगर । आगमोदय समिति । निर्णयसागर मेस मंबई । हस्तिलिसित । शेठ देवचन्द छालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड सुरत। आगमोदय समिति । श्रीजैन आत्मानन्द सभा भावनगर । हस्तिलिखित । आगमोदय समिति । रतकाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमकजी श्वेताम्बर संस्था । श्रीयशोविजय जैन पाठशासा बनारस । श्रीमाणेकमुनिजी सम्पादित । श्रीजैन आत्मानन्द सभा भावनगर । रोठ मनसुन्नभाई भगभाई अमदाबाद । ं हस्तिलिखित । आगमोदय समिति । 5)

### ॥ गर्हम्॥ **भासंगिक निवेदन**ः।

निर्युक्ति-भाष्य-बृक्तिसहित इहत्कल्यसूत्रना आ अगाउ अमे चार विभाग प्रसिद्ध करी कृत्या छीए। आजे एनो पांचमो विभाग प्रसिद्ध करवामां आवे छे। आ विभागमां इहत्कल्यसूत्रना चोथा पांचमा उदेशानी समावेश करवामां आव्यो छे। आ विभागनी समाप्ति साथे प्रस्तुन प्रन्थना मनाता ४२६०० श्लोक प्रमाण पैकी छनभग ४०००० श्लोक सभीनो अंग्र समाप्त थाय छे।

प्रस्तुत विभागना संशोधनमां, चोथा विभागना "प्रासङ्गिक निवेदन"मां जणावेछ हृतीयखंडनी छ प्रतिओ उपरांत मो० छे० प्रतिना चतुर्थखंडनी प्रतिओनो पण अमे उपयोग कर्यो छे, जेनो परिचय आ नीचे आपवामां आवे छे।

#### चतुर्थवंडनी मो० ले० प्रतिओ

१ मो॰ प्रति—आ प्रति पाटण-सागरगण्डला उपाश्रयमां रहेला शेठ मोंका मोदीना ज्ञानभंडारनी छे। एना पानां ८२ छे। दरेक पानानी पृठीदीठ सत्तर सत्तर लीटीओ छे अने ए दरेक लीटीमां ६९-७६ अक्षरो छे। प्रतिनी लंबाई १३॥॥ इंचनी अने पहोळाई ५। इंचनी छे। प्रतिना लंबानी पुण्यका आदि कर्झ्य नयी; ते अने पहोळाई ५। इंचनी छे। प्रतिना लंबानी पुण्यका आदि कर्झ्य नयी; ते छतां आ प्रंय एक ज लेखकना हाथे लखाएल होई तेना पहेला बीना खंडो अनुक्रमें संवत १५०६-७५ मां लखाएला होवाथी आ चोथो खंड संवत १५०५-७६ मां लखाएल हर्से एमां जरा पण इंकाने स्थान नथी। कारण के-लेखके आ प्रतिनो पहेलो खंड संवत १५०३ ना अपाड महिनामां पूर्ण कर्यों छे अने त्या मीता संवं संवत १५०५ ना आपाड महिनामां पूर्ण कर्यों छे अने लखके आ ज गतिए प्रस्तुत प्रत्यना प्रतिनामां समाप्त कर्यों छे, एटले को लखके आ ज गतिए प्रस्तुत प्रत्यना प्रता चोधा खंडो लख्या होय तो संभव छे के-आ प्रीजा चोथा खंडो अनुक्रमें संवत १९०५-७६ मां लखाएला होवा जोइए। आ प्रति जीणंप्राय स्थितिमां छे। प्रति मीदीना भंडारनी होई एनी अमे मी० संक्षा राखी छे।

२ छै० प्रति—आ प्रति पाटण-सागरगच्छना उपाश्रयमां रहेला लेहेह वकीलना झानभंडारनी छे। एनां पानां ७७ छे। दरेक पानानी पूठीदीठ सत्तर सत्तर लीटीओ छे अने दरेक लीटीमां ७४-७९ अखरो छे। प्रतिनी खंबाई १३ इंचनी अने पहोळाई ५ इंचनी छे। प्रतिना अंतमां ठेसकनी पुरिषका बनोरे कहां व नथी; ते छतां आ मंथ एक ज ठेसकना हाये उत्साप्त होई तेनी प्रथमसंख संबत १५७८ ना आसो मासमां व्यालसाय होवाणी वाकीना बीजा संबत्ते वे पछीना चर्चमां ठसाएका छे एमां ठेझ एण हांकाने स्थान नथी। प्रतिनी स्थिति जीणेंगाय छे। प्रति लेहेह वक्तिका भंडारनी होई एनी अमे ठे० संझा राखी छे।

#### आ बन्ने य प्रतिओ असे उपरोक्त संडारोनी संरक्षक देमचन्द्रसभा द्वारा मेळवी छै। प्रतिओनी समिषियमता

प्रस्तुत प्रन्थना प्रसिद्ध करवामां आवेला चार विभागोमां इस्तलिखित प्रतिओनी समविषमताने अंगे असे जे इकीकत जणावी छे ते करतां आ विभागमां एने अंगे अमारे जदं ज कहेबानं छै। पहेला चार बिभागोमां संशोधनमाटे एकटी करेल प्रतो जदा जदा पारभेदबाळी होई चार वर्गमां वहेंचाई जती हती. ज्यारे प्रस्तृत विभागथी शरू करी प्रन्थ-समाप्ति पर्यंत ए बर्गभेद दूर थइ जई बधीये प्रतिओ मात्र वे बर्गमां वहेंचाई गइ छे-एक बर्ग ताही मों े छे भा े हे प्रतिओनो अने बीजो वर्ग कां अपितो । पहेला वर्गनी प्रतिओ आपसमां क्यारेक क्यारेक जडी पडी जाय हो. तेम छतां पहेला त्रण चहेजामां आ प्रतिओ पाठभेदना विषयमां जे प्रकारनं समविषम बलण धरावती हती तेवं आ विभागधी नधी रहां। आ विभागधी पाठभेदमाटे जदं वलण फक्त कां० प्रति ज धरावे हे । आमां घणे ठेकाणे पंक्तिओनी पंक्तिओ अने टीकानी टीकाना अंशो पाठ-भेदबाळा तेमज बधारेना है। आ दरेक पाठभेदी अने बधाराना अंशोने अमे ते ते देकाणे दिप्पणमां आप्या छे । कवित कवित निरर्थक जणाता पाठभेदोनी उपेक्षा पण करी है. तेम छतां मोटे भागे पाठभेद आदिनी नोंध लेबा माटे अमे अप्रमत्त ज रह्या छीए। आ बधा उमेरेला अने परिवर्तित पारभेदो पैकी जे पारो अमने महस्वना लाग्या के तेमने अमें मळमां दाखल कर्या छे अने बीजी प्रतिना पाठोने दिप्पणमां आप्या छे. पण आवं कोई विरल विरल प्रसंगे ज बनवा पाम्यं छे। कां० प्रतिमां जे वधारानी पंक्तिओ अने टीकाअंशो छे ते मोटे भागे एवा छे के जेनुं प्रन्थकारे पहेलां अनेकवार ज्याख्यान करी दीघं छे । केटलाक उमेराओ लिंग-बचन-बिभक्तिना फेरफारनी सचनाविषयक हे तो केट-लाक उमेराओ गाथामां आवता च वा त अपि आदि अञ्चयोनी अर्थसचनाविषयक है: केटलाक उमेराओ गाथा आदिनी प्रतीकना उमेराने लगता है तो केटलाक उमेराओ असक अब्दोने स्पष्ट रीते समजाववासाटे समानार्थक अब्दाना उमेराने लगता के । आ बधी वस्त टीकाकारे प्रस्तुत प्रन्थना व्याख्यानमां सेंकडो वखत कही दीघेल होवाथी कां० प्रतिमांना उपरोक्त उमेराओनुं कहां ज महत्त्व रहेतं नथी। तेमज आ पाटोने अमारा पासेनी ताडपत्रीय वगेरे प्राचीनतम टीकाप्रतिओनो अने चुर्णि-विशेषचुर्णिनो पण टेको नथी, ए कारणथी अमे आ बधा पाठभेदोनी नोंध टिप्पणमां लेवानुं उचित मान्युं छे।

अंतमां अमे पटली आशा राखीए छीए के प्रखुत संतोषनमां तेम ज पाठभेदोनी नोंध ठेवामां अमे अतिषणी काळजी राखी छे ते छतां आ संबंधमां अमारी स्खलना जणाय तो विद्वान् बाचको क्षमा करे।

> निवेदक-गुरु-शिष्य सुनि चतुरविजय-पुण्यविजय

॥ अईम् ॥

## चतुर्थोदेशकप्रकृतानामनुक्रमः।

| सूत्रम्      | प्रकृतनाम                  | प्रष्ठम् | स्त्रम्       | प्रकृतनाम                   | पृष्टम्   |
|--------------|----------------------------|----------|---------------|-----------------------------|-----------|
| 8            | अनुद्वातिकप्रकृतम्         | १३०७     | २०-२८         | गैणान्तरोपसम्पत्प्रकृतम्    | १४२४      |
| ٠<br>٩       | पारा <b>क्रिक</b> प्रकृतम् | १३२९     | २९            | विष्वग्भवनप्रकृतम्          | १४५८      |
| 3            | अनवस्थाप्यप्रकृतम्         | १३४९     | 30            | अधिकरणप्रकृतम्              | १४७३      |
| 8 <b>-</b> 9 | प्रश्राजनादिप्रकृतम्       | १३६७     | <b>३</b> १    | परिहारिकप्रकृतम्            | १४८०      |
| १०-११        | वाचनाप्रकृतम्              | १३८१     | 32-33         | महानदीप्रकृतम्              | १४८७      |
| १२–१३        | संज्ञारयप्रकृतम्           | १३८४     | 30-30         | <b>उंपाश्रयविधिप्रकृतम्</b> | १४९८      |
| १४–१५        | ग्लानप्रकृतम्              | १३९२     | 10 1          |                             |           |
| १६-१७        | कालक्षेत्रातिकान्त-        |          | १ प्रकृत      | मिदं उपसम्पत्मकृतम्         | इत्यनेन   |
|              | प्रकृतम्                   | १३९९     | नामाऽप्युच्ये | π u                         |           |
| 86           | अनेषणीयप्रकृतम्            | १४१२     | २ अत्र        | मूहे वद्यपि उपाध्ययप्रद     | व्तम् इति |
| 89           | कल्पस्थिताकल्पस्थित-       |          |               | वे तत्र उपाभयविधिमक         |           |
|              | प्रकृतम्                   | १४१७     | हेयम् ॥       |                             |           |
|              |                            |          |               |                             |           |

## पश्चमोद्देशकप्रकृतानामनुक्रमः।

| स्त्रम्     | प्रकृतनाम                 | पृष्ठम् | स्त्रम्       | प्रकृतनाम                  | ष्ट्रष्टम् |
|-------------|---------------------------|---------|---------------|----------------------------|------------|
| <b>१-8</b>  | <b>ब्रह्मापायप्रकृतम्</b> | १५०३    | १२            | पानकविधिप्रकृतम्           | १५५५       |
| 4           | अधिकरणप्रकृतम्            | १५१३    | <b>१३-३</b> ६ | <b>ब्रह्मरक्षात्रकृतम्</b> | १५६०       |
| <b>Ę-</b> S | संस्कृतनिर्विचिकित्स-     |         | ३७            | मोकप्रकृतम्                | १५७८       |
|             | प्रकृतम्                  | १५२४    | ₹८-80         | परिवासितप्रकृतम्           | १५८३       |
| १०          | <b>उद्रारप्रकृतम्</b>     | १५३७    | 88            | व्यवहारप्रकृतम्            | १५९२       |
| 9.9         | आहारविधिप्रकृतम्          | १५४६    | ४२            | पुलाकभक्तप्रकृतम्          | १५९५       |
|             |                           |         |               |                            |            |

## ॥ अर्हम् ॥ बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुक्रम ।

|                   | चतुर्थ उद्देश ।                                                                                   |         |
|-------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------|---------|
| गाया              | विषय                                                                                              | पत्र    |
| ४८७७–४९६          | ८ अनुद्धातिकप्रकृत सूत्र १                                                                        | १३०७–२९ |
|                   | १ हस्तकर्म, २ मैथुन अने ३ रात्रिभोजन ए त्रण<br>स्थानो अनुद्वातिक अर्थात् गुरुशयश्चित्तने योग्य छे |         |
| ४८७७-८१           | चतुर्थ उद्देशनो अने चतुर्थ उद्देश प्रथम सूत्रनो                                                   |         |
|                   | हतीय उद्देश साथे मेळ-संबन्ध                                                                       | 2300-6  |
|                   | अनुद्धातिकसूत्रनी व्याख्या                                                                        | १३०८    |
| 8662-69           | 'एक' अने 'त्रिक'पदना निश्लेपो                                                                     | १३०८-१० |
| 8640-93           | 'बद्धात' अने 'अनुद्धात' पदना निक्षेपो                                                             | १३९०-११ |
| ४८९४              | अनुद्वातिकप्रायश्चित्तने योग्य त्रण स्थानो                                                        | १३११    |
| ४८९५-४९४०         | १ हस्तकर्मनुं खरूप                                                                                | १३११-२२ |
| ४८९५-९६           | 'हस्त'पदना निश्लेपो                                                                               | १३११    |
| ४८९७-४९४०         | 'कर्म'पदना निक्षेपो                                                                               | १३१२-२२ |
| ४८९७              | द्रव्यकर्मनुं स्वरूप                                                                              | १३१२    |
| ४८९८              | भावकर्मना संक्षिष्ट असंक्षिष्ट वे भेदी                                                            | १३१२    |
| ४८९९–४९ <b>११</b> | असंह्रिष्ट भावहस्तकर्मना १ छेदन २ भेदन                                                            |         |
|                   | ३ घर्षण ४ पेषण ५ अभिघात ६ स्नेह ७ काय                                                             |         |
|                   | ८ क्षार ए आठ प्रकारो, तेनुं स्वरूप अने तेने                                                       |         |
|                   | लगता दोषो अने अपवादो                                                                              | १३१२-१५ |
| ४९१२–४०           | संक्रिष्ट भावहस्तकर्मना प्रकारो                                                                   | १३१५–२२ |
| ४९ <b>१२</b>      | संक्षिष्ठहस्तकर्मना प्रकारो                                                                       | १३१५    |
| ४९१३–१४           | वसतिविषयक संक्षिप्रहस्तकर्मना प्रकारो                                                             | १३१५    |
| ४९१५–१९           | वसतिविषयक रूपदोषनुं खरूप, रूपना सचित्त                                                            |         |
|                   | अचित्त वे प्रकारो, तेने छगता दोषो अने                                                             |         |
|                   | <b>प्रायश्चित्तो</b>                                                                              | 2324-90 |

|                     | वृहत्कल्पसूत्र पंचम विमागनी विषयानुकम ।                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             | 11               |
|---------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------|
| गाया                | विषय                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                | 43               |
|                     | [ गाथा ४९१५—माद्किप्ताचार्ये विद्यावडे बना-<br>वेली राजकन्यकातुं ख्दाहरण ]                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                          |                  |
| ४९२०—३०             | वसतिविषयक विस्तरदोष्टुं स्वरूप, साधुनी वस-<br>तिमां वेत्रयासी, सस्त्रीकपुरूष वगेरे पेसी जाय<br>तेमने बहार काढवाने छगती यतनाओ अने<br>अपवादो                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                          |                  |
|                     |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | १३१७–१९          |
|                     | [ गाथा ४९२५—श्रीगृहतुं ब्दाहरण ]<br>हस्तकर्मविषयक प्रायश्चित्तो                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | ****             |
| ४९३१-४०             |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | <b>१३१९२२</b>    |
| ४९४१–६०             | २ मैथुनतुं खरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | <b>१३</b> २२–२७  |
| ४९४१–४२             | देव, मनुष्य अने तिर्यंच संबंधी मैथुन                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                | १३२२             |
| 8685-80             | प्राणातिपात-पद्दिविद्युद्धि आदि मूलगुण-उत्तरगुणने लगतां दरेक अपवादस्थानोमां प्रायक्षित्तनो निषेध करवामां आवे छे ते छतां मैशुनविषयक अपवाद-स्थानोमां प्रायक्षित्त केम आपवामां आवे छे ? तेने लगती शिच्यनी शंका अने ते सामे आवार्यनो उत्तर. अथोत् जैनशासनमां मैशुनभाव रागद्वेषविद्वित न होवाने कारणे तेनां अपवाद ज नथी किन्तु गीताथीदि कारणवशात् जयणापूर्वक जे प्रतिसेवा करे छे तेना अपराधस्थाननी लघु गुरु बुलना करीने प्रायक्षित्तस्थानोमां हानि-दृद्धि करवामां आवे छे [गाथा ४९४३—दिर्पका अने कल्पिका प्रतिसेवा खंकर ] | १३व२–२३          |
| ४९४८–६०             | मैधुनविषयक प्रायश्चित्तस्थानोमां हानि-वृद्धि अर्थान्<br>ओछा-बत्तापणुं केम थाय छे ? तेत्रं तिर्वेशीय राजा<br>अने दुकाळमां एक क्षेत्रमां वृद्धवास रहेळ स्वविर<br>आचार्यना क्षक्लक शिष्यना दृष्टान्वद्वारा समर्थन                                                                                                                                                                                                                                                                                                      | 93311 3.A        |
| 8948-46             | ३ रात्रिभोजननं खरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 | १३२४-२ <i>७</i>  |
| 0 ) 1 <b>1 - 40</b> | र राजि नाजनातु स्वरूप<br>राजिओजन, तेने लगता अपवादो, यतनाओ अने<br>प्रायश्चित्तोतुं निरूपण                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            | १३ <b>२७</b> –२९ |
|                     |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     |                  |

| व्याचा           | विषय                                                                                         | पत्र            |
|------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------|
| ४९६९–५०५         | ७ पाराञ्चिकप्रकृत सूत्र २                                                                    | १३२९-४९         |
|                  | १ दुष्ट २ प्रमत्त अने ३ अन्योन्यकारक ए श्रण                                                  |                 |
|                  | पाराख्रिक शायश्चित्तने योग्य छे                                                              |                 |
| ४९ <b>६९</b> –७० | पाराश्चिकप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध                                                    | १३२९            |
| ,                | पाराश्चिकसूत्रनी व्याख्या                                                                    | १३३०            |
| ४९७१             | 'पाराख्रिक'पदनी व्युत्पत्ति अने शब्दार्थ                                                     | १३३०            |
| ४९७२७४           | पाराश्चिकना आशातनापाराश्चिक अने प्रतिसेवना-                                                  |                 |
|                  | पाराख्रिक ए वे प्रकारो, तेमना सचारित्रि-अचारि-                                               |                 |
|                  | त्रिपणानुं स्वरूप अने परिणामनी विविधताने लई                                                  |                 |
| •                | अपराधनी विविधता                                                                              | १३३०            |
| ४९७५-८४          | १ आशातनापाराश्चिकतुं स्ररूप                                                                  | १३३०–३२         |
|                  | १ तीर्थंकर २ प्रवचन ३ श्रुत ४ आचार्य                                                         |                 |
|                  | ५ गणधर अने ६ महर्द्धिक, ए छनी आज्ञातनानुं                                                    |                 |
|                  | स्तरूप अने तेने छगतां प्रायश्चित्तो                                                          |                 |
| ४९८५-५०२६        | २ प्रतिसेवनापाराश्चिकतुं स्वरूप                                                              | १३३२-४२         |
| ४९८५             | प्रतिसेवनापाराश्चिकना १ दुष्ट २ प्रमत्त अने                                                  |                 |
|                  | ३ अन्योन्यकारक ए त्रण प्रकारो                                                                | १३३२            |
| ४९८६–५०१५        | १ दुष्टपाराश्चिकनुं स्वरूप                                                                   | १३३२-३९         |
| ४९८६–५००५        | १ कषायदुष्टपाराश्चिकतुं स्वरूप                                                               | १३ <b>३२—३७</b> |
| 896              | दुष्टपाराश्चिकना कषायदुष्ट अने विषयदुष्ट ए वे                                                |                 |
|                  | प्रकारो अने कषायसुष्टनी स्वपश्च दुष्ट-परपश्च दुष्टपद-                                        |                 |
| 004-03           | द्वारा चतुर्भंगी                                                                             | १३३२            |
| 89८ <b>७९३</b>   | स्वपश्चकवायदुष्ट्यं स्वरूप अने तेने छगतां १ सर्व-                                            |                 |
|                  | पनाल २ मुखानंतक ३ उल्काक्ष अने ४ शिख-<br>रिणी ए चार दृष्टान्तो                               |                 |
| 8998-90          | परपक्षकवायदुष्टादिनुं स्वरूप                                                                 | 8334-38         |
| 8996-4004        |                                                                                              | १३३४-३५         |
| 0116-4004        | कवायदुष्टना वर्णनप्रसंगे सर्वपनालावि रष्टान्तोमां                                            |                 |
|                  | दर्शावेला दोषोनो प्रसंग न आहे ते माटे आहारादिना<br>निमंत्रण अने महणने लगती आचार्योए स्वापेली |                 |
|                  | सामाचारी अने ते रीते न बर्त्तवाधी लागता दोषो                                                 |                 |
|                  | अस्य अस्याया छानता दावा                                                                      | १३३५-३७         |

| बृहत्कस्पसूत्र | पंचम | विभागनी | विषयानुक्रम | 1 |
|----------------|------|---------|-------------|---|

|         | ब्रह्मक्ष्यसूत्र प्यम विमानमा विवयान्त्रका ।                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  | 1.0             |
|---------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------|
| गाचा    | विषय                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                          | पत्र            |
| 4004-84 | २ विषयदुष्टपाराश्चिकतुं स्वरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                | 8 \$ \$ 20-\$ 8 |
|         | विषयदुष्टपाराश्चिकती व्यवस्थानसम्बद्धाः व्यवस्थानसम्बद्धाः व्यवस्थानसम्बद्धाः कर्मास्य प्राप्ताः कर्मास्य करास्य कर्मास्य कर्य क |                 |
|         | गणपा॰, संघपाराञ्चिक आदि पाराज्जिक प्राय-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      |                 |
|         | श्चित्तो, तेना दोषो अने विषयदुष्टने क्यांथी क्यांथी<br>पाराञ्चिक करनो तेनुं निरूपण                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            |                 |
| ५०१६–२४ | २ प्रमत्तपाराश्चिकतुं स्वरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  | १३३९-४२         |
| ५०१६    | पांच प्रमाद पेकी प्रस्तुतमां 'प्रमाद'पदथी स्त्यानाईर-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                         |                 |
|         | निद्रानो अधिकार                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                               | 6 5 5 6         |
| ५०१५–२४ | स्यानर्दिप्रमत्तपाराञ्चिकने लगतां १ पुद्गल २ मोदक                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |                 |
|         | ३ फरुसक-कुंभार ४ दन्त ५ वटशालाभंजन ए<br>पांच रुष्टान्तो अने तेने लिंगपाराश्चिक करवामाटेनो                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     |                 |
|         | तथा तेने परिलाग करवामाटेनो विधि                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                               | १३१९-४२         |
| ५०२५-२६ | ३ अन्योन्यकारकपाराश्चिकन्तं खरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              | १३४२            |
|         | अन्योन्यकारकनुं खरूप अने तेने अंगे लिङ्गपारां-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |                 |
|         | चिक प्रायश्चित्त                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              |                 |
| 4079-49 | पाराश्चिकनुं स्वरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | 6385-86         |
|         | दुष्ट, प्रमन्त अने अन्योन्यसेवी पैकी कोने कया                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |                 |
|         | प्रकारनुं पाराख्रिक प्रायश्चित्त आपवामां आ <b>वे छे</b><br>तेनुं वर्णन                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                        |                 |
| ५०२७    | उपाश्रय-कुल-निवेशनादिपाराश्चिक तथा लिक्कपारा-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |                 |
|         | श्चिकप्रायश्चित्तने योग्य अपराधी                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              | १३४२            |
| ५०२८–३१ | तपःपाराश्चिकतुं स्वरूप अने तेने योग्य व्यक्तिना                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                               |                 |
|         | गुणोतुं कथन                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                   | <b>१३</b> ४२-४३ |
| ५०३२-५७ | कालपाराञ्चिकनुं स्वरूप                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                        | १३४३–४९         |
| 4032    | कालपाराश्चिकनी कालमयीदा                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                       | 8 \$ 8 \$       |
| ५०३३-३४ | कारूपाराख्रिकनो स्वगणमांथी नीकळवानो विधि                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      |                 |
|         | अने परगणमां जवानां कारणी                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      | १३४३-४४         |

| बृहत्कल्पसूत्र पंचम वि | पागनो विषयानुकम |  |
|------------------------|-----------------|--|
|------------------------|-----------------|--|

| 14           | बृहकल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयासुकम ।                                                   |         |
|--------------|-----------------------------------------------------------------------------------------|---------|
| गाया         | विषय                                                                                    | पश्च    |
| <b>५०३</b> ५ | कालपाराश्चिकनी सामाचारी                                                                 | १३४४    |
| ५०३६–४४      | कालपाराख्रिक जे आचार्यनी निश्रामां रही प्रायश्चित्त                                     |         |
|              | करे ते आचार्ये ते कालपाराश्विक प्रत्ये केम वर्त्तवुं ?                                  |         |
|              | वाचना-प्रच्छना आदि जेवां महत्त्वनां कार्योने<br>छोडीने पण कालपाराश्चिकनी खबर लेवी, तेनी |         |
|              | तवीयत नरम होय त्यारे तेनी स्वयं सेवा शुश्रूपा                                           |         |
|              | करवी, कारणवश पोते जह शके तेम न होय त्यारे                                               |         |
|              | पोताने बदले ते कालपाराश्चिकनी खबर लेवा                                                  |         |
|              | उपाध्याय अगर गीतार्थने मोकलवो इत्यादिने                                                 |         |
|              | लगती सामाचारी                                                                           | १३४४-४६ |
| 4084-40      | कालपाराश्चिक समर्थ होय तो राजा वगेरे तरफथी                                              |         |
|              | थता उपद्रवने टाळे अने तेना बदलामां राजानी                                               |         |
|              | भलामणयी अथवा पोतानी इच्छाथी श्रीसंघ ते                                                  |         |
|              | कालपाराख्रिकनी कालमर्यादामां घटाडो करे                                                  |         |
|              | अथवा तेने सदंतर माफ करे तो ते कालपाराञ्चिक<br>निर्दोष गणाय                              | 0.511.0 |
|              | निद्द्रिय गणाय                                                                          | १३४६–४९ |
| ५०५८–५१३     | ७ अनवस्थाप्यप्रकृत सूत्र ३                                                              | १३४९–६७ |
|              | अनवस्थाप्यप्रायश्चित्तने योग्य त्रण स्थानो-साध-                                         |         |
|              | र्मिकसौन्य, अन्यथार्मिकसौन्य अने हस्ताताल                                               |         |
| <b>५०५८</b>  | अनवस्थाप्यप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध                                              | १३४९    |
|              | अनवस्थाप्यसूत्रनी व्याख्या                                                              | १३४९    |
|              | अनवस्थाप्यसूत्रनी विस्तृत व्याख्या                                                      | १३४५–६७ |
| ५०५९         | भनवस्थाप्यना आशातनाअनवस्थाप्य अने प्रति-                                                |         |
| ५०६०–६१      | सेवनाअनवस्थाप्यादि प्रकारो                                                              | १३५०    |
| 4040-41      | १ आशातनाअनवस्थाप्यनुं स्वरूप<br>आशातनाअनवस्थाप्यना तीर्थकराशातनादि छ                    | १३५०    |
|              | प्रकारो अने तेने लगतां प्रायश्चित्तो                                                    |         |
| ५०६२-५१२३    | २ प्रतिसेवनाअनवस्थाप्यनुं स्ररूप                                                        | १३५०-६४ |
| ५०६२         | प्रतिसेवनाअनवस्थाप्यना माधर्मिकसौन्यकारी अन्य-                                          | 1440-48 |
|              | धार्मिकसौन्यकारी अने इस्तातालदायी ए त्रण प्रकारो                                        | १३५०    |

|                   | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनी विषयातुकमः।                                                                                                                                                 | €*           |
|-------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------|
| भागा              | विषय                                                                                                                                                                                    | पत्र         |
| 4055-60           | १ साधर्मिकसौन्यनुं स्वरूप                                                                                                                                                               | 2240-48      |
| ५०६३              | साधर्मिकसैन्यविषयक द्वारगाथा                                                                                                                                                            | १३५०         |
| <b>4</b> 048-40   | १ साधर्मिकोपधिस्तैन्यद्वार                                                                                                                                                              | १३५०-५१      |
|                   | साधर्मिकना साधारण के कींमती वस्त-पात्रादि<br>उपधिना अपहरणथी आचार्यादिने छागतां प्रायश्चित्तो                                                                                            |              |
| <b>५०६८</b>       | २ व्यापारणाद्वार<br>गुरुओए गच्छादिकने माटे उपधि लेवा सोकलेळा<br>श्रमणो अधवचमां गुरुने जणाव्या सिवाय उपधि<br>लड् ले तेने लगतां प्रायक्षित्तो                                             | <b>१३५</b> २ |
| ५. <b>०६९</b> –७१ | ३ ध्यामनाहार<br>उपिथ बळी गइ होय अथवा न बळी गइ होय ते<br>छतां उपिथ बळी गयाने बहाने छोभ बज्ञ थई<br>उत्कृष्ट उपिथ आदि छावे अने ते बातनी गृहस्थ<br>आदिने स्वबर पढे तेने छगतां प्रायक्षित्तो | १३५२         |
| ५०४२              | ४ प्रस्थापनाद्वार<br>कोई आचार्यादिए कोई साधु साथे बीजा आचा-                                                                                                                             | १३५३         |
|                   | र्यादिने आपवामाटे उपकरण मोकल्युं होय तेने ते<br>पोते ज वचमां छइ हे तेने छगतां प्रायश्चितो                                                                                               |              |
| ५०७३-८४           | ५ शेक्षद्वार                                                                                                                                                                            | १३५३-५६      |
|                   | ससहायक असहायक शैक्ष-शैक्षिकाना अपहारना<br>प्रकारो, तेने लगतां प्राथिक्षित्तो, दोषो तथा शैक्स-<br>पहारने लगतो अपवाद                                                                      |              |
| ५०८५-८७           | ६ आहारविधिद्वार<br>आहारविषयक साधर्मिकसैन्यना प्रकारो अने<br>तद्विषयक प्रायक्षित्त                                                                                                       | १३५६         |
| ५०८८-५१०२         | २ अन्यधार्मिकलैन्यनुं स्वरूप                                                                                                                                                            | १३५६-५९      |
|                   | आहार, उपधि, सचित्त एटले शिष्य-शिष्या-                                                                                                                                                   | 2 .          |
| <b>b</b> .        | विषयक प्रव्रजितअन्यधार्मिकस्तैन्य अने गृहस्थ-                                                                                                                                           | . 4          |
|                   | भन्यधार्भिकसौन्यनुं सक्तप, तेने छगतां प्रायश्चित्तो                                                                                                                                     | 7 ma 12      |
| S. D.             | अने अपवादी                                                                                                                                                                              |              |

| 16 | इहत्करपस्त्र पंचम विभागनो विषयातुकम । |  |
|----|---------------------------------------|--|

| • •             |                                                     |         |
|-----------------|-----------------------------------------------------|---------|
| वराचा           | विषय                                                | पश्र    |
| ५१०३-१९         | १ इस्तातालनुं खरूप                                  | १३५९-६३ |
| <b>५१०३</b>     | हस्ताताल, हस्तालंग अने अर्थादान ए त्रण पाट-         |         |
|                 | भेरवाळां पदो                                        | १३५९    |
| 4608-66         | १ हस्तातालनुं खरूप, तेने लगतां प्रायश्चित्तो अने    |         |
|                 | अपवादो                                              | १३६०-६२ |
| 4884-83         | २ हस्तालंबतुं स्वरूप                                | १३६२    |
| 4668-66         | ३ अर्थादानतुं स्वरूप अने ते समजाववामाटे             |         |
|                 | अवसम् आचार्यतुं दृष्टान्त                           | १३६२-६३ |
| ५१२०–२८         | साधर्मिकसैन्यकारी आदि प्रतिसेवनाअनवस्थाप्य          |         |
|                 | आचार्यादिने लगतो प्रायश्चित्तनो विभाग               | १३६४-६५ |
| ५१२९–३७         | अनवस्थाप्यप्रायश्चित्तने योग्य व्यक्तिना गुणो, तेने |         |
|                 | लगतो विधि अने तेनी सामाचारी                         | १३६६-६७ |
|                 |                                                     |         |
| ५१३८–९६         | प्रवाजनादिप्रकृत सूत्र ४–९                          | १३६७-८१ |
| 93-388          | ४ प्रवाजनासूत्र                                     | 03-0758 |
|                 | पंडक, वातिक अने छीव ए त्रण प्रव्रज्याने अयोग्य छे   |         |
| 4836            | प्रश्राजनादिप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध          | १३६७    |
|                 | प्रवाजनासूत्रनी व्याख्या                            | १३६७    |
| 4838            | प्रव्राजनासूत्रमां अधिकार                           | १३६८    |
| ५१४०-४३         | प्रवाजनानो विधि                                     | १३६८    |
|                 | दीक्षाळेनारनी परीक्षानो-पृछगाछ करवानो विधि          |         |
|                 | अने एथी विपरीत रीते दीक्षा आपनार आचार्यने           |         |
|                 | प्रायश्चित्तादि                                     |         |
| ५१४४–६३         | १ पंडकनुं स्वरूप                                    | १३६९-७३ |
| # 688-8¢        | पंडकनां सामान्य लक्षणो                              | १३६९-७० |
| 488- <b>4</b> 3 | पंडकना प्रकारो                                      | १३७०-७३ |
| 4888            | पंडकना भेदो                                         | १३७०    |
| ५१५०-५१         | बूषितपंडक अने तेना आसिक उपसिक्त ए वे                |         |
|                 | प्रकारतुं स्वरूप                                    | १३७०    |

|                 | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनी विषयानुक्रम ।                                                                                                                                                                                              | 88                    |
|-----------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------|
| गाथा            | विषय                                                                                                                                                                                                                                   | पत्र                  |
| <b>५१५२</b> -५६ | वपयातपंडकना पहेला भेद बेदोपपातपंडकमुं स्वरूप<br>अने ते विषे हेमकुमारतुं उदाहरणतथा बीजा भेद<br>वपकरणोपपातपंडकतुं स्वरूप अने ते विषे एक<br>जन्ममां पुरुष, स्त्री, नयुंसक एम ज्रण वेदनो<br>अनुभव करनार क्रिपिलनुं दृष्टान्त               | <b>१३७०-७</b> २       |
| ५१५७–६३         | अजाणपणे पंडकने दीक्षा अपाइ होय तेने ओळ-<br>खवानी रीत, तेनी चेष्टाओ तेम ज एवाने जाण्या<br>पछी राखवाधी छागता दोषो                                                                                                                        | १३७२-७३               |
| <b>५१६</b> ४    | २ ह्रीवनुं स्वरूप                                                                                                                                                                                                                      | १३७३                  |
| ५१६५            | ३ वातिकनुं स्वरूप                                                                                                                                                                                                                      | १३७४                  |
| 4844-40         | तचनिकतुं दृष्टान्त<br>कुंमी, ईंघ्योलु, शकुनी, तत्कर्मसेनी, पाश्चिका-<br>पाश्चिक, सौगन्धिक, आसिक, वर्षित, विप्पित                                                                                                                       |                       |
| ५१६८–७१         | आदि नपुंसकोतुं स्वरूप<br>जैम की-पुरुषो ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, तपस्या आदि<br>द्वारा विकारोने रोके छे तेम नपुंसको पण विकारोने<br>रोकी शके ते छतां नपुंसकमाटे प्रवश्यानो विषेध<br>केम क्रवामां आदे छे ए जातनी शिष्यनी शंका अने          | १३७४                  |
| <b>५१</b> ७२–८९ | आचार्यनो उत्तर अने ते प्रसंगे तस्सआन्नुतुं दृष्टान्त<br>अपनादपदे पंढकादिने प्रक्रचा आपनामां आवे<br>त्यारे तेने केवो वेष आदि आपनो, केवी रोते साधु-<br>सामाचारी शीलववी, सूत्राविनो अभ्यास केम<br>कराववो, तेने वेष आदिनो त्याग केम कराववो | <b>૧</b> ૨ <b>૭</b> ૧ |
|                 | इत्यादिने रूगती सामाचारी<br>[गाथा ५१८५—सर्वज्ञभाषितसूत्रनां रुक्षणो ]                                                                                                                                                                  | १३७६-८०               |
| ५१९०-९६         | ५-९ मुंडापनादिसूत्र<br>पंडक, वातिक अने हीव ए जेम प्रवाजनाने माटे<br>जयोग्य छे तेम गुंडन, शिक्षा, उपस्पापना, एक-<br>मंडलीमां भोजन अने साथे रहवाने माटे पण<br>अकल्पिक छे                                                                 | <b>{\$60-6{</b>       |

| ••                                                 | Seconda san tantin tasalam t                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                          |                                          |
|----------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------|
| वावा                                               | विषय                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  | पत्र                                     |
| 4860-45                                            | ९० वाचनाप्रकृत सूत्र १०-१९                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            | १३८१–८४                                  |
|                                                    | अविनीत, विक्वतिप्रतिबद्ध अने अन्यवशमितप्राप्तत<br>ए त्रण वाचनाने अयोग्य छे अने विनीत, विक्वति-<br>वर्जी तेमज उपशान्तकषाय ए त्रण तेने योग्य छे                                                                                                                                                                                                                                         |                                          |
| ५१९७–९८                                            | बाचनाप्रकृतनो पूर्वसूत्रसाथे सम्बन्ध                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  | १३८१                                     |
|                                                    | १०-११ वाचनासूत्रनी व्याख्या                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | १३८२                                     |
| 4899 -                                             | अविनीत, विकृतिभोजी अने कपाययानने वाचना                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |                                          |
|                                                    | आपवाने लगतां प्रायश्चित्तो                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            | १३८२                                     |
| <b>५२००</b>                                        | अविनीतादि त्रण पदनी अष्टभंगी                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                          | १३८२                                     |
| <b>५२०१–१०</b><br>-                                | अविनीतादिने वाचना आपवाधी लागता दोषो अने<br>तेने लगतो अपवाद<br>[ गाषा ५२०७—'अञ्चवल्लानितप्राभृत' पदनी<br>ज्याख्या ]                                                                                                                                                                                                                                                                    | १३८२-८४                                  |
|                                                    |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                       |                                          |
|                                                    |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                       |                                          |
| 4288-34                                            | संज्ञाप्यप्रकृत सूत्र १२-१३                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | <b>१३८</b> ४–९२                          |
| <b>५२११-३५</b><br>५२११-३३                          | संज्ञाप्यप्रकृत सूत्र १२–१३<br>१२ इःसंज्ञाप्य सूत्र                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                   | १ <b>३८४–</b> ९२<br>१३८४–९१              |
| •                                                  | १२ दुःसंज्ञाप्य सुत्र<br>दुष्ट, मृद अने न्युद्राहित ए त्रण उपदेश प्रत्रन्या<br>आदिना अनिधिकारी छे                                                                                                                                                                                                                                                                                     | १३८४-९१<br>१३८४-९१                       |
| •                                                  | १२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र<br>दुष्ट, मूद अने ज्युद्राहित ए त्रण उपदेश प्रत्रज्या                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |                                          |
| ५२११-३३                                            | १२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र<br>इट, मृत अने ज्युद्धादित ए त्रण ज्यदेश प्रत्रच्या<br>आदिना अनिधकारी छे<br>संबाज्यप्रकृतनो पूर्वसूत्र माये संबन्ध<br>दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या                                                                                                                                                                                                             | 8558<br>6 <u>5</u> 58-68                 |
| ५२११-३३                                            | १२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र<br>इट, गृत अने ज्युद्धादित ए त्रण ज्यदेश प्रत्रच्या<br>आदिना अनिधकारी छे<br>संज्ञाप्यप्रकारनो पूर्वसूत्र माथे संबन्ध<br>दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या<br>दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या<br>दुःसंज्ञाप्यमा इट, गृह अने ज्युद्धादित ए त्रण                                                                                                                         | १३८४ <b>-</b> ९१                         |
| 4988-22<br>4288<br>4288                            | १२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र इट, मृत अने ज्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रत्रचा आदिना अनिधकारी छे संबाप्यप्रकारने पूर्वसूत्र माथे संबन्ध दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या इक्ष्यंज्ञाप्यम् अनी ज्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी                                                                                                                      | 8558<br>6 <u>5</u> 58-68                 |
| 4288-22<br>4288<br>4288-82<br>4288-22              | १२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र इ.ट. गृत अने ज्युद्धादित ए त्रण ज्यदेश प्रत्रच्या आदिना अनिधकारी छे संबाप्यप्रकारनो पूर्वसूत्र माथे संबन्ध दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यम् अनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यमा इ.ट. गृत अने ज्युद्धादित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी मूदर्ज स्रक्रप                                                                                                | १३८४ <b>-९१</b><br>१३८४<br>१३८५          |
| 4288<br>4288<br>4288<br>4288<br>4288<br>4288       | १६ इ.संज्ञाच्य सूत्र इष्ट, मृद अने व्युद्धादित ए त्रण उपदेश प्रतन्या<br>आदिना अनिधकारी हे<br>संज्ञाच्यत्रकानो पूर्वसूत माथे संबन्ध<br>दु:संज्ञाच्यस्त्रजनी व्याख्या<br>इ:संज्ञाच्यत् इह, मृद अने व्युद्धादित ए त्रण<br>क्रांत्र अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी<br>मृद्धं स्वरूप<br>'मृद'पदनो आठ प्रकारे निक्षेप                                                                             | १३८४ <b>-</b> ९१<br>१३८४<br>१३८५<br>१३८५ |
| 4288<br>4288<br>4288-23<br>4288-22<br>4288<br>4288 | १६ इ.संक्षाप्य सूत्र इष्ट, मृद अने व्युद्धादित ए त्रण व्यदेश प्रत्रत्या आदिना अन्तिपकारी हे संज्ञाप्यमुक्तनी व्याख्या इ.संज्ञाप्यसुक्तनी व्याख्या इ.संज्ञाप्यसुक्तनी व्याख्या इ.संज्ञाप्यना इष्ट, मृद अने व्युद्धादित ए त्रण महत्युं सक्त्य 'मृद्धं सक्त्य 'मृद्धं सक्त्य 'मृद्धं पदनो आठ प्रकार निद्धेष इन्यमूट्यं सक्त्य अने ते विषे ष्टिकाबोद्वर्यं दृष्टाम्व                      | १३८४-९१<br>१३८४<br>१३८५<br>१३८५<br>१३८५  |
| 4288<br>4288<br>4288<br>4288<br>4288<br>4288       | १२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र इष्ट, मृद अने ज्युद्धादिन ए त्रण उपदेश प्रतन्या आदिना अनियकारी हे संज्ञाप्यस्क्रकानो पूर्वसूत्र माथे संबन्ध दुःसंज्ञाप्यस्क्रमनी ज्याख्या इःसंज्ञाप्यस्क्रमनी ज्याख्या इःसंज्ञाप्यम् अहे अने ज्युद्धादिन ए त्रण प्रकार अने ए त्रण स्वतनी अहभंगी मृद्धां स्वरूप 'मृदं प्रकृप अने ते विषे घटिकाचोद्वर्तं रहान्य दिन्युद्ध स्वरूप अने काल्युद्धनं स्वरूप अने काल्य | १३८४-९१<br>१३८४<br>१३८५<br>१३८५<br>१३८५  |
| 4288<br>4288<br>4288-23<br>4288-22<br>4288<br>4288 | १६ इ.संक्षाप्य सूत्र इष्ट, मृद अने व्युद्धादित ए त्रण व्यदेश प्रत्रत्या आदिना अन्तिपकारी हे संज्ञाप्यमुक्तनी व्याख्या इ.संज्ञाप्यसुक्तनी व्याख्या इ.संज्ञाप्यसुक्तनी व्याख्या इ.संज्ञाप्यना इष्ट, मृद अने व्युद्धादित ए त्रण महत्युं सक्त्य 'मृद्धं सक्त्य 'मृद्धं सक्त्य 'मृद्धं पदनो आठ प्रकार निद्धेष इन्यमूट्यं सक्त्य अने ते विषे ष्टिकाबोद्वर्यं दृष्टाम्व                      | १३८४-९१<br>१३८४<br>१३८५<br>१३८५<br>१३८५  |

|                         | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुक्रम ।                                                                                                                                       | <b>२१</b> ः     |
|-------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------|
| माथा                    | विषय                                                                                                                                                                            | ₹7              |
| 4286                    | अभिभवमूढ अने वेदमूढतुं स्वरूप अने वेदमूढ                                                                                                                                        |                 |
|                         | विषे अनंगरतिराजातुं दष्टान्त                                                                                                                                                    | १३८७            |
| ५२१९–२२                 | द्रव्यम्बादिने लगतां उपर्युक्त दृष्टान्तोनो संप्रह                                                                                                                              | 1360-66         |
| <b>५२२३</b> –२८         | च्युद्राहिततुं स्वरूप अने ते विषे १ द्वीपजातपुरुष<br>२ पंचग्रेलवासी देवीओथी ठगाएल सुवर्णकार<br>३ अंघलक अने ४ सुवर्णकारच्युद्वाहित पुरुषनां                                      |                 |
|                         | रष्टान्तो                                                                                                                                                                       | १३८८-९०         |
| ५२२९                    | उपरनां उदाहरणोमां मृद अने व्युद्वाहितनो विभाग                                                                                                                                   | १३९०            |
| ५२३०–३३                 | हुष्ट, मृढ अने व्युद्धाहितमां दीक्षाने योग्य अने<br>अयोग्यनो विभाग अने तेनां कारणो                                                                                              | १३९०-९१         |
| ५२३४–३५                 | १३ सुसंज्ञाप्यसूत्र                                                                                                                                                             | १३९१-९२         |
| 4540-47                 | अदुष्ट, अमृढ अने अञ्युद्धाहित ए त्रणे उपदेश<br>प्रवच्या आदिना अधिकारी छे                                                                                                        | ******          |
| <b>ષ</b> ૨३૪–३ <b>ષ</b> | दुःसंक्षाप्यसूत्रमां दुःसंक्षाप्यने जणान्या पछी<br>सुसंक्षाप्य अर्थापत्तियी आवी जाय छे ते छतां<br>सुसक्षाप्यसूत्र जुटुं बनाववातुं कारण अने ते प्रसंगे                           |                 |
|                         | कालिकश्रवातुयोगनी शैलीतुं वर्णन                                                                                                                                                 | १३९ <b>१-९२</b> |
|                         |                                                                                                                                                                                 | 4 (             |
| ५२३६–६२                 | ग्लानप्रकृत सूत्र १४–१५                                                                                                                                                         | १३९२–९९         |
|                         | निर्फ्रन्थी अने निर्फ्रन्थो ग्लान अवस्थामां होय त्यारे<br>तेमनी सेवाने लगती यतनाओ, अपवादमार्गो तेम<br>ज ग्लानावस्थामां विकारोनी अतिप्रवळतादर्शक<br>सुक्कुमारिका आर्यानुं उदाहरण |                 |
| <b>५२६३</b> –५३१        | ४ काल-क्षेत्रातिकान्तप्रकृत सूत्र                                                                                                                                               |                 |
| 2144 141                |                                                                                                                                                                                 | १३९९-१४११       |
|                         | 09-39                                                                                                                                                                           | 1411-1011       |
| •                       | निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने कालाविकान्त तेम ज क्षेत्राति-<br>कान्त अशनादि कस्पे नहि                                                                                               |                 |
| ५२६३                    | काळ-क्षेत्रातिकान्तप्रकृतनो पूर्वसूत्रसाये संबन्ध                                                                                                                               | १४००            |
|                         |                                                                                                                                                                                 |                 |

| <b>२</b> २-       | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।                                                          |         |
|-------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------|---------|
| गाना              | विषय                                                                                             | वत्र    |
|                   | १६-१७ काल-क्षेत्रातिकान्तसूत्रोनी                                                                |         |
|                   | ब्याख्या                                                                                         | १४००    |
| <b>५२</b> ६४–८६   | १६ कालातिकान्तसूत्रनी विस्तृत व्याख्या                                                           | १४००-५  |
| 4268-68           | जिनकल्पिकने छक्षीने कालातिकान्त अञ्चनादिनुं                                                      |         |
|                   | स्वरूप, तेनी मर्यादा, प्रायश्चित्तो अने दोषो                                                     | १४००-२  |
| <b>५२७०–७४</b>    | स्थविरकत्पिकोने लक्षीने कालातिकान्त अशनादिनुं                                                    |         |
|                   | स्वरूप, तेनी मर्यादा, तेटला काळ सुधी अशनादि                                                      |         |
|                   | राखी मूकवानां कारणो अने तेने छगती यतनाओ                                                          | १४०२-३  |
| ५२७५–८३           | भक्त पानादिने राखी मूकवामां जेम दोषो छे तेम                                                      |         |
|                   | तेने लाववामां पण अनेक दोषो छे माटे कोइए<br>स्रावुंज नहिए प्रकारनं शिष्यनं कथन अने ते             |         |
|                   | सामे आचार्यनो प्रतिवाद                                                                           | १४०३-४  |
| ५२८४-८६           | अशनादि कालातिकान्त थवानां कारणो अने तेने                                                         | 10-1    |
| 1100-04           | अंगे अपवाद                                                                                       | १४०४–५  |
| ५२८७-५३१४         | १७ क्षेत्रातिकान्तसूत्रनी विस्तृत न्याख्या                                                       | १४०५–११ |
| 4260-66           | क्षेत्रातिकान्तनी मर्यादा, तद्विषयक प्रायश्चित्त अने                                             |         |
|                   | दोपोनुं स्वरूप                                                                                   | १४०५    |
| ५२८ <b>९–९१</b>   | जिनकत्पिक अने स्थविरकत्पिकने पोतपोताना                                                           |         |
|                   | मर्यादित क्षेत्रमां क्षेत्रातिकान्तने छगता दोषो छागवा                                            |         |
|                   | छतां तेमनुं निर्दोषपणुं                                                                          | १४०६    |
| <b>५२९२</b> –५३०१ |                                                                                                  |         |
|                   | गामोमांथी भिक्षा आदि लावे तेथी थता—क्षेत्ररक्षा,                                                 |         |
|                   | गुरु-बाल-वृद्ध-ग्लान-तपस्वि-प्राघूर्णक आदि निमित्ते<br>भिक्षानी तेम ज तेमने योग्य दूघ दहि घी आदि |         |
|                   | उपयोगी द्रन्योनी सुलभता, उद्गमदि दोषोनी                                                          |         |
|                   | शुद्धि, बहुमान आदि गुणो अने ते विषे अगारीनुं                                                     |         |
|                   | अर्थात क्रपण वाणीआनी स्त्रीतुं तथा बदरीतुं-                                                      |         |
|                   | बोरडीतुं दृष्टान्त                                                                               | 2805-8  |
| 4302-88           | दूरनां गामोमां भूख्या भूस्या भिक्षामाटे जवुं तेम                                                 |         |
|                   | ज भिक्षा लइने आववुं इत्यादि उपाधि करवा करतां                                                     |         |
|                   |                                                                                                  |         |

|                  | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनी विषयानुकम ।           | ₹ ₹              |
|------------------|---------------------------------------------------|------------------|
| मापा             | विष्य                                             | पत्र             |
|                  | भिक्षा लावनार ते गाममां ज आहारादि करी ले          |                  |
|                  | तो शुं इरकत छे तेने छगतुं वादस्थळ                 | १४०९-११          |
| <b>५३१५</b> –३८  | अनेषणीयप्रकृत सूत्र १८                            | १४१२-१७          |
|                  | भिक्षाचर्यामां श्रमणे अजाणपणे अनेषणीय हिमन्ध      |                  |
|                  | अज्ञनादि उत्क्रष्ट अचित्त द्रव्य लीधुं होय तो     |                  |
|                  | ते अनुपस्थापित श्रमणने क्षापी देवुं अने जो तेवो   |                  |
|                  | श्रमण न होय तो तेनो प्राग्नुक भूमीमां विवेक करवो  |                  |
| ५३१५-१६          | अनेषणीयप्रकृतनो पूर्वभूत्र साथे सम्बन्ध           | १४१२             |
|                  | अनेषणीयसूत्रनी व्याख्या                           | १४१२             |
| ५३१७–३८          | अनुपस्थापित शिष्यने अनेषणीय भक्त आदि आप-          |                  |
|                  | वाने लगती यतनाओ, अयतनाथी आपवामां दोष              |                  |
|                  | आदिनुं वर्णन तेम ज तेने समजाववाना प्रकारादि       | 6865-60          |
| ५३३९–६१          | करपस्थिताकल्पस्थितप्रकृत सूत्र १९                 | <b>१</b> ४१७–२४  |
|                  | कल्पस्थित अकल्पस्थित श्रमणोने एक बीजाना निमित्ते  |                  |
|                  | तैयार थएल कल्पनीय अकल्पनीय पिण्डनुं खरूप          |                  |
| 4889             | करपश्चिताकरपश्चितप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध | १४१७             |
|                  | कल्पस्थिताकल्पस्थितसूत्रनी व्याख्या               | १४१८             |
| ५३४०             | कल्पस्थित अकल्पस्थितनुं खरूप अने तेमनां महा-      |                  |
|                  | व्रतोनी संख्या                                    | १४१८             |
| ५३४१–५०          | ऋषभ-महावीर अने बादीस तीर्थंकरना करूपस्थित         |                  |
|                  | अकल्पस्थित श्रमण-श्रमणीओ, तेमना उपाश्रयो,         |                  |
|                  | समुदाय, संघ आदिने उद्देशीने करेळ आधाकमीदि         |                  |
|                  | पिण्डनो कल्प्याकस्प्य विभाग                       | १४१८–२०          |
| 4846-15          | चोवीस तीर्थकरना श्रमण-श्रमणीओना कल्पस्थित         |                  |
|                  | अकल्पस्थित तरीकेना विभागतुं कारण समजाव-           |                  |
|                  | षामादे तेमना ऋजु-जड, ऋजु-प्राज्ञ अने वक-          |                  |
|                  | जडपणानुं वर्णन अने न्टप्रेश्वणकर्ने रष्टान्त      | १४२ <b>१</b> –२३ |
| 4848 <u>-</u> 38 | कल्पस्थित अकल्पस्थितने आश्री आधाकर्मादिना         |                  |
|                  | प्रहणने छगतो अपवाद                                | १४२३–२४          |

| <b>भा</b> षा      | विषय                                                                                                                                                                                                                              | 47                         |
|-------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------|
| <b>43</b> 55-489  | ६ गणान्तरोपसम्पद्धाकृत सूत्र २०-२८                                                                                                                                                                                                | <b>१</b> 8२8–५             |
| <i>५इ६२–५४४</i> ९ | २० निश्च विषयक गणान्तरोप-<br>सम्परसूत्र<br>कोई गण निर्मयने ज्ञानादिना करणे बीजा गणमां<br>उपसंपदा लेबी होय तो आचार्य, उपाध्यायादिने<br>पृक्ठतां तेओ सम्मति आपे तो ज तम यह कके                                                      | १४२४ <b>–</b> १४४ <b>४</b> |
| ५३६२              | गणान्तरोपसम्पत्प्रकृतनो पूर्व सूत्र साथे सम्बन्ध                                                                                                                                                                                  | १४२४                       |
|                   | भिश्चविषयक गणान्तरोपसम्प-                                                                                                                                                                                                         |                            |
|                   | त्सूत्रनी व्याख्या                                                                                                                                                                                                                | १४२५                       |
| ५३६३–५४४९         | उपसम्पदानुं खरूप                                                                                                                                                                                                                  | १४२५-४७                    |
| ५३६३—७७           | क्षान-दर्शन-चारित्रनी गृद्धि निमित्ते गणान्तरोप-<br>सम्पदानो स्वीकार, तेना १ मीत २ चिन्तयन् ३<br>व्रजिकादि ४ सखडी ५ पिछुकादि ६ अप्रतिषेपक<br>(प्रतिषेपक) ७ पर्षेडान् ८ गुरुप्रेपित ए आठ<br>अतिचारो, तेने लगतां प्रायक्षितो अने आठ |                            |
|                   | अतिचारोतुं म्बरूप                                                                                                                                                                                                                 | १४२५–१८                    |
| ५३७८-७९           | जे भिक्षु निष्कारण प्रतिषेधकादि पासे उपसंपदा<br>स्वीकारे तेने छगतो विधि                                                                                                                                                           | १४२८                       |
| <b>५३८०-८५</b>    | अप्रतिवेधक, पर्वहान अने प्रतीच्छक्तने लगतो                                                                                                                                                                                        | ,,,,                       |
| ५३८६-९४           | अपवाद<br>डयक्त अञ्यक्त शिष्यनु स्वरूप अने तेमने उपसं-                                                                                                                                                                             | १४२९–३०                    |
| ५३९५–९६           | पदा लेबामाटे बीजा साधु माथे मोकलबामां आवे<br>सारे प्रतीच्छनीय आचार्य अने मृलाचार्यने लगता<br>आभाव्य अनामाल्यनो विभाग<br>आचार्य, उपाध्याय आदिनी अनुमति सिवाय उप-<br>सपदा सीकारनार शिष्य अने प्रतीच्छक आचार्यने                     | <b>१</b> ४३०–३२<br>-       |
|                   | प्रायश्चित्त अने आज्ञा नहि आपवानां कारणो                                                                                                                                                                                          | <b>१४३२</b> –३३            |
| ५३९७–५४२४         | १ ज्ञानोपसम्पदानो विधि                                                                                                                                                                                                            | १४३३-३३                    |
| <b>ૡ૱ૡઌ</b> ૺૺ    | उपसपदा स्तीकारवा पहेला आज्ञा मेळववा माटे<br>आचार्य, उपाध्याय अने गच्छने पूछवानी विधि                                                                                                                                              | - V ()                     |

विषय

अने विधिपूर्वक पटले आज्ञा लक्ष्मे आवेला शिष्यने उपसंपदा नहि आपनार आचार्यने प्रायक्षित तेम ज जे कारणसर उपसंपनामादे आवेका शिष्यते क्यसंपदा आपवाधी प्रायश्चित्त लागे ते कारणोनं वर्णन अने व्या वधायने रूगता अपवादी

8888-38

4808-88

उपसम्पदा स्वीकारनार श्रमणनो शिष्य उपसम्पदा आपनार आचार्यनो अनामान्य होय तो ते आचार्य तेने बह न शके तेने खगतो अपबाद अने ते अना-भारत जिल्ला ते आचार्य पासे भणीने तैयार धया पछी ते आचार्य काळधर्म पामे तो ते शिष्ये काळधर्म पांग्रेल आचार्यना गच्छने निष्णात बनाववानी विधि तथा तेमना पारस्परिक आभाव्य-अनाभाव्यने लगता आदेशो अने तेना अगीआर विभागो आदि नेमज उपरोक्त रीते काळधर्म पामेल आचार्यना ज्ञिच्यो निष्णात न थइ शके तो तेमने माटे कुछ. गण अने संघमां अध्ययनमाटे जवानो विधि आदि िगाया ५४०८--क्षेत्रोपसम्पन्न अने सुखदुःखो--पसम्पन्ननो आमान्य-अनामान्यविधि

2838-38

१४३९-४२

१४४२-४३

गाथा ५४२३--पांच प्रकारनी उपसम्पदा अने तेने आश्री आभाव्य-अनाभाव्यनुं सक्त्य ]

५४२५--३९

२ दर्शनोपसम्पदानो विधि दर्शनप्रभावक शास, छेदशाख आदिना अध्ययन निसित्ते तेमज प्रवचननी रक्षानिसित्ते उपसम्पदा म्बीकारबा आविनो विधि

५४४०-४९

३ चारित्रोपसम्पदानी विधि एवणापीय-सीदीयरूप देशदीय अने गुरुदीय-गच्छ-दोषरूप आत्मसमुत्यदोषथी बचवा माटे तथा चारित्रनी वृद्धिसादे उपसम्पदा लेवानो विधि आदि

4840-48

२१--२२ गणाबच्छेदक अने आचार्य-उपाध्यायविषयक गणा-न्तरोपसम्पत्सत्रो

4.888-Re

वपसम्पदा लेबानो विधि २३ भिक्कुविषयक सम्भोगोपसम्प-. स्सूच अने तेनी व्याख्या

48

. १४४५–४६

५४५६-६५ संभोगोपसम्पदानां कारणो, गच्छ अने आचार्यना इँपिल्यविषयक चतुर्भेगी अने तेमने चारित्रमार्गमां ज्वात करवानो विधि तथा गणान्तरसंक्रमणने आशी संविप्न भिक्ष अने संविष्ठ गण विषयक चतुर्भेगी अने तेने कारती जयनम्पदानो विसनत विधि

१४४६–४९

५४७० २४-२५ गणावच्छेदक अने आचार्य-उपाध्यायविषयक सम्भोगोपसम्प-त्सुत्रो

१४५०-५१

२६ भिक्षुने लगतुं अन्य आचार्य-उपाध्यायने स्त्रीकारवा विषयक सूत्र अने तेनी व्याख्या

१४५१ १४५१

५४७१ अन्य आचार्य-डपाध्यायने स्त्रीकारवानां कारणो ५४७२-७३ पू० ज्ञाननिमित्ते अने दर्शननिमित्ते अन्य आचार्य-उपा-ध्यायने स्त्रीकारवानो विधि

१४५२

५४७३ ७०-५२ पूर चारित्रनिमित्ते अन्य आचार्य-उपाध्यायना स्रीकारिवयक विधि, श्रुनव्यक्त-ययोज्यक्त पदनी चतुर्भेगी अने तेने आश्री आचार्य-उपाध्यायना स्रीकारनो विस्तृत विधि

१४५२–५६

५४९२ उ०-९६ २७-२८ गणावच्छेदक अने आचार्य-उपाध्यायने आश्री अन्य आचार्य-उपाध्यायने स्तीकारवा विषयक सन्त्रो

2845-46

५४९७-५५६५ विष्वग्भवनप्रकृत सूत्र २९

१४५८–७२

कालधर्म पामेल भिक्षु आदिना देहनी परिष्ठापना-विषयक सत्र

|           | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।                                                                                  | ₹७             |
|-----------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------|
| मांचा     | विषय                                                                                                                     | पन्न           |
| 4896-86   | विष्वग्भवनश्रक्तनो पूर्वप्रकृत साथे सन्बन्ध                                                                              | 9846-49        |
|           | विष्वरभवनसूत्रनी व्याख्या                                                                                                | १४५९           |
| 4889-4402 | विष्वग्भवनसूत्रनी विस्तृत घ्याख्यानी उपक्रम अने                                                                          |                |
|           | तद्विषयक द्वारगाथाओ                                                                                                      | १४५९           |
| ५५०३–४    | १ प्रत्युपेक्षणाद्वार                                                                                                    | १४६०           |
|           | कालधर्मगत भिक्ष आदिना शवना परिष्ठापनने<br>योग्य स्थण्डिलभूमीनुं निरीक्षण                                                 |                |
| ५५०५-९    | २ दिग्दार                                                                                                                | <b>१४६०-६१</b> |
|           | कालधर्मगत साधुना शबना परिष्ठापनने योग्य दिशा<br>अने तेने लगता उपघातोतुं स्वरूप                                           |                |
| 4480-83   | ३ णन्तकद्वार                                                                                                             | १४६१–६२        |
|           | कालधर्मनत भिश्चने योग्य वस्त्रोतुं प्रमाण अने संख्या                                                                     |                |
| ય4१४–१७   | ४ 'दिवा रात्रें। वा काळगतः' द्वार<br>काळधर्म पामेळ साधुने गीतार्थ साधु आदि बोस-<br>रावे अने योग्य विधि करे पण शोक न करे  | <b>१४६२—६३</b> |
| ५५१८–२६   | ५ जागरण-वन्धन-छेदनद्वार                                                                                                  | १४६३–६४        |
| ,         | कोई कारण प्रसंगे दिवसे के रात्रिमां साधुना मृत<br>देहने राखी मृक्तुं पडे तेने अंगे जागवानो, बन्ध-<br>ननो अने छेदननो विधि | , ,            |
| 9420      | ६ कुशप्रतिमाद्वार                                                                                                        | 8848           |
|           | साधु कालधर्म पामे ते वखतना नक्षत्रने आश्री<br>डाभनां पुतळां बनाववानो विधि                                                |                |
| ५५२८–२९   | ७ निवर्त्तनद्वार                                                                                                         | १४६५           |
| •         | कालधर्मगत साधुना शबने भूलथी आगळ लड्ड<br>गया पछी पाछुं स्थंडिलभूमीमां लाबबानो विधि                                        |                |
| 4430      | ८ मात्रकद्वार                                                                                                            | १४६५           |
|           | कालधर्मगत साधुना देहने परठन्या पछी आचम-<br>नादिने लगतो विधि                                                              |                |
| 4438      | ९ शीर्षद्वार                                                                                                             | १४६५           |
|           | कालगत मिश्चना मस्तकने राखवानी दिशा                                                                                       |                |

| 26               | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।                                                                                                                 |                  |
|------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------|
| पाथा             | विषय                                                                                                                                                    | বঙ্গ             |
| 4432-34          | १० तृणादिद्वार<br>काळधर्मगत साधुना शव नीचे डाभनो संबारो<br>करवानो विधि                                                                                  | 88 <b>6</b>      |
| 4435-30          | ११ उपकरणडार<br>कालधर्मगत साधुनी पासे साधुनां उपकरण नहि<br>राखबायी लागता दोषो अने प्रायश्चित्त                                                           | १४६६             |
| <b>५५</b> ३८     | १२ कायोत्सर्गेद्वार<br>साधुना सृत देहने परठव्या पछी उपाश्रयमां आवी<br>काडस्सम्म करवानो विधि                                                             | १४६७             |
| 4439             | १३ प्रादक्षिण्यद्वार<br>साधुना सृत देहने प्रदक्षिणा कर्या सिवाय  उपाश्र-<br>यमां आवतुं                                                                  | १४६७             |
| ५५४०–४६          | १४ अभ्युत्थानद्वार<br>कालधर्मगत साथुनुं देह भूतादिना प्रवेशने लीधे<br>लड्ड जतां के स्मशानभूमीमां लड्ड गया पछी ज्या-<br>श्रयमां पाछुं आवे तेने लगतो विधि | १ <b>४६</b> ७—६८ |
| 4480             | १५ व्याहरणद्वार<br>कालधर्मगत साधु भृताविष्ट थया पछी जे साधु<br>आदिनुं नाम ले तेने लोचादि करवानो विधि                                                    | १४६८–६९          |
| <b>448</b> 6-89  | १६ कायोत्सर्गडार<br>कालगत साधुने परठवीने उपाश्रयमां आख्या पष्टी<br>परिष्ठापक साधुजोए करवानो काउस्सग्ग अने<br>अजितशान्तिस्रवादिनुं गणवुं                 | १४६९             |
| <b>५५५</b> ०     | १७ क्षपण-स्वाध्यायमागेणाद्वार<br>आचार्यादि प्रभावक पुरुष अथवा मोटा कुटुंब-<br>वाळो साधु कालधर्म पामे त्यारे उपवास असब्झा-<br>यने स्वततो विधि            | १४६९             |
| <b>५५५१–५३</b>   | १८ व्युत्सर्जनद्वार<br>कालधर्मगत साधुना उपकरणादिनुं विसर्जन                                                                                             | १४६९-७०          |
| ५ <b>५६</b> ४–५८ | १९ अवलोकनद्वार                                                                                                                                          | 8800-08          |

व्यवहार अने तेने लगतां प्रायश्चित्त आदि

| <b>बृह</b> रकल्पसूत्र | पंचम | विभागनी | विषयानुऋम | ı |
|-----------------------|------|---------|-----------|---|
|                       |      |         |           |   |

ą o

| •               |                                                                                      |                  |
|-----------------|--------------------------------------------------------------------------------------|------------------|
| गाया            | विषय                                                                                 | पत्र             |
| ५६१८–६४         | महानदीप्रकृत सूत्र ३२-३३                                                             | १४८७–९८          |
| 4586-39         | ३२ महानदी सूत्र                                                                      | १४८७–९१          |
| •               | निर्मन्थ-निर्मन्थीओने गंगा यमुना जेवी महानदीओ                                        |                  |
|                 | महिनामां एकथी वधारे वार उतरवी कल्पे नहि                                              |                  |
| 4686 -          | महानदीपकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                                                   | 1880             |
|                 | ३२ महानदीसूत्रनी व्याख्या                                                            | १४८७             |
| ५६१९–२१         | ३२ महानदीसूत्रगत इमाओ, उदिहाओ, वंजिताओ,                                              |                  |
|                 | संतरित्तए, उत्तरित्तए आदि पदोनी व्याख्या                                             | १४८७–८८          |
| ५६२२–३४         | महानदीओने नावधी संतरणने लगता अनुकंपा                                                 | -                |
|                 | तेम ज प्रत्यनीकताविषयक विविध दोषोनुं वर्णन                                           | १४८८–९०          |
|                 | [ गाथा ५६२५—अनुकंपाविषये ग्रुहंडराजनुं                                               |                  |
| •               | उदाहरण                                                                               |                  |
|                 | गाथा ५६२७-२८ प्रत्यनीकताविषये महावीर-                                                |                  |
|                 | देव अने सुदाढ-कंवल-शम्बलदेवीतुं उदाहरण् ]                                            |                  |
| ५६३५–३७         | महानदी उत्तरणविषयक संघट्ट, लेप अने लेपो-                                             |                  |
|                 | परिए त्रण प्रकारो अने तद्विपयक दोषो                                                  | १४९०-९६          |
| ५६३८–६४         | ३३ महानदीसूत्र                                                                       | १४२१-९८          |
|                 | ऐरावती जेवी छीछरी नदीओं महिनामां वे अगर                                              |                  |
| *               | त्रण वार उतरवी कल्पे                                                                 | *                |
|                 | ३३ महानदीसूत्रनी व्याख्या                                                            | १४९१             |
| 4836-39         | ३३ महानदीसूत्रमांनां विषम पदोनी व्याख्या                                             | १४९१–९२          |
| ५६४०— <b>५२</b> | नहीं उतरवा माटेना संक्रम, स्थल अने नोस्थल ए                                          |                  |
|                 | त्रण प्रकारना मार्गो तेना प्रकारो, खरूप अने आ                                        |                  |
|                 | प्रकारो पैकी कया मार्गे जबुं तेने छगना विभाग,<br>भांगाओ वगेरे                        |                  |
|                 |                                                                                      | १४९२-९५          |
| ५६५३–६४         | संक्रम, खल आदि मार्गाने लक्षीने नदी उतरवानी                                          |                  |
|                 | विधि, तेने लगती यतनाओ, दोषो, अपवाद आदि                                               | १४९५— <b>९</b> ८ |
| पंदद्य-८१       | उपाध्यमिशियस्य सन् ३० ३० ०                                                           |                  |
| *111 01         | उपाश्रयविधिप्रकृत सूत्र ३४–३७ ११                                                     | ४८-१५०२          |
|                 | निर्मन्य-निर्मन्थीओने ऋतुबद्धकाळमां अने वर्षा<br>ऋतुमां रहेवा टायक उपाश्रयोतुं वर्णन |                  |
|                 | क्षा रहता कायक उपात्रधानु वर्णन                                                      |                  |

|                  | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनी विषयानुकम ।             | ą g         |
|------------------|-----------------------------------------------------|-------------|
|                  |                                                     |             |
| गाया             | विषय                                                | , 424<br>1  |
| ५६६५–६६          | उपाश्रयविधिप्रकृतनो पूर्व सूत्र साथे संबंध          | 5588        |
|                  | ३४-३७ उपाश्रयविधिसुत्रोनी व्याख्या                  | <i>१४९९</i> |
| ५६६७–७५          | म्हतुषद्धकाळविषयक ३४–३५ उपाश्रयविधिस् <b>त्रोनी</b> |             |
| ٥                | विस्तृत व्याख्या, यतना, अपवाद आदि                   | १५००-१      |
| ५६७६–८१          | वर्षावासविषयक ३६–३७ उपाश्रयविधिसूत्रनी              |             |
|                  | विस्तृत व्याख्या, यतना, अपवाद आदि                   | १५०१२       |
| ,                | पंचम उद्देशक ।                                      |             |
|                  |                                                     |             |
| ५६८२–५७२५        | ९ ब्रह्मापायप्रकृत सूत्र १–४                        | १५०३–१३     |
| ५६८२-८७          | ब्रह्मापायप्रकृतनो पूर्व सूत्र साथे संबंध           | १५०३-५      |
|                  | १-४ ब्रह्मापायसूत्रोनी व्याख्या                     | १५०५        |
| ५६८८-५७२०        | १-२ निर्धन्थविषयक ब्रह्मापायसूत्रनो निषय अने        |             |
|                  | विस्तृत व्याख्या                                    | १५०५-१२     |
| 4 <b>६९१-९</b> ९ | गच्छने विषे शास्त्रस्मरणने लगता व्याघातोतुं धर्म-   |             |
|                  | कथा, महर्द्धिक, आवदयकी, नैपेधिकी, आलोचना,           |             |
|                  | वादि, प्राप्नुणक, महाजन, म्लान आदि द्वारोवडे        |             |
|                  | निरूपण                                              | १५०६-८      |
| ५७००-१२          | गुरुनी आज्ञा सिवाय शाखस्मरण निमित्ते जुदा           |             |
|                  | जनारने लागता दोपोनुं देवताकृत उपसर्गद्वारा          |             |
|                  | निरूपण अने तद्विपयक छ भंगो                          | १५०८-१०     |
| ५७१३–२०          | गच्छवासना गुणोनुं वर्णन                             | १५१०-१२     |
| <i>५७२१</i> –२५  | ३-४ निर्घन्थीविपयक ब्रह्मापायसूत्रोतुं व्याख्यान    | 8482-83     |
| ५७२६–८३          | अधिकरणप्रकृत सूत्र ५                                | १५१३२३      |
|                  | भिक्षु हेशने उपशमान्या सिवाय अन्य गणने              |             |
|                  | आश्रीने रही न शके                                   |             |
| ५७२६             | अधिकरणप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                | १५१३        |
|                  | अधिकरणसूत्रनी व्याख्या                              | १५१३        |
| ५७२७-४९          | [ जुओ तृतीय विभागनो गाथा २६८२ थी                    |             |
|                  | २७१७ सुधीनो विषयातुकम पत्र ३०-३१]                   | १५१४-१५     |
|                  |                                                     |             |

| 14                                               | वृद्दकलसूत्र पंचम विभागतो विषयसुक्रम ।             |         |
|--------------------------------------------------|----------------------------------------------------|---------|
| वादा                                             | विषय                                               | रत      |
| <b>4.64</b> 0-48                                 | अधिकरवनी-छेशनी शान्ति न करतां खगणने तजी            |         |
|                                                  | अन्य गणमां जनार भिक्ष, उपाध्याय, आचार्य            |         |
|                                                  | आविने आभी प्रायश्चित्तनो विभाग अने तेने लगतुं      |         |
|                                                  | एक श्राहुकारनी चार पत्नीतुं उदाहरण                 | १५१५-१८ |
| ५७६२-८३                                          | क्रेक्सने कारणे गच्छनो त्याग न करतां क्रेसयुक्त    |         |
|                                                  | वित्ते गच्छमां वसनार भिक्षु, उपाध्याय, आनार्य      |         |
|                                                  | आदिने शान्त करवानो विधि, शान्त नहि धनारने          | 0504 53 |
|                                                  | लगता प्रायश्चित्तो, दोषो, अपवाद आदि                | १५१८–२३ |
|                                                  | [ गाथा ५७८० — कुमारदृष्टान्त ]                     |         |
| - 000                                            |                                                    |         |
| ५७८४–५८२८ संस्तृतनिर्विचिकित्सप्रकृत स्०६–९ १५२४ |                                                    |         |
|                                                  | सज्ञक्त के अशक्त भिक्षु, आचार्य, उपाध्याय आदि      |         |
|                                                  | सूर्यना उदय अने नहि आधमवा माटे निःशंक              |         |
|                                                  | होई आहार करता होय अने पछी सूर्व उग्यो नथी          |         |
|                                                  | के आधमी गयो छेएम खबर पडतां आहारनो                  |         |
|                                                  | त्याग करे तो तेमनी रात्रिभोजनविरति अखंडित          |         |
|                                                  | रहे छे; पण सूर्यनो उदय थवा छतां अने नहि            |         |
|                                                  | आथमवा छतां जो ते माटे शंकाशील होई आहार             |         |
|                                                  | करे तो तेमनी रात्रिभोजनविरति खंडित थाय छै          |         |
| 4068                                             | संस्तृतनिर्विचिकित्सप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध | १५२५    |
|                                                  | ६-९ संस्तृननिर्विचिकित्स आदि                       |         |
|                                                  | सुत्रोनी व्याख्या                                  | १५२५-२६ |
| ५७८५–५८१४                                        | ६ संस्तृतनिर्विचिकित्ससूत्रनी विस्तृत              |         |
|                                                  | <b>च्या</b> ख्या                                   | १५२६-३६ |
| 4064-60                                          | संस्टतनिर्विचिकित्ससूत्रोनो विषय अने तेने आश्री    |         |

काल, द्रव्य अने भावथी प्रायश्चित्तनी मार्गणा

५७८८-५८०६ उद्रतवृत्ति, अनुद्रतवृत्ति अने अनस्तमित, असामित पदोनी व्याख्या, तेने आश्री संकल्प, गवेषणा, प्रहण अने भोजन ए चार पदो वडे घोडशभंगी, घटमान भांगाओनी सोळ छताओ, आठ शुद्ध १५२६

|         | इड्टकस्पसूत्र पंचस विमागनो विषयानुकम ।               | 44      |
|---------|------------------------------------------------------|---------|
| गावा    | विवय                                                 | 'पश्च   |
|         | छंताओं अने भार्ठ मंशुद्ध छताओं अने अशुद्ध छता-       | * 5.1   |
|         | ओने अंगे काल, इट्य अने भावने आशी प्राय-              |         |
| *       | श्चित्रनो विभाग                                      | १५२६-३१ |
| ५८०७–१४ | संस्कृतनिर्विचिकित्सस्त्रगत संस्कृत आदि पदोनी        | *       |
|         | व्या <del>ख्</del> या                                | १५३१-३३ |
| ५८१५–१६ | ७ संस्तृतविचिकित्सस्त्रनी व्याख्या                   | १५३३    |
| ५८१७–२७ | ८ असंस्तृतनिर्विचिकित्ससूत्रनी ज्याख्या              | १५३४–३७ |
|         | तपोअसंस्ट्रत, ग्लानासंस्ट्रत, अध्वासंस्ट्रत ए त्रण   |         |
|         | प्रकारना असंस्टृतनुं स्वरूप, प्रायश्चित्त आदि        |         |
| ५८२८    | ९ असंस्तृतविचिकित्ससूत्रनी व्याख्या                  | १५३७    |
|         |                                                      |         |
| ५८२९–६० | उद्गारप्रकृत सूत्र १०                                | १५३७–४५ |
|         | निर्घन्थ-निर्घन्थीओ बमन, गचरकुं वगेरे आव्या          |         |
|         | पछी धुंकी नाखे अने मोढुं साफ करी नाखे तो             |         |
|         | रात्रिभोजनदोष न छागे                                 |         |
| ५८२९    | उद्गारप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                 | १५३८    |
|         | उद्गारसूत्रमी व्याख्या                               | १५३८    |
| ५८३०–३२ | भिक्षु आचार्य आदिने आश्री उद्गारविषयक प्राय-         |         |
|         | श्चित्त, दोषो अने अमात्य-बदुकतुं उदाहरण              | १५३८–३९ |
| ५८३३–४५ | उद्गारनां कारणो अने तद्विषयक विविध पदोने             |         |
|         | आश्री प्रायश्चित्तो अने प्रायश्चित्तना प्रसारनी रचना | १५३९-४२ |
| ५८४६–५५ | उद्गारने छक्षी भोजन करवा विषयक विविध                 |         |
|         | आदेशो, कव्छीतुं दृष्टान्त अने शासकारने मान्य         |         |
|         | भोजननो आदेश                                          | १५४२–४४ |
| ५८५६–६० | उद्गार गिछनविषयक अपवाद अने ते विषे रत्न-             |         |
|         | विषयानुं दशन्त                                       | १५४४–४५ |
| ५८६१–९६ | आहारविधिप्रकृत सूत्र ११                              | १५४६–५४ |
| 4८६१    | आहारविधिप्रकृतनी पूर्वसूत्र साथे संबंध               | १५४६    |
|         | आहारविधिसूत्रनी च्याख्या                             | १५४६    |
| 5       |                                                      | - /- •  |

| <b>A</b> P      | हद्दरकस्पप्त्र पंचम विमागनी विषवानुकम ।                                  |                          |
|-----------------|--------------------------------------------------------------------------|--------------------------|
| भागा            | विषय                                                                     | বস                       |
| ५८६२–६४         | माच, बीज, रज आदि मदोनी इवांच्या अने                                      |                          |
|                 | असान्तुक, वदुद्भव प्राणादिनुं स्वरूप                                     | १५४६-४७                  |
| 4644-44         | आहारविधिसूत्रनो अधिकार                                                   | १५४७                     |
| 4660            | ने देखमां जोदन, सत्तु, दवि, पाणी बगेरे जीवादियी                          |                          |
|                 | संसक्त ज मळतां होय तेवा संसक्त देशमां जवानी                              |                          |
|                 | विचार करवी, त्यां जना माटे प्रवत्न करवी, ते                              |                          |
|                 | देश तरफ प्रयाण करवुं अने ते देशमां पहींचवुं<br>आदिने लगतां प्रायश्चित्तो | १५४८                     |
| 4646-68         | अशिव, दुर्भिक्ष आदि कारणे संसक्त देशमां जबुं                             |                          |
| 4040-00         | आदि थाय तो जीवादिधी संसक्त ओदनादिने                                      |                          |
|                 | लेवानी अने तेनी प्रतिलेखना करवानी विधि, ते                               |                          |
|                 | प्रमाणे न करवाथी छागता दोषो, अने ओदन                                     |                          |
|                 | आदिमां रहेळा प्राण आदिना पारिष्ठापननो विधि                               | १५४८-५२                  |
| 4864-98         | जीवादिसंसक्त ओदनादिना बहुण आदिविषयक                                      |                          |
|                 | अपवाद अने यतनादि                                                         | <b>१</b> ५५ <b>२-</b> ५४ |
|                 |                                                                          |                          |
| ५८९७–५९१८       | ः पानकविधिप्रकृत सूत्र १२                                                | १५५५—६०                  |
| ५८९७            | पानकविधिप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                                   | 8444                     |
|                 | पानकविधिसृत्रनी व्याख्या                                                 | १५५५                     |
| ५८९८            | दक, दकरज, दकस्पर्शित आदि पदोनी व्याख्या                                  | 8444                     |
| ५८९९–५९१८       | पानकना-पाणीना प्रहणनो विधि, तेने लगता                                    |                          |
|                 | भांगाओ, तेना परिष्ठापननो विधि अने तद्विषयक                               |                          |
|                 | अपवाद वगेरे                                                              | 8444-60                  |
|                 |                                                                          |                          |
| <i>५९१९–७५</i>  | ब्रह्मरक्षाप्रकृत सूत्र १३–३६                                            | १५६०-७८                  |
|                 | १३-१४ इंद्रियसूत्र अने श्रोतःसूत्र                                       | १५६०                     |
| ५९१५            | बह्मरक्षाप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                                  | १५६ <b>१</b>             |
|                 | इंद्रियसूत्र अने श्रोतःसूत्रनी व्याख्या                                  | १५६१                     |
| <b>५९२०</b> –२८ | इंद्रियस्त्र अने श्रोतःस्त्रनी विस्तृत                                   |                          |
|                 | <b>च्या</b> रूया                                                         | १५६१-६३                  |

|                         | बृहत्कस्पसूत्र पंचम विभागनो विषयातुकम ।                                                                                                                          | રૂ વ             |
|-------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------|
| वाध्या                  | विषय                                                                                                                                                             | पत्र             |
|                         | पंशु-पक्षिविषयक स्पर्शादिची संभवता दोषो,<br>श्रावश्चित्त आदि                                                                                                     |                  |
| 4646-18                 | <b>१५ एकाकिसू<del>त्र</del></b><br>निर्मन्यीओने एकडा रहेवुं कल्पे नहि                                                                                            | १५६३–६५          |
| <b>५९२<b>९</b> े</b>    | एकाकि आदि सूत्रोनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध                                                                                                                       | १५६३             |
|                         | एकाकिसूत्रनी व्याख्या                                                                                                                                            | १५६४             |
| 4930-38                 | एकली निर्प्रत्यीने प्रायश्चित्त, दोषो अने अपवादो                                                                                                                 | १५६४–६५          |
| ५९३५–३९                 | १६ अचेल सूत्र अने तेनी व्याख्या<br>निर्भन्थीने नम्र रहेतुं करपे नहिः नम्न निर्भन्धीने<br>प्रायक्षित्त, तोषो, अपवाद आदि                                           | १५६५-६६          |
| <i>५</i> ९४०–४३         | १७ अपात्र सूत्र अने तेनी व्याख्या<br>निर्मेन्यीने पात्ररहित रहेवुं न कल्पे. निर्मेन्यीने<br>पात्र नहि राखवायी लागता दोषो, तद्विपयक<br>स्नुषातुं उदाहरण अने लपवाद | १५६६-६७          |
| ५९४४                    | १८ व्युतसृष्टकाय सूत्र<br>निर्मन्यीने काया वोसरावीने रहेवुं कल्पे नहि                                                                                            | १५६७             |
| ५९४५–५३                 | १९ आतापना सूत्र<br>निर्भन्थीने गाम, नगर आदिनी बहार आतापना<br>केवी कल्पे नहि                                                                                      | १ <i>५६७-</i> ७० |
| ५९४५–५२                 | आतापना सूत्रनी व्याख्या<br>जघन्य मध्यम उत्कृष्ट आतापनातुं खरूप अने<br>निर्प्रन्थीने योग्य आतापनानो प्रकार अने तेने योग्य                                         | १५६७             |
|                         | स्थान                                                                                                                                                            | 9446-40          |
| <i>५९५३–</i> <b>६</b> ४ | २०–३० स्थानायत, प्रतिमास्थित,<br>निषया, उत्कडुकासन, वीरासन,<br>दंडासन, लगंडशायि, अवाब्युख,<br>उत्तान, आन्नकुत अने एकपार्थ-                                       |                  |
|                         | शायि सूत्र                                                                                                                                                       | १५७०-७३          |
|                         | स्थानायतादि सूत्रोनी व्याख्या                                                                                                                                    | १५७०             |

| ₹ €             | इहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।                                                              |                  |
|-----------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------|
| वाचा            | विषय                                                                                                | पञ्च             |
| ષ ૧૫ રૂ—૫ ૬     | स्थानायत, प्रतिमास्थित आदि पदोनी व्याख्या, तेने<br>लगता दोषो अने निर्प्रन्थीने योग्य स्थानासनो      | १५७०-७१          |
| <b>4946-48</b>  | संयतीने स्थानायतादि स्थानासनोनो निषेध करवा<br>विषयक शंका-समाधान                                     | १५७२-७३          |
| <b>५९६५–६८</b>  | ३१ आकुंचनपट सूत्र<br>निर्मन्यीने आकुंचनपट्ट राखवो अने तेनो उपयोग<br>करवो कल्पे नहि                  | १ <i>५७</i> ३–७४ |
| <b>५९६</b> ५    | आकुंचनपट्टादिस्त्रोनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                                                         | १५७३             |
|                 | आकुंचनपद्द सूत्रनी व्याख्या                                                                         | १५७४             |
| <b>५९६६–६</b> ८ | निर्प्रन्थीने आकुंचनपट्ट राखवाथी लागता दोषो, तेने                                                   |                  |
|                 | लगती यतना अने अपवाद                                                                                 | १५७४             |
|                 | ३२ सावश्रय आसनसूत्र अने व्यारूपा<br>निर्भन्यीओने सावश्रय आसन उपर बेसबुं सुदुं<br>कस्पे नहि          | १५७६             |
| ५९६९-७२         | ं ३३ सविषाण पीठफलक सूत्र<br>निर्घन्धीओने सविषाण पीठफलक उपर वेसबुं सुबुं<br>वगेरे कल्पे नहि          | <b>१५७५</b> –७६  |
| ५९६९–७२         | सविषाण पीठफलक सूत्रनी न्याख्या<br>निर्मन्यीओने सविषाण पीठफलकने आश्री लागता<br>दोषो                  | १५७५             |
| ५९७३            | २४ सङ्गन्तालाबु सूत्र अने व्याख्या                                                                  | १५७६             |
| ,               | रण राष्ट्रपाराठाषु सूत्र अन व्याख्या<br>निर्भन्योओने नालयुक्त अलाबुपात्र राखबुं बगेरे<br>कल्पे नहि  | १ <i>५७६–७</i> ७ |
| ५९७४            | ३५ सङ्घन्नपाञ्चकेसरिका सूच्च<br>निर्घन्यीओए दण्डयुक्त पात्रकेसरिका न राखवी                          | १५७७             |
| ५९७५            | ६६ दारुदण्डक सूत्र अने व्याख्या<br>निर्फ्रत्योओने दारुदण्डक एटले पादप्रोब्छनक<br>राखर्युं कल्पे नहि | १५७७-७८          |

|               | इहस्कल्पसूत्र पंचम विभायनो विषयानुक्रम ।                   | \$10    |
|---------------|------------------------------------------------------------|---------|
| नाना          | विषय                                                       | पंच     |
| ५९७६–९६       | मोकप्रकृत सूत्र ३७                                         | १५७८-८३ |
| <b>५९७</b> ६  | मोकप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                          | १५७८    |
|               | ३७ मोकसूत्रनी व्याख्या                                     | 36/96   |
| 4999-95       | मोकसूत्रनी विस्तृत व्याख्या                                | १५७८-८३ |
|               | [ गाया ५९८७-८८ देवीचुं उदाहरण ]                            |         |
|               |                                                            |         |
| ५९९७–६०३      | २ परिवासितप्रकृत सूत्र ३८–४०                               | १५८३-९१ |
| ५९९७-६०१२     |                                                            | 8963-69 |
|               | निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने रात्रिमां राखी मुकेछो आहार       |         |
|               | कल्पे नहि                                                  |         |
| <b>५९९७</b>   | परिवासितप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध                   | १५८३    |
|               | परिवासित आहार सूत्रनी व्याख्या                             | १५८४    |
| 4986          | परिवासिताहारनुं स्वरूप                                     | १५८४    |
| ५९९९-६००४     |                                                            |         |
|               | स्वरूप                                                     | 8468-84 |
| ६००५-१२       | परिवासित आहार अने अनाहार विषयक दोषोतुं                     |         |
|               | वर्णन, अपवादादि                                            | १५८५-८७ |
| ६०१३–२४       | ३९ आलेपन सूत्र                                             | १५८७-८९ |
|               | निर्प्रत्य-निर्पर्याओने परिवासित आलेपनद्रव्यनो             |         |
| ६०१३-१४       | उपयोग करवो कल्पे नहि<br>आलेपनसूत्रनो पूर्वसूत्र साथे संबंध | १५८७    |
| 4014-18       | आपलेनसूत्रनी व्याख्या                                      | १५८७    |
| F a 9 ts 9 ta | आलेपनसूत्र अने स्रक्षणसूत्रना पौर्वापर्य विषयक             | 1100    |
| ६०१५-१७       | शंका-समाधान                                                | १५८८    |
| ६०१९-२४       | आलेपनने परिवासित राखवाथी लागता दोषो अने                    | , ,,,,  |
| , ., .,       | प्राथिश्च                                                  | 8466-68 |
| 8074-33       | ४० ब्रक्षण सूत्र                                           | 1969-91 |
|               | निर्मन्थ-निर्मन्थीओने परिवासित तैल आदि वडे                 |         |
|               | अभ्यंगन बगेरे करवं न कल्पे                                 |         |

| ३८           | बृहत्कल्पसूत्र पंचम विमागती विवयासुकम ।             |                          |
|--------------|-----------------------------------------------------|--------------------------|
| माना         | विषय                                                | रत्र                     |
| COR4-        | श्रक्षणसूत्रनो पूर्वसूत्र साथे संबंध                | १५९०                     |
| *            | सक्षण सूत्रनी व्याख्या                              | १५९०                     |
| 4024-42      | परिवासित सक्षणने लगतां प्रायम्बित्तो, दोवो अने      |                          |
|              | यतनादि                                              | 2480-88                  |
|              |                                                     |                          |
| ६०३३-४६      | व्यवहारप्रकृत सूत्र ४१                              | १५९२–९५                  |
|              | परिहारकल्पस्थित भिक्कुने योग्य व्यवहार-प्रायश्चित्त |                          |
| 6033         | व्यवहारप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध               | १५९२                     |
|              | ४१ व्यवहार सूत्रनी व्याख्या                         | १५९२                     |
| ६०३४-४६      | परिहारकल्पस्थित भिक्षुना कारणिक अतिकमादि            |                          |
|              | अने तेने लगतां प्रायश्चित्तादि                      | <b>१</b> ५९ <b>२-९</b> ५ |
|              |                                                     |                          |
| ६०४७–५९      | पुलाकभक्तप्रकृत सूत्र ४२                            | १५९५-९९                  |
|              | निर्मन्धीओने पुढ़ाकभक्त छेवुं कल्पे निह             |                          |
| 608 <b>0</b> | पुलाकभक्तप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध           | 8484                     |
|              | पुलाकभक्तसूत्रनी व्याख्या                           | १५९६                     |
| ६०४८-५०      | धान्यपुलाक, गंधपुलाक अने रसपुलाक एम त्रण            |                          |
|              | प्रकारनुं पुलाकभक्त, तेनुं खरूप अने तेमने पुलाक     |                          |
|              | तरीके ओळखाववानुं कारण                               | <b>१</b> ५ <b>९</b> ६    |
| ६०५१-५८      | पुलाकभक्तविषयक दोषोतुं वर्णन                        | १५९६-९८                  |
| ६०५९         | निर्घन्योने आश्री पुलाकभक्तमहणाविविषे भलामण         | १५९९                     |

# पूज्यश्रीभद्रवाहुसामिविनिर्मितसोपज्ञनिर्युक्युपेतं बृह्यत् कल्पसूत्रम् ।

श्रीसङ्खदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन रुघुभाष्येण भूषितम् । आचार्यश्रीमञ्दगिरिपादविरिषतद्याऽर्घपीठिकावृत्त्या तपाश्रीक्षेमकीर्त्या-वार्यवरानुसन्धितद्या शेषसमश्रवृत्त्या समञ्ज्जतम् ।

चतुर्थ-पञ्चमाबुदेशकी।

॥ गईव ॥ वृहत्कल्पसूत्र-पञ्चमविभागस्य शुद्धिपत्रम्

| पक्षिः | अशुद्धम्                         | गुद्धम्                                                                                        |  |
|--------|----------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------|--|
| १०     | अम्हेदाणि                        | अम्हे दाणि                                                                                     |  |
| २३     | बुग्गाहिया,                      | <b>बुग्गाहिया</b>                                                                              |  |
| २४     | 8486                             | 4388                                                                                           |  |
| 9      | <b>५६९</b> ६                     | <b>५३९</b> ६                                                                                   |  |
| २७     | बहुरोगे                          | वहुरोगी                                                                                        |  |
| २६     | ५५६३                             | <b>પ</b> ષ્ઠ <b>६</b> ३                                                                        |  |
| 20     | वतवचो                            | वतऽवची                                                                                         |  |
| २३     | परिद्यीणो                        | परिहीनो                                                                                        |  |
| १६     | अ य प्र कु                       | श्रय विधि प्रक                                                                                 |  |
| १३     | वनस्पतिकायाः                     | वनस्पतिकायः                                                                                    |  |
| ३०     | <b>ब्यु</b> स्सजनं               | व्युत्सर्जनं                                                                                   |  |
| ٩      | -तोयं विंदुम्मि                  | -तोयंबिंदुम्मि                                                                                 |  |
|        | १२२९७६७२ <i>६</i> ३२१२९५६७२६७२११ | १० अम्हेदाणि २३ खुगगाहिया, २४ १२११ ९ ५६९६ २७ बहुरोगे २६ ५५६३ १७ वतवचो २३ परिहीणो १६ अस प्र क्र |  |



#### ॥ श्रीमद्विजयानन्दस्रिवरेभ्यो नमः॥

### पूज्यश्रीभद्रबाहुस्वामिविनिर्मितस्वोपज्ञनिर्युच्युपेतं

## बृहत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणस्त्रितेन लघुभाष्येण भूषितम् । तपाश्रीक्षेमकीर्त्याचार्यविहितया वृत्त्या समलङ्कृतम् ।

## चतुर्थ उद्देशः ।

——अ तु द्धा ति क प्र कृ त म्
व्याख्यातस्तृतीय उदेशकः, सम्प्रति चत्रुर्थ आरम्यते । तस्य चेदमादिस्त्रम्
तओ अणुग्धाइया पन्नत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, राईभोयणं भुंजमाणे १ ॥

अथास्य सृत्रस्य कः सम्बन्धः ? इति चिन्तायां सम्बन्धविधिमेव ताबदुपदर्श्वयति — ० सुत्ते सुत्तं बज्झति, अंतिमपुष्पेः व बज्झती तंत् । इय सुत्तातो सुत्तं, गहंति अत्यातों सुत्तं वा ॥ ४८७७ ॥

इह सम्बन्धोऽनेकथा भवति — यथा पुष्पेषु मध्यमानेषु यदा 'सूत्रम्' तन्तुर्निष्ठितो भवति तदा तत्रैव स्त्रेऽपरं सूत्रं वध्यते, अन्तिमपुष्पे वा तन्तुर्वध्यते, बद्धा च पुष्पाणि मध्यन्ते; एवं यस्तिकानसम् उद्देशको निष्ठितो भवति ततः सुत्रादपरस्रोद्देशकस्य यद् आधं सुत्रं तद् 10 यदि सहशाधिकारिक भवति तदा सुत्रात् सुत्रं प्रमन्तीस्त्रयते । कापि पुनर्साद्पेरस्त्रं सम्बन्धते । वाश्वद्यादानात् काप्यधिद्यस्य सम्बन्धते । वश्वद्यादानात् काप्यधीद्यस्य सम्बन्धते । वश्वद्याद्यस्य सम्बन्धते ।

तत्रार्थात् सूत्रसम्बन्धं तावद् दर्शयति--

घोसो ति गोउलं ति य, एगट्ठं तत्य संवसं कोई । खीरादिविधियतण्, मा कम्मं कुछ आरंमो ॥ ४८७८ ॥

15

१ फझते ते तामा ।। २ सुत्तं, सत्यातो वा भवे सुत्तं मो ॰ डे॰ ॥ ३ °कारकं डे॰ ॥ ४ °परं सु भा को ।॥ ५ सीरादिपीणियतण् तामा ।॥ इ॰ १६५ षोष इति गोकुरुमिति चैकार्थम् । तत्र गुतीयोद्देशकान्त्यसूत्राभिहितचरुक्षेत्रद्वारावसरायाते गोकुरु संबसन् कश्चित् साधुः 'श्रीरादिइहितततुः' प्रचुरदुग्ध-दध्याधुपचितशरीरो मोहोद्धवेन मा हस्तकमं कुर्यात्, अ उंपरुक्षणमिदम्, तेन ⊳ मा वा मैधुनं प्रतिसेवेत, अतस्बद्वारणार्थमा-दिसुत्रसारम्थः क्रियते ॥ ४८७८ ॥ अथ स्वतात् सृत्रसम्बन्धमाह—

हेट्टाऽजंतरसुत्ते, बुत्तमणुग्धाइयं तु पञ्छित्तं । तेज व सह संबंधो. एसो संदङ्ओ णामं ॥ ४८७९ ॥

तृतीयोहेशके यदप्रसादन्यापूर्व तस्य 'अनन्तरापूर्व' रोधकास्थे यो बहिर्भिक्षाचैर्यं गतस्तां रजनी तत्रेव बहिरावसति तस्यादुद्धातिकं प्रायक्षितं साक्षादेवोक्तम्, अत्रापि तदेवादुद्धातिकं साक्षादेव सूत्रेणाभिषीयते, एवं 'तेन वा' रोधकसूत्रेण समं 'सन्दष्टको नाम' सहरापूर्वाणसूत्र-10 द्वयसन्त्रेत्रकार्वतीत इब सम्बन्धो भवति ॥ ४८७९॥ अथान्या वार्वपरिपाळ्या सम्बन्धमेवाड—

> उर्वाचयमंसा वितयानिवासिणो मा करेज करकम्मं । इति सुचे आरंभो, आद्दछपदं च सूएई ॥ ४८८० ॥ तह वि य अठायमाणे, तिरिक्खमाईसु होई सेहुचं । निसिभूचं गिरिजण्णे, अरुणम्मि व दुद्धमाईयं ॥ ४८८१ ॥

16 ब्रिजिकानिवासिनः सन्तः साथव उपितमांसाः सञ्जाताः करकर्म मा कार्युरिति प्रम्तुतसू-ब्रिविषय आरम्भः । अयं च सम्बन्धः "हत्यकम्म करेमाणे" इतिरुक्षणं अत्राद्यपदं सूच-ब्रिति ॥ १८८० ॥

'तथापि' करकर्मणाऽप्यतिष्ठति परिणामे तिरश्चादिषु मैथुंनमृतिसेवनमिष कदाचिद् भवेद् इति द्वितीयपदस्चा । व्रजिकायां च गिरियज्ञादो सायाहसङ्ख्यां निशिभक्तं प्रतिसेवत अः ब्रह्मणोदयवेकायां वा दम्यादिकं ग्रहीयादिति तृतीयपदस्चा ॥ ४८८१ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या— 'त्रयः' त्रिसह्वाकाः 'अनुद्वातिकाः' उद्घातो नाम— 'अद्घेण छिलसेसं'' (गा० ) इत्यादिविधिना भागपातः साननरतानं वा उद्घानः, स विषयते येषु ते उद्धातिकाः, तद्विपरीता अनुद्वातिकाः 'प्रज्ञपाः' तीर्थकरादिभिः प्रकृपिताः । 'तवधा' इत्युपमदर्शनार्थः । इन्ति इसति वा मुख्यमाङ्ग्यानेतिति हत्ताः—शरीरेकदेशो निश्रेषा-25 ऽऽदानादिसमर्थः, तेन यत्त कर्म क्रियते तद् हसकर्मे, तत् कृत्वेन् । तथा स्त्री-पुम्युग्मं गिथुन-सुच्यते, तस्य भावः कर्म वा मेथुनम्, तत् प्रतिस्त्रेनाावः । तथा रात्रौ भोजनम्—श्रशनादिकं सुद्याते, तस्य भावः कर्म वा मेथुनम्, तत् प्रतिस्त्रेनाावः । तथा रात्रौ भोजनम्—श्रशनादिकं सुद्यातः । एप सुशार्थः ॥ अथ निर्युक्तिविक्तरमाह—

> एकस्स ऊ अभावे, कतो तिगं तेण एकगस्सेव । णिक्सेवं काऊणं, णिप्फत्ती होइ तिण्हं तु ॥ ४८८२ ॥

30 इह त्रयाणां सक्क्षा प्रथमतो वक्तव्या । तत्रेकस्थाभावे कुतस्थिकं सम्भवेति ? तेन कारणेन १ < ▷ एतरन्तरंतः पाठः भा० कां० नास्ति ॥ २ पसो संदंसओ णाम ताभा० । पसो च सबदुशो भणिको कां० ॥ ३ 'वयांगत' भा० मो०॥ ४ असुं च सम्भव्यं "हु० भा० ॥ ५ 'धुनं प्रतिसंवेत इति द्वि भा० ॥ ६ 'स्तरः—पक्त' कां० ॥ ७ 'विति ? अतः ॥ ॥ भा० कां० ॥ प्रथमत एकस्वैव निक्षेपं कृत्वा ततस्त्रयाणां निक्षेपस्य निष्पत्तिः कर्तव्या भवति ॥ ४८८२ ॥ यथापतिज्ञातमेव करोति—

> नामं ठवणा दविष, मातुगपद संगहेक्कए चेव । पजाव भावे य तहा, सत्तेएकेकगा होति ॥ ४८८३ ॥

नामेककं स्थापनेककं द्रत्येककं मातृकापदेककं सङ्गदेककं पर्यवेककं भावेककम् । एतानि व सप्तेककानि भवन्ति ॥ ४८८३ ॥

तत्र नाम-स्थापने क्षुण्णे । द्रव्येककं पुनर्जशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तमाह—-द्वे तिविद्दं मादुकपद्गिम उप्पण्ण-भूय-विगतादी !

सािल चि व गार्मो चि व, संघो चि व संगहेकं तु ॥ ४८८४ ॥ 'द्रेत्ये' द्रव्यविषयं एककं विविधम् , तथया—सिचित्तमचि तिशं च । सिचित्तं पुनरिष १० द्विपद्द-चुत्तपदा-ऽपदभेदाते विधा । तत्र द्विभद्देककं एकः पुरुषः, चुत्तपदेककं एकोऽश्च एको हस्ती, अपदेककं एको हृस हत्यादि । अचित्रकं एकः परमाणुः एकामारुणम् । मिश्नेककं सालङ्कार एकः पुरुषः । मातृकार्यदे तु चिन्त्यमाने एककं उत्पन्न-मूत-विगलादिकम्, ''उपम्ने ह वा, विगते ह वा, धुवे ह वा'' इत्यत्य पदन्तस्यकेनतरिक्तर्यः । आदिशब्दाद् अकाराय- १४ सालिकाया वा मातृकार्या एकतरं पदम् । सङ्गहैककं बहुत्वेऽप्येकचचनाभिषेयम् , यथा— १४ शालिरिति वा माम इति वा सङ्घ इति वा ॥ ४८८४ ॥ अथ पर्योयेककादीनि दर्शयति—

दुविकप्पं पञाए, आदिट्टं जण्ण-देवदत्तो ति । अणादिट्रं एको ति य, पसत्यमियरं च भावस्मि ॥ ४८८५ ॥

पर्यायेककं 'द्विविकर्य' द्विमकारम्, तयथा—व्यादिष्टमनादिष्टं च, विशेषरूपं सामान्य-रूपं चेत्वर्थः । तत्रादिष्टं यज्ञद्यो देवद्य इत्यादि, अनादिष्टमेकः कोऽपि मनुष्य इत्यादि । 20 अथवा पर्यायेककं वर्णादीनामन्यतम एकः पर्यायः । भावेककं द्विषा—आगमतो नोआगम-तश्च । आगमतो ज्ञाता उभ्युक्तः । नोआगमतः प्रश्तस्य 'इत्तःच' अप्रश्नसमिति द्विषा । प्रश्नसमंप्रश्निकादीनामेकतरो मावः, अप्रश्नसमेदिविको भावः । अत्राप्रश्नसमावैककेनाधिकारः, हस्तकमादीनामकशस्तमावोदयादेव सम्भवात् ॥ ४८८५ ॥ अथ 'त्रिकस्य निश्चेषे कृते द्विकानेक्षेपः कृत एव भवति' इति मन्यमानश्चिकनिश्चेपज्ञापनार्थमिदमाह—

नामं ठवणा दविए, खेत्ते काले य गणण भावे य । एसो उ खळ तिगस्सा, निक्खेवो होड सत्तविहो ॥ ४८८६ ॥

नामत्रिकं स्वापनात्रिकं द्रव्यत्रिकं क्षेत्रत्रिकं कालत्रिकं गणनात्रिकं भावत्रिकं चेति । एष सञ्ज त्रिकस्य निक्षेपः सप्तविघो भवति ॥ ४८८६ ॥

नाम-स्थापनात्रिके गतार्थे । द्रव्यत्रिकं ज्ञ-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं ज्ञापयति---

१ द्रव्यैककं त्रिविधम्—सचि भा०कां । २ °त् त्रेषा भा०॥ ३ °प्दैककं तु उत्प भा०कां ॥ ४ द्विषा—मादि भा०कां ॥ ५ °मान्यं चे श्वा ॥ ६ °स्तमप्रशस्तं चेति ब्रि॰भा०कां ।॥

द्रव्ये सिंचतादी, सिंचतं तत्य होइ तिविहं तु ।
हुपम चतुप्पद अपर्द, परूवणा तस्स कायन्त्रा ॥ ४८८७ ॥
इञ्चित्रकं सिंचतःविच-सिक्षमेदात त्रिया । तत्र सिंचतित्रकं भूर्यक्षित्रियं भवति ।
तयमा—द्विपदित्रकं चतुप्पदित्रकं अपदित्रकम् । तत्म च सममेदस्थापे परूपणा कर्तव्या ।
हस्स च यथा सिंचतेकस्स कता तथेवायगत्त्र्या ॥ ४८८७ ॥

परमाणुमादियं खल्ज, अचित्तं मीसगं च मालादी । तिपदेस तदोगाढं, तिष्णि व लोगा उ खेत्तिम् ॥ ४८८८ ॥

परमाणुत्रयम्, आदिशब्दाद् हिपदेशिकत्रयं यावदन्तमदेशिकत्रयम्, एतदचित्रत्रिकं इष्टव्यम् । मिश्रत्रिकं तु माळात्रयं मन्तव्यम्, तत्र हि पुष्पणि सचिचानि सुत्रमचिचमिति इत्या । 10 आदिमहणेन साल्हारपुरुषत्रयमित्यादि गृह्यते । क्षेत्रत्रयम्—त्रय आकाशयदेशाः, "तदोगाई" ति तेषु वा—त्रिषु आकाशपदेशेषु अयगादं द्रव्यं क्षेत्रत्रयम्, 'त्रयो वा छोकाः' अयोजोक-तिर्येग्लोकोर्द्क्रोकळक्षणाः क्षेत्रत्रयमुच्यते ॥ ४८८८ ॥

> तिसमय तडितिगं वा, कालतिगं तीयमातिणो चेव। भावे पसत्थमितरं, एकेकं तत्थ तिविहं तु ॥ ४८८९ ॥

कालजयं त्रयः समयाः, "तद्वितिगं व" चि त्रिसमयस्थितिकं वा द्रव्यं कालजयम्, अथवा अतीताः-ऽनागतः-वर्तमानकाला एव कालजयम् । भावत्रयं मदास्तम् 'इतरद्' अमशस्तं चेति क्षिमा । पुनरेकेकं त्रिविधसम् । तत्र ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेति मदास्तम्, मिध्यासमज्ञानमविर-तिथेत्यमसस्तम् । अवितितिरि एसकर्मं मधुन-रात्रिभक्तमतिसेवामेतादिह मसावे त्रिविधा । अत्र चीयत्यभक्तम् । अयत् अतिकारं व्याप्टमातुमाह— अयाज्ञात्यासम् व्याप्टमातुमाह— अयाज्ञात्यासम् ।

उग्घातमणुग्घाते, निक्न्बेबो छिन्बिहो उ कायच्वी । नामं ठवणा दविए, खेते काले य भावे य ॥ ४८९० ॥

इह हुस्तलाद् दीर्घत्वनद् उद्धातिकादनुद्धातिकत्य प्रतिद्धिरित कृतना द्वयोरप्युद्धातिका-ऽनु-द्धातिकयोः पद्वियो निक्षेपः कर्तव्यः । तद्यथा — नामनि स्वापनायां दृत्ये क्षेत्रे काले भावे चेति ॥४८९०॥ तत्र नाम-स्वापने गतार्थे । इत्यादिविषयमुद्धातिकमनुद्धातिकं च दर्शयति—

उग्यायमणुग्याया, दन्वम्मि हिल्हराग-किमिरागा । खेचिम्मि कण्हभूमी, पत्थरभूमी य हलमादी ॥ ४८९१ ॥

'द्रत्ये' द्रव्यत उद्धातिको हरिद्रारामः, युखेनेत्रापनेतुं शक्यस्वातः, अनुद्धातिकः क्विमे-सगः, अपनेतुमधक्यस्वात् । क्षेत्रत उद्धातिकं कृष्णमूनम्, अनुद्धातिका प्रस्तरम्भिः । कुतः ! स्त्याह—"'हरुमादि'' ति हरू-कुलिकादिभिः कृष्णभूममुद्धातियेतुं-कोदयितुं अक्यस्, प्रस्तर-३० मृमिरशक्या ॥ २८९१ ॥ तथा—

कालम्मि संतर णिरंतरं तु समयो य होतऽणुग्वानो ।

१ वाकाचा में कां । र वाविरत्यार्राचे मा कां । "एत्य अविरहेए अहियारी" इति क्यों विशेषकूर्णी व ॥ ३ व्तियेतुं शक्यम्, न प्रस्तरभूमिः ॥ ४८९१ ॥ काळ कां ॥

मञ्जस्स अद्र पपडी. उग्घातिम एतरा इयरे ॥ ४८९२ ॥

कारूत उद्घातिकं सान्तरं पायश्चित्तस्य दानम् , अनुद्धातिकं निरन्तरदानम् । तशब्दाद लघमासादिकमदातिकम् । गुरुमासादिकमनदातिकम् । अथवा कालतः समयोऽनुद्धातिको भवति. खण्डशः कर्तुमशक्यत्वातः आविलकादय उद्धातिकाः, खण्डियतं शक्यत्वात । भावत उद्धातिका भव्यस्याष्ट्री कर्मप्रकृतयः, उद्धात्यितं शक्यस्यात् । 'इतरस्य' अभव्यस्य सत्कास्ता ३ एव 'इतराः' अनुद्धातिकाः ॥ ४८९२ ॥ कृतः ! इति चेद् उच्यते--

### जेण खबणं करिस्मति, कम्माणं तारिसो अभव्यस्स ।

ण य उप्पञ्जह भावी, इति भावी तस्मऽणग्धाती ॥ ४८९३ ॥ 'येन' शुभाष्यवसायेन 'कर्मणां' ज्ञानावरणादीनां क्षपणमसौ करिष्यति स ताहशो भावोऽ-भव्यस्य कदाचिदपि नोत्पद्यते इत्यतस्तस्य भावोऽनद्भातः, कर्मणामद्भातं कर्तमसमर्थः, अत एव 10 तस्य कर्माणि अनुद्धातिकानि भण्यन्ते । अत्र च प्रायक्षितानुद्धातिकेनाधिकारः ॥ ४८९३ ॥

तच कत्र भवति ! इत्याह---

हत्थे य कम्म मेहण. रातीमत्ते य हीतऽणुग्धाता । एतेसिं तु पदाणं, पत्तेय परूवणं बीच्छं ॥ ४८९४ ॥

हस्तकर्मकरणे मैश्रनसेवने रात्रिभक्ते, एतेषु त्रिषु सूत्रोक्तपदेषु 'अनुद्धातिकानि' गुरुकाणि 15 शायश्चितानि भवन्ति । तत्र हस्तकर्मणि मासगुरुकम् , मैथन-रात्रिभक्तयोश्चतुर्गरुकाः । एतच प्रायश्चित्तं यदा यत्र स्थाने भवति तत् पुरस्ताद् व्यक्तीकरिष्यते । अथ 'एतेषां' हस्तकर्मादीनां त्रयाणामपि पदानां 'प्रत्येकं' प्रथक प्रथक प्ररूपणां वैक्ष्ये ॥ ४८९५ ॥

यथाप्रतिज्ञातमेव निर्वाहयितकामो हस्तकर्मप्ररूपणां तावदाह-

नामं ठवणाहत्थो. दव्बहत्थो य भावहत्थो य ।

दविही य दव्वहत्थी, मुलगुणे उत्तरगुणे य ॥ ४८९५ ॥ नामहस्तः स्थापनाहस्तो द्रव्यहस्तो भावहस्तश्चेति चतुर्धा हस्तः । तत्र नाम-स्थापनाहस्तौ गतार्थो । द्रव्यहस्तो ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्विविधो भवति. तद्यथा--मरुगुणनिर्वर्तित उत्तरगुणनिर्वर्तितश्च । तत्र यो जीवविषयुक्तस्य शरीरस्य हस्तः स मूलस्य-जीवस्य गुणेन-पयोगेण निर्वर्तित इति मुलगणनिर्वर्तितः. यस्त काष्ट्र-चित्र-लेप्यकर्मादिष इस्तः स उत्तर- 85 गणनिर्वर्तित उच्यते ॥ ४८९५ ॥ अथ भावहस्तमाह---

जीवो उ भावहत्थो. णेयच्वो होइ कम्मसंज्ञतो ।

बितियो वि य आदेसी, जो तस्स विजाणओ परिसी ॥ ४८९६ ॥ च "जीवो" चि विभक्तिव्यत्ययाद ⊳ यो जीवस्य हस्तः 'कर्मसंयुक्तः' आदान-निश्वेषादि-कियायक्तः स नोआगमतो भावहँस्त उच्यते । द्वितीयोऽपि चात्रादेशः समस्ति-वः 'तस्य' ३० हस्तस्य 'विज्ञायकः' तदपयक्तः परुषः सोऽपि भावहस्तः. आगमत इत्यर्थः । अत्र नोआगमतो

१ ताटी॰ मो॰ दे॰ विनाऽन्यत्र—चक्क्ये ॥ ४८९४ ॥ त्यथा—नामं का॰ ॥ २ र ० एत-इम्तर्गतः पाठः भाव नास्ति ॥ ३ °हस्तो ज्ञातस्यः । क्रि॰ कांव ॥

25

भावहस्तेनाधिकारः ॥ ४८९६ ॥ अथ कर्मपदं व्याचष्टे---

नामं ठवणाकम्मं, दञ्वकम्मं च भावकम्मं च ।

दन्विम तुण्णदसिता, अधिकारी भावकम्मेणं ॥ ४८९७ ॥

नामकर्म स्थापनाकर्म द्रश्यकर्म भावकर्म चेति चतुर्था कर्मणो निवेषः । तत्र नाम-स्थापने 

• क्षुण्णे । द्रश्यकर्म ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं तुक्षणं वा दशिकानां बन्धनं वा, उपलक्षणमिदम्, तेन कुम्भकार-रथकारादिगतमणि द्रश्यकर्म मन्तव्यम् । यद्वा व्यतिरिक्तं द्रश्यकर्म
द्विधा—कर्मद्रव्यं नोकर्मेद्रव्यं च । कर्मद्रव्यं ज्ञानावरणादिकर्मपयोगमनापत्नाः कर्मवर्गणापुद्वकाः, यद्वा यद् ज्ञानावरणादिकं कर्म बद्धं न ताबदुरयमागच्छति तत् कर्मद्रव्यं । नोकमेद्रव्यं आकुष्वन प्रसारणोत्स्रेपण-मन्तमेदात् पश्चभा । मावकर्म द्विधा—आगमतो।

10 नोआगमत्वश्च । आगमतः कर्मपदार्थज्ञता उपयुक्तः, नोआगमतोऽष्टिविधो ज्ञानावरणादिकर्मणासुद्यः । एषां मध्येऽत्र करामेनाधिकारः ? इति चेद् अत आह्—अधिकारोऽत्र 'भावकर्मणण्यः
मोहोदयलक्षणेन । शेषास्तु शिप्यमतिन्धुत्यादनार्थं महस्तिनाः । ततो भावहत्तेन यत् कर्म
किथते तद् हस्तकर्म भण्यते इति प्रक्रमः ॥ ४८९० ॥ अथ भावकर्मेव व्याचिकयासुराह—

दुविहं च भावकम्मं, असंकिलिट्टं च संकिलिट्टं च।

उप्पंतु संकिलिङ्कं, असंकिलिङ्कं तु वोच्छामि ॥ ४८९८ ॥ द्वितियं च भावकर्म, तयथा—असंक्षिष्टं च संक्षिप्टं च । चशक्दी स्वगतानेकभेदम् चक्को । तत्र संक्षिष्टं च स्वाप्त (स्वाप्त नेकभेदम् चक्को । असंक्षिप्टं तु साग्यतमेव वक्ष्णिम ॥ ४८९८ ॥ स्वयाप्तिज्ञातमेव प्रमाणयति —

छेदणे भेयणे चेव, घंसणे पीसणे तहा।

अभिघाते सिणेहे य, काये खारे ति यावरे ॥ ४८९९ ॥

छेदनं भेदनं चैव धर्षणं पेषणं तथा अभिवातः सिद्ध्धं कायः क्षारः हति चापरः । एवमसं-क्रिष्टस्य कर्मणोऽष्टी भेदा भवन्ति ॥ ४८९९ ॥ एतानि च छेदनादीनि द्युषिरं वा कुर्याद-द्युषिरं वा । पुनरेकैकं शुपिरच्छेदनादि द्विषा । कथम् ! इति चेद् उच्यते —

एकेकं तं दुविहं, अणंतर परंपरं च णायव्वं।

अड्डाऽणड्डा य पुणी, होति अणड्डाय मासलहुं ॥ ४९०० ॥

यदशुषिरस्य शुषिरस्य वा छेदनं तदेकैकं द्विचिषम् —अनन्तरं परम्परं च ज्ञातस्यम् । पुनरेकैकं द्विषा—अधीदनर्थोच, सार्थकं निरर्थकं चेत्यर्थः । अनर्थकं छेदनादिकं कुर्वतो मासक्यु, असामाचारीनिष्यत्रमिति मावः॥ ४९००॥

कथं पुनः छेदनमनन्तरं परम्परं वा सम्भवति ? इत्याह-

नह-दंतादि अणंतर, पिप्पछमादी परंपरे आणा ।
 छप्पइगादि असंजर्मे, छेदे परितावणातीया ॥ ४९०१ ॥

नसेदेन्तैः आदिप्रहणात् पादेन वा यत् छिधते तदनन्तरं छेदनमुच्यते । पिष्पलकेन आदिप्रहणात् पाइलकः छुरिका-कुधरादिभिर्यत् छिधते तत् परस्परच्छेदनम् । प्वमनन्तरं पर- स्परं वा छिन्दता तीर्थकर-गणभराणामाज्ञाभक्कः कृतो भवति । तं छिन्दन्तं दृष्टाऽन्येऽपि छिन्दन्ति इत्यनवस्था। 'पते तिष्ठन्तरुष्ठेदनिदिकं सिहर्रं कुवैन्ति न साध्यायम्' एवं शस्या-तराहौ चिन्तयति मिस्यारवम् । विराधना द्विविधा—संयमे आत्मानि च । तत्र वस्राहौ छिद्यमाने यद्पदिकाद्यये यद् विनायस्थ्वेते सोऽसंयमः, संयमविक्यान्त्ययेः। अब छेदनं कुवैनो इत्यस्य पादस्य वा छेदो भवति तत्र आस्मित्रियम् तत्र च परिताप-महादुःसादिनि-६ ज्यां पाराष्ट्रिकान्यं गायिक्षयम्॥ ४९०१॥ अथ शद्धे ग्रह्मेन प्रायस्थितमाइ—

अञ्चलिर ञ्चलिरे लहुओ, लहुगा गुरुगो य होंति गुरुगा य । संघट्टण परितावण, लहु-गुरुगऽतिवायणे मूलं ॥ ४९०२ ॥

अञ्चलिरऽर्णनर लहुओ, गुरुगो अ परंपरे अञ्चलिरम्मि । ञ्चलिरार्णतेरें लहुगा, गुरुगा तु परंपरे अहुवा ॥ ४९०३ ॥ अञुषिरेऽनन्तरे रुषुको मासः, अञुषिरे परम्परे गुरुको मासः। शुषिरेऽनन्तरे चतुर्लेषु, २० शुषिरे परम्परे चतुर्गुरुकाः। अथवेति प्रायक्षित्तस्य प्रकारान्तरताद्योतकः॥ ४९०३ ॥

एवं तावत् छेदनपदं व्याख्यातम् । अय भेदनादीनि पदानि व्याख्यातुकाम इदमाह— एमेव सेसएस वि. कर-पादादी अर्णतरं होड ।

जं तु परंपरकरणं, तस्स विहाणं हमं होति ॥ ४९०४ ॥ 'एवमेव' छेदनवत् 'शिष्वपि' मेदनादिषु पदेषु प्रायक्षितं वक्तव्यम् । नवरं कैर-पादाभ्याम् 25 आदिशब्दाद् जानु-कूरीरदिभिः शरीरावयवैः कियमाणं मेदनादिकमनन्तरं भवति । यत् तु मेदनादैः परम्पराकरणं तस्य विधानमिदं भवति ॥ ४९०४ ॥ तद्यथा—

> कुवणयमादी भेदो, घंसण मणिमादियाण कट्टादी । पद्धावरादि पीसण, गोष्फण-धणुमादि अभिवातो ॥ ४९०५ ॥

''कुवणओ'' ट्युडसेन आदिशब्दात् उपरु-लेष्टुकादिभिन्ना घटादेः 'मेदः' नेदर्नस् , द्विषा so त्रिधा वा च्छिद्रपातनमित्यर्थः, एतत् परम्परामेदनमुच्यते । एवं घर्षणं मणिकादीनां मन्त-

१ °वते सा संयमविराधना। अथ मा॰ ॥ २ °स्तरं प्रायश्चित्तं यथा का॰ ॥ ३ °क्तरेण वा पादेन वा आ° का॰ ॥ ४ °नं भवति । घर्षे॰ का॰ ॥ ५ °च्छित्रं पातयतीत्वर्षः। घर्षे॰ मा॰ ॥

व्यस्, यथा मणिकारा उकुटवेधान् कृत्वा मणिकान् घर्षन्ति । आदिशब्दात् प्रवासादिपरि-श्रष्ट्: । ''कडाष्ट्" ति चन्दनकाष्टं फलकादिकं चा यद् घर्षति तहा घर्षणम् । ''पष्टु'' ति गन्ध-प्रकृत्वत्र बराः—प्रधाना ये गन्धासादादीनां पेषणं मन्तव्यम् । गोफणा—चर्मदवरकमयी प्रसिद्धा, स्वा धनुःममृतिभिन्नी लेष्ट्रकृतुष्टं चा यत् प्रसिपति एषोऽभिषात उच्यते ॥४९०५॥ अथवा—

बिहुबण-णंत-कुसादी, सिणेह उदगादिआवरिसणं तु । काओ तु बिंब सत्थे. खारो तु कांठिंचमादीहिं ॥ ४९०६ ॥

विश्ववर्ग-बीजनकं णन्तकं-बस्नं कुशः-दर्भसारमप्रतिभिन्नीजयन् यत् प्राणिनोऽभिहिन्ति पुष वा अभिघात उच्यते । स्रेहो नाम उदकेन आदिशब्दाद् एतेन तैलेन वा आवर्षणं करोति । कायो नाम द्विपदादीनां 'बिग्नं' प्रतिक्रपमित्ययः तत् शक्षेण परम्पराकरणभूतेन 10 पत्रक्खेषादिषु निर्वर्तयति । 'क्षारः' ल्वणं तमशुषिरे शुषिरे वा कलिखादिभिः प्रक्षिपति । 'कलिखाः' वंशकपरी ॥ ४९०६ ॥ एषु दोषानाह—

एकेकार्तो पदातो, आणादीया य संजमे दीसा। एवं त अणद्राए. कप्पड अझाएँ जयणाए ॥ ४९०७॥

एकैकसाद् मेदनादिपदादाज्ञामङ्गादयो दोषाः, संयमे आत्मित च प्रामुक्तनीत्या विराधना, 15 एकमेते दोषा अनर्थकं छेदनादिकं कुर्वतो भवन्ति । अथ अर्थः—पयोजनं तस्मिन् प्राप्ते यतनया छेदनादिकं करोति तदा करुपते ॥ ४९०७ ॥ इदमेव द्वितीयपदं भावयति—

> अमती अधाकडाणं, दसिगादिगछेदणं व जयणाए । गुलमादि लाउणाले, कप्परमेदादि एमेव ॥ ४९०८ ॥

यथाकृतानां बिक्षाणामभावे दशिकाश्चेत्तव्याः, आदिश्वात् प्रमाणाधिकस्य वा बस्नादेश्चे-१०दमं 'यत्तनया' यथा संयमा-ऽऽश्तविराधना न भवति तथा कर्तव्यम् । भेदनद्वारे—गुडादिपि-ण्डस्य मेदं कुर्यात्, अळाबु—सुन्वकं तस्य वा नालमधिकरणभयात् भिन्यात्, कर्परं-कपाळं तदादिना वा कार्यमुत्यनं ततो घटमीवादेर्भेदनम् 'एवभेव' यत्तनया कुर्यात् ॥ ४९०८ ॥

अक्लाण चंदणे वा, वि घंसणं पीसणं तु अगतादी । वम्षातीणऽभिषातो, अगतादि पताव सुणगादी ॥ ४९०९ ॥

अर्षणद्वारे—अशाः—प्रसिद्धाः तेषां विषमाणां समीकरेणार्थस्, चन्दनस्य वा स्कानादेः परिदाहोपदामनार्थं घर्षणं कर्तव्यम् । पेषणद्वारे—स्कानादिनिमिचमेव अगदादेः पेषणं विश्वेयस् । अभिपातद्वारे—स्वापादिनिमिचमेव अगदादेः पेषणं विश्वेयस् । अभिपातद्वारे—स्वापादिनिमिचमेव अगदादेर्वा अभिपातद्वारे—स्वापादिनिमिचमेव अगदादेर्वा प्रताप्यमानस्य शुनक-काकादयोऽभिषतन्तो लेष्टुना मेषियतव्याः ॥ ४९०९ ॥

नितिय दबुज्झण जतणा, दाहे वा भूमि-देहसिंचणता । पिंडणीगा-ऽसिवसमणी, पिंडमा खारो त सेल्लादी ॥ ४९१० ॥

पाडणागा-असवसमणा, पाडमा खारा तु सहादा ॥ ४९१० ॥ केहद्वारे—'द्वितीयम' अपनादपैदं मतीत्य केहसुद्वरितं क्षारमध्ये मक्षिप्य परिष्ठापयेत् ।

१ °षा अवन्ति, संयमे आत्मनि च विराधना छेदनपदवद् भावनीया । पवमेते कां॰ ॥ २ °रणस्, खन्द° भा॰ कां॰ ॥ ३ °पर्द तत्र क्ले भा॰ ॥

द्रइं—पानकं तस्त्रोज्ज्ञनं यतनया विषेयम् । "दाहे" ति खताया उष्णस्य वा गादतरमिमसापे प्रतिश्रयमूमिकायामावर्षेणं कुर्यात्, तृषाभिमृतं वा देहं सिखेत्, ग्लानं भक्तप्रत्यास्वानिनं वा दाहामिमृतं सिखेत् । कायद्वारे—किथ्यंद् गृहस्यः मत्यनीकृत्वत्योपश्चमनीं मतिमां
कृत्वा तते यावदसावनुक्केशं भवति तावद् माई जयेत् , शिवयशमनीं वा प्रतिमां विदस्वात् । क्षारद्वारे—अनन्तरं परम्परं वा शुपिरेऽशुपिरं वा प्रसूतिशमनार्थं क्षारं प्रक्षिपेत् । । ।
तत्र शुपिरं दर्शयति—"स्वारो तु सिङ्कादि" वि सेक्षं-वाल्यमं तिन्त्रूरं तत्र क्षारः क्षेपणीयः,
कि सञ्चातो न वा श्वति ॥ ४९१० ॥ च वेषसंहरकाह—⊳

कम्मं असंकिलिई, एवमियं विण्ययं समासेणं । कम्मं तु संकिलिई, वोच्छामि अहाणुपुन्तीए ॥ ४९११ ॥ एवमियमसिक्किटं हस्तकर्म समासेन वर्णितम् । साम्प्रतं सिक्किटं हस्तकर्म यथानुपूर्व्या १०

प्रविद्यमसिक्कष्टं हस्तरूर्मं समासेन वर्णितम् । साध्यतं सिक्कष्टं हस्त्ररूर्मं यथानुपूर्व्यो वक्ष्यामि ॥ १९११ ॥ ⊲ तेदैवाह—म⊳ वसहीए दोसेणं, दहं सरितं व पुज्वभ्रताहं ।

एतेहिँ संकिलिङ्कं, तमहं वोच्छं समासेणं ॥ ४९१२ ॥ वसतेदोंबेण वा स्रीणां वाऽऽिक्रनादिकं विधीयमानं दृष्टा 'पूर्वभुक्तानि वा' स्रीभिः सार्धे हसित-कीडितादीनि स्मृत्वा एतेः कारणैः 'सिक्किष्टं' हस्तकर्मे यथोत्पचते तदहं वक्ष्ये समासेन 16 ॥ १९१२ ॥ तत्र वसतिदोषं तावदाह —

> दुविही बसहीदोसी, वित्थरदोसी य रूबदोसी व । दुविही य रूबदोसी, इत्थिगत णप्रंसतो चेव ॥ ४९१३ ॥

द्विचिषो वसतिदोषो भवति, तयथा—विस्तरदोषध रूपदोषध । तत्र विस्तरदोषो पञ्च-शास्त्रादेका विस्तीर्णो वसतिः, स पथाद् वस्यते । रूपदोषो द्विषा—स्त्रोरूपगतो नपुंतक-20 रूपगतधा ॥ १९१३ ॥

एकेको सो दुविहो, सिचचो खलु तहेव अधिचो । अधिचो वि य दुविहो, तत्थगताऽऽगंतुओ चेव ॥ ४९१४ ॥

'सः' श्लीक्रमंति नपुंषकरूपगतम् दोष एकैको द्विविधः—सचिवोऽचित्रभ्र, जीवयुत-विषयोऽजीवयुत्तविषयश्रेत्यर्थः । अचित्तः पुनरपि द्विविधः—तत्रगत आगन्युकश्च ॥ ४९१४ ॥ 2० उमयमपि व्यावष्टे —

> कट्ठे पुत्थे चित्ते, दंतीवल महियं व तत्थगतं । एमेव य आगंतं, पालित्तय बेडिया जवणे ॥ ४९१५ ॥

याः काष्ठकर्मीण वा पुस्तकर्मीण वा निवनितेता स्वीमितिमा यद्वा दन्त-मयशुप्तक्रमयं मृतिकामयं वा स्नीत्रपं यसां वसती वसति तत् तस्यां तत्रगतं मन्तव्यप्, तद्वि- <sup>30</sup> ययो दोषोऽप्र्युपचारात् तत्रगत उच्यते । एवमेव चागन्तुकमि मन्तव्यप् । आगन्तुकं नाम-यद् अन्यत आगतम् । ततो यथा तत्रगताः स्वीमितिमा भवन्ति तथाऽऽगन्तुका अपि गवेयुः ।

१-२ प रु एतवन्तर्वतः पाठः मा॰ मास्ति ॥ ३ °गतादिरेकेको दोषो द्विवि° कां०॥ इ॰ १६६

तमा चात्र पादलिमाचार्यकृता "बेहिक" ति राजकन्यका दृष्टान्तः। स चायम्--

पालित्तायरिएहिं रत्रो भगिणीसरिसिया जंतपडिमा कया । चंकमणुम्मेस-निमेसमयी तास्त्रविटहस्था आयरियाणं पुरतो चिट्टइ । राया वि अईव पालित्तगस्स सिणेहं करेह । विजाइएडिं पउट्रेहिं रस्रो कहियं---मगिणी ते समणएणं अभिओगिया । राया न पत्तियैति. मणिओ अ—पेच्छ, दंसेमु ते। राया आगतो, पासिचा पालिचायरियाणं रुद्दो पचोसरिओ अ । तुओ सा आयरिएहिं चेंड चि विगरणी कया । राया सुइतरं आउट्टो ॥

एवमागन्तका अपि स्त्रीप्रतिमा भवन्ति । "जवणे" ति यत्रनविषये ईदशानि स्त्रीरूपाणि पाचुर्येण कियन्ते ॥ ४९१५ ॥ व्याख्यातं द्विविधमप्यचित्तम् । अथ सचितं व्याख्यायते, तदपि द्विविधम्--तत्रगतमागन्तकं चै । एतदभयमपि व्याख्यानयति --

> पडिवेसिग-एक्षधरे, सचित्ररूवं त होति तत्थगर्य । सण्णमस्णावरे वा, एमेव य होति आगंतं ॥ ४९१६ ॥

प्रातिवेदिमकगृहे एकगृहे वा-एकत्रैवोपाश्रये कारणतः स्थितानां यत् श्लिया रूपं दृश्यते तत तत्रगतं सचित्तं रूपं भवति । अथवा शन्यगृहमशन्यगृहं वा प्रविष्टेन या तत्र स्थिता स्वी विलोक्यते तदपि तत्रगतम् । एवमेव चागन्तकमपि सचित्तं स्नीर्रेटपं भवति, प्रतिश्रये या स्त्री

15 समागच्छति तदागन्तकमिति भावः ॥ ४९१६ ॥ अत्र तिष्ठतां दोषानुपदर्शयति—

आर्लिंगणादी पडिसेवणं वा, दहं सचित्ताणमचेदणे वा ।

सहेडि रूवेडि य इंधितो त. मोडग्गि संदिप्पति हीणसत्ते ॥ ४९१७॥

तेषां तत्रगतानामागन्तुकानां वा सचित्तानां स्नीरूपाणामालिङ्गनादीनि प्रतिसेवनां वा कर्वतो दृष्टा, अचेतनानि वा स्रीरूपाणि विरोक्य, प्रतिसेव्यमानाया वा स्त्रियः शब्दान् श्रत्वा. तैः शब्दे 20 रूपेश 'इन्धितः' प्रज्वाहितः -ा 'तैः' पुनर्खे > मोहाम्निः कस्यापि हीनसत्त्वस्य भक्तभोगिनोऽभक्त-भोगिनो वा सन्दीप्यते, ततः स्मृतिकरण-कोतुकदोषा भवेयः ॥ ४९१७ ॥ कथम् १ इत्याह---

कोत्रहरूं च गमणं, सिंगारे क्रह्नछिदकरणे य। दिहे परिणय करणे, भिक्खणों मूठं दुवे इतरे ॥ ४९१८ ॥

कतहरुं तस्योत्पद्यते — आसन्ने गत्वा पश्यामि, शृणोमि वा शब्दम् , एवं कृतहरुं उत्पन्ने 25 तत्र गमनं क्रयीत . शृङ्कारं वा गायन्तीं श्रुत्या गच्छेत , कुड्यस्य वा छिदं कृत्वा प्रहोक्येत , हृष्टे च सोऽपि तद्भावपरिणतो मवेत्—अहमप्येवं करोमीति, एतद्भावपरिणतः कश्चित् तदेवालिक्ननादिकं करणं कुर्यात् । एतेषु स्थानेषु भिक्षोर्मूलं यावत् प्रायश्चित्तम् , 'इतरयोः' उपाध्याया-ऽऽचार्ययोर्वयाकमं 'द्वे' अनवस्थाप्य-पाराश्चिके चरमपदे भवतः ॥ ४९१८ ॥ इदमेव व्याच्छे-

30

#### लहुतो लहुगा गुरुगा, छम्मासा छेद मूल दुगमेव।

१°यत्तिओ भणि° कां∘॥ २ झड त्ति मो॰ डे॰॥ ३ चेति । तदु° कां∘॥ ४° दूर्प वेदितव्यम्, प्रति° कां॰॥ ५ ॰ ो एनदन्तर्गतः याटः कां॰ एवं वत्तते ॥ ६ दृष्ट्वा च मा॰ कां॰॥ ७ "नादिकं कु" मा॰ क

20

दिहे य गहणमादी, पुन्तुत्ता पन्छकम्मं च ॥ ४९१९ ॥

तत्रगतः श्रुणोति मासल्यु, कुतृह्ं तस्योत्यते मासगुरु, व्रवतस्येतुर्क्युकाः, श्रुक्कारं श्रुण्य-तस्यतुर्गुरुकाः, कुल्यस्य च्छिद्रकरणे पंण्मासा रूपयः, छिद्रेण पश्यकास्य पहुर्त्यः, तद्भावप-रिणते च्छेदः, आलिक्तादिकरणे मुरुप्, एवं मिक्षोः मायसियगुक्कम् । उपाध्यायस्य मास-गुरुक्काररूयमनस्थाप्ये पर्यवस्यति । आचार्यस्य चतुर्लक्ष्मदारुक्यं पाराक्षिके तिष्ठति । । अन्यायः—आरक्षिकादिभिद्धेये ततः क्षालकर्मणादयः पूर्वोक्ता दोषाः । या वा मतिमा सा कहाविद्यातिक्षस्यमाना भज्येत ततः पश्चात्कर्मदोषः ॥ १९२९ ॥

एष वसतिविषयो रूपदोष उक्तः । अथ विस्तरहोषमाह—

अप्पो य गच्छो महती य साला, निकारणे ते य तहिं ठिता उ।

कन्ने ठिता वा जतणाएँ हीणा, पावंति दोसं जतणा हमा तू ॥ ४९२० ॥ अल्प्यासो गच्छो यस्तत्र प्रतिश्रये स्थितः, शास्त्र च सा 'महती' विस्तीणां चङ्कशाले-सर्थः, ते च साधवो तिष्कारणे 'तत्र' उपाश्रये स्थिता वर्तन्ते, अधवा कार्ये स्विताः परं 'बतन्या' वश्यमाणस्क्षणया हीनाः, ततो वेश्याप्रसृतिषु ब्रीषु समागच्छन्तीषु 'दोषं' कोतुक-स्वितिकरणादिकं प्राप्नुवन्ति ॥ ४९२० ॥ कारणे तु तत्र तिष्ठतामियं यतना—

असिवादिकारणेहिं, अण्णाऽसति वित्यडाएँ ठायंति । ओतप्पोत करिती, संयारग-वत्य-पादेहिं ॥ ४९२१ ॥

अभिवादिभिः कारणैः क्षेत्रान्तैरेऽतिष्ठन्तस्त्रत्र अन्यस्या वसतेरमाने विस्तृतायामपि पसती तिष्ठनित । तत्र च संस्तारकैर्वेष-पात्रैश्च भूमिकां औत्तरीतां कुर्वन्ति, मारुयन्तीत्यर्थः ॥ १९२१ ॥ इटमेव व्यवक्तिः—

भूमीए संयारे, अड़विषड़े करेंति जह दहुं।

रातुमणा वि दिवसओ, ण टंति राँच तिमा जनणा ॥ ४९२२ ॥ विस्तीर्णायां वसती तथा भूम्यां संस्तारकान् अर्दवितदीन् कुत्रैन्ति यथा तान् दृष्टा स्थातु-मनसोऽपि न तिष्ठन्ति । एण दिवसती यतना । रात्रौ पुनरियं यतना ॥ ४९२२ ॥

वेसत्थीआगमणे, अवारणे चउगुरुं च आणादी।

अणुलोमण निगामणं, ठाणं असत्य रुक्खादी ।। ४९२३ ।। वेश्याकी यदि रात्रावागच्छीत मणति च—'श्रहमप्यत्र वसामि' इति ततः सा वार-णीया । अथ न वारयन्ति ततश्चतुर्गुरुकम् आज्ञादयश्च दोषाः । ''अणुलोमणे'' चि अनुकुलै-वेचतैः सा प्रतिचेद्धत्या न खरपरवैरः, 'मा साधूनामम्याख्यानं दयाद्' इति कृत्वा । ''निगमणे'' चि यदि सा वेश्या निर्गन्तुं नेच्छति ततः साधुनिर्मिर्गन्तयम्, 'अन्यसिन् गृह्यपृह्वादि-

र "अत्यारो लघु" भा॰ कां ।। २ पहुळ" भा॰ कां ।। २ "मिस्तदीये आखिङ्गनादी हाथे कां ।। ४ "तरो पाष्ट्रकतस्त्रम तिष्ठन्तीऽन्यस्या कां ।। ५ भा॰ विनायम—कोतपीत ति कुर्वन्ति, साळ' ताटी ओन हे ।। ओतपीतां कुर्वन्ति, देशीपद्मित्म्, तेन माळ' कां ॥ ६ "च्छति 'अहमण्यम बसामि' इतिकुष्मा ततः कां ।। ७ 'हादी स्थाव' कां ।।

25

स्वाने स्थातन्यम्, तदभावे वृक्षमूलादाविष स्थेयम्, न पुनस्तत्रेति ॥ ४९२३ ॥ ≪ हैदमेव व्यक्तीकरोति—⊳-

पुढवी ओस सजोती, हरिय तसा उनिधतेण वासं वा । सावय सरीरतेणग. फरुसादी जाव वनहारो ॥ ४९२४ ॥

मधाप बहिः पृथिवीकायोऽवस्यायो वा, 'सञ्योतिवी' साप्तिका वा अन्या वसतिः, हरितकायसस्माणिनो वा तत्र सन्ति तथापि निर्गन्तन्यस् । अथ बहिरुपिस्तेननम्यं वर्षे वा वर्षेति श्वापदाः शरीरस्तेनका वा तत्र सन्ति ततः परुषवचनैरिप सा वेदया भणितस्या— निर्मच्छास्पदीयात् प्रतिश्रयात् । आदिशब्दात् तथाप्यिनिर्गच्छन्त्यां वन्धनादिकमपि विधीयते, यावद् व्यवहारोऽपि करणे उपस्थितायाः कर्तव्यः ॥ ४९२४ ॥ इदमेव भावयति—

अम्हेदाणि विसिद्दमो, इश्विमपुत्त बलवं असहणोऽयं । णीहि अणितें वंघण, णिवकडुण सिरिघराहरणं ॥ ४९२५ ॥

साथवो अणन्ति—वयं क्षमाशीला इदानीं विविधं विशिष्टं वा सहामहे, ततो यस्त्रय-कारवान् साधुः स दस्येते—अयं तु 'ऋद्विमस्त्रत्रः' राजकुमारादिः 'वज्ञवान्' सहस्रयोषी 'असहनः' कोपनो वलाद्दि भवतीं निष्काशिषप्यति ततः स्वयमेव निर्मेच्छ । यदि निर्मेच्छति 10 ततो कष्टम्, अथ न निर्मेच्छति सर्वेऽपि साथव एको वा वल्जान् तां नभाति, ततः ममाते मुच्यते । ग्रुका च यदि नृरस्यान्तिके साधूनाकपेति तदा करणे गरवा कारणिकादीनां ब्यवहारो दीचते । तत्र च श्रीगृहोदाहरणं कर्तव्यम् । यथा—

यदि राज्ञः श्रीगृहे रत्नापहारं कुर्वन् कश्चिचीरः प्राप्यते ततस्त्रस्य कं दण्डं प्रयच्छ्य ! । कारणिकाः प्राहुः—शिरस्तदीयं गृक्षते । साधवो भणन्ति—अस्माकमप्येषा रत्नापहारिणी २० अच्यापादिता गुप्पेव गुक्ता । ते प्राहुः—कानि युप्पाकं रत्नानि ! । साधवो भणन्ति— ज्ञानादीनि । कथं तेषामपहारः ! । अनाचारप्रतिसेवनादपथ्यानगमनादिनेति ॥ ४९२५ ॥

अय सस्नीकः पुरुषः समागच्छेत् सोऽपि वारणीयः। तथा चाह—
अहिकारों वारणम्मि, जित्तय अप्कुण्ण तिचया वसही ।
अतिरेग दोस भगिणी, रतिं आरहें णिच्छुभणं ॥ ४९२६ ॥
आविरीते कम्मेहिं, सच् विव उद्विते वस्यरेते ॥
ग्रंचति य भेंडितानो, एकेंक्रं मे निवादेमि ॥ ४९२७ ॥
निग्ममणं तह चेवा, णिदोस सदोसऽनिग्ममे जतणा ।
सज्झाए झाणे वा, आवरणे सहक्ररोण वा ॥ ४९२८ ॥

यत्र केवला पुरुषभिश्रिता वा स्नी समागच्छति तत्र सर्वेतापि वारणायामधिकारः, सा ३० कर्तव्येति भावः । अत एव चौसर्मातो मङ्कशाल्यां न वस्तव्यं किन्दु यावद्रिः साधुभिः सा "अफुण्ण" चि व्यासा भवति 'तावती' तावसमाणा वसतिरन्वेगणीया । अथातिरिकायां वसती वसन्ति ततः 'दोषाः' पूर्वोका भवन्ति । कारणतस्तस्यामि स्थितानां कश्चित् पुरुषः

१ ॰ एतदन्तर्गतमवतर्णं भा० कां॰ नास्ति ॥

श्चीसहितः समागच्छति स चानुक्तुरुवैचोमिर्वारणीयः, वार्यमाणश्च मूयात्—'एषा मे भगिनी संरक्षणीया, साधूनां समीपे चाशक्वनीया' इति च्छधना भणिला स्थितोऽसी, रात्री च मारव्यसां प्रतिसेविद्धं ततः साधुमिर्वक्तव्यः—अरे निर्क्तः ! किमस्गानत्र स्थितान् न पश्यसि यदेवन-कार्ये करोषि !; एवष्टक्तवा निष्काशनं तस्यं कर्तव्यम् ॥ ४९२६ ॥

भाशती निष्काश्यमानो रुप्येद् रुष्टश्च 'कर्मभिः' कथायमोहनीयादिभिः 'आह्तः' ठ आच्छादितः साधूनासुपरि शत्रुरिव रोषेण ''धरथरेतो'' ति भृशं कम्पमानः प्रहारं दातु-सुस्थितः वाम्योगेन च 'भिण्डिकाः' त्राडीर्महता शब्देन सुश्चति, यथा—''भे'' युप्माकमेकैकं निपातयामि ॥ ४९२७ ॥

एवं तसिगत् विरुद्धे सङ्गाते तत्या वसतेः साष्ट्रीभिनिगेमनं 'तथैव' कर्तव्यं यथा पूर्वं वेदया-स्त्रियाष्ट्रकं यदि बहिनिर्दोषम् । अथ सदोषं ततः 'अनिगेमे' अनिगेच्छतासियं यतना—10 स्त्राच्यायो महता शब्देन कियते ध्यानं वा ध्यायते । यस्य स्त्राध्याये ध्याने वा छव्धिर्म भवति सः 'आवर्ष्ण' कर्णयोः स्थगनं विद्धाति 'शब्दकरणं वा' महता शब्देन बोले विषीयते ॥ १९२८ ॥ एवमपि यतमानस्य कस्यापि तत् प्रतिसेवनं द्वष्ट्वा कर्मोदयो भवेत् । कथम्! इति चेद् उच्यते—

बडपादव उम्प्रूलण, तिस्त्विम व विजलिम वर्षतो । कुणमाणो वि पयनं, अवसो जह पावती पडणं ॥ ४९२९ ॥ तह समणसुविहिताणं, सञ्चपयचेण वी जतंताणं । कम्मोदयपचहुया, विराधणा कासति हवेजा ॥ ४९३० ॥

यथा वरणादपस्णानेकमुळपतिबद्धस्यापि गिरिनदीसिल्छ्बेगेनोन्मूलनं भवति, ⊲ "तिक्रैस्तिम व" वि विमक्तिव्यत्ययाद् ⊳ यथा वा तीक्ष्णेन नदीपूरेण कृनप्रयत्नोऽपि पुरुषो ह्वियते, 20 'विज्ञळे वा' कर्दमाकुळे वा व्रजन् प्रयत्नं कुर्बाणोऽप्यवज्ञः पतनं यथा प्राप्नोति, तथा श्रमण-छुविहितानां सर्वप्रयत्नेनापि निर्विकृतिकविषान-वाचनापदानादिना यतमानानां ≺ वंसतिदोषे-णानाचारदर्शनाद् मोहोदयः सङ्गायते । ततश्च ⊳ 'कर्मोदयगत्ययिका' ⊲ वेदैमोहनीयकर्मो-दयहेतुका ⊳ कृत्यविदनगारस्य चारित्रविराधना भवेत् ॥ ४९२९ ॥ ४९३० ॥ एवमसा-जुदीणमोहो छुतिदुर्बेख्सपुदयमिषसोदुमञ्जचो हस्तकर्म करोति तत्र प्रायक्षितमाह— 20

पदमाएँ पोरिसीए, बितिया ततियाएँ तह चउत्थीए । मूर्ल छेदो छम्मासमेव चत्तारि या गुरुगा ॥ ४९३१ ॥ भैममाया पौरुष्यां इस्तर्कर्म करोति मुरुम, द्वितीयायां छेदः, तृतीयायां पण्पासा गुरवः,

१ °स्य विषेषम् ॥ ४९२६ ॥ अ° कं । ॥ २ °नस्यापि तत् प्रतिसेवनं दृष्ट्वा कस्यापि मोद्दोत्वयो कं । "एवं पि जर्वतस्य कस्तित कस्मोरतो होआ । कर् !—ववपादव गाह्यस्" इति स्थापि को ॥ १ प्राप्त प्रतिस्वार्यस्य । वादः अर्थे । एव पर्ति । १ प्राप्त प्रतस्तर्यतः वादः कं । एव वर्षते ॥ १ प्राप्त प्रतस्तर्यतः वादः कं । एव वर्षते ॥ १ कस्यापि सारि भा । अर्थे । एव पर्ति । १ कस्यापि सारि भा । अर्थे । । अर्थोद्यासम्बद्धाः प्रष्ट कं । ॥ अर्थोद्यासम्बद्धाः प्रष्ट कं । ॥ अर्थोद्यासम्बद्धाः प्रष्ट कं । ॥ अर्थोद्यासम्बद्धाः प्रष्ट ।

#### बक्ता माला गुरवः ॥ १९३१ ॥ पंनानेव निर्शुक्तिगाथां व्यावधे— निर्सि पडमपोरिसुन्मव, अददधिती सेवणे भवे मूर्लं । पोरिसिपोरिसिसहणे, एकेकं ठाणगं इसइ ॥ ४९३२ ॥

'निशि' रात्री प्रधमपीरुप्यां मोहोर्द्वेचो जातः तस्यामेबाइटश्रुतियेदि इस्तर्कमं सेवते तदा ध्युक्तम् । अथ प्रधमपीरुपीमधिसद्य द्वितीयायां सेवते छेदः । द्वे पौरुप्यावधिसद्य तृतीयायां सेवते पञ्चरकः । तिस्रः पौरुपीरिधाद्य चतुर्प्या सेवमानस्य चतुर्पुरुकाः । एवं पौरुपीपौरुपी-सक्तने प्रकेकं प्रायक्षितस्यानं इसति ॥ १९३२ ॥

> वितियम्मि वि दिवसम्मि, पडिसेवंतस्स मासियं गुरुअं । छद्रे पचक्लाणं, सत्तमए होति तेगिच्छं ॥ ४९३३ ॥

10 प्वं रात्री चतुरो यामानिधसम्र द्वितीये दिवसे मधमगीरुष्यां प्रतिसेवमानस्य मासगुरुकम् । तदः परं सर्वत्रापि मासगुरुकम् । रुष्ट्नि तु प्रायिश्वचानि अत्र न भवन्ति, अत एवेदं इस्तकमै-सेवनमृद्वातिकमुञ्यते । एवमसी प्रतिसेव्य सङ्घाटिकस्यान्यस्य वा कस्याप्यालेषयेत् । स चं प्रायुक्तद्रकर्मकारकसायुव्यकापेखया पष्टः साधुक्तं पति त्रवीति—यत् कृतं तदकृतं न भवति, सम्प्रति नक्तम्यास्यानमङ्गीकुर । < संसमके चेकित्स्यं भवति । इयमत्र भावना—⊳ । ससमा मलीति नक्तमस्य मोहोदयस्य निर्विकृतिका-ऽवमोदिरकादिक्ता चिक्तस्य कर्तव्या ॥ १९३३ ॥ तथा—</p>

पडिलाभणःद्वमिंम, णवमे सही उवस्सए फासे । दसमम्मि पिता-पुत्ता, एकारसमिम आयरिए ॥ ४९३४ ॥

अष्टमे साथै प्रतिलामनाया उपदेशो भवति । नयमो मृते—श्राद्धिका उपाश्रये समानी-20 यते सा भवतः धरीरं स्टेरोत् । दशमे साथी—शिवापुत्रो युवां सज्ञातिकमामं गत्वा चिकित्सां कुरुतिमञ्ज्ञपदिशति । ल र्फकादशे सङ्घाटिकमाथौ आचार्याः इत्युक्षेतेनोपदेशो मबति । किन्नुकं भवति १—⊱ एकादशो श्रवीति—यदाचार्या आदिशन्ति तद् विषेहि । भयं ग्रुद्धः ॥ ४९२४ ॥ शेषेषु प्रायश्चित्तमाइ—

> छद्वो य सत्तमो या, अहसुद्धा तेसि मासियं ठहुयं । उनरिष्ठ जं भणंती, थेरस्स वि मासिनं गुरुगं ॥ ४९३५ ॥

१ इदमेव ज्या" मा॰ ॥ २ 'द्वायोऽजनि ततस्तस्या' है। ॥ ३ ताटी॰ मो॰ है॰ विनाऽण्यन— अत्र म भवस्ति । अत प्रवानुद्वां भा॰ । अत्र इत्तरुभावस्तरे न भवस्ति । अत्र प्रवाहित । अत्र प्रवाहित। अत्र प्रवाहित। व्यादिता । दिन प्रवाहित। व्यादिता । इत्तरुभावस्ति । विकार प्रवाहित। व्यादिता । विकार प्रवाहित। विकार प्रवाहित। अत्र विकार प्रवाहित। विकार प

बह्न-संसंमी 'यबाहुद्धी' न दोषपुक्तसुपदेशं ददाते, यतश्च गुरूणासुपदेशमन्तरेण खेच्छ्या मणतस्ततो मासिकं रूचुकं तयोः प्रायधितत् । 'उपरितनाः' श्रष्टम-नवम-दशम। यत् सदोष-पुषदेक्षं मणन्ति तेन त्रयाणामपि मासगुरुकम् । स्वितस्सापि पितुः पुत्रेण सह सञ्चातमामं मच्छतो मासगुरुकम् ॥ ४९३५ ॥ अथान्तेन वहादिसाधूनासुपदेशान् विवृणोति—

संघाडगादिकहणे, जं कत तं कत ह्याणि पचक्खा । अविसदो दहवणो, ण समति किरिया में कायव्वा ॥ ४९३६ ॥

आविसुद्धा दुइवणी, ण समिति किरिया से कायव्वा ॥ ४९३६ ॥ सङ्घाटिकस्य आदिशब्दाव् अन्यस्य ॥ 'हत्तकर्म कृतं मया' इत्यं कवने कृते सित स् भ्रयात्—यत् कृतं तत् कृतमेव, इदानीं मक्तं प्रत्यावह्व , किं ते अष्टपतिशस्य जीवितेन ! इति । ससमः प्राह—'अविशुद्धो दुष्टवणः' रण्ककादिकः कियां विना न शान्यति अतः किया भिंग तक्तं स्वत्या, एवं भवताऽप्यस्य मोहोदयनणस्य निर्विकृतिका-ऽवमीदरिकादिका किया 10 विश्वेया येनोणावामे अवित ॥ १९३॥ ॥

पडिलामणा उ सद्वी, कर सीसे वंद ऊरु दोचंगे। स्लादिरुयोर्गेजण, ओअड्डण सहिमाणेमी॥ ४९३७॥

लप्टमः प्राह्—''सड्ढां'' श्राविका सा प्रतिलामनां करोति, प्रतिलाभयन्त्यां चोवींः पात्रके स्थिते यथाभावेनाभ्युपेत्य वा वालिते जरुमध्येन द्वितीयाक्वादिकमर्वगळति, ततः सा श्राद्विका 15 करेण स्पृष्ठाति, ''सीते वंद'' नि शीर्षण वा बन्दमाना पादी स्पृशेत्, ततः सीस्पर्शेन बीज-निसर्गों भवेत्। नवमः प्राह्—''स्लाहरुय'' नि शूल्व् आदिश्रहणाद् गण्डमन्यतरद्वा तद्यु-रूपं राजातमकसादुत्याद्यते ततः श्राद्विका आनीयते, सा तत् श्रूलादिकमर्पमाजयति ''ओअट्टण'' नि गाहतरमुद्धत्तेयति एवं बीजनिसर्गों भवेत् ततः श्राद्विकामानयामः॥ ४९३७॥

सम्रायपछि णेहिं [ णं ], मेहुणि खुईंत णिग्गमोवसमी । अविधितिगिच्छा एसा, आयरिकहणे विधिकारो ॥ ४९३८ ॥

यस्य मोहोदयः समुत्यन्नसम्य पितरं प्रति दशमो भणति—'सञ्चातकपर्षित्र' सञ्चातकप्रीमं ''णं'' इति एनं आत्मीयं पुत्रं नय, तत्र मैशुनिका-मातुळनुहिता तथा सह ''खुईत'' वि सोपहासवचनैर्भिन्नकथाभिः परस्यरं हस्त्वसङ्कर्षेण च कीडतो बीजनिर्गमो भवेत्, ततश्च मोहो- पश्मो भवति। एवा सर्वाऽप्यविधिचिकित्सा भणिता। यस्तु क्रवीति—आचार्याणामेतदा-25 छोचय, ततस्ते याँ चिकित्सामुपदिशन्ति सा कर्तव्या। एतदेकादशस्य साथोविधिकथनमुख्यते ॥ ४९३८॥ अत्रैव प्रकारान्तरमाह—

र्सारुवि गिहत्थ [ मिच्छे ], परतित्थिनपुंसेंगे य स्रयणया । चउरो य हुंति लहुगा, पच्छाकम्मम्मि ते चेव ॥ ४९३९ ॥

१ 'तमी साधू यधाशुद्धी मन्तन्त्री । यधाशुद्धी नाम-दोवयुक्तमुपदेशं न ददतः। यत' क्षेत्रः । २ 'कहूण मो॰ । एतलाशुक्षापेक मो॰ टीका । दस्ता टिम्प्पी ४ ॥ ३ 'वहमार्त्त संच ॥ ४ 'पमर्वपत्ति मो॰ ॥ ५ 'झार्म 'तम् १ दि मा॰ ॥ ६ 'व्यां गत्याऽन्ते आलो' मो॰ वे॰॥ ७ यां कित्यासुप' चे॰ ॥ ८ साक्किय निहत्त्वे, पर' मा॰ निमा ॥ ९ 'क्षमेसु सूच' ताना॰॥

किम्बद् मृयात्— 'सारूपिकः' सिद्धपुत्रः तद्रूपो यो नपुसकत्तेन हत्तकर्म कार्यताम् । द्वितीयः माह्— गृहस्यपुराणनपुसकेत । तृतीयो भणति— मिध्याद्दष्टिनपुसकेत । चतुर्षो मवीति— परतीर्थिकनपुसकेत । एतेषां चतुर्णोमिष ''स्यणय'' वि हत्तकर्मकरणे 'सूचनां' भेरणां कुर्वाणानां चत्वारो रुषवत्त्वारा-कार्जविद्योषित भवन्ति । तत्र मथमे द्वाम्यामिष रूपवः, विद्वतिये तपसा रुषवः, तृतीये कार्लन रुपवः, चतुर्वेद्वास्यामिष गुरव हति । स्वयं ते हत्तकर्म कृत्वा प्रश्चाकर्म कुर्वेन्त, उदकेत हत्ती धावनतीत्वर्थः, तत्रापि 'त एव' चतुर्वेचवः ॥ १९३९॥

एसेवं कमो नियमा, इत्थीसु वि होइ आणुपुन्वीए ।

चउरो य अणुग्वाया, पच्छाकम्मम्मि ते लहुगा ॥ ४९४० ॥

'एए एव' सारूपिकादिकः कमो नियमात् स्त्रीणामपि आनुवृत्यां वक्तस्यो भवति । 
10 तद्यद्या—प्रथमो प्रवीति — सिद्धपुत्रिकया हत्तकमं कार्यताम्, एवं द्वितीयः—मृहस्यपुराणिकया, तृतीयः—मिरणाहिएग्रहस्या, नतुषैः—परतीपिक्या । चतुणीमप्येत्रभणतां स्त्रीर्पईकारापणप्रत्ययाध्यतारः 'अनुद्धारा, गुरुका मासास्त्रपैय तपः-कालविदोषिताः मायध्यितम् ।
पश्चात्कर्मणि तु 'त एव' चस्तारे मासा लखुकाः ॥ ४९४० ॥ तदेवं गतं 'वस्तदेदिणे'
इति द्वारत् । 'इष्टा स्थ्या वा पूर्वमुकानि' इति द्वारद्वयं तु यथा निदीये प्रथमोदेशके
15 प्रथमतुष्ठे व्याह्यातं तथैवात्रापि मन्तस्यम् । तदेवमुक्तं हस्तकर्म । अभ मैशुनमभिषिद्धाराह—

मेहुण्णं पि य तिविहं, दिव्वं माणुस्सयं तिरिक्खं च । ठाणाइं मोत्तृणं, पढिसेवणि सोधि स चेव ॥ ४९४१ ॥

मैथुनमिपि त्रिविषम् । तवधा---दिव्यं मानुष्यं तेरश्चं च । अत्र च येषु स्थानेप्वेतानि दिन्यादीनि मैथुनानि सम्भवन्ति तानि मुक्तवा स्थातव्यम् । यदि तेषु तिष्ठति तानि वा २० दिव्यादीनि प्रतिसेवते तदा तदेव स्थानपायश्चित्तं सेव च प्रतिसेवनायां शोधिर्यो प्रथमोद्देशके सागारिकस्त्रेत्रेऽभिहिता (गा० २४७० तः)॥ ४९४१॥

अथ द्वितीयपदं सप्रायश्चित्तमुच्यते । तत्र परः प्रेरयति —

मृहुत्तरसेवासुं, अवरपद्मिंग णिसिन्झती सोधी ।

मेहुण्णे पुण तिविधे, सोधी अववायतो किण्णु ॥ ४९४२ ॥

स्रिराह—द्विविधा प्रतिसेवना—दर्शिका कल्पिका च अनयोः म्रूपणार्थं ताबदिदमाह्— राग-दोसाणुगया, तु द्षिपया कप्यिया त तदभावा ।

30 आराधणा उ कप्पे, विराधणा होति दप्पेणं ॥ ४९४३ ॥

राग-द्वेषाभ्याम् अनुगता-सहिता या प्रतिसेवना सा दर्षिका, या तु कल्पिका सा 'तद-

र "व गर्मो तामा॰ ॥ २ "निम चडलडुगा तामा॰ ॥ २ प > एतरन्तर्गतः पाठः भा॰ का॰ नारतः ॥ ४ "रिमिषीयते " मा॰ ॥ ५ "णार्थमिदमाइ मा॰ कां॰ ॥

भावात्' राग-द्रेवाभावाद् भवति । शिष्यः प्राह—वर्षेण करुपेन वाऽऽसेत्रिते किं भवति ! इति उच्यते — करुपेनासेविते झानादीनामाराचना भवति, दर्षेण मतिसेविते तेषामेव विराधना भवति ॥ ६९४३ ॥ आह—यदि राग-द्रेवविरहिता करिशका भवति ताईं मैथुने करियकाया अभावः प्राप्नोति । उच्यते —प्राप्नोतु नाम, का नो हानिः ! । तथा चाह—

> कामं सन्वपदेसु वि, उस्सम्म-ऽववादधम्मता जुत्ता । मोत्तुं मेहुणभावं, ण विणा सो राग-दोसेहिं ॥ ४९४४ ॥

'कामन्' अनुमत्मित्मसाकस्—'सर्वेष्विष पदेषु' मूळोत्तरगुणरूपेषु 'उत्सर्गा-ऽववाद-धर्मता युक्ता' उत्सर्गः-अतिषेषः अपवादः-अनुज्ञा तद्धर्मता-त्रक्षज्ञणता सर्वेष्विषि पदेषु युज्यते; तथापि सुक्वा 'मैथुनभावम्' अब्रह्मासेवनम्, तत्र उत्सर्गधर्मतेव घटते नापवाद्यभैता। किमर्थस् ! इत्याह— असी मैथुनभावो राग-द्वेषाभ्यां विना न भवति, अतो द्वितीयपदेऽपि न 10 तत्रामायश्चित्तीति हृदयम् ॥ ४९४४॥ अयं पुनरस्ति विरोपः—

> संजमजीवितहेउं, कुमलेणालंबेषेण वऽण्णेणं । भयमाणे तु अकिचं, हाणी वड्डी व पच्छिते ॥ ४९४५ ॥

'संयमजीवितहेतोः' 'चिरकार्छ संयमजीवितेन जीविष्यामि' इति बुद्धा 'कुशलेन वा' तीर्योध्यवच्छित्त्यादिलक्षणेनान्येनाप्यालम्बनेन 'अञ्चल्यम्' अत्रक्ष 'अजमानस्य' आसेवमानस्य 15 प्रायश्चित्ते हानिर्वा वृद्धिर्या वह्यमाणनीत्या भवति ॥ ४९४५ ॥

आह—मैधुने कल्पिका सर्वधैव न भवति ? इति अत आह— गीयत्थो जतणाए, कडजोगी कारणिम्म णिद्दोसो । एगेर्सि गीन कडो, अरचऽदुद्दो त जतणाए ॥ ४९४६ ॥

गीतार्थः 'यतनया' अल्यतरापरापस्थानप्रतिसेवास्त्रया 'कृतयोगी' तथःकर्मणि कृताभ्यासः 20 'कारणे' ज्ञानादी सेवते, एव प्रथमो भक्षः, अत्र च प्रतिसेवमानः कल्पिकपतिसेवावानिति कृत्वा निर्दोषः । गीतार्थो यतनया कृतयोगी निष्कारणे, एष द्वितीयो भक्षः, अत्र सदोषः । एवं चतुर्णो पदानां षोडरा भक्षाः कर्तयाः । एकेषां पुतराचार्यणामिक् पच्च पदानि भवन्ति — गीतार्थः कृतयोगी अल्या हित्यो यतनया सेवते, एष प्रथमो भक्षः, गीतार्थः कृतयोगी अरफोऽद्विष्टोऽयतनया, एष द्वितीत्यो भक्षः; एषं पचमिः पद्वितीत्राद्व भक्षा भवन्ति । अत्रापि 25 प्रथमभक्षेक्षं कृत्यका निर्देषा गन्तव्या. न नेषेषः ॥ १९९६ ॥

आह—यदि तत्र कल्पिका तर्हि निर्दोष एवासी, उच्यते—

जति सन्वसी अभावी, रागादीणं हविज निहीसी । जतणाजुतेसु तेसु तु, अप्पतर होति पच्छितं ॥ ४९४७ ॥

यदि 'सर्वेशः' सर्वेशकारेणेव रागादीनामभावो मैधुने भवेत् ततो भवेतिवर्षेषः, तच अ नात्ति, अतो न तत्र सर्वेशा निर्दोषः, परं यतनायुतेषु 'तेषु' गीताशीदिविशेषणविशिष्टेषु साधुष्वरुपतरं प्रायक्षितं भवति ॥ ४९४७ ॥ अथ यदुक्तम्— "हानिर्देदिनं प्रायक्षिते भवति" (गा० ४९४५) तत्र हानिं ताबद् विवरीषुराह—

#### कुरुनंसम्मि पहीणे, रजं अजुमारगं परे पेछे । तं कीरतु पन्खेनो, एत्थ य गुद्धीऍ पाघण्णं ॥ ४९४८ ॥

कश्चिद् क्यतिरनपत्यः स मित्रणा प्रोक्तः —यूयमपुत्रिणस्तः कुळवेरो प्रतीणे राज्यमकु-मारकं माला परे राजानः प्रत्येतुः ततः कियतामपरपुरुषप्रक्षेपः, स चौपायेन तथा कर्तंन्यः ध्या छोके अध्यवः मार्शे न समुच्छळति कुमारश्चीत्यस्ते, 'अत्र च' उपायनिकरणे बुद्धेः प्राधान्यम्, त्येवासौ सम्यक् परिज्ञायते नान्ययेति भावः॥ ६९४८॥ इदमेव सविशोगमाह—

सामत्थ णिव अपुत्ते, सचिव मुणी धम्मलक्त्व वेसणता । अजहवियतरुणरोधो. एमेसि पडिमदायणता ॥ ४९४९ ॥

'अयुने' अपुत्रस्य न्रियंस्य सचिवेन तह "सामत्यणं" पयी ठोचनम्, यथा—कयं नाम

10कुमारः सम्भविता !। ततो मिश्रिणा भणितम्—यथा परक्षेत्रेऽपरेण बीजमुसं क्षेत्रसामिन

आभाव्यं भवित एवं तवानतःपुरक्षेत्रेऽन्येनािष बीजं निस्तृष्टं तवैन पुत्रो भवित । राज्ञा प्रतिषक्षं

तद्वचनम् । यूयोऽप्यमात्यः प्राह—ये सुनयोऽयशःभवादाङ्गज्ञन्ते ते 'धर्मठक्ष्येण' धर्मकथाकारागणस्यात्रेन यद्वा ''धम्मठक्ते''ित 'राज्ञा सान्तःपुरः श्रावको एहेऽहेतां प्रतिमाः शुश्रूषते

ताः साधको बन्दिनुमागच्छते' हत्यंत्रं धर्मज्ञ्यात्रेन ''वेत्रणय'' ति प्रतेशनीयाः । प्रवममात्य
13 वननं प्रतिपत्र राज्ञा तथैव इत्तम् । ततो राजगृहं प्रविष्ठे साधुषु ये तहणाः ज्ञानवाद्याः ।

अविनर्ष्यंजात्वेशां तथेव इत्तम् । ततो राजगृहं प्रविष्ठे साधुषु ये तहणाः न्यान्यावाः—

अविनर्ष्यंजात्वेशां तथेव इत्तम् । ततो राजगृहं प्रविष्ठे अवरोषे' अन्तःपुरे तहण्यक्षीिः

सार्षं बठाद् भौगान् सोत्रियुमारेगिरे । राजपुरकाश्च बोरक्षपरिणे मणन्ति—यदि भौगान्न

भोक्ष्यच्ये ततो वयं मारियप्यामः । तत्रैकः साधुः

20 ''वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भग्नं चिरसञ्चितं त्रनम्।

वरं हि सृत्युः सुविशुद्धकर्मणो, न चापि शीलस्मलितस्य जीवितम् ॥'' इत्वादि परिभाव्य मैर्तुमध्यवसितः, तत्वैवमनिच्छतो राजपुरुषेः शिरम्छित्रम् । ''एमेर्सि पडिमदायणय'' वि 'एकेशम्' आचार्याणामयमभिशावः, यथा—मन्देतरप्रकारो प्रदेशे लेष्य-प्रतिमाया लक्षारसपूर्णोर्याः शीर्षं छित्वा दर्शितम्, ततः साधवो भणिताः—ययैतस्य 25 शिरम्छित्रम् एवं मवतामपि शिरम्छेदो विधासस्ते ॥ २९२९ ॥ इत्सेच भावयति—

तरुणीण य पक्खेनो, भोमेहिँ निमंतर्ण च भिक्खुस्त । मोतुं अणिच्छमाणे, मरणं च तिहैं वनसियस्त ॥ ४९५० ॥ तरुणीनां साञ्चिः सहान्तःपुरे पक्षेपः कृतः, भौगैश्रीकस्य मिक्षाः प्रथमतो निम्बर्ण

कृतम्, तस्य च भोकुमनिच्छतो मरणं च तत्र व्यवसितस्य शिरक्छेदध्यके ॥ ४९५० ॥ उ० दहण तं विससणं, सहसा सामावियं कहत्वं वा ।

दहुण त विसंसंग, सहसा सामाविय कहतव वा ।

१ °पतेः स्व<sup>०</sup> के॰ ॥ २ °एवीयां स्ते<sup>०</sup> कां॰ ॥ १ °स्ते उसपादिभिक्षांत्या रुद्धाः, होषा<sup>०</sup> मा॰ ॥ ४ तादी॰ मो॰ के॰ विनाऽण्य—मरणमध्य<sup>०</sup> मा॰ । मरणमङ्गीकतुंतप्य कां॰ ॥ ५ "न्द्मका<sup>०</sup> मा॰ कां॰ ॥ ६ °याः 'पुरुषोऽयं मार्थेते' इति स्वयुववेः वीर्षे अं॰ ॥

विगुरुविया य ठळणा, हरिता भयता व रोमंची ॥ ४९५१ ॥ 'तत्' तवाविषे 'विश्यसं' व्यपरोषणं 'सामाविकं' साधोरेव 'कैतविकं सा' मतिगायाः कियमाणं सहसा दृष्टा 'विकुर्तितास्य' अळकूत-विगृषिता ठळना विकोक्य कस्यापि हर्षेण मचेन वा रोमाक्षो भवेत् । ⊲ संकारोऽळाक्षणिकः ⊳ ॥ ४९५१ ॥ अत्रैव प्रायक्षितमाह—

सुबुक्कसिते मीए, पचक्खाणे पडिच्छ गच्छ बेर विद् । मूर्ल छेदो छम्मास चंउर गुरु-लहु लहुग मासो ॥ ४९५२ ॥

सहावद् मर्गणमध्यवस्तिः स गुद्धः । द्वितीयः—उहासितः—एतेनापि भिषेण स्तिर्वं प्राप्त्यामः' इति बुद्धा उद्धपितरोमक्षः सङ्घातद्वस्य मुरुष् । अपरः—यदि न प्रतिसेवे ततो सम खिराइछवते; एवं मीतस्य प्रतिसेवमानस्य च्छेदः । अपरिश्वन्तयति —अहमेवं मार्थमाणः समापि नासादियन्यामि, असमाधिमरोगन च दुर्गतिक्वमी, अतो मकप्रत्यास्वानं कृत्य मरिष्ये; 10 एवं सेवमानस्य पहुरावः । अपर इदमाज्यनं करोति — अहं जीवन् प्रतिच्छकानां वाचनां दास्यामि; तस्य पद्धचवः । अन्यश्चन्तयति — गच्छं आत्रम् प्रतिच्छानः व चतुर्यदः । अपर इदमाज्यवति — गच्छं क्षात्रियमामि; तस्य चतुर्वद्वाव व्यवस्यान्यति — कोऽपि इतिकमें करिष्यति अतस्वेषां वैश्वहत्यकर्ता कोऽपि व विद्यते तत्वयं प्रतिचेवः स्याप्त्याति — विद्यते त्वयं प्रतिचेवः स्याप्त्याति — विद्यते त्वयं प्रतिचेवः तस्य मास्वयुक्त । ॥ ४९५२ ॥ इत्यवेवः व्याप्त्याति — विद्यते त्वयं प्रतिचेवः तस्य मास्वयुक्त ॥ ४९५२ ॥ इत्यवेवः व्याप्त्याति — व

निरुवहपत्रोणियीणं, विउन्वणं हरिसम्रष्टसितें मूर्लं । भय रोमंचे छेदो, परिण्ण काहं ति छम्मुरुमा ॥ ४९५३ ॥ मा सीदेज पढिच्छा, गच्छो फिट्टेज येर संबेच्छं । गरुणं वेयावचं, काहं ति य सेवतो लहुओ ॥ ४९५४ ॥

पश्चपञ्चाद्यतो वर्षाणाञ्चपरिष्टादुपहतयोनिका स्त्री भवति, "तेषामारतो अनुपहतयोनिका, 10 गर्भ गृङ्खातीत्वर्धः । एवं निरुपहतयोनिकस्त्रीणां 'विकुर्वण' मण्डनं दृष्ट्या यस्य हर्षः सम्रङ्काति ततस्त्राज्ञस्य प्रतिसेवमानस्य तस्य मृङम् । यस्य तु भवेन रोमाञ्च उरुपदति तस्य च्छेदः । परिज्ञा-मक्तमत्वास्त्रानं तां करिष्यामीति यः परिणतस्तस्य बहुरुकाः ॥ १९५३ ॥

'मा मतीच्छकाः सीदेयुः' इति बुच्या यः सेवते तस्य पद्रुष्युकाः । यस्तु 'मां विना गच्छः स्किटेत्' इत्यारुम्बते तस्य नतुर्युत् । 'स्पविरान् सङ्गदीच्यायि' इति इत्सा सेवमानस्य 25 नतुर्वेषु । 'मुरूणां वैयाष्ट्रयं करिप्ये' इति हेतोः सेवमानस्य छपुमासः ॥ ४९५८ ॥

उक्ता प्रायश्चित्तस्य हानिः । अथ वृद्धिमाह-

रुहुजो उ होति मासो, दुन्भिरस्वऽविसङ्गपे य साहूणं । षेहाखुरागरचो, सुङ्गो चिय भेच्छए गंतुं ॥ ४९५५ ॥ कालेणेसणसीर्धे, पयहति परिताबितो दिगिछाए ।

१ र्प > एतस्तर्मावः पाडः भा० को० नाति ॥ २ खडर गुरुगा लड्डुग मस्तो इतिस्य एव पाडः वर्षाक्षपि प्रविद्य क्षेत्रे, अवभौषीनवायमिक्सभाभिर्मृत्रे राग्वर्तिः पडः ॥ १ वनामेच निर्मुक्तिः मार्या व्याप्त को० ॥ श्र सदारतो भा० ॥

अलमंते चिय मरणं, असमाही तित्यवीच्छेदी ॥ ४९५६ ॥

'इह दुभिसं सविष्यति' इति मला सुरिभित्तागतमेव गच्छं गृहीला निर्गनतव्यम् । अथ स्थं अङ्काब्रुव्यरिक्षीणास्ततः साधवो विसर्जनीयाः । अथ न विसर्जयित तत आवायेत्या-सामाचारीनिष्यत्तो लघुको मासो भवति आज्ञादयश्च दोषाः । एते चापरे तत्र दोषा भवन्ति — ह स गच्छो दुभिस्ने सक्त-पानस्त्रम्यानः ''दिगिछाए'' वि दुसुस्या परितापितः सन् 'कालेन' कारूकमेण एषणाष्ट्रद्वियपि प्रवहाति, सर्गणमि चासमापिना सक्तमलभानस्स भवेत् , तीर्ष - स्थव्यच्छेदश्च भवति, अतो विसर्जनीयः सर्वोऽपि गच्छः । तत्र च विसर्जति अ कि भैवति । इति अत आह — ''नेहाणुराग' हत्यादि पूर्वगाधायाः पश्चार्द्वम् । > स्रेहानुरागरक्तः कश्चित् शुक्को नेच्छति गन्तुं परमनिच्छत्रपि प्रेषितः । ततोऽसी गुरुखेहानुरागपत्वाो देशक्त-भाव् 10 पश्चायित्वा प्रतिनिद्वरः । सुरिभिरिक्षित्तम् — दुष्टु त्या कृतं यदेवं भूवः प्रत्यागतः । आचार्यश्च स्थं केपुविष्ठआपुरेदु यां भिक्षां रुमन्ते तस्याः संविभागं शुक्ककल प्रयच्छति । ततः शुक्कक्षित्यति— अहो । मया गुरवोऽपि क्षेत्रातः । ततः स पृथग् भिक्षां हिण्डितः । तत्रेषका शुक्कक्ष्यस्ति । अरुक्प्यम्तिन । अष्टिक्षप्रस्ति । स्रिक्षेत्रस्ति । स्रिक्ष्यर्यागिति ॥ ४९५५। ॥ एदं च —

भिक्खं पि य परिहायति, भोगेहिँ णिमंतणा य साहुस्स । गिण्हति एकंतरियं, लहुसा गुरुगा चउम्मासा ॥ ४९५७ ॥ पडिसेवंतस्स तिहैं, छम्मासा छेटों होति मृलं च । अणबट्टपो पारंचिओ य पुच्छा य तिविहम्मि ॥ ४९५८ ॥

मैक्षमि दुर्भिक्षानुभावेन परिहीयते भोगेश्च निमम्रणा तस्य साथोः समजनि ततः स
20 चिन्तयित— यथेनां पतिसेविद्धं नेच्छामि ततो भक्ताभावादसमाधिमरणेन म्रिये, अतः साम्प्रतं
तावत् प्रतिसेवे, पश्चाद् दांपै कालं संयमं पालविष्यामि स्त्रार्थो च प्रहीष्यामि एतत्प्रत्ययं च
प्राथिश्चं चरिष्यामि; एवं चिन्तयित्वा यतनां करोति । कथम् ? इत्याह— "गिण्हह्" इत्यादि,
एकान्तरितं भक्तं गृक्कति प्रतिसेवतं च । तत्र प्रथमदिवसं प्रतिसेवमानस्य चत्वारो लघुमाताः ।
छितीये दिनेऽभक्तार्थेन स्थित्वा तृतीये दिने प्रतिसेवमानस्य चत्वारो लघुमाताः ॥ १९५० ॥
28 एवमेकान्तरितं मकं गृहतस्यां चे 'तत्र' ताहशे दुर्भिक्षं प्रतिसेवमानस्य पञ्चम-सत्तैमयोदिनयोयंशाक्तं प्रथमाताः रूपयो सुत्राय्वा भवन्ति, ततो नवये दिने च्छेदः, तत एकादशे मृत्यम्,
तदनन्तरं प्रयोदशे दिवसेऽनवस्याप्यम्, ततः पञ्चदे । एषा विद्याभिक्षता ।

"पुच्छा य तिविहम्मि" चि शिष्यः प्रच्छति—"त्रिविषे' दिव्य-मानुष्य-तैरक्षकक्षणे मैधुने कि कथमभिकाष उत्पद्यते हैं ॥ १९५८ ॥ स्तरिग्रह—

१ पे १ एत्वरतंपतः पाटः भा॰ को॰ माति ॥ २ ताटी॰ मो॰ दे॰ विनाऽव्यश्चन प्रतिसंवर मानस्य 'तत्र' पञ्च' भा॰ को॰ ॥ २ 'तमातिषु दिनेषु षण्मासा रुपयो गुरसभ अवन्ति, ततरक्षेत्र, ततो मुरुम्, तदनग्तरमनवस्थाप्यम्, ततः पाराश्चिकम्। अध निर° मा॰ ॥

### वसहीए दोसेणं, दहुं सरिउं व पुन्वश्वसाई।

तेगिच्छ सदमादी, असजणा तीस वी जतणा ॥ ४९५९ ॥

'वसते दें बिण' स्त्री-पशु-पण्डकसंसक्ति छक्षणेन, यद्धा श्लियम् आलिक्ननादिकं वा दृष्टा, गृहस्वकाले वा यानि सीभिः सार्षे भुक्तानि वा हसितानि वा लिलतानि वा तानि स्पृत्वा मैथुनमाव उत्पथते । एवसुत्वले किं कर्षेच्यम् ! इत्याह—''तिगिच्छ'' इत्यादि, चिकत्सा उ कर्तेच्या, सा च निर्विकृतिकमधुतिका । तामतिकान्तस्य शब्दादिका - वे वा यतना कर्षेच्या । शिकुक्तं भवति !— अत्र स्वाने स्त्रीयदं रहस्यव्वदं वा ग्रुणोति तत्र स्वित्सहतः स्वान्यते, आदिशब्दाद् यत्रालिक्तनादिकं पश्चित त्र स्वान्यस्यते, आदिशब्दाद् यत्रालिक्ननादिकं पश्चित त्र स्वान्यते । ''श्वसक्रण' ते तत्या शब्द-स्वणादिकस्यायां चिक्तित्यायां सजनं-सक्तो गृद्धिसित यावत् सा तेन न कर्तव्या । एवं 'त्रिच्चिरे' दिव्यादिक् मैथुनेयु यतना मन्तव्या ॥ ४९५९ ॥ इत्मेव सिवेरोपमाह—

#### बिइयपदे तेगिछं, णिब्बीतियमादिगं अतिकंते ।

सनिमित्तऽनिमित्तो पुण, उदयाऽऽहारे सरीरे य ॥ ४९६० ॥

द्वितीयपदे निर्विकृतिका-ऽवमीदिरका-निर्वकाहारोर्द्धस्थाना-ऽऽचाम्झ-ऽधमा-दिरूपां चिकित्सामतिकान्तस्य शब्दादिकाऽनन्तरोक्ता यतना भवति । एषा च सनिमिचेऽनिमिचे वा मैथुनाभिकशेष भवति । तत्र सनिमिचो वसतिदोषादिनिमिचसप्तस्यः, अनिमिचः पुनः कर्मो-15 दयेन १ आहारतः २ शरीरपरिकृद्धितश्च ३ य उत्पचते । सर्वमेतद् यथा निर्दाधि प्रथमोदे-शके भणितं तथैव द्रष्टव्यम् ॥ ४९६० ॥ गतं मैथुनम् । अथ रात्रिभोजनमाह—

रातो य भीयणम्मि, चउरो मासा हवंतऽलुग्घाया । आणादिणो य दोसा, आवजण संकणा जाव ॥ ४९६१ ॥

रात्री भोजने क्रियमाणे चत्वारो मासाः 'अनुद्धाताः' गुरवो भवन्ति आजादयश्च दोषाः 120 ये च माणातिपातादिविषया आपत्ति-शङ्कादोषाः परिमहस्मापत्ति शङ्कां च यावत् प्रथमोदेशके ५० ''नो<sup>3</sup> कप्पद्द राजो वा वियाले वा असणं वा ४'' इत्यादौ रात्रिभक्तद्वत्रे (सूत्र ४२) ⊳ इहैबाभिहितास्ते सर्वेऽपि द्रष्टव्याः ॥ ४९६१ ॥ अथ द्वितीयपदमाह—

णिरुवहवं च खेमं च, होहिति रण्णो य कीरत् संती। अद्भाणनिग्गतादी, देवी पूयाय अज्झियमं॥ ४९६२॥

उपद्रवो नाम-अशिवं गरूरोगादिकं वा, तस्ताभावो निरुपद्रवर् । 'क्षेसं' परक्ताधुगप्रवा-भावः । ततः 'निरुपद्रवं च स्रेमं च मदीये देशे भविष्यति' इति परिभाव्य राजा शान्ति कर्तुकामस्वपिसनो रात्री भोजयेत् । यहा राजपुत्रो वा नागरा वा 'राजः शान्तिः क्रिवतास्' इति कृत्वा ये रात्री न अञ्चते सुतपस्विनश्च ते रात्री भोजनीयाः, एप तत्सा विद्याया उपचार इति परिमावयन्ति, ते च साघवोऽध्वनिगतादयस्त्र सम्प्राप्तास्ततो वश्यमाणो विचिवंधातव्य: 130 यहा राजः कस्वापि देवी वानमस्तरपूर्वा कृत्वा तपस्तिगं रात्रिभोजनळ्ळुगम् 'अजिञ्चयकं'

१ < ▷ एतविडमण्यमतः पाठः आ० कां॰ नास्ति ॥ २ °क्ताचे कर्त्ताव्या । तत्र कां॰ ॥ ३ < ▷ एतवस्तर्गतः पाठः आ॰ कां॰ नास्ति ॥

उपयाचितं मन्येत ॥ ४९६२ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते---

अवधीरिया व पतिणा, सवित्तिणीए व पुत्तमाताए। गेलण्णेण व पुद्रा, वुग्गहउप्पादसम्पे वा ॥ ४९६३ ॥

'पतिना' भर्त्रा 'अवधीरिता' अपमानिता सा देवी, यहा या तस्याः सपत्नी सा पुत्रमाता क्ष्मा न छुष्ठ बहुभान्यते, ग्ळानत्वेन या सा गाढतर्र ६९ष्टा, वित्रहो वा तस्याः केनापि साधेष्ठुत्वकातो वित्रहोत्पादस्य झमनार्थं वानमन्तरपूजा कर्तव्या, स च वानमन्तरो रात्री साख्यु भोजितेषु परितोषगुद्वहति ॥ ४९६३ ॥ ततः—

एकेकं अतिणेउं, निमंतणा भोयणेण विपुरेणं।

भोतुं अणिच्छमाणे, मरणं च तिहं वबसितस्स ॥ ४९६४ ॥

एकेकं साधुं बलासियोगेन राजभवने 'अतिनीय' मवेद्य रात्री विपुठेन भोजनेन निमष्ठणा

कृता, अभिहिताश्च साधव:—यदि सम्प्रति न भोद्यचे तत्र वर्ष वयरोपियव्यामः ॥

रमुक्ते तेषामेकस्य साधोक्तवार्ता भोकुमनिच्छतो मरणं च तत्र व्यवसितस्य शिरिष्ठिकम्य,

क्वितीयो इषांद्रक्षितः, तृतीयो मीत ह्लादि यथा मैधुने तथा मन्तव्यम् ॥ ४९६४ ॥

अत्र पायश्चित्तमाह---

15

सुद्धस्तिते भीए, पबन्स्ताचे पडिच्छ गच्छ थेर विद् । मूर्ल छेदो छम्मास चउरों मासा गुरुग लहुओ ॥ ४९६५ ॥ गतार्था (गा० ४९५२ )॥ ४९६५ ॥ अत्र यतनामाह—

तत्त्रेव य भोक्लामो, अणिच्छे भ्रंजामों अंधकारम्मि ।

कोणादी पक्खेबी, पीडुल भागे व जित गीता ॥ ४९६६ ॥ १० रात्री भोज्यमानेः साधुभिरभिधातव्यम्—भाजनेषु गृहीखा ततः 'तत्रैव' समितिश्रये

श्री साअपनानः साशुन्तरात्वात्वयन्त्रम्मावन्त प्रशासः तत्रव समातन्त्रयं मिक्समाहे, न वर्तते गृहस्थानां पुरतो भोक्तमः, एवसुन्त्वा ततोऽल्यसामाहिकं नीत्व गिह्मपन् यन्ति । अथान्यत्र नेतुं न प्रयच्छिन्ति भणनित च—असाकं पुरतो भोक्तम्यमः, तत्रते चक्तम्य—पदीपमपनयत, अन्यकारे भोजनं कुमैः; तत्रतेशामपत्रयतां कोणेषु आदिशब्दाद् अपतत्र वा एकान्ते करकान् मिल्पन्ति । अथवा बक्षण पोट्टलं बद्धा तत्र मिलपन्ति, भाजनेषु अपत्र वा एकान्ते करकान् मिलपन्ति । अथवा बक्षण पोट्टलं बद्धा तत्र मिलपन्ति, भाजनेषु अभवा मिलपन्ति । अथवा वित्रा । अपनेष्य ।

अभ प्रदीपं मापनयन्ति तत इदं वक्तव्यम्---

गेलण्णेण व पुट्टा, बाहाडऽरूची व अंगुली वा वि । भ्रंजंता वि य असदा, सालंबाऽमुच्छिता सुद्धा ॥ ४९६७ ॥

यदि ते दुर्बरुक्ता भणन्ति—स्वान्त्वेन स्ट्रष्टा वयस्, एतश्वस्थाकमण्डमम्, बाद् ३० सञ्चिद्धामस्ताते व्रियामहे, तस्थान्मा ऋषिहत्यां कुरुत । अश्वना अश्वितव्यस्—अस्याभिर्गव्यक् सावत् शुक्तम्, बाहारं च-ममूतं युक्तानां कुतो रुविरुषवायते ! । यथेवं न प्रवर्षयन्ति तता मातुस्थानेनाङ्क्तीं वदने प्रश्चिप्य वमनसुरुषादयन्ति । यदि तथापि न प्रीतयन्ति ततः स्तोकं

१ प्रत्ययम्ति ताटी० मो० दे०॥

तन्मच्यादास्तादयन्ति । अथ तथापि न विसर्जयन्ति तत एवं साङम्बनाः 'बराठाः' राग-द्वेप-रहिता असूर्च्छिताः स्तोकं मुझाना थपि गुद्धाः ॥ ४९६७ ॥ उपसंहरक्राह—

> एत्थं पुण अधिकारो, अणुषाता जेसु जेसु ठाषेसु । उचारियसरिसाइं. सेसाइँ विकोवणद्वाए ॥ ४९६८ ॥

'अत्र पुनः' प्रस्तुतस्त्रे ⊲ ईस्तकसै-नैधुन-सित्रमक्तिविषतैः स्वानैः ⊳ 'अधिकारः' प्रयो- 5 जनम् । कैः ? इत्वाह—येषु येषु स्वानेषु 'अनुद्धातानि' गुरुकाणि प्रायश्चित्तानि मणितानि तैरेबाधिकारः । 'शेषाणि' ⊲ वैधुमायश्चितसिहतानि स्वानानि ⊳ पुनरुक्तारितार्यसदृशानि शिष्याणां विकोपनार्धमकानि ॥ ४९६८ ॥

## ॥ अनुद्धातिकप्रकृतं समाप्तम् ॥

पाराश्चिक प्रकृत म्

10

15

सृत्रम्---

तओ पारंचिया पन्नता, तं जहा—दुट्ठे पारंचिए, पमत्ते पारंचिए, अन्नमन्नं करेमाणे पारंचिए २॥

अस्य सम्बन्धमाह—

बुत्ता तवारिहा खलु, सोघी छेदारिहा अघ इदाणि । देसे सब्वे छेदो, सब्वे तिविहो तु मूलादी ॥ ४९६९ ॥

तपोर्हा शोधिः सन्ध पूर्वसूत्रे प्रोक्ता, अभेदानीं छेदाहींऽभिषीयते। स च च्छेदो द्विषा— देशतः सर्वतश्च । देशच्छेदः पश्चरात्रिन्दिबादिकः षण्मासान्तः । सर्वच्छेदः 'मूलादिः' मूला-ऽनवस्थाप्य-पाराधिकमेदात् त्रिविषः । अत्र सर्वच्छेदः पाराधिकरुक्षणोऽभिक्रियते ॥ ४९६९ ॥ आह् यथेवं तर्हि—

> छेओ न होइ कम्हा, जित एवं तत्थ कारणं सुणसु । अणुपाता आरुवणा, किसणा किसणेस संबंधो ॥ ४९७० ॥

छेद एव स्त्रेऽपि कसाल भवति ?, ''ततो छेदारिहा पलता, तं जहा—दुद्दे छेदारिहे'' इत्यादिस्त्रं किमर्थं न पठितम् ? इति भावः । स्रिराह—यथेवं भवदीया बुद्धिस्ततोऽत्र कारणं श्रृणु—या किछादिस्त्रेऽनन्तरोकेऽनुद्धाताख्याऽऽरोपणा भणिता सा 'क्रस्त्वा' ⊲ गुँरकेत्यर्थः, № 48 इयमपि पाराधिकाख्याऽऽरोपणा क्रस्त्वेव, अतः क्रस्त्वाया आरोपणाया अनन्तरं क्रस्त्वेवारोपणा-ऽभिषीयते । एष सम्बन्धः ॥ ४९७० ॥

१ प > एतन्यस्थायतः वाटः भा० कां॰ नास्ति ॥ २ प > एतिषहान्तर्गतः वाटः कां॰ एव वर्तते ॥ ३ 'स्टुलु' निहासय । तथाहि—या कां॰ ॥ ४ प > एतदन्तर्गतः वाटः भा॰ कां॰ नास्ति ॥

25

80

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—त्रयः पाराधिकाः प्रज्ञाः। तषाया—दुष्टः पारा-श्चिकः, प्रमत्तः पाराधिकः, 'अन्योन्यं' परस्परं स्वन्पायुपयोगतः प्रतिसेवनां कुर्वाणः पाराधिक इति सुत्रसमासार्थः॥ अथ विस्तरार्थे भाष्यकृद् विभणिपुराह—

अंचु गति-प्यणम्मि य, पारं पुणऽणुत्तरं बुधा बिंति ।

सोधीय पारमंचइ, ण यावि तदपूतियं होति ॥ ४९७१ ॥

"श्रश्च गति-पूजनयोः" इति वचनाद् श्रश्चभांतुर्गेतो पूजने चात्र गृह्यते । तत्र गत्यर्थो यथा—पारं-तीरं गच्छति येन प्रायश्चित्तेनातत् पाराधिकत् । अप पारं किष्ठच्यते ? इत्याह—भारं पुनः' संसारतश्चत्रस्य तीरमृतम् 'अनुत्तरं' निर्वाणं 'चुचाः' तीर्थकदादयो ह्रवते, अनेनाक्षितित साधुनींसं गच्छतीति भावः । तद् यस्यापयते सोऽप्युरचारात् पाराधिक 10 उच्यते । यहा द्रोपे 'पारं' पर्यन्तमञ्चति यत् तत् पाराधिक म् अपश्चिमं प्रायश्चित्तिस्य । पूजार्थो यथा—'न चारि' नैव 'तत्' पार्यश्चित्तपराननमपूजितं किन्द्र पूजितमेव, तती येन तप्ता पारं प्रापित शक्यते—श्रीश्रमणसङ्घेत पूज्यते तत् पाराधिकं पाराधितं वाऽभिचीयते । तथोगात् साधुरिप पाराधिकः ॥ ४९७१ ॥ अथ तमेव भेदतः प्ररूपिति—

आसायण पडिसेवी, दुविहो पारंचितो समासेणं। एकेकम्मि य भयणा, सचरिचे चेव अचरिचे॥ ४९७२॥

पाराधिकः समासेन द्विविषः, तषथा—आशातनापाराधिकः प्रतिसेविपाराधिकधः। पुनरेकेकसिन् द्विविधः भजना कर्तव्यः। कथम् ! इत्याह—द्वावप्येतौ सचारित्रिणौ वा स्यातमचारित्रिणौ वा ॥ ४९७२ ॥ कथं पुनरेषा भजना ! इत्याह—

सन्वचरित्तं भस्सति, केणति पडिसेवितेण तु पदेणं।

20 कत्थति चिद्वति देसी, परिणामऽवराहमासञ्ज ॥ ४९७३ ॥

केनचिदपराधपदेन पाराश्चिकापिचमोग्येन अतिसेवितेन सर्वमपि चारित्रं अश्यति, कुत्रापि पुनः चारित्रस्य देशोऽत्रतिष्ठते । कुतः ? हत्याह— 'परिणामं' तीत्र-मन्दादिरूरम् 'अपराधं च' उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्यरूपमासाद्य चारित्रं भवेद्वा न वा ॥ ४९७३ ॥ इदमेव भावयति—

तुर्ह्धाम्म वि अवराधे, परिणामवसेण होति णाणत्तं ।

कत्थति परिणामिम वि. तल्ले अवराहणाणत्तं ॥ ४९७४ ॥

बुल्वेऽध्यपरावे 'परिणामवदोन' तीन-मन्दाधध्यवसायवैविज्यवस्रात् चारित्रपरिभंग्नादो नानात्वं भवति, कुत्रचित् पुनः परिणामे बुल्वेऽपि 'अपराधनानात्वं' प्रतिसेवनावैविज्यं भवति ॥ १९७१ ॥ स्रथाशातनापाराश्चिकं व्याचिरुवासुराहः—

> तित्थकर पवयण सुते, आयरिए गणहरे महिद्वीए । एते आसायंते, पञ्छित मग्गणा होइ ॥ ४९७५ ॥

तीर्थकरं प्रवचनं श्रुतमाचार्यान् गणभरान् महद्धिकांश्च, एतान् य आशातयति तस्य प्रायश्चिते वश्यमाणरुक्षणा मार्गणा भवति ॥ १९७५ ॥

१ किणावसारित्रिणौ वा भवेताम् ॥ ४९७२ ॥ कां० ॥

तम् तीर्थकरं यथाऽऽशातयति तथाऽभिषीयते--

पाहडियं अणुमण्णति, जाणंती किं व ग्रंजती भीगे।

शीतित्थं पि य वस्ति. अतिकक्खडदेसणा यावि ॥ ४९७६ ॥ 'माभृतिकां' सुरविरचितसमवसरण-महापातिहार्यादिपूजाळक्षणामर्हन् यद् अनुमन्यते तन्न

सुन्दरम् । ज्ञानत्रयप्रमाणेन च भवस्तरूपं जानन् विपाकदारुणान् भोगान् किमिति सुक्के ? 15 मिक्कनाथादेश किया अपि यत् तीर्थमुच्यते तद अतीवासमीचीनम् । 'अतिकर्कशा' अतीवदरनचरा तीर्थकरै: सर्वोपायकशहरेरिप या देशना कता साऽप्ययक्ता ॥ ४९७६ ॥

अण्णं व एवमादी, अवि पहिमास वि तिलोगमहिताणं। पडिरूवमक्रव्वंतो, पावति पारंचियं ठाणं ॥ ४९७७ ॥

अन्यमप्येवमादिकं तीर्थकतामवर्णं यो भाषते, तथा 'अपी'त्यभ्यस्ये, 'त्रिलोकमहितानां' 10 भगवतां याः प्रतिमास्तास्विप यद्यवर्णं भाषते. यथा-'किमेतासां पाषाणादिमयीनां माल्या-ऽलङ्कारादिपूजा कियते ?' एवं बुवन् , 'प्रतिरूपं वा विनयं' वन्दन-स्तुति-स्तवादिकं तासाम-वज्ञाबुद्धा अकुर्वन् पाराञ्चिकं स्थानं प्रामोति ॥४९७७॥ अथ प्रवचनं-सङ्घतस्याञ्चातनामाह---

अकोस-तज्जणादिस. संघमहिबिग्ववति संघपिडणीतो । अणो वि अरिथ संघा, सियाल-णंतिक-दंकाणं ॥ ४९७८ ॥

यः सङ्घपत्यनीकः सः 🗠 "अक्रोस-तज्जणाइय्" ति विभक्तिव्यत्ययाद 🗠 आक्रोश-तर्जना-दिभिः सङ्घमधिक्षिपति । यथा-सन्यन्येऽपि श्रगाल-नान्तिक-दङ्गमन्तीनां सङ्घाः, यादशास्ते ताहशोऽयमपीति भावः, एव आक्रोश उच्यते । तर्जना तु-'हुं हुं ज्ञातं भवदीयं सङ्घलम्' इत्यादिका ॥ ४९७८ ॥ अथ श्रताशातनामाह---

काया वया य ते श्विय. ते चेव पमायमप्पमादा य ।

25

30

मोक्लाहिकारियाणं, जीतिसविजास कि च पुणी ॥ ४९७९ ॥ दर्शवकालिकोत्तराध्ययनादौ यत त एव षट कायास्तान्येव च व्रतानि तावेव प्रमादा-ऽप्रमादौ भूयोभूय उपवर्ण्यन्ते तद् अतीवायुक्तम् । मोक्षाधिकारिणां च साधूनां ज्योतिषविद्यास पनः कि नाम कार्य येन श्रते ताः प्रतिपाद्यन्ते ? ॥ ४९७९ ॥ अधाऽऽचार्याज्ञातनामाह-

इड्रि-रस-सातगुरुगा, परीवदेसञ्जया जहा मंखा । अत्तद्वपोसणस्या. पोसेंति दिया व अप्पाणं ॥ ४९८० ॥

आचार्याः स्वभावादेव ऋद्भि-रस-सातगुरुकाः, तथा मङ्खा इव परोपदेशोद्यताः, लोकाव-र्जनप्रसक्ता इति भावः, 'आत्मार्थपोषणरताः' स्वोदरभरणैकचेतसः । इदमेव व्याबष्टे--द्विजा इवाऽऽत्मानमभी पोषयन्ति ॥ ४९८० ॥ अथ गणधराञातनामाह---

> अब्भुजयं विहारं, देसिंति परेसि सयग्रदासीणा । उवजीवंति य रिद्धि, निस्संगा मो त्ति य भणंति ॥ ४९८१ ॥

१ °वते. अपि च 'त्रिलो' भा० ॥ २ प > एतदन्तर्गतः पाठः भा० को० नास्ति ॥ वे 'द्यासिः उपलक्षणत्वाद मन्त्र-निसित्तादिभिश्च पुनः किं कां॰ ॥ म॰ १६८

गणधरा गौतमादेवो 'अभ्यूचतं विहारं' जिनकस्यमभृतिकं परेगासुपदिश्चन्ति समं पुन-रुदासीनास्तं न प्रतिश्वन्ते, 'ऋद्वि वा' अक्षीणमहानसिक-बारणादिकां इन्धिमुपजीवन्ति 'निस्सक्का क्यम्' इति च भणन्ति ॥ ४९८१ ॥ अथ महर्द्धिकपदं व्याख्यानयति-

गणधर एव महिन्नी, महातवस्सी व वादिमादी वा ।

तित्थगरपदमसिस्सा, आदिग्गहणेण गहिता वा ॥ ४९८२ ॥

इह गमधर एव सर्वलव्यिसम्पन्नतया महर्द्धिक उच्यते, यद्वा महर्द्धिको महातपसी वा वादि-विधा-सिद्धपमृतिको वा भण्यते, तस्य यद् अवर्णवादादिकरणं सा महद्धिकाशातना । गणधरास्त तीर्यकरप्रथमञ्जिष्या उच्चन्ते. आदिमहणेन वा ते गृहीता मन्तस्याः ॥ ४९८२ ॥ अथैतेषामाशासनायां प्रायध्वित्तमार्गणामाह---

> पदम-वितिएस चरिमं. सेसे एकेक चउगर होंति । सब्दे आसादितो. पावति पारंचियं ठाणं ॥ ४९८३ ॥

भन्न « ''तित्थेयर पवयण सर्यं'' इति ( ४९७५ ) गाथाक्रममामाण्यात » भवमः-तीर्थहरो हितीय:-सङ्कलयोदेशतः सर्वतो वाऽऽशातनायां पाराधिकम् । 'शेषेष्' सतादिष यकैकस्मिन देशतः आशात्यमाने चतुर्गहकाः प्रायश्चितं भवन्ति । अथ सर्वतस्तान्याशातयति an ततस्तेष्वपि पाराश्चिकं स्थानं प्राप्नोति ॥ ४९८३ ॥

> तित्थयरपदमसिस्तं, एकं पाऽऽसादयंत पारंची । अत्यस्तेव जिणिदी, पमवी सी जेण सत्तस्स ॥ ४९८४ ॥

'तीर्थकरप्रथमशिष्यं' गणधरमेकमप्याञातयन् पाराश्चिको भवति । कृतः ! इत्याह---'जिनेन्द्रः' तीर्थकरः स केवल्सैवार्थस्य 'प्रभवः' प्रथमत उत्पचिहेतुः, सूत्रस्य पुनः स एव 20 गणधरो येन कारणेन 'प्रभवः' प्रथमतः प्रणेता, ततस्त्रमेकमप्याचात्यतः पाराश्चिकम्च्यते ॥ ४९८४ ॥ उक्त आशातनापाराश्चिकः । सम्प्रति प्रतिसेवनापाराश्चिकमाह---

पिंडसेवणपारंची, तिविधी सी होई आणुप्रचीए ।

दहे य पमत्ते या. ग्रेयव्वे अण्यमण्णे य ॥ ४९८५ ॥

मतिसेवनापाराधिकः 'सः' इति पूर्वोपन्यतः 'त्रिविधः' त्रिपकारः 'बानुपूर्व्या' सत्रोधःab परिपाठ्या भवति । तद्यथा—दृष्टः पाराश्चिकः, शमतः पाराश्चिकः, शम्योन्यं च कुर्वाणः पाराश्चिको ज्ञातव्यः ॥ ४९८५ ॥ तत्र दृष्टं ताबदाह-

दुविधी य होइ दुही, कसायदुही य विस्वयदुही य । द्विहो कसायदृहो, सपस्य परपस्य चडमंगो ॥ ४९८६ ॥

द्विविधश्च भवति दृष्टः-कषायदृष्टश्च विषयदृष्टश्च । तत्र कषायदृष्टो द्विविधः-वय- श्वस्टः परपक्षद्रष्टश्च । अत्र बतुर्भक्की, गाथायां पुस्तं प्राक्कतत्वात् । तद्यमा—स्वपक्षः स्वपक्षे दृष्टः १ लपक्षः परपक्षे दुष्टः २ परपक्षः स्वपक्षे दुष्टः ३ परपक्षः परपक्षे दुष्टः ४ ॥४९८६॥ १ °वयो जिमकल्पादिकपमन्य्यतं विद्वारं परेषा° कां•॥ २ प № एतन्मध्यसः वाटः

कां॰ एवं वर्सते ॥

तत्र प्रवमभन्नं विभावविषुराह---

सासवणाले मुहणंतए य उद्धगन्छि सिहरिणी चेव । एसो सपन्सदहो, परपन्से होति णेगविघो ॥ ४९८७ ॥

"सासवणारु" पि सर्षपार्विका, "मुद्दणंतकं" मुखबिका, उद्धकः-वृक्तसंबक्तिणी यस स उद्धकाक्षः, 'शिलरिणी' गर्विता । एते चत्वारो दृष्टान्ताः । एप सम्बक्तवायदृष्टो ४ मन्तव्यः । परपक्षकणायदृष्टः पुनरनेकविधो मवतीति निर्मुक्तिगाधासमासार्वः ॥ ४९८७ ॥

अथैनामेव विवरीषुः सर्षपनालदृष्टान्तं तावदाह---

सासर्वणाले छंदण, गुरु सन्बं भुंजें एतरे कोबी। सामणमणुवसमंते, गणि ठवेचऽण्गहिं परिण्णा ॥ ४९८८ ॥ पुन्छंतमणक्खाए, सोचऽण्णतों गंतु कत्य सें सरीरं। गुरु पुन्व कहितऽदीतण, पडियरणं दंतमंत्रणता ॥ ४९८९ ॥

इह प्रयमं काशनकम् —पनेण साहुणा सासवप्रक्षिया छुर्साभ्या छुर्दा, तत्व से नतीव गेही। आयरियस्म य आछोइयं। पिडदंसिए निमंतिए य आयरिएणं सख्ना वि समुविद्वा। इतरो पदोसमावण्यो। आयरिएणं छिनस्यं, 'भिच्छामि दुव्वः' कयं तद्यावि न उवस्पद्द, भणइ य — तुव्वः दंते भंजामि। गुरुणा चिंतत्वं—'मा असमाहिमरणेण मारिस्सइ' वि गणे 15 व्यं गणहरं ठवेचा अन्नं गणं गंतुण भरापश्वनसाणं कयं। समाहीए कारुगया। इयरो गवेसमाणो सर्व्याति पुच्छइ — कत्व आयरिया!। तेविं न अक्लायं। सो अनतो सोचा तत्य गंतु पुच्छइ — किह आयरिया!। ते भणति — समाहीए कारुगया। पुणो पुच्छइ — किह सारियं परिदृत्वियं!। आयरिएदि य पुळं भणियं — मा तस्स पावस्स मम सरिर-परिदृत्वियाम्मिं कहेजाह, मा आगद्विनिवेवं किह्नुआणो उङ्गाहं काहिइ। तेविं वकिष्य 20 अन्नतो सोचं तस्य गंतु उवदिवानो गोलोवचं किहुआण देते भंजतो भणइ — पतेहिं तुमे सासवनालं सहयं। ते साहिष्टं परिवर्यतिहैं दिई।।

अधावस्तामनिका—सर्वेषतालविषयं 'छन्दनं' निमष्ठणं गुतोः इतस् । गुरुणा च सर्वे अक्तम् । इतस्य कोषः । गुरुणा कामणे इतेऽपि स नोपशान्तः । वतोऽनुषशान्ते तसिन् 'भिष्मप्' सापथिला अन्यसिन् गच्छे 'पिरेज्ञा' मक्तमत्यास्मानमङ्गीकृतम् । तस्य च अः किष्मप्यापमस्य 'पुरवः कुत्र मताः' इति पृच्छतोऽपि सञ्चित्रकस्तापुभिनोष्ट्यातम् । ततोऽन्यतः खुस्या तस्य गस्या 'कुत्र तर्वा गरिस्य' इति पृच्छा इता । गुरुभिन्य पूर्वमेव तदीवा व्यक्तितः अस्य गस्या 'स्वापण' चि कक्तारमध्यात् । ताप्तिम् पृचेपेव तदीवा दिक्तिता । स्वान्यतः खुत्रा गतो दन्तमञ्जनं इत्यान् । ताप्तिभिन्न ग्रुपिकस्य गुप्तिक्ता निर्वेतः प्रतिचरणं इतन्ति । स्वाप्तिः । १९८८ ॥ स्वय इत्यान्तन्यकृद्धान्तमास् —

ग्रहणंतगस्स गृहके, एमेव व गंतु विसि गलग्गहणं । सम्मृडेणियरेण वि, गलए गहितो मता दो वि ॥ ४९९० ॥

१ 'प्या' प्रतदृष्टान्तोकः स्वप' कां ॥ २ 'दाइत, प' भा भो । दे । ताडी ।

80

प्केन साधुना मुखानन्तकमतीबोज्ज्वलं लब्धम् , तस्य च गुरुभिर्महणं कृतम् । तत्रापि 'एवमेव' प्रवीस्यानकसदृशं वक्तव्यम् । नवरं तत् पुनर्मुखान-तकं प्रत्यर्पयतोऽपि न गृही-तम् । ततो गुरुणा स्वगण एव भक्तं प्रत्याख्यातम् । निशायां च विरहं रुख्या 'मुसानन्तकं गुकासि' इति भणता गाढतरं गले ग्रहणं कृतम् । सम्मुढेन च 'इतरेणापि' गुरुणा स गलके **४ गहीत: । एवं** द्वावपि यतौ ॥ ४९९० ॥ उलकाश्वद्धान्तमाह---

> अन्धंगए वि सिन्बसि. उलगुच्छी ! उक्खणामि ते अच्छी । पदमगमो नवरि इहं. उल्लग्च्छीउ त्ति होकेति ॥ ४९९१ ॥

एक: साधरस्तक्रतेऽपि सर्वे सीव्यन अपरेण साधना परिहासेन भणितः -- उल्काक्ष ! क्रिमेवमस्तकतेऽपि सर्थे सीव्यसि ? । स प्राह — एवं भणतस्तव हे अप्यक्षिणी उत्स्वनामि । 10 अत्रापि सर्वोऽपि प्रथमारूयानकगमो मन्तव्यः । नवरमिह स्वगणे प्रत्याख्यातभक्तस्य कालग-तस्य रजोहरणाद् अयोमयीं कीलिकामाक्रय्य 'मां उलकाक्षं भणिस !' इति ब्रवाणो दे अप्य-क्षिणी उद्धत्य तस्य ढीकयति, 'वैरं मया निर्यामितम्' इति कृत्वा ॥ ४९९१ ॥

जिखिरणीदृष्टान्तमाह---

सिहरिणिलंभाऽऽलीयण, छंदिएँ सच्वाहते अ उग्गिरणा ।

भत्तपरिण्णा अण्णहि. ण गच्छती सो इहं णवरि ॥ ४९९२ ॥ एकेन साधना उत्क्रष्टा शिलरिणी रुब्धा । सा च गुरूणामारोचिता, तया च गुरवः 'छन्दिताः' निमन्निताः । सा च तैः सर्वाऽप्यापीता । ततः स साधः प्रदेवसप्पतो । मारणार्थै दण्डकसदीर्णवान् । स गरुभिः क्षामितोऽपि यदा नोपशान्यति तदा भक्तपरिज्ञा कता । नवरमिह 'सः' आचार्योऽन्यस्मिन गणे न गतः । तस्य च समाधिना कालगतस्य शरीरकं 20 तेन पापात्मना दण्डकेन कुट्टितम् ॥ ४९९२ ॥

यत एते दोषासतो छोभसीत्रो न कर्तव्यः । तथा चाह---

तिञ्बदसायपरिणतो, तिञ्बयरागाणि पावड भयाई। मयगस्स दंतभंजण, सममरणं ढोकणुग्गिरणा ॥ ४९९३ ॥

तीमा:-उत्कटा ये कषायास्तेष परिणतो जीवस्तीवतरकाणि भयानि प्रामोति । यथा--25 प्रथमदृष्टान्तोक्तस्थाचार्यस्य तीवलोमपरिणतस्य दन्तमञ्जनभयम्, द्वितीयदृष्टान्तोक्तयोस्त क्रिप्या-ऽऽचार्ययोस्तीत्रकोधपरिणतयोः समकालं मरणम् , तृतीयदृष्टान्तप्रसिद्धस्य साधो-लींचनढीकनम्, चतुर्थदृष्टान्तोक्तस्य दण्डकोद्धिरणम् । ईदृशाः खपक्षकषायदृष्टा लिक्कपारा-श्चिकाः कर्तव्याः ॥ ४९९३ ॥ गतः प्रथमो भक्तः । अथ द्वितीयभक्तमाह---

रायवधादिपरिणतो, अहवा वि हवेज रायवहओ त ।

सो लिंगतों पारंची, जो वि य परिकड़ती तं त ॥ ४९९४ ॥

राज्ञो राजामात्यस्य वा अपरस्य वा प्राकृतगृहस्यस्य वधाय परिणतः. अथवा राजवधक एव स भवेत् विहितराजवध इत्यर्थः, एवमनेकविधः परपक्षद्रष्टः । एव सर्वोऽपि लिक्कपाराश्चिकः

१ °बाणो सतस्य हे मा• ॥

कर्तव्यः । 'योऽपि चे' आचार्यादिकः 'तं' राजवधकं 'परिकर्षति' वर्चापयति सोऽपि लिक्रपाराखिको विघेयः ॥ ४९९४ ॥

श्रथ तृतीयमङ्ग उच्यते—प्रयक्षः सपक्षे दुष्टः स कथं भवति ? उच्यते—पूर्वं गृह-बासे वसतो वादे पराजित आसीत्, स्कन्दकाचार्येण पालकवत्, वैरिको वा स तस्याऽऽ-सीत् । स पुनः कीदवो भवेत् ? इत्याहः—

सभी व असभी वा, जो दुट्टी होति त् सपक्खिमा। तस्स निसिद्धं लिंगं, अतिसेसी वा वि दिखाहि ॥ ४९९५ ॥ स च सैज्ञी वा असंज्ञी वा यः सपन्ने दुट्टो भवति तस्य लिंग्नं निषद्धम्, प्रवाया न दातस्येति मावः । अतिशयज्ञानी वा 'उपशान्तोऽयम्' इति मत्या तस्यापि लिंग्नं द्यात् ॥ ४९९५ ॥ अथ चतुर्थभक्तः परपक्षः परपन्ने दुष्ट इति मान्यते—

रको जबरको वा. वधतो अहवा वि इस्सरादीणं।

सी उ सदेसि ण कप्पड़, कप्पति अण्णम्मि अण्णाओ ॥ ४९९६ ॥ यो राज्ञो वा युवराजस्य वा वधकः अथवाऽपि ईश्वरादीनां घातकः 'स तु' स वुनः सदेशे दीक्षितुं न कस्पते, किन्तु कस्पतेऽन्यसिन् देशेऽज्ञातो दीक्षितुम् ॥ ४९९६ ॥

> इत्थ पुण अधीकारो, पढिमिछुग-वितियभंगदुद्वेहिं । तेसिं लिंगविवेगो, दुचरिमें वा लिंगदाणं तु ॥ ४९९७ ॥

अँत पुनः मधम-द्वितीयभक्षदुष्टेरिकारः, 'सपक्षः स्वपक्षे दुष्टः, स्वपक्षः परपक्षे दुष्टः' इत्याधमक्षद्वयविभितिति भावः । एतेषां लिक्षविवेकरूपं पाराधिकं दातन्यम् । अतिशयज्ञानी वा यदि जानाति 'न पुनरीदशं करिप्पति' इति ततः सम्यगाइतस्य लिक्षविवेकं न करोति । "दुनरिमे" विं तृतीय-चतुर्थंव्वणी थे। द्वे। चरमभक्षे। तयोः 'वा' विकर्णन लिक्षदानं 20 कर्तव्यम् । किन्नुक्तं भवति ?— 'परपक्षः स्वपक्षे दुष्टः, परपक्षः परपक्षे दुष्टः' इति भक्षद्वये वर्षमाना यद्यप्यानता इति सम्यग् ज्ञायन्ते ततो लिक्षदानं कर्तव्यम्, अथ नीपशान्तास्ततो न मनाव्यत्य । प्रवाशाव्यत्य अपितानि स्थानानि परिदार्थन्ते, एष वाशव्यत्यस्वितोऽर्थः ॥४९९०॥

अथ 'सर्षपनारुगिदिह्हान्तपरिद्धा दोषा मा भूवन्' इति हेतीराचार्वेण यथा सामाचारी स्थापनीया तथा प्रतिपादयनाह —

## सन्वेहि वि घेत्तव्वं, गहणे य निमंतणे य जो तु विही।

इंजेती जतवाए, जनतव दोसा इमे होति ॥ ४९९८ ॥

सब्वेहि वि गहियम्मी, थोवं थोवं तु के वि इच्छंति ।

सब्बेसि न वि श्रेजति, गहितं पि वितिज आदेशी ॥ ४९९९ ॥

सर्वेशि आवार्यमायोग्ये ग्रहीते केचिदावार्यो इदिमच्छिति, यथा—तत एकैकस हस्तात् स्त्रोकं स्त्रोकं ग्रहीला गुरुणा भोकल्ययः; एप प्रथम आदेखः। अपरे हुवते—एकैनैव गुरु-केचं प्रहीलज्यम्, अथान्येशि ग्रहीतं ततस्त्रह्महीतगि तेषां सर्वेषां हस्तात् स्त्रोकं सीकं न १०भोक्तव्यम्, किन्तु तैर्निमिश्रतेन वक्तव्यम्—पर्याप्तम्, इत उर्द्धं न गच्छिति; एप द्वितीय आदेशः॥ १९९९ ॥ अपनेवं व्याचरे—

> युक्वचिमं को हिमवाणुक्लो, सो गिष्ट्ती णिस्समणिस्सतो ना । क्स्सेव सो गिष्ट्ति णेयरेसिं, अरुन्ममाणस्मि न बीव बीवं ॥ ५००० ॥

यो गुरुपिकमान् यश्च गुरूपां 'इदयानुकुङ' अन्दोनुवर्षी स गुरुपायोग्यं निआगृहेम्यो-10 इनिआगृहेम्यो वा गृह्वाति, तस्येव च सम्बन्धि 'सः' आचार्यो भक्त-पानं गृह्वाति, न 'इतरे-वाम' अपरसामूलान् । अथेकः पर्यासं न कमते ततोऽक्रभ्ययाने स्तोकं स्तोकं सर्वेवामपि गृह्वाति ॥ ५,०००॥ एप महणविभिरुक्तः । सम्पति निमम्रणे विभिमाहं —

सति लंगस्मि वि गिण्हति, इयरेसिं जाणिऊण निब्बंधं ।

ग्रंचित य सावसेसं, जाणित उवबारमणियं च ॥ ५००१ ॥

५० 'सिति' विद्यमानेऽपि प्राञ्चर्येण कामे यदि इतरे साधवो निमझयमाणा गार्व निर्वन्धं कुविते सतस्त्रं झारबा तेषामपि गृहाति । तत्त्र तदीयं भुक्रावः सावशेषं भुद्धाति, मा सर्वस्तित् सुके प्रदेषं स गच्छेत् । उपचारमणितं च जानाति, 'अयगुपचारेण, अयं पुनः सद्भावेन निमझयते' इत्येवं विश्विष्ठेरुकश्चरतीत्वर्थः ॥ ५००१ ॥

युरुणो(णं) मुतुन्वरियं, बालादसतीय मंडलिं जाति ।

जं पुण सेसगगहितं, गिलाणमादीण तं दिति ॥ ५००२ ॥

गुरूणां यत् शुक्कोद्वरितं तत् बाळावीनां दीयते । तेवाममाने 'मण्डलीं याति' मण्डली-प्रतिबद्धे क्षिप्यते । यत् पुनः शेषै:-गुरुमिकमद्यतिरिकैः साधुभिर्मात्रके गृहीतं तद् ग्ळाना-कौनै प्रयच्छन्ति ॥ ५००२ ॥

> सेसाणं संसद्धं, न छुन्मती मंडलीपडिन्गहए । पत्तेग गहित छुन्मति, ओमासणलंम मोनुणं ॥ ५००३ ॥

'शेषाणा' गुरूव्यतिरिकानां संसष्टं मण्डलीप्रतिमहे न क्षिप्यते । यतु ग्लानादीनामर्थीय

१ स्तोकं स्तरः 'नाय' नेव भुक्तं, किन्तु को ॥ २ °व द्वितीयमादेशं व्या° का ॥ ३ °वां सण्डलीस्वितरः प्रय° को ॥

'प्रत्येकं' पृथक पृथम माजकेच ग्रहीतं तत तेचानहरितं मण्डक्यां प्रक्षिप्यते. बरमवभाषितलामं मक्तवा. स नै प्रक्रिप्यत इति मादः ॥ ५००३ ॥

पाइणगद्भा व तगं, घरेतुमतिबाहवा 'विशिचंति ।

इंड गडण-शंजणविद्दी. अविधीएँ इसे अबे बोला ॥ ५००४ ॥ प्राप्तणकार्थं वा 'तकं' रकानार्थमानीतं प्रायोग्यं 'शृत्वा' स्वापवित्वा वर्षः 'अतिवाहडाः' अ अतीवधाताः माद्यणकाश्च नायाताः तदा 'विवेचयन्ति' परित्वजन्ति । एवक्कि महण-भोजन-विधिर्भवति । बचेनं विधि न कुर्वन्ति ततसासिन् अविधी इमे दोषा अवेदः ॥ ५००४ ॥

तिव्वकसायपरिणतो. तिव्वतरागाइँ पावद भयारं ।

मयगस्स दंतमंजन, सममरणं ढोकणुन्तिरणा ॥ ५००५ ॥ व्याख्यातार्था (गा० ४९९३) ॥ ५००५ ॥ उक्तः कवायदृष्टः । अथ विषयदृष्टमाह--- 10

संजति कप्पद्वीए, सिजायरि अण्णउत्बर्णीए व ।

एसो उ विसयदहो, सपक्ख परपक्ख चडमंगो ॥ ५००६ ॥ इहापि स्वपक्ष-परपक्षपदाभ्यां चतुर्भन्नी, तचवा-स्वपन्नः सर्पन्ने दृष्टः १ सपन्नः चरवन्ने दष्टः २ परपक्षः स्वपक्षे दष्टः ३ परपक्षः परपक्षे दष्टः ४ । तत्र 'कल्पस्विकायां' सहण्यां संयत्यां 'संयतः' अध्यूपपन इति प्रथमो भन्नः । संयत युव शब्यातरन्त्रविकायामन्यतीर्थिक्यां 👪 वाऽध्यपपन इति वितीयः । गृहस्यः संयतीकरपन्तिकायामध्यपपन इति सतीयः । गृहस्यो गृहस्वायामिति चतुर्थः । एव विषयदष्टश्चतुर्विचो मन्तव्यः ॥ ५००६ ॥

च अंबेतेष प्रायश्चित्तमाह--- ⊳

पहमे भंगे चरिमं. अणुबरए वा वि वितियमंगरिम । सेसेण व इह पगतं. वा चरिमे लिंगदार्व त ॥ ५००७ ॥

प्रथमे भन्ने 'चरमं' पाराश्चिकम् 'अनुपरतस्त्र' अनिवृत्तस्त । द्वितीयेऽपि भन्ने वाराश्चिकम् । 'शेषेण तु' तृतीय-चरममङ्गद्वयेन नाज प्रकृतम् , अत्र पाराश्चिकस्य प्रस्तुतस्थात् तस्य च प्रस्य-क्षेऽघटमानत्वातः । अथवा "वा वरिमे लिंगदाणं तु" ति 'वा' विकल्पेन-अजनवा वरणः भक्तद्वेये लिक्कदानं कर्तव्यम् , यद्यपशान्तसादाऽन्यसिन् स्वाने लिक्कं दातव्यम् अन्यवा स मैति भावः ॥ ५००७ ॥ अश्र प्रथममन्त्रे तोषं तर्शवसाह-

लिंगेण लिंगिणीए, संपत्तिं जड नियच्छती पायो । सच्वजिणाणऽञ्जातो. संघी आसातिओ तेणं ॥ ५००८ ॥

'लिक्नेन' रजीहरणादिना युक्तः 'लिक्निन्याः' संयत्याः सम्पत्तिं यदि अधमतया अधमि कश्चित् पापः 'नियच्छति' प्रामोति तर्हि तेन पापैन सर्वजिनानाम् 'नार्याः' संबत्धः सङ्ख भगवानाशातितो मन्तन्यः ॥ ५००८ ॥

१ न मण्डस्यां प्रक्षिण्यते किन्तु ग्लानादीनामेच दीयत इति को॰ ॥ २ विविस्ति भा॰ ॥ दे इह ग° मा० कां० विना ॥ ध °एके विषयाधिकायसकीकत्व उद्या कां० ॥ ५ -४ > एत्रस्त-गंतमवतरणं कां॰ एव बर्लते ॥

15

पावाणं पावयरो, दिहिऽन्यासे वि सो ण वहति हु । जो जिणपुंतवप्रदें, निमेठण तमेव घरिसेति ॥ ५००९ ॥ पापानां सर्वेषामपि स पापतरः, अत एव दृष्टः-कोजनस्याम्यासेऽपि-समीपेऽपि कर्तुं सः कर्नने क्रकारो सः 'जितलक्यारां' स्वाणीं स्वया नामेव प्रस्तिति ॥ ५००० ॥

'न वर्तते' न करुपते यः 'जिनपुक्तवमुदां' श्रमणीं नत्वा तामेव धर्षयति ॥ ५००९ ॥ ४ संसारमणवयग्गं, जाति-जरा-मरण-वेदणापउरं ।

पावमलपङ्ख्यना, भर्मति सुद्दाघरिसणेणं ॥ ५०१० ॥ संसारम् 'अनवदमम्' अपर्यन्तं जाति-जरा-मरण-वेदनाप्रचुरं पापमलपटलच्छना सुद्राधर्ष-णेन परिभ्रमन्ति ॥ ५०१० ॥ ततः—

> जत्थुप्पजति दोसी, कीरति पारंचितो स तम्हा तु । सो पुण सेवीमसेवी, गीतमगीतो व एमेव ॥ ५०११ ॥

यत्र क्षेत्रे यस्य संयतीयर्पणादिको दोप उत्पचते उत्तत्स्यते वा स तैस्मात् क्षेत्रात् पाराश्विकः क्रियते । स पुनः सेवी वा स्यादसेवी वा, तेन तत् कार्ये कृतं वा भवेदकृतं वेति भावः; प्रयमेव गीतार्थो वा भवेदगीतार्थो वा, स सर्वोऽपि पाराश्विकः कर्तव्यः ॥ ५०११ ॥ कश्यमः । इत्याह—

> उवस्सय कुले निवेसण, वाडग साहि गाम देस रजे वा । कुल गण संघे निज्हणाएँ पारंचितो होति ॥ ५०१२ ॥

यस्य यसिनुपाश्रये दोष उराक उरास्त्यते वा स तत उपाश्रयात् पाराधिकः कियते । एवं यसिन् गृहस्यकुले दोष उरावः, तथा निवशनम्-एकनिर्गन-प्रवेशहारो ह्रयोशीमयोर-पान्तराले व्यादिगृहाणां सिविवेदाः, एवंविश्वस्तरु एव ग्रामान्तर्गतः पाटकः, साही-शासा-२० रूपेण श्रेणिकमेण स्थिता ग्रामगृहाणामेकतः परिपाटिः, ग्रामः-प्रतितः, देशः-जनवदः, राज्यं नाम-पावस्य स्थित्। एकम्पर्यत्ता तावहेश्वग्रमाणम् । एतेषु यत्र यस्य दोष उरावः उरास्त्यते वा स ततः पाराधिकः कियते । तथा कुलेन यो निर्मुदः-बाधः कृतः स कुल्याराधिकः। । प०१२ ॥ किगर्यसुपाश्रयादिपाराधिकः क्रियते ! हस्याह--सक्ष्रपाराधिकः॥ ५०१२ ॥ किगर्यसुपाश्रयादिपाराधिकः क्रियते ! हस्याह--

25 उनसंतो वि समाणो, वारिजति तेसु तेसु ठाणेसु ।

हंदि हु पुणो वि दोसं, तद्वाणासेवणा कुणति ॥ ५०१३ ॥
'उपशान्तोऽपि' खलिकिनीमतिसेवनात् मतिनिवृद्योऽपि सत् 'तेषु त्रो स्वानेषु' मति-अय-कुरू-निवेशनादिषु विहरत् वार्यते । कुतः ' हत्याह—'हन्दि' हति कारणोपपदर्शने, 'हु'रिति निश्यये, पुनरप्यसो तस्य स्थानस्यासेवनात् तमेव दोष करोति ॥ ५०१३ ॥

30 इदमेवे स्पष्टतरमाह--

जेसु विहरंति तातो, बारिजति तेसु तेसु ठाणेसु । पहमगभंगे एवं, सेसेसु वि ताइँ ठाणाई ॥ ५०१४ ॥

१ ततः क्षे° भा॰ कां॰ ॥ २ °व स्फुटतर्° भा॰ कां० ॥

25

'येषु' मामादिषु 'ताः' संयत्यो विहरिन्त तेषु तेषु स्थानेषु स विहरन् वार्थते, ततः पाराधिकः क्रियत इत्यर्थः । एवं 'प्रथमभक्षे' ⊲ 'स्वपक्षः स्वपक्षे दुष्टः' इतिरुक्षणे ⊳ विधि-रुक्तः । 'त्रेषेप्वपि' द्वितीयादिषु भक्षेषु तानि स्थानानि वर्जनीयानि । किसुक्तं भवति ं-— द्वितीयभक्षे यस्थामगार्यामध्युपपन्नसर्दाये कुरु-निवेशनादौ प्रविश्चन् वारणीयः, तृतीय-चर्चर्थ-भक्षयोः ⊸ 'पैरपक्षः स्वपक्षे परपक्षे वा दुष्टः' इतिरुक्षणयोः ⊳ उपशान्तस्यापि तेषु स्थानेषुऽ लिक्षं न दातव्यम् ॥ ५०१४ ॥

> एत्थं पुण अहिगारो, पदमगभंगेण दुविह दुट्टे वी । उचारियसरिसाई, सेसाइँ विकोवणहाए ॥ ५०१५ ॥

अत्र पुनः 'द्विविषेऽपि' कपायतो विषयतश्च दुष्टे प्रैयमभङ्गेनाधिकारः । 'रोपाणि पुनः' द्वितीयमङ्गादीनि पदानि उचारितसदशानि विनेयमतिविकोपनार्थमभिहितानि ॥ ५०१५ ॥१० गतो दृष्टः पाराधिकः । सम्प्रति ममचपाराध्वकमाह—

> कसाए विकहा विगडे, इंदिय निहा पमाद पंचविधो । अहिगारो सुत्तर्मि, तहिगं च इमे उदाहरणा ॥ ५०१६ ॥

'कषायाः' कोषादयः, 'विकथा' स्त्रीकथादिका, 'विकटं' मधम्, 'इन्द्रियाणि' श्रोणा-दीति, 'निद्रा' वक्ष्यमाणा, एष पश्चविषः प्रमादो भवति । अयं च निद्रीषपीठिकायां 15 यथा सविक्तरं समायश्चिषोऽषि भावितस्त्रयेवात्राणि मन्तव्यः । नवरमिह स्वयनं सुसं-निद्रा इत्यर्थः, तथाऽधिकारः । सा च पश्चविषा—निद्रा १ निद्रानिद्रा २ प्रचळा ३ प्रचळामचळा ४ स्त्यानर्दिश्चेति ५ । तत्र —

> सुहपिडनोहो निहा, दुहपिडनोहो य निह्निहा य । पयला होह ठियस्सा, पयलापयला उ चंकमैतो ॥

स्त्यानार्द्वस्तु — स्त्याना—मबलदर्शनावरणीयकर्मोदयात् कठिनीयूना ऋदिः —चैतन्यशक्ति-थैस्यामवस्यायां सा स्त्यानार्द्वः, यथा धृते उदके वा स्त्याने न किश्विदुपकम्यते एवं चैतन्य-ऋद्यामणि स्त्यानार्या न किश्विदुपरुम्यत इति भावः । अत्र पाराश्विकस्य मस्तुतत्वात् स्त्यान-द्विनिद्वयाऽधिकारः । तस्यां चामृन्युदाहरणानि ॥ ५०१६ ॥

पोग्गर्रे मोयग फरुसग, दंते चडसारुमंजणे सुत्ते । एतेहिं पूणो तस्सा, विविचणा होति जतणाए ॥ ५०१७ ॥

'पुद्रकं' पिशतस्, 'मीदकः' लड्डुकः, 'कहसकः' कुम्मकारः, 'बन्ताः' मतीताः, बटशा-छमभक्तम् । एतानि पद्मोदाहरणानि 'धुधे' स्त्यानिईनिद्रायां भवन्ति । 'एतेः' एतहृष्टान्तौकै-भिक्कैः स्त्यानिई परिज्ञाय 'तस्य' स्त्यानिईमतः साधीर्यतनया 'विवेचनं' परित्यायः कर्तव्यो भवति ॥ ५०१७ ॥ तत्र पटलहृष्टान्तमाह——

१-२ पे १० एतदन्वर्गतः पाठः मा॰ इं। नास्ति ॥ ३ 'प्रथममङ्केन' पाराश्चिकपायश्चिक् विषयभूतेनाभि व हो ॥ ..४ 'मतो ॥ इत्यायनिदान्तनुष्टयस्वस्रणम् । पञ्चमी भाव्यते— स्त्यानाद्धिः-स्त्याना- इं। ॥ ५ 'क स्त्रुग फर्रु' तामा॰ ॥

### पिसियासि पुन्व महिसं, विगृश्वियं दिस्स तत्थ निसि गंतुं । अण्णं हंतं खायति, उवस्सयं सेसगं णेति ॥ ५०१८ ॥

प्राम्म गामे प्रो कोड्डंची पक्काणि य तिल्माणि य तिम्मणेषु अ अगेमसो संसप्तगारे अक्सेह । सो अ तहाक्रवाणं धराणं अंतिए धर्मा सोउं पबह ओ गामाइसु विहरह । तेण य ध्यास्त्र यामे महिसो विगिषमाणो दिहो । तस्स मंसे अभिकासो जातो । सो तेण अभिकासे स्वा अविकासो विग्रेश सिकासो जातो । सो तेण अभिकासे सिका अविकासो विविद्या अविवास स्व अविवास कार्य प्रतोसिया पोरिसी विदिता । तस्मि मातो । वरिमा सुच्योरिसी क्या, जावस्मयं कार्य प्रतोसिया पोरिसी विदिता । तस्मि जासी वेव सुचो, सुच्या से वा या । सो उहिशो, अणाभोगणिञ्चविष्णं कार्यो गतो महिसमंदर्भ, अवं महिसा देहं भिवता । तिहो । साहृहिं दिसावलोकं करेतिहं दिई कुणियं, जाणियं जहा—प्रस् थीणदी । ताहे लिगपारिचयं पञ्चित विश्वं ॥

अय गायाक्षरार्थः — पिसितासी कश्चित् 'पूर्व' गृहवासे आसीत् । स च महिषं विकरितं दृष्टा सञ्जाततद्वसणाभिरुषः 'तत्र' महिषमण्डले 'निश्चि' रात्रो गरवा अन्यं महिषं हरवा सादति । 'रोषम' उद्धरितसुपाश्चये नयति ॥ ५०१८ ॥ लङ्कस्टप्टान्तमाह्—

मीयगभत्तमरुद्धं, भंतु कवाडे घरस्स निर्मे खाति । भाणं च भरेऊणं, आगतों आवासए विगडे ॥ ५०१९ ॥

एकः साधुर्भिक्षां हिण्डमानो मोदकभक्तं परयति । तथ सुविरमबरुमितनमभावितं च, धरं न क्रम्य । ततसादकश्या तद्रध्यसायपरिणत एव प्रमुक्तः, रात्री तत्र गत्या गृहस्य कपादी भंक्ता मोदकान् सब्यति, दोषेगीदकैभांत्रनं भृत्या समागतः । प्राभातिके आवश्यके २० विकटयति—ईहराः सभो गया दष्ट इति । ततः प्रभाते मोदकशूतं भाजनं दृष्टा ज्ञातपः, यथा—स्वार्गदिति । तत्यापि किक्षपाराधिकं दचम् । रोषं पुह्रलाख्यानकृषद् वक्तव्यम् ॥ ५०१९ ॥ अय क्रस्यकट्टान्तगाह—

अवरो फरुसग मुंडो, महियपिंडे व छिदिउं सीसे । एगंते अवयज्झह, पासुत्ताणं विगडणा य ॥ ५०२० ॥

25 'अपरः' कथित 'फरसकः' कुम्मकारः काषि गच्छे मुण्डो जातः, प्रश्नजित इत्यधः । तत्य रात्रौ प्रमुसस स्वानार्देहसीणां । स च पूर्व मृत्तिकाच्छेदाभ्यासी ततो मृतिकापिण्डानिव समीपप्रमुसानां साधूनां शिरांसि च्छेतुनारच्यः । तानि च शिरांसि कडेवराणि चेकान्ते अपोज्वाति । शेषाः साध्योऽपस्ताः । स च सूचोऽपि प्रमुसः । ततः प्रमाते 'दृदशः स्वमो मया
दृष्टः' इति विकटना कृता । पमाते च साधूनां शिरांसि कडेवराणि च घृषम्तानि दृष्ट्यः अवस्तान्ति । क्षित्रपाशिक त्ववदा ॥ ५०२०। अथ द्वन्तदृष्टान्तमाद्द—
अवरो वि धाडिओ मचहरियणा प्रस्कार्वेद मंतृणं ।

अवरा वि घाडिओ मत्तहत्थिणा पुरकवार्डे भंतूणं। तस्सुक्कणितु दंते, वसही बाहिं विगडणा य ॥ ५०२१ ॥

१ ⁴ ▷ एतदन्तर्गतः पाठः भा० एव वर्शते ॥

वटशालाभञ्जनदृष्टान्तमाह--

उब्भामग वडसालेण घड्टितो केइ पुष्त वणहत्थी। वडसालभंजणाऽऽणण, उस्सग्गाऽऽलोयणा गोसे॥ ५०२२॥ 1

एकः साधुः 'उद्धानकः' मिक्षाचर्या गतः । तत्र त्रामद्रयस्पाणान्तराले वटदृष्ठी महान् विद्यते । स च साधुर्गोदतसुष्णाभिहतो भरितभाजनस्तृषित-चुसुक्षित द्दैर्योप्युक्तो वेगेनाऽऽ-गच्छन् → ''वैडसालण'' चि लिक्रव्यत्याद् ⊳ वटयादपस्य शालमा शिरासे पष्टितः सुदुत्तरं परितापितः । ततो वटस्पोपरि भद्वेषमुपगतः तदच्यवसायपरिणतश्च मसुष्ठः । उदीर्णस्त्यानिर्द्ध-श्चोत्थाय तत्र गत्वा वटपादपं भेक्स्या उन्मुख्य तदीयां झालमानीयोपाश्चयोपरि स्वापितवान् । 15 'उत्सर्गे च' आवद्यककायोत्सरीत्रिके कृते 'गोसे च' प्रमाते तथेव गुरूणामाङोचयति । ततो दिगवलोके कृते तथेव ज्ञातम् , लिक्रपाराध्विकः कृतश्च ।

केचिदाचार्या धुवते —स पूर्वभवे वनहत्ती बमूब, ततो मनुजभवमागतस्य मन्नजितस्यो-दीर्णस्त्यानर्द्धेः पूर्वभवाभ्यासाद् बटशालाभञ्जनमभवत् । होषं प्राग्वत् ॥ ५०२२ ॥

कथं पुनरसी परित्यजनीयः ! इत्याह-

केसवअद्भवलं पण्णवेति ग्रुय लिंग णत्थि तह चरणं । भेच्छस्स हरह संघी, ण वि एको मा पदोसं तु ॥ ५०२३ ॥

केराव:-बाउदेवस्तस्य बजादर्ववर्कं स्त्यानिद्विमतो भवतीति तीर्थेक्वरादयः प्रज्ञापयन्ति । एतः मधमसंहननिनमङ्गीकृत्योक्तम्, इदानी पुनः सामान्यलेकवलाट् द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं वा बर्ल भवतीति मत्तव्यम् । यत एवमतः स प्रज्ञापनीयः-सीम्य । सुख िङ्गम्, नाति १६ तव 'चर्ण' चारित्रम् । यये गुरुणा सानुनयं भणितो सुख्यति ततः शोभनम् । अथ न सुख्यति ततः सङ्घः ससुदितो लिङ्गं तस्य मोक्तुमनिक्कतः सकाशाद् 'हरति' उद्दाल्यति, न पुन-रेकः । कुतः । इतः । तसीक्त्योपिर प्रदेषं मण्यते , प्रद्विष्टश्च व्यापादनमि कुर्योत् । ५०२ । लिङ्गपदारनियमार्थमिदमाइ--

अवि केवलमुप्पाहे, न य लिंगं देति अणतिसेसी से।

र ''एगो गिहरवत्ते हरियाग परिधावितो । सो तं हरियस्त वेरं संज्ञाति । पास्रतेष्ठ गर्ते गंतुं पुरकवारे अंजियं हरिय सारेता दंते उक्काणिता पविस्तयस्त बाहि ठवेति ।'' इति च्चूर्णिपाठः ॥ २-३ ৺ № एतदन्तर्गता पाठः आ• कां• जास्ति ॥

देसबत दंसणं वा, गिण्ड अणिच्छे पलायंति ॥ ५०२४ ॥

'श्रापिः' सम्भावने, स चैतत् सम्भावयति —यद्यपि तेनैव भवमहणेन केवलप्रस्पादयति तथापि 'सें'' 'तस्य' स्त्यानर्द्धमतो लिङ्गमनतिश्चयी न ददाति । यः पुनरतिशवज्ञानी स जानाति —न भूय पतस्य स्त्यानर्द्धनिद्दोदयो भविन्यति; ततो लिङ्गं ददाति, इतस्या न ध्वति । लिङ्गायहारे पुनः कियमाणेऽयद्यपदेशो दीयते — 'देशनदानि' स्यूल्पाणातिपातिवाति र मणावीनि गृहाण, तानि चेत् प्रतिपद्धं न समर्थः ततः 'देशन' सम्ययन्त्र गृहाण । अथैवम-प्रस्तुनीयमाने लिङ्गं भोक्तं नेच्छति तदा रात्रौ तं सुर्धं मुक्तव 'प्लायन्ते' देशान्तरं गच्छन्ति ॥ ५०२४ । ॥ ५०२४ । । अथान्योव्यं कृत्रीणं तीवाह —

करणं तु अण्णमण्णे, समणाण न कप्पते सुविहिताणं ।

जे पुण करेंति णाता, तेसि तु विविचणा भणिया ॥ ५०२५ ॥
तुझब्दस्य व्यवहितसम्बन्धतया 'अन्योन्थं' परस्वरं पुनर्वत् 'करणं' मुख-पायुमयोगेण
सेवनं तत् श्रमणानां मुबिहितानां कर्तुं न करूपते । ये पुनः कुर्वन्ति ते यदि ज्ञातास्तदा तेषां
'विवेचना' परिम्रापना भणिता ॥ ५०२५ ॥ इदमेव ब्याचप्टे —

आसग-पोसगसेवी, केई पुरिमा दुवेयगा होंति । तेसि लिंगविवेगो. बितियपदं रायपव्वडते ॥ ५०२६ ॥

ाठ तेसि किंगविवेगो, बितियपदं रायघज्यस्ते ॥ ५०२६ ॥ आसं-मुखं आस्यंनायक्त्र, पोसकः-पादः, आसक-गोसकास्या सिवतुं शीरुमेषानि-त्यासक-पोसकसेवितः; केचित् 'पुरुषाः' साथवः 'द्विवेदकाः' की-पुरुषवेदयुक्ता अववित, नपुंसकवेदिन इत्यर्थः; तेषां लिक्नविवेकः कर्तव्यः, ⊸ लिक्नंपाशिकं दातव्यमित्यर्थः। ⊳ द्वितीयपदमत्र भवति—यो राज्यविजस्यास्यक्तेन्यं कृत्रीणः पाराधिकः । सम्प्रति यो दुष्टा-दियेतः पाराधिकः क्रियत्ते ॥ ५०६६ ॥ गतीऽन्यन्यं त्र्वाणः पाराधिकः । सम्प्रति यो दुष्टा-दियेतः पाराधिकः क्रियत् तदेतद् दर्शयति—

बिहुओ उवस्सर्याई, कीरति पारंचितो न लिंगातो । अणुवरमं पुण कीरति, सेसा नियमा तु लिंगाओ ॥ ५०२७ ॥

अध्ययस्य पुण कारात, सत्ता ानयसा तु तिशाआ ॥ ४०२७ ॥
'द्वितीयः' विषयदुष्ट उपाश्रयादेः पाराधिकः कियते, क्षेत्रत हत्ययः', 'न किक्नाद्' किक्नपारा20 धिको न विभीयते । अथ ततो दोषालोपस्यते तद्वर्यस्य हिक्नतोऽपि पाराधिकः
देशाः' क्षायदुष्ट प्रमत्ताऽन्योन्यसेताकारिणो नियमाद् किक्नपाराधिकाः कियनते ॥ ५०२७ ॥
किमेत एव पाराधिकाः ! उताऽन्योऽप्यस्ति ! असीति त्रमः । कीहदाः सः ! इति चेद

उच्यते---

इंदिय-पमाददोसा, जो पुण अवराहम्रुचमं पत्तो । सन्भावसमाउद्दो, जति य गुणा से इमे होंति ॥ ५०२८ ॥

अठ सन्भावसमाउद्दो, जित य गुणा से इसे होति ॥ ५०२८ ॥ इन्द्रियदेशेषात् प्रमाददोषाद्वा पाराश्चिकापित्योश्यात् यः पुनः साधुः 'उत्तमम्' उत्कृष्टमपरा-भण्यं प्राप्तः स यदि 'सद्भावसमाइतः' 'निश्चयेन भूयोऽहयेवं न करित्यामि' इति ब्यवसित-

१ प > एतदन्तर्गतः पाठः कां० एव वर्तते ॥ २ °य-प्रमाददोषाद् यः पुँमा० कां० ॥

स्तदा स तपःपाराश्चिकः कियते, यदि च "से" तस्येमे गुणा भवन्ति ॥ ५०२८ ॥ के पनस्ते ! इत्याह—

> संघयण-विरिय-आगम-सुत्त-ऽत्य-विहीए जो समग्गो तु । तवसी निग्गहजुत्तो, पवयणसारे अभिगतत्थो ॥ ५०२९ ॥

संहननं-वज्रऋषभागरावम्, वीर्थ-घृत्या वज्रकुट्यसगानता, आगमः-जवन्येन नवम- ३ पूर्वोन्तर्गतमावारास्यं तृतीयं वस्तु उत्कर्यतो दश्चमपूर्वमसम्पूर्णम्, तच सूत्रतोऽर्घतश्च यदि परिजितं भवति, पत्तैः संहननादिभिविधिया च-तदुचितसगाचारेण यः 'समग्रः' सम्पूर्णः । 'तपसी नाम' सिंहनिकीडितादितपःकर्मभावितः । 'निग्रहयुक्तः' इन्द्रिय-कषायाणां निग्रह-समर्थः । 'भववनसारेऽभिगतार्थः' परिणामितप्रवचनरहस्यार्थे इति ॥ ५०२९ ॥ किष्य---

तिलतुसतिभागमित्तो, वि जस्स असुभो ण विज्ञती भावो ।

निज्जहणाइ अरिहो, सेसे निज्जहणा नित्य ॥ ५०२० ॥ यस्य गच्छानिर्पृहस्य निल्जुषत्रिभागमात्रोऽपि 'निर्यूडोऽहम्' इत्यग्रभो भागो न निष्यते स निर्यूहणायाः 'अर्हः' योग्यः ॥ 'शोषस्य' एतहुणनिकलस्य निर्यूहणा नास्ति, न कर्तन्ये-स्वर्षः ॥ ५०२० ॥ इदमेव न्याचष्टे—

एयगुणसंपजुत्तो, पावति पारंचियारिहं ठाणं । एयगुणविष्पश्चेक, तारिसायस्यो भवे सुरुं ॥ ५०३१ ॥ एतैः–संहननादिभिर्गुणैः सम्युक्तः । 'ताहको' पार्शिकापविष्पमेऽपि सल्पेच प्रायक्षितं स्वति ॥ ५०३१ ॥

अथ पाराध्विकमेव कालतो निरूपयति--

आसायणा जहण्णे, छम्मासुकोस बारस तु मासे । 20 वासं बारस वासे, पडिसेवओं कारणे भतिओ ॥ ५०३२ ॥

आशातनापारश्चिको जघन्येन पण्मासान् उत्कर्षतश्च द्वादश मासान् अवति, एताबन्तं काछं गच्छान्निर्पृदक्तिष्ठतीत्वर्थः। प्रतिसेवनापारश्चिको जघन्येन संवत्सरम् उत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि निर्पृद आसे। ''पडिसेवजो कारणे महत्रो'' ित यः प्रतियेवकणाराश्चिकैः सः 'कारणे' कुठ-गणादिकार्थं 'मकः' विकल्पितः, यथोक्तकाळाद्योगिष गच्छं प्रविश्ततीति भावः॥ ५०३२॥ 25 अध तस्वैव गणिनिर्मानविभिगाह—

इत्तिरियं णिक्खेवं, काउं अण्णं गणं गमित्ताणं। दन्वादि समे विगडण, निरुवस्तग्गद्ध उस्तग्गो॥ ५०३३॥

इह यः पाराधिकं प्रतिपचते स नियमादाचार्य एव भवति, तेन च खगणे पाराधिकं न प्रतिपचयम्, अन्यसिन्त् गणे गन्तव्यम् । तत इत्वरं गणनिश्रेपमास्मतुष्ये शिच्ये कृत्वा 50 ततोऽन्यं गणं गत्वा 'द्रव्यादिषु' द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भावेषु 'शुमेषु' मशस्तेषु 'विकटनाम्' आलो-

१ 'कः तथाविधापराधसेवनया पाराञ्चिकप्रायश्चित्तप्राप्तः सः 'कारणे' कुळ-गण-सङ्घा-विकार्ये कां ॥

चनां परगणाचार्यस्य प्रयच्छति । उभावपि च निरुपसर्गप्रत्ययं कायोरसर्गं प्रकुरतः ॥५०३३॥ अश किं कारणं स्वगणे न प्रतिपद्यते ? उच्यते—-

अप्यचय णिरुभयया, आणार्भगो जर्जनणा सगणे । परगणें न होति एए. आणाधिरता भयं वेब ॥ ५०३४ ॥

क्सनच्छ एव पाराधिकप्रतिपत्ती व्यागीतार्थीनामभत्ययो भवति—नूनमङ्ख्यमनेन प्रतिसेवितं वेन पाराधिकः इतः । ततक्षेषां निर्भयता भवति, न गुरूणां विभ्यतीत्वर्थः । अविभ्यतक्षा- ज्ञामकं कुर्वीरत् । अयम्रणा च लगणे भवति, शिष्यानुरोधादिना स्वयमेव भक्त-पानानयनादौ नियक्षणा वस्यमाणा न भवतीत्वर्थः । परगणे चैते दोषा न भवनित । अपि च—तत्र गच्छता भगवतामाज्ञानुपाछने 'स्थिरता' सेर्ये इतं भवति, भयं चात्मनः सङ्गायते, ततः 10 परगणं गत्वा तत्र पाराधिकं पतिष्य निरपेक्षः सकोशयोजनात् क्षेत्राद् बहिर्मजति ॥५० देश॥

तस्य चेयं सामाचारी---

जिणकप्पियपिडरूबी, बाहिं खेत्तस्य सो ठितो संतो । विहरति बारस वासे, एगागी झाणसंज्ञत्तो ॥ ५०३५ ॥

'जिनकशिकप्रतिरूपी' अर्थपन्तं मैशं महीतन्यम्, तृतीयसां पौरुत्यां पर्यटनीयम्' 18ह्मादिका बाहरी जिनकश्यिकस्य चयो तो कुनैत स्नेत्राद् बहिः स्थितः सन् 'सः' पाराश्चिकः पकाकी 'ध्यानसंग्रक्तः' श्रतपातर्वनैकचिषो द्वादश्य वर्षणि विहरति ॥ ५०३५ ॥

यस्य चाऽऽचार्यस्य सकारो प्रतिपद्यते तेन यत् कर्तव्यं तदाह-

ओलोयणं गवेसण, आयरितो कुणति सञ्वकालं पि । उप्पण्णें कारणिंम, सञ्वपयत्तेण कायव्वं ॥ ५०३६ ॥

आचार्यः पाराश्चिकस्य 'सर्वकारुमि' यावन्तं कार्ड पायिबच्चं वहति तावन्तं सकलमि कार्ड यावत् प्रतिदिवसमवलेकनं करोति, तस्समीपं गस्ता तद्दर्शनं करोतीत्यर्थः। तदक्नतरं 'गवेषणं' 'गतोऽस्पक्कमतया भवतां दिवसो रात्रिर्वाः' इति पुच्छां करोति । उत्तर्के पुनः 'कारणे' स्कानस्वरुक्षणे सर्वमयक्रेन भक्त-पागहरणादिकं स्वयमाचार्थेण तस्य कर्तव्यम् ॥ ५०३६॥

जो उ उवेहं कुआ, आयरिओ केणई पमाएणं !

25 आरोवणा उ तस्सा, कायब्वा पुन्वनिद्दिद्वा ॥ ५०३७ ॥

यः पुनराचार्यः 'केनापि प्रमादेन' जनव्याक्षेपादिना 'उपेक्षां कुरुते' तस्तमीपं ग्रस्ता तच्छ-रीरस्योदन्तं न बहति तस्ताऽऽरीपणा. 'पूर्वनिर्दिष्य' ग्लनद्वाराभिहिता कर्तव्या, चल्वारो गुरुकास्तस्य प्रायश्चितनगरोपयितव्यमिति मावः॥ ५०३७॥

बदुक्तम् "उत्यने कारणे सर्वप्रयतेन कर्तव्यम्" ( गा० ५०३६ ) तद् भावयति---आहरति भत्त-पाणं, उव्यत्तणमाहयं पि से क्रणति ।

आहरात नचनाण, उञ्चचणमाह्य एम स कुणात । सयमेव गणाहिवई, अह अगिलाणो सर्य कुणाते ॥ ५०३८ ॥

अथ स पाराश्विको म्लानोऽभवत् ततस्तस्य 'गणाधिपतिः' आचार्यः स्वयमेव भक्तं पानं च 'आहरति' आनपति, उद्वर्तनम् आदिशब्दात् परावर्तनोद्धेकरणोषवेशनादिकं तस्य स्वयं

करोति । व्यव जातः 'भग्लानः' नीरोगस्तत आचार्यं न किमपि कारयति किन्त सर्वे खबमेव करते ॥ ५०३८ ॥ अधुना यदकम् "ओलोयणं गवेसण" (गा० ५०३६) ति तद्या-द्व्यानार्थमाह----

उभवं पि दाऊण सपाडियुच्छं, बोद्धं सरीरस्स य बहुमाणि । आसासहत्ताण तवीकिलंतं. तमेव खेतं सम्रदेति थेरा ॥ ५०३९ ॥

'खबिराः' आचार्याः शिष्याणां पतीच्छकानां च 'उभयमपि' सुत्रमर्थे च, किविशिष्टम् ! इत्याह---'समतिपृच्छं' पृच्छा-मभरतस्याः प्रतिवचनं प्रतिपृच्छा तया सहितं सप्रतिपृच्छम् , सम्बन्धियेऽर्यविषये च यद् येन पृष्टं तस्प्रतिवचनं दस्त्रा तस्तकाशमुपगम्य तदीयशरीरस्थं "वडमाणि" ति वर्तमाने काले भवा वार्तमानी-वार्तेत्यर्थस्तां वहन्ति, अस्पकाम्यतां प्रच्छ-न्तीति भावः ! सोऽपि चाऽऽचार्यमागतं 'मस्तकेन वन्दे' इति फेटावन्दनकेन वन्दते । शरी-10 रस्य चोदन्तमृद्वा यदि तपसा क्वाम्यति तत आधासयन्ति । आधास्य च 'तदेव क्षेत्रं' यत्र गच्छोऽवतिष्ठते तत समुपगच्छन्ति स्थविराः ॥ ५०३९ ॥

अथ द्वावि सुत्रार्थी दत्त्वा तत्र गन्तुं न शकोति ततः को विषिः ! इत्याह--असह सुत्तं दातुं, दो वि अदाउं व गच्छति पए वि । संघाडओं से भन्नं, पाणं चाऽऽणेति मग्गेणं ।। ५०४० ॥

इहैकत्यापि कदाचिदेकवचनं कदाचिश्व बहुवचनं सर्वत्यापि वस्तुन एका-ऽनेकरूपताख्या-पनार्थमित्यदष्टम । असहिष्णराचार्यः सत्रं दत्त्वा गच्छति । अथ तथापि न शक्तोति ततः 'द्वावपि' सन्ना-ऽर्धावदत्त्वा 'प्रगे' प्रभात एव गच्छति । तस्य च तत्र गतस्य एकः सञ्चाटको भक्तं पानकं च 'मार्गेण' पृष्ठत आनयति ॥ ५०४० ॥

कदाचित्र गच्छेदपि तत्रैतानि कारणानि---

गेलण्णेण व प्रद्रो, अभिणवसको ततो व रोगातो ।

कालम्मि दुम्बले वा, कजे अण्णे व वाघातो ॥ ५०४१ ॥

स आबार्यो रहानत्वेन वा स्पृष्टो भवेद अथवा 'तसाद' रहानत्वकारणाद रोगाद 'अभिन-बसुक्तः' तत्कालसुक्तः स्थात् ततो न गच्छेत्। यदि वा काले 'दुर्वले' न विद्यते बर्ल गमनाय यस्मिन् गादातपसम्भवादिनां स दुर्वलः-ज्येष्ठा-ऽऽषादादिकः कालः, दुर्शक्दोऽभाववाची, 28 तस्मिन् न गच्छेत्, शरीरक्केशसम्भवात् । "कजे अण्णे व वाधाती" इत्यत्र सप्तमी ततीयार्थे प्राक्कतस्वात्, ततोऽयमर्थः - अन्येन वा कार्येण केनापि व्याघातो भवेत ॥ ५०४१ ॥

कि पनस्तत् कार्यम् ! इत्याह-

नायपरायण कुवितो, चेइय-तद्दव्व-संजतीगहणे।

पुन्तुत्ताण चउण्ह वि. कजाण हवेज अभयरं ॥ ५०४२ ॥ बादे कत्यापि राजवल्लभवादिनः पराजयेन नृपतिः कुपितः स्वात् । अथवा चैत्यं-जिना-

१ 'स्य 'वर्त्तमानम्' उदन्तं वह' मा॰ कां॰ ॥ २ 'न्तं पृष्ट्वा यदि ताडी॰ मा॰ विना ॥ ३ अत्रान्तरे कां॰ पुरुषे प्रस्थाप्रम्—१००० इति वर्त्तते ॥

मर्तनं किमिप तेनाबष्टव्यं स्वात् तत्स्वत्मोचने कुद्धो भवेत् । अथवा तहत्यस्य-नैत्यद्रव्यस्य संबद्धा वा महणं राज्ञा कृतं तन्योचने वा कुपितः । ततः 'पूर्वोक्तानाय्' इहैव मधमोहेशके प्रतिपादितानां (गा० ) निर्विषयस्याज्ञार्यन-मक्तपाननिषेघोपकरणहरण-जीवितचारित्र-मेदञ्काणानां चतुर्णो कार्योणासन्यतरत् कार्यमुख्यकं भवेत् ततो न गच्छेत् ॥ ५०४२ ॥

अगमने चोपाध्यायः प्रेषणीयोऽन्यो वा, तथा चाह—

पेसेइ उवज्झायं, अबं गीतं व जो तर्हि जोग्गो । प्रद्वो व अप्रद्रो वा, स चावि दीवेति तं कलं ॥ ५०४३ ॥

पूर्वोक्तकाराणवशतः सवमाचार्यस्य ममनाभावे उपाध्यायं तदमावेऽन्यो वा यो गीतार्थसात्र योग्यसं भेषचित । स चापि तत्र गतः सन् तेन पाराधितेन 'किमित्यय समाश्रमणा 10 नायाताः !' इति प्रष्टो वाऽप्रष्टो वा तत् 'कार्य' कारणं दीपयेत् , यथा—असुकेन कारणेन नायाता इति ॥ ५०१३ ॥

> जाणंता माहप्पं, सयमेव भणंति एत्थ तं जोग्गो । अत्थि मम एत्थ विसञ्जो, अजाणए सो व ते बेति ॥ ५०४४ ॥

इह यदि स्वानीभवनादिना कारणेन क्षमाश्रमणानायमनं प्रष्टेनाष्ट्रेष्टेन वा दीणितं तदा न
15 किमप्यन्यत् तेन पाराध्विन्त वक्तव्यं किन्तु पुर्वोदेदा प्रवोभाश्यं यथोदितः सम्पादनीयः। अथ
राजप्रदेशनो निर्विषयत्वाज्ञापनादिना व्यापातो दीपितस्तन्न यदि 'ते' उपाप्याया अय्ये वा गीतार्थास्तस्य शक्तिं स्वयमेव बुध्यन्ते ततो जानन्तः स्वयमेव तस्य माहास्यं तं ब्रुवने, यथा — अस्मिन् प्रयोजने स्वं योग्य इति कियतासुद्यमः। अथ न जानते तस्य शक्तिं ततः स एव
तानजानानान् वृते, यथा—अस्ति समात्र विषय इति ॥ ५०४४॥

20 पतच स्वयमुपाध्यायादिभिन्नी भणितो वक्ति-

अच्छा महाणुभाँगो, जहासुहं गुणसयागरी संघो ।

गुरुगं पि इमं कजं, मं पप्प भविस्सए लहुयं ॥ ५०४५ ॥

तिष्ठतु यथासुलं महान् अनुगगः--अभिकृतमयोजनातुकुलं अचिन्त्या शक्तिर्थस्य सः, तथा गुणशतानाम्-अनेकेषां गुणानाम् आकरः-नियानं गुणशताकरः सङ्घः। यत इदं गुरुक-28 मपि कार्य मां प्राप्य रुषुकं भविष्यति, समर्थोऽहमस्य प्रयोजनस्य लील्याऽपि साथने इति भावः॥ ५०९५॥ प्रवसुके सीऽनुजातः सन् यत करोति तदाह---

त अभिहाण-हेउकुसली, बहुसु नीराजिती विउसमास ।

गंतूण रायभवणे, भणाति तं रायदारहं ॥ ५०४६ ॥

'अभिगान-हेतुकृत्रकः' शब्दमार्गे तर्कमार्गे चाऽतीव क्षुण्य हत्यर्थः, अत एव बहुषु विद्व-॥ त्समाधु 'नीराजितः' निवेटितः, इत्यन्यतः स पाराधिको राजभवने गस्वा तं 'राजद्वारसं' प्रतीहार्र भणति ॥ ५०१६॥ कि मणति ? इत्याह—

पडिहाररूवी ! भण रायरूविं, तमिच्छए संजयरूवि दहं।

१ 'पनादीनां चतुर्णां मा॰ का॰ ॥ २ 'कार्येण ना' कां॰ ॥ ३ 'भावो, ज' ताभा • ॥

**निवेदपि**ता **च स परि**यवस्स, जिहि निवो तस्य तयं पवेसे ॥ ५०**५७ ॥** है मतीहास्त्रमिन्! मध्ये गर्ला 'राजरूपिण' राजानुकारिणं भण, यथा—स्तं संयतस्त्री ह्रष्टु<del>निच्छति । युवदुक्तः</del> सन् 'सः' मतीहारस्त्रपेव पार्थिस्स निवेदयति । निवेष च राजानु-मत्या यत्र नुपोऽवतिष्ठते तत्र 'तक्तं' साधं मवेदायति ॥ ५०४० ॥

तं प्राह्मण सुहासणत्यं, पुष्टिछसु रायाऽऽगयकोउह्नछो ।

पण्टे उराले असुष कपाई, स चावि आइक्ख्र परियवस्स ॥ ५०४८ ॥

'तं' साधुं मविष्टं सन्तं राजा प्वियत्वा 'ग्रुआसनत्य' हामे भासने निषणमागतकुत्रुःकोऽमाक्षीत् । कान् ! इत्याह—मक्षान् 'उदातान्' गम्मीराधीन् कहानिदस्यश्चतान् 'मितिहारक्रिन्ते" ! इत्येगादिकान् । 'स चापि' साधरेवं पृष्टः पार्थिवसायद्ये ॥ ५०४८ ॥

किमाच हे १ इत्याह—

जारिसग आयरक्खा, सकादीणं न तारिसो एसो । तुह राय ! दारपालो, तं पि य चक्कीण पढिरूवी ॥ ५०४९ ॥

याहशकाः सञ् शकार्यानाम्, आदिशब्दान् चमरादिपरिमहः, आनगरक्षा न ताहरा एष तव राजन् ! द्वारपाञ्चत उक्तम् ''हे मनीहारक्षिन् !''। तथा स्वमिष बाहलधकवर्ता ताहशो न भवित, रत्नाथभावान्, अत्रान्तरे चकवर्तितमृद्धिराख्यातच्या, किश्च मताप-शौर्य-न्यायानुपाछ-15 नादिना तमितिक्सोऽसि तत उक्तम् ''राजकृषणं मूहि'', चकवर्तिमतिकपनित्यर्थः ॥ ५०४९ ॥

प्तमुक्ते राजा पाह—त्वं कथं श्रमणानां प्रतिरूपी ! तत आह—

समणाणं पडिरूबी, जं पुच्छिस राय! तं कहमहं ति । निरतीयारा समणा, न तहाऽहं तेण पडिरूबी ॥ ५०५० ॥

यत् स्वं राजन् ! पृच्छिति 'अघ कयं स्वं श्रमणानां प्रतिरूपी !' तदहं कथयापि — यश्चा 20 श्रमणा भगवन्तो निरतिचारा न तथाऽई तेन श्रमणानां प्रतिरूपी, न तु साक्षात् श्रमण इति ॥ ५०५० ॥ प्रतिरूपिस्तमेव भावपति —

> निज्ञुहो मि नरीसर !, खेत्ते वि जईण अच्छिउं न लमे । अतियारस्स विसोधि, पकरेमि पमायमुलस्स ॥ ५०५१ ॥

हे नरेश्वर ! प्रमादम् उत्थाति वारस्य सम्प्रति विशोधि प्रकरोमि, तां च कुर्वन् 'निर्णूयो- 25 दिश' निष्कासितोऽस्मि, तत आस्तामन्यत्, खेनेऽपि यतीनामहमास्यातुं न रुमे, ततः श्रमण-प्रतिकर्ण्यहमिति ॥ ५०५१ ॥ राजा प्राह—कस्त्वया कृतोऽतिचारः ? का वा तस्य विशोधिः ? प्रवं प्रदे यत् कर्तन्यं तदाह—

कहणाऽऽउद्दृण आगमणपुच्छणं दीवणा य कअस्त । वीसिकायं ति य मप, हासुस्तिलेतो भणति राया ॥ ५०५२ ॥ अत् कथनं राज्ञा पृष्ठस्य भसक्रतोऽन्यस्यापि यथा मवननभावना भवति । ततः 'आवर्तनप्' आकस्पनम्, राज्ञो भन्तिमिति भावः । तदनन्तरमागमनकारणस्य मशः—(मन्धामम्— १०००। सर्वमन्यामम्—१४८२५) केन प्रयोजनेन यूयमत्राऽऽगताः स्व ! । अवान्तरे प्र-१००

थेन कार्येणागतस्तस्य 'दीपना' मकाशना । ततो राजा ''हाछुस्सलिओ'' ति हासेन युक्त उत्सत:- हृद्दो हासोत्सत:, हसितमुख: प्रहृष्टश्च सन्नित्यर्थ:, भणति । यथा---मया 'निसर्जितं' युत्कलितं निर्विषयाज्ञापनादिकं कार्यमिति ॥ ५०५२ ॥ एवं च किं सङ्गातम् ! इत्याह-

संघो न लगइ कजं, लद्धं कजं महाणुभाएणं।

तुरुमं ति विसक्रोमि, सो वि य संघो ति पूर्वति ॥ ५०५३ ॥

निर्विषयत्त्राज्ञापनमुत्कलनादिलक्षणं कार्यं सङ्घो न लमते किन्तु तेन पाराधिकेन 'महानु-भागेन' 🗠 सातिशयाचिन्त्यप्रभावेन 🗠 रुब्धम् । न च स एवं कार्येलामेन गर्वेमुद्रहति, यत आह---''तुब्भं ति'' इत्यादि, राजा पाह---युष्माकं भणितेनाहं पूर्वमाहं त्यक्तवा तत् कार्यं विसर्जयामि नान्यथा । 'सोऽपि च' पाराधिको ब्रेते - कोऽहम् ! कियन्मात्रो वा ! गरीयान् 10 सङ्घो भट्टारकः, तत्प्रभावादेवाहं किश्चिज्ञानामि, तस्मात् सङ्घमाह्रय क्षमयित्वा यूयमेवं बृत---मुत्कलितं गया युर्ध्माकमिति । ततो राजाऽपि सङ्घं पूजयति ॥ ५०५३ ॥

अन्मत्थितो व रण्णा, सयं व संघो विमजति त तुरो । आदी मज्झऽवसाणे, स यावि दोसो धुओ होइ ॥ ५०५४ ॥

राजा सङ्घे मृयात्---मया युष्माकं विसर्जितं कार्यम्, परं मदीयमपि कार्यमिदानीं ाः करुत-- मुखतास्य पाराधिकस्य प्रायधितम् । एवं राज्ञाऽभ्यर्थितो यदि वा स्वयमपि तष्टः सङ्घः 'विसर्जयति' मुक्कल्यति । किमुक्तं भवति ?—यद् ल्यूटं तद् ल्यूटमेव, रोषं तु पुनर्दे-श्वतः सर्वतो वा प्रसादेन मुखति । तस्य च पाराश्चिकतपसस्तदानीमादिर्मध्यमवसानं वा भवेत् , त्रिष्विप सङ्घरपादेशात् 'स चापि' पाराखिकापत्तिहेत्त्वीषः 'धृतः' कम्पितः, प्रसादेन स्फेटितो भवतीत्यर्थः । तत्र देशो देशदेशो वा प्रायश्चित्तस्य तेन बोडच्यः । अथ राजा तत्यापि मोचने 20 निर्वन्धं करोति तदा तदाप मुच्यते । देशो नाम-षह्मागः, देशदेशः-दशमागः ॥ ५०५४ ॥

तत्र देशे यावन्तो मासा भवन्ति तदेतत प्रतिपादयति-

एको य दोन्नि दोन्नि य, मासा चउनीस होति छन्भागे। देसं दोण्ह वि एयं, वहेज ग्रंचेज वा सन्वं ॥ ५०५५ ॥

इहाशातनापाराश्चिको जघन्यतः पण्मासान् उत्कर्षतो वर्षे भवति इत्युक्तम् , तत्र पण्मा-2: सानां प्रेष्ट भागे एको मासो रूथित वर्षस्य तु पडुभागे हो मासी भवतः । प्रतिसेवनापारा-श्चिको जधन्यतो वर्षम् उत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि भवतीरयुक्तम्, तत्रापि वर्षस्य षद्भागे द्री मासी द्वादशवर्षाणां षष्ठे भागे चलविंशतिर्मासा भवन्ति । एवंविधं देशं 'द्वयोरपि' आज्ञातना-प्रतिसेवनापाराश्चिकयोः सम्बन्धिनं सङ्घत्यादेशाद् बहेत् , यद्वा सर्वमपि सङ्घो सुञ्चेत् , न किमपि कारयेदित्यर्थः ॥ ५०५५ ॥ अथ देशदेशमाह-

अद्वारस छत्तीसा. दिवसा छत्तीसमेव वरिसं च । बावसरिं च दिवसा, दसभाग बहेज बितिओ तु ॥ ५०५६ ॥

१ कारणेनाम को०॥ २ °भावेणं तामा ।॥ ३ प ० एतःमध्यगत. पाठः भा० को० नास्ति ॥ ध 'ब्माकं तत् कार्यमिति कां ।।।

15

आशातनापाराधिके षण्मासानां दशमे भागेऽष्टादश दिवसा वर्षस्य तु दशमे भागे षट्-त्रिशाहिबसा भवन्ति । प्रतिसेवनापाराधिके संबस्सरस्य दशमे भागे षट्त्रिशहिबसा द्वादशव-र्षाणां दश्चमे भागे वर्षमेकं द्वासप्तिख दिवसा भवन्ति । एतावन्तं कालं यद् वहेद् एषः 'द्वितीयः' देशदेश उच्यते ॥ ५०५६ ॥ उपसंहरलाह—

#### पारंचीणं दोण्ह वि, जहन्ममुकोसयस्स कालस्स । छन्मागं दसमागं, वहेञ्ज सन्वं व झोसिञ्जा ॥ ५०५७ ॥

'द्वचोरिप' आशातना-प्रतिसेवनापाराश्चिक्तयोर्जवत्य उत्कृष्टश्च यः काळसास्य सम्बन्धिनं पङ्गागं दशमागं वाऽनन्तरोक्तं वहेत् । यहा 'सर्वमिप' अवशिष्यमाणं सङ्घः क्षपयेत् , प्रसादेन मुखेदिति भावः ॥ ५०५७ ॥

# ॥ पाराश्चिकप्रकृतं समाप्तम् ॥

अनवस्थाप्य प्रकृतम्

सूत्रम्---

ततो अणवटुण्पा पण्णता, तं जहा—साहिम्मयाणं तेषणं करेमाणे, अञ्चथम्मियाणं तेषणं करेमाणे, हरथादाळं दळेमाणे ३ ॥

अस्य सम्बन्धमाह---

पच्छित्तमणंतरियं, हेट्टा पारंचियस्स अणवट्टो । आयरियस्स विसोधी, भणिता इमगा उवज्झाते ॥ ५०५८ ॥

प्रविद्वत्रं पारिविक्रमायश्चित्तपुत्तम्, तस्य 'अभक्तात्' अनन्तरितमनवस्थाप्यमायश्चित्तं भवति, अतः साम्प्रतं तदिभिषीयते । यहा पूर्वस्त्रे आचार्यस्य शोधिभीणता, इयं पुनरुपाध्या-20 सविषया सैवासिषीयते ॥ ५०५८ ॥

अनेन सम्बन्धेनाथातस्यास्य व्याख्या—त्रयः 'अनवस्थाप्याः' तत्क्षणादेव वर्तच्वनवस्थाप-नीयाः प्रज्ञप्ताः । तवधा —साधर्मिकाः—साधवस्तेषां सरकस्योक्तृष्टोपयेः शिष्यादेवी 'क्षेन्यं' चौर्ये कुर्वोणः । अन्यधार्मिकाः—शाक्यादयो गृहस्था वा तेषां सरकस्योषस्यादेः सैन्यं कुर्वेन् । तथा हस्तेनाताबन्नं हस्ताताबः, सूत्रे च तकारस्य दकारश्चितिरायंत्वात्, तं ''दक्माणे'' ददत्, 25 यष्टि-पुष्टि-ककुटादिमिरासनः परस्य वा महरिविति मावः अथवा ''हरश्चाकंव' ति पाठः, हस्तात्म्य इव 'हस्तात्म्यः' अशिवादिप्रशमनार्थभिनास्क्रमक्षादिपयोगसं ''दक्माणे'' कुर्वेन् । यद्वा ''अरुषादाणं दक्माणे'' चि पाठः, तत्र 'वर्षोदानष्ट' अर्थोग्रादानकारणमष्टाक्रनिमिचं 'दद्व' प्रयुक्षानः । एष सुत्रसङ्गेष्यंः ॥ अथ विस्तरार्थं विभणिषराह—

> आसायण पडिसेवी, अणवद्वप्यो वि होति दुविहो तु ! एकेको वि य दुविहो, सचरिचो चेव अचरिचो ॥ ५०५९ ॥

50

15

20

आसातनात्रवसाप्यः प्रतिसेच्यनवसाप्यश्चेत्यनवसाप्योऽपि द्विवियो मवति, न केवलं भराबिक इति आपेशब्दार्थः। पुनरेकेकोऽपि द्विविधः—समारिकोऽनारिकस्रेति । एतौ द्वाविषः निकारिकोऽनारिकस्रेति । एतौ द्वाविषे केवी प्रसाद्विकवय कक्तव्यो॥ ५०५९॥ अवाशातनानवसाप्यमाहः—

तित्थयर पवयण सुते, आयरिए गणहरे महिद्वीए । एते आसादेते, पन्छिते मग्गणा होइ ॥ ५०६० ॥

र्पा आतापा ना ना कर परिनाम हाई । रिन्त ना स्थितः प्रायश्चिते मार्गणा स्थाति । प्रानाशातयतः प्रायश्चिते मार्गणा स्थाति । अभीमां जाशातमा पारिश्चिकवद् भावनीया (गा० ४९७६-८२) ॥ ५०६० ॥ प्रावश्चित्रमार्गणा प्रतियम् —

पढम-बितिएसु णवमं, सेसे एकेक चउगुरू हॉति । सब्वे आसादेंतो, अणबहुष्पो उ सो होइ ॥ ५०६१ ॥

'मयम-द्वितीययोः' तीथेइर-सङ्गाजातयोरुपाध्यायस्य 'नवमम्' अनवस्थाय्यं अवति । 'जोषेषु' श्वतादिषु प्रत्येकमेकैकस्मिन् आञ्चात्यमाने चतुर्गुरवो भवन्ति । अध 'सर्वणि' चत्वा-वैषि श्वतादीनि आञातयति ततोऽसो अनवस्याप्यो भवति ॥ ५०६१ ॥

उक्त भाशातनानवस्थाप्यः । अथ प्रतिसेवनानवस्थाप्यमाह---

पिडसेवणअणबद्दो, तिविधो सो होइ आणुपुञ्चीए । साहम्मि अण्णघम्मिय, हर्रथादालं व दलमाणे ॥ ५०६२ ॥ यः प्रतिसेवनानवसाप्यः सूत्रे साक्षादुकः स आनुपूर्व्या त्रिविधो भवति—साधर्मिकसैन्यकारी अन्यशार्मिकसैन्यकारी हस्तातालं च ददत् ॥ ५०६२ ॥

तत्र साधर्मिकस्तैन्यं ताबदाह-

साहिम्म तेण्ण उनधी, वावारण झामणा य पहुनणा । सेहे आहारविधी, जा जहिँ आरोवणा भणिता ॥ ५०६३ ॥

सह आहरायया, जाह आरायणा भाषाना ॥ २०६ र १ २०६ ।।
साथमिंकाणाम् (उपरे: वक्त-पात्रादिल्ल्लास्य सेन्यं करोति । "वातरणं" ति गुरुमिक्षघेट्टसादनाय 'व्यापरणा' प्रेषणा हृता ततस्त्रद्वाया गुरूणामनिवेषापातसाले स्वयमेवाधितेहृति । "झामणा य" ति उपकरणं सद्घावेनासद्वावेन वा 'व्यामितं' दम्बं भवेत् तद्यावेन
२० श्रावकमभ्यर्थ्य वस्तादिकं गृहीखा खयमेव सुद्धे । "पद्वण" ति केनाप्याचार्वेण कस्त्रापि
संवसस्य हृत्ते वपराचार्यस्य दीक्ताय गतिग्रहः भित्तस्त्रसमावन्तरा स्वयमेव सीकरोति ।
"सेहं" ति श्रेक्षविषयं सौन्यं करोति । "वाहारविहि" ति दानश्रद्धादिषु स्वापनाङ्केण्यु
गुरुमिरनगुजातः 'वाहारविधिम' अञ्चनादिकमाहारमण्या गृह्याति । दरेषु स्वानेषु साधार्मिकसेन्यं भवति । अत्र व या यत्र स्वाने 'क्षारोपणा' प्रावश्चित्तपरयाया मणिता सा सत्र
२० वक्तन्यमः । एप विश्वतिकामाधार्मिक्षमाधः ॥ ५०६३ ॥ सामग्रसमिनानेव विरविद्याह—

उनहिस्स आसिआनण, सेहमसेघे य दिइऽदिहे य । सेहे मुळं भणितं, अणवृह्म्यो य पारंची ॥ ५०६५ ॥

१ °तथालंबं व मो॰ ॥ २ °समासार्थः कं॰ ॥

इहोषधेः आसिआवणं सीन्वभित्येकोऽर्षः, तच्च शैको वा कुर्यादरीको वा, उभाविष रष्टं वा सीन्यं कुर्यातामरष्टं वा । तत्र शैक्षे मूळं यावत् प्राथक्षितं भणितम् , उपाध्यायसाऽनवस्था-प्यपर्यन्तम्, आचार्यस्य पाराक्षिकान्तम् ॥ ५०६४ ॥ एतदेव भाववति—

सेही ति अगीयत्थो, जो वा गीतो अणिड्रिसंपन्नी । उनहीं पुण वत्थादी, संपरिगाह एतरो तिविही ॥ ५०६५ ॥

कैंक इति परेनागीतार्थों मण्यते, यो वा गीतार्थोऽपि 'अनृद्धिसम्पन्नः' आचार्यपदादिसमृ-द्धिममासः सोऽपि शैक्ष इहोच्यते । उपपिः पुनर्वस्वादिकः, आदिश्वन्दात् पात्रपरिमहः । य से च 'सपरिमहः' ⊳ परिगृहीतः स्वाद् 'इतरो वा' अपरिगृहीतः । पुनरेकैकिसिविधः— जधन्यो मध्यम उक्तष्टश्च ॥ ५०६५ ॥

अर्थ "सेहे मूरूं" (गा० ५०६४) इत्यादि पश्चाई व्याख्याति—

अंतो निहं निवेसण, वांडग गाम्रुजाण सीमऽतिकंते । मास चउ छच लहु गुरु, छेदो मूलं तह दुगं च ॥ ५०६६ ॥

'अन्तः' प्रतिश्रयाभ्यन्तरे साधर्मिकाणाग्रुपिधमद्दष्टं शैक्षः खेनयति मासल्खु, वसतेबेहिर-दृष्टमेन खेनयति मासगुरु । निवेशनस्यान्तर्मासगुरु, बहिश्चदुर्लेषु । वाटकस्यान्तश्चदुर्लेषु, बहिश्चदुर्गुरु । ४ ग्राँमस्यान्तश्चदुर्गुर, बहिः पड्लेषु । ▷ उद्यानस्यान्तः पड्लेषु, बहिः।ऽ पङ्गुरु । सीमाया अन्तः पङ्गुरु, अतिकान्तायां दु तस्यां बहिश्लेदः। ''सूलं तह दुर्गं च'' ति मूलं तथा 'द्विकं च' अनवस्थाप्य-पाराधिकयुगम् ॥ ५०६६ ॥ एतदेव मावयति—

एवं ता अद्दिहे, दिहे पढमं पदं परिहवेता । ते चेव असेहे वी, अदिष्ठ दिहे पुणो एकं ॥ ५०६७ ॥

एवं तावददृष्टे सैत्ये कियमाणे शैक्स्य प्रायश्चितपुक्तम् । दृष्टे तु 'प्रथमं' मासल्युरुक्णं 20 पदं 'परिहाध्य' परिहृत्य मासगुरुकादारच्यं मूलं यावद् वक्तव्यम् । अश्वेक्षः—उपाध्यायसायाः-प्यदृष्टे 'तान्येव' मासगुरुकादीनि मूँलान्तानि मायश्चित्तस्थानानि सवन्ति, दृष्टे पुनः 'एकं'

१ < > एतदन्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥

२ बाडगमुज्जाण इति पाठः सर्वासपि प्रतिवृपलभ्यते, किन्तु मा॰टीका**-सूर्णि-विदेशपसू**णर्य-तुसरिण प्रायक्षित्तकमानुसारेण च **घाडग गामुज्जाण इ**त्येव पाठः सम्यन्। दश्यती टीप्पणी ३ ॥

३ 🗸 🏲 ध्तदन्तर्गतः पःठः भा॰ एव वर्तते ।

<sup>&</sup>quot;भंतो बसहीए उबहितेणां करेति सेही अविद्वं मासस्डें, बाहिं बसहीए सासगुर्ध । निवेदणक्त अंतो •, बाहिं ह्व । पाडगरसंतो ह्व, बाहिं ह्वा । गामरसंतो ह्वा, बाहिं र्फ । उजाणरसंतो र्फ, बाहिं र्फा । सीमाए अंतो र्फा, बाहिं छेरो । एवं ताब अविद्वे ।" इति च्युणी ।

<sup>&</sup>quot;अंतो नवसीए उनहिंदीणं करेड सेही अदिई मासलाई, बाहिं वसहीए झासगुर्द । निवेदणस्थेती मासगुर्द, नार्डि : । वाडगस्स अंतो ::, बाहिं : । गामस्स अंतो : , बाहिं : । उज्जानस्स अंतो ::, बाहिं : । धीमाए अंतो : :, बाहिं छेदो । एवं ताव आदेहे ।' इति विद्रोचकार्णी त

४ मूलं यावत् प्रायश्चित्तानि भव° कां• ॥

भासगुरुकरुक्षणं पदं इसति, चत्रुरुंपुकादारञ्यमनवस्थाप्ये निष्ठां यातीत्यर्थः । आचार्यस्याप्य-दृष्टेऽनवस्थाप्यान्तमेव, दृष्टे तु चतुर्गुरुकादारञ्यं पाराश्चिके तिष्ठति ॥ ५०६७ ॥

गतं साधर्मिकोपधिस्तैन्यद्वारम् । अथ व्यापारणाद्वारमाह---

वावारिय आणेहा, वाहिं घेतूण उनिह गिण्हंति ।

लहुगी अदिति लहुगा, अणबहुप्पी व आदेसा ॥ ५०६८ ॥

'व्यापारिता नाम' गुरुसि: प्रेसिताः, यथा—''आणेह'' ति उपिधमुत्पायाऽऽनयत । ते नैनमुक्ता अनेकविधमुत्पायं प्रहिस्यः 'गृहीत्ना' उत्पाय 'निहरिय' आचार्यसमीपममासा उपिं गृहित्त, 'इदं तम इदं मम' इति विभाग्य सम्यमेन सीकुर्वन्तित्यर्थः; एवं गृहतां मासच्छ । आगता आचार्यस्य न ददित चतुर्क्षचाः, प्रस्तुतसूत्राद्दशाह्या अ सै सम्कृत्वसमाहकः साधु10 नर्गो > ऽननस्याप्यो भवति ॥ ५०६८ ॥ गतं व्यापारणाह्यस्य । अथ ध्यामनाह्यस्य—
सा च प्यामना द्विषण—सती अतती च । तम्रासतीं तावदाहः—

दहु निमंतण छद्धोऽणापुच्छा तत्थ गंतु णं भणति । झामिय उनघी अह तेहि पेसितो गहित णातो य ॥५०६९ ॥

आचार्याः केनापि दानश्रद्धादिन। विकेपस्वपैर्वक्षेतिमश्रिताः, तैथः तानि मतिषिद्धानि । 
10 एकश्च साधुस्तां निमम्बणां श्रुत्वा तानि च सुन्दराणि वस्ताणि दृष्टा 'सुन्धः' लोमं गतः । तत 
आचार्यमनाष्ट्रच्छ्य ''णं' रृति तं श्रावकं तत्र गत्वा भणति —असाकसुपधिः 'ध्यामितः' दग्धः 
ततोऽहं तैराचार्येर्युप्पाकं सकाशे वसाथे मेषितः; एवसुष्पाकसुपधिन्धः । स च गृहीत्वा गतः, 
अन्य च साधव आगताः । श्रादेत मणितम् —युप्पाकसुपधिन्धः दित कृत्वा यो भविद्वः 
साधुः भितस्तस्त्व नृतनोपधिन्दैयो वर्तते, यदि न पर्याप्तं ततो भूयोऽपि ददामीति । साधवो 
20 ब्रुवते — नासाकसुपधिन्देग्यो न वा वयं क्रमणि प्रेययामः । एवं स लोभाभिमृतः साधुस्तेन 
श्रावकेण ज्ञातः, यथा —गुरुणां प्रच्छामन्देगणायं गृहीतवान् ॥ ५०६९ ॥

ततश्च किं भवति ? इत्याह—

30

ल्हुगा अणुग्गहम्मि, गुरुगा अप्पत्तियम्मि कायन्ता। मूलं च तेणसहे, बोच्छेद पसजाणा सेसे ॥ ५०७० ॥

प्रवं तेन साधुना सैन्येन वस्त्रेषु गृहीतेषु यद्यप्यसी श्राद्वोऽनुमहं मन्यते—'ध्रयाऽपि तथाऽपि गृहताममी साधवः' इति तथापि चतुरुवः । अथापीतिकं करोति ततश्चतुर्गुरवः मायश्चितं कर्तव्याः । अथासी 'सेनोऽयं सेनोऽयम्' इति शब्दं जनमध्ये विम्तार्यित तदा मुरुम् । यद्य रोषद्वय्याणां शेषसाधूनां वा व्यवच्छेदं "पसज्जण" ति प्रसङ्गतः करोति तिष्वपनं नायश्चित्तम् ॥ ५००० ॥ अथ सर्ती घ्यामनां दर्शयति—

सुव्वत्त झामिओवधि, पेसण गहिते य अंतरा छुद्धो । लहुगो अदेते गुरुगा, अणवट्टप्पो व आदेसा ॥ ५०७१ ॥

१ र > एतदरवर्मतः पाठः सा॰ का॰ वास्ति ॥ २ विविध्करेपे कां॰। "आयरितो केणति दाण-सङ्गातिणा विक्वक्वेदि वर्स्यहि निमंतितो" इति चूर्णी विदोयचूर्णी च ॥ अय 'धुव्यक्तं' सत्येनैव ध्यामित उपिः ततो गुरुभिद्यत्रेव भेषणं कृतम्, भेषितश्च सन् वेनाचार्या निमन्नितास्तरभादन्यसाद्वा श्रावकाद् बस्नादिकग्रपैषि गृहीत्वा अन्तरा 'छुक्यः' क्रोमाभिन्नतो यदि गृह्माति तदा लघुको मासः । ध्यागतोऽपि यदि गुरूणां न प्रयच्छति तदा बर्गुगुरुवः, सुत्रादेशाद्वाऽनवस्थाप्यो भवति ॥ ५००१ ॥

गतं ध्यामनाद्वारम् । अथ प्रस्थापनाद्वारमाह---

उकीस सनिजोगी, पडिग्गही अंतरा गहण छुद्धी।

लहुगा अदेंतें गुरुगा, अणवट्टप्पो न आदेसा ॥ ५०७२ ॥ केनाप्यानार्वेण कत्यापि संयतस्य हस्ते अपरानार्वस्य ढीकनहेतोः प्रतिमहः भेषितः. स च

केताच्याचार्यण कस्यापि संयतस्य इस्त अपराचार्यस्य बीकनहतीः प्रतिमद्दः शेषितः, स च 'उत्कृष्टः' उत्कृष्टोपधिरूपो यद्वा दृत-समचतुरस्य-णोब्बतादिगुणेषेतः, तथा सह निर्योगिन-पात्रकवन्यादिना यः स सनिर्योगः। एवंविधस्य प्रतिमृहस्य 'अन्तरा' अपान्तराक ज्वासी 10 छुञ्दः 'मृहण' सीकृरणं करोति तत्र चतुर्ङेषु । तत्र गतस्योगं ⊲ देंगीण तं भतिमृहं ⊳ न भयच्छति चतुर्युरवः, सूत्रादेरोन वाऽनवसाच्यो ⊲ उंसी दृष्टच्यः ⊳ ॥ ५०७२ ॥

गतं प्रस्थापनाद्वारम् , अथ शैक्षद्वारमाह—

पव्वावणिज बाहिं, ठवेतु भिक्खस्स अतिगते संते । सेहस्स आसिआवणः अभिधारेते व पावयणी ॥ ५०७३ ॥

कोऽपि माधुः 'भन्नाजनीय' सशिखां के शैक्षं गृहीस्वा प्रस्थितः, तं च भिक्षाकाले कापि प्रामे बहिः स्वापिक्षा मिक्षार्थम् अतिगतः—प्रविष्टः, प्रविष्टे च सति तस्मिन् अपरः साधुक्तं शैक्षं दृष्टा विपनाभे च तस्य ''आसियावणं' अपदः णं करोति । साधुविरहितो वा प्रकाकी कमपि साधुमिभारायन्-मनित कुर्वन् देशे न्नेत्वत् तमपरः साधुविभतार्थं मन्नावयेत् । एतौ द्वाविप यदा प्राचनिको जातौ तदा हावाप शैक्षो स्वयमेवाऽऽस्मनो दिक्पिटेच्छेदं कुरुत् इति 20 सङ्कद्वायाध्यमासार्थः ॥ ५०७३ ॥ अथैनागैव विद्वणोति—

सण्णातिगतो अद्धाणितो व वंदणग पुच्छ सेही मि । सो कत्य मज्ज्ञ कज्जे, छात-पिवासस्स वा अडति ॥ ५०७४ ॥ मज्ज्ञमिणमण्ण-पाणं, उवजीवऽणुकंपणाय सुद्धो उ । पुद्रसपुट्टे कहणा, एमेव य इहरहा दोसो ॥ ५०७५ ॥

संज्ञासूमिगत आदिशब्दाद् सकादिपरिष्ठापनिकार्य निर्गतः कोऽपि साधुः शैक्षं इष्टवान् ; अथवा 'आध्वनिकः' पथिकोऽतो साधुस्ततः पथि गच्छन् शैक्षं इष्टवान् । तेन च वन्दनके छते सति साधुः ष्टच्छितं —कोऽसि स्वम् : कुत आगतः ! क वा प्रस्तितः ! । शैक्षः प्राह्—अधुकेन साधुना साद्वै । सीक्षः प्रविद्यान् । शिक्षः प्रविद्यान् । शिक्षः प्रविद्यान् । शिक्षः प्रविद्यान् । साधुः प्रच्छितं —स साधुः सम्पति क गतः ! । शैक्षे) भगति —स मम कार्ये वुसुक्षितस्य पिगसितस्य वा भक्त-पानार्यं 30 पर्यदिति ॥ ५००४॥

१ मा॰ विनाऽन्यत्र—°पर्षि कृत्वा अन्त° ताटी॰ मो॰ डे॰ । °पर्धि मार्गियत्वा अन्त° कां॰ ॥ २-३ एतदन्तर्गतः पाठः भा॰ कां॰ नास्ति ॥

ततः स साधुर्मदीयभिदमक-पानम् 'उपजीव' मुंश्वेति हुवाणो वदि 'वार्थार्थकारेवार इस्यनुक्रम्या वदाति तता शुद्धः । शेक्षेण पृष्ठोऽपृष्ठो वा यदि 'य्वमेव' अनुक्रम्या धर्मकवां करोति तता शुद्धः । 'इतस्या' अपहरणार्थे भक्त-पानं ददतो धर्मं वा कथयतो 'दोषः' चढु-गृंहकं प्रायक्षित्तम् ॥ ५०७५ ॥ अपहरणप्रयोगानेव दर्शयति—

> भत्ते पण्णवण निगृहणा य वावार झंपणा खेव । पत्थवण-सयंहरणे, सेहे अञ्चल वर्त्ते य ॥ ५०७६ ॥

अपहरणार्ध भक्त-यानं ददाति धर्म वा तस पुरतः मजायति । ततः स जैस आइतः सन् भक्तति—भवत एव सकारोऽहं प्रजनामि किन्तु न राक्रोमि येनाऽऽनीतेस्तलुरतः सातुष, सतो सां गुणिले प्रदेशे निगृहतः ततोऽसौ तं व्यापारयति—अगुकत्र निकीष तिष्ठेति । 1) तत्तकां तत्र निकीनं साधुः पलालादिना अग्ययति, स्थापतीलर्थः । अथवाऽन्यैः सार्धमन्यं प्रामं प्रसापयति, एक्किनं वा प्रयति—अगुकत्र प्रामायी त्रज, अहमप्त्रमुध्मिन् दिवसे तत्राऽऽग-तिच्यामि । अथवा स्वयमेव गृहीत्वा तमपदरति । एतानि यद् पदानि भवन्ति, तत्रथा— भक्तपदानं १ धर्मकथा २ निगृहनावचर्च ३ व्यापारणं ४ क्षापनं ५ प्रसापन-स्वयंहरणं ६ चेति । एतेषु यद्मु पदेषु शेक्षे व्यक्तेऽव्यक्ते च प्रायक्षित्रसिदं भवति ॥ ५००६॥ ।

गुरुओ चउलहु चउगुरु, छछहु छग्गुरुगमेव छेदो य । भिक्खु-गणा-ऽऽयरियाणं, मृतं अणवट्ट पारंची ॥ ५०७७ ॥

भिश्चर्यक्रयक्तरीक्षसापहरणार्थं भक्तं ददाति तदा मासगुर, धर्ममन्नापनाथां चतुरुषु, निपू-हनवचने चतुर्गुरु, व्यापारणे पद्धस्यु, झम्पने पहुरु, प्रस्थापने स्वयंहरणे वा च्छेदः । एवम-व्यक्ते शैक्षे भणितम् । अव्यक्तो नाम-यस्याचापि दमश्च न सञ्जातम् । यस्तु व्यक्तः-सञ्जात-३० दमश्चस्त्र चतुर्केषुकादारच्यं मुठं यावद् भिक्षोः प्रायक्षित्तम् । गणिनः-उपाध्यायस्य चतुर्केषु-कादारच्यमनवस्याप्ये तिष्ठति । आचार्यस्य चतुर्गुरुकादारच्यं पाराधिके पर्यवस्ति ॥ ५००७ ॥

एवं ससहाये शैक्षे भणितम्, यः पुनरसहायोऽभिवारयन् त्रजति तत्र विधिमाह---

अभिधारंत वयंती, पुढ़ी वचामऽहं अग्रुगमूलं । पण्णवण भत्तदाणे, तहेव सेसा पदा णन्थि ॥ ५०७८ ॥

20 कोऽपि शैक्ष एकाकी कम्प्याचार्यमिभिश्वारवन् प्रत्रश्चामिमुली त्रवति । तेन कचिद् प्रापे पिष वा साधुं दृष्ट्वा वन्दनकं कृतम् । साधुना पृष्टः—क गच्छिति ! । स प्राह्—अशुक्रस्वाऽऽ- चार्षस्य पादम् छे प्रत्रश्चार्थं नवामि । एवसुके यदि मिश्चर्य्यकशिक्षस्य मकदानं करोति मासगुरु, भर्मत्रश्चापायां चतुर्वेषुः स्वक्तशैक्षस्य मकदानं चतुर्वेषुः । वयाव्यावा-ऽऽवायेयोर्यश्चाक्मं वद्वरुषुं वृहरूकं च भवति, अभक्तनमेकैकं पदं हसतीति सावः ।

अर्थेशाणि वुं निवृहन-स्यापाय्य-हम्पनादीनि च्यानि न सन्ति, असहायस्यात्, तद्मावात्
प्रायश्चित्रकर्मं पायाय्य-हम्पनादीनि च्यानि न सन्ति, असहायस्यात्, तद्मावात्
प्रायश्चित्रवर्णेष् नाक्षीति ॥ ५०७८ ॥ एते चापरं दोषाः—

१ 'तस्तेन सह स्था' गं०॥ २ एतदनत्तरम् तद्यथा— इत्वनतरणं कां०॥ ३ 'घु-वहुवीः पर्ववस्यति, अभ' कां०॥ ४ 'मापि तद्विषयं ना' कां०॥

### आणादऽर्णतसंसारियत्त बोहीय दुक्तमतं च । साहम्मियतेण्णम्मि, पमत्तकलणाऽधिकरणं च ॥ ५०७९ ॥

हैशनपदरत आज्ञाभन्नादयो दोषा भवन्ति । अनन्तर्तसारिकस्तं च भगवतामाज्ञाभन्नाद् भवति । बोषेश्व दुर्कभस्तं जायते । साधर्मिकस्तैन्यं च कुर्बाणः प्रमची रूम्बते । प्रमचस्य च पानत-देवतया क्रकना भवति । यस्य च सम्बन्धी सोऽपट्टियते तेन समम् 'अधिकरणं' करूह उप-ऽ जायते ॥ ५००९॥ एवं तायत् पुरुविवया दोषा उक्ताः । अध स्त्रीविवयांस्तानेवातिदिशति—

एमेव य इत्थीए, अभिघारेतीऍ तह वयंतीए। वत्तऽन्वत्ताऍ गमो, जहेव पुरिसस्स नायम्बो॥ ५०८०॥

एवमेव किया अपि शैक्षिकायाः अभिभारयन्त्रास्त्रधा "वयंतीए" वि ससहायायाः मन-जितुं वजन्त्या व्यक्ताया अव्यक्तायाश्च गमः स एव ज्ञातव्यो यथा पुरुषस्योक्तः ॥ ५०८० ॥ १० अध प्रावचनिकपदं व्याचेष्टे—

> एवं तु सो अवधितो, जाधे जातो सयं तु पावयणी । निकारणे य गहितो, वचति ताहे प्रसिद्धाणं ॥ ५०८१ ॥

'एनम्' अन्तरोक्तैः प्रकारेः 'सः' शैक्षोऽप्रहृतः सन् यदा स्वयमेव प्रावचनिको जातः, अन्यो वा निष्कारणे यः केनापि गृष्टीतः स आरमनो दिवपरिच्छेदं कृत्वा भूयोऽपि बोषिन्छा- 18 मावासये पूर्वेषायेवाचार्याणामन्तिके वजति ॥ ५०८१ ॥

### अन्नस्स व असतीए, गुरुम्मि अन्धुज्जएगतरज्जने । धारेति तमेव गर्णः जो य हडो कारणजाते ॥ ५०८२ ॥

येन स शिक्षो निष्कारणेऽपहृतस्तस्य गच्छेऽपरः कोऽप्याचार्येषदयोग्यो न विधते ततीऽ-न्यस्याभावे यद्वा स गुरुः—आचार्योऽप्युखतस्यैकतरेण युक्तः, अप्युखतमरणम् अप्युखतिहारं 20 वा मतिषत्र इस्पर्धः, ततो यदि कोऽपि शिष्यस्तेषां निष्पत्ने नास्ति तदा तमेव गणमसी धारयति यावत् कोऽपि तत्र निष्पन्न इति । यश्च कारणजाते केनाष्याचार्येण हृतः सोऽपि तमेव गणं धारयति ॥ ५०८२ ॥ किं पुनस्तत् कारणम् ! इत्याह——

> नाऊण य बोच्छेर्द, पुव्वगते कालियाणुजोगे च । अजाकारणजाते, कप्पति सेहाबहारो तु ॥ ५०८३ ॥

कोऽप्याचार्यो यहुश्वतसास्य पूर्वगते किश्चिद् वस्तु प्राप्तृतं वा कालिकानुयोगेऽपि श्वतस्कः स्थोऽध्ययनं वा विषते तथान्यस्य नाति ततो व्यन्यस्य न सङ्गान्यते तदा व्यवच्छियते । प्रं पूर्वगते कालिकानुयोगे च व्यवच्छेदं ज्ञात्वा तं च सम्बन्धितं वीक्षं प्रहणः भारणासमर्थे विज्ञाय भक्तदानः पर्यक्रशादिभिविंपरणान्य प्रमानादीन्यपि कुर्वाणः ग्रुद्धः। बह्न तत्याऽऽ-चार्यस्य नात्ति कोऽप्यायोजां परिवर्तकस्तास्तातामपि कारणजाते वैक्षमपहरेत् । एवं करूपते २० वैक्षापद्वारः कर्त्वम् ॥ ५०८३ ॥ तस्य च कारणेऽपहतस्य को विषिः ? इत्याह—

र 'वाः कमण्याचार्यम् 'अभिवारपस्याः' असद्दावायास्तवा कं ।। २ 'णां समीपे वक को ।।

25

80

कारणजाय अवहितो, गणं धरेंतो तु अवहरंतस्स । जाहेनो निष्फण्णो. पच्छा से अप्यणो इच्छा ॥ ५०८४ ॥

यः कारणजातेऽपद्धतः स तदीयं गणं भारयम् अपहरत एवामाञ्यो भवति । अथ येन कारणेनापद्धतस्यत् कारणं न प्रयति तदा पूर्वेषानेवाभवति नापहरतः । स च कारणापद्धतः ७ कास्मिन् गणे तावदास्य यावरेकोऽपि गीताथं निष्यसः) एवात् तस्याऽऽसीया इच्छा, तत्र वा तिद्वति पूर्वेषा स सकारो गच्छति । यस्तु निष्यसः) उपहरतः स प्रकक्षित् निर्माते नियमात् पूर्वेषामनिकं गच्छति, न तस्याऽऽसीयेच्छति भावः ॥ ५०८९ ॥

गतं शैक्षद्वारम् । अथाऽऽहारविधिमाह---

ठवणाघरम्मि लहुगो, मादी गुरुगो अणुग्गहे लहुगा । अप्यत्तियम्मि गुरुगा, वोच्छेद पसज्जणा सेसे ॥ ५०८५ ॥

दानश्राद्वादिकुलं स्थापनागृहं भण्यते, तसिन् य आचार्येः असन्दिष्टः अननुज्ञातो वा प्रिविशति तस्य मासल्यु । अथवा 'प्राष्ट्रणैक-स्लानार्थमहिमहाऽऽयातः' इति तेषां श्राद्धाणं पुरतो मायां करोति ततो मायिनो मारागुरुकम् । एवसुक्ते यदि ते श्राद्धाः 'अनुमहोऽयम्' इति मन्यन्ते तदा चहुकेथु । अयागीतिकं कुर्वनित ततश्रद्धगुरीयः, यच्च तहस्यस्यच्छेदादि-। कोषदीषाणां 'प्रसन्ता' प्रसक्तालिपोलं मायश्चित्तम् ॥ ५०८५ ॥ इदमेव व्याचरे —

अज अहं संदिहो, पुहोऽपुहो व साहती एवं।

पाहणग-गिलाणद्रा. तं च पलोडेति तो बितियं ॥ ५०८६ ॥

कश्चिदाचार्यैरसन्दिष्टः स्थापनाकुलेषु प्रवित्त्य पृष्टोऽपृष्टो वा हैदं भणति — अद्याहं गुरुभिः 'मन्दिष्टः' पेषित इति, ततो मासल्यु । यदि च पूर्वे सन्दिष्टः सङ्घाटकः प्रविष्ट आसीत् २० श्रादेश्च तस्यासन्दिष्टस्यामे ददं भणितं भवेत् — सन्दिष्टसङ्घाटकस्य दचमिति; ततो शृचात् — प्राभूर्णकार्ये भागार्ये वा साम्प्रतमद्दमागत इति, एवं 'तं' आद्वननं मायया यदि प्रलोटयित ततो 'द्वितीयं' मासगुरु ॥ ५००६ ॥ ते च श्राद्धा विपरिणमेयुः, विपरिणतास्याऽऽचार्योदीनां मायोग्यं न दष्टः ततः ग्रुदं ग्रुद्धेनाप्येतत् प्राथश्चित्तम्

आयरि-गिलाण गुरुगा, लहुगा य हवंति खमग-पाहुणए । गुरुगो य बाल-बुद्धे, सेसे सम्बेस मासलहं ॥ ५०८७ ॥

आवार्थस स्कानस्य च प्रायोग्यमददानेषु आदेषु चतुर्गुरवः । क्षपकस्य प्राष्ट्रणकस्य च योग्यमददानेषु चतुर्कववः । बाल-वृद्धानां योग्येऽकभ्यमाने गुरुमासः । 'शेषाणाम्' एतद्याति-रिक्तानां सर्वेषामपि प्रायोग्येऽकभ्यमाने मासल्यु ॥ ५०८७ ॥

गतं साधर्मिकस्तैन्यम् । अधाऽन्यधार्मिकस्तैन्यमाह-

परधम्मिया वि दुविहा, लिंगपविद्वा तहा गिहत्था य । तेसि तिण्णं तिविहं, आहारे उविध सम्बित्ते ॥ ५०८८ ॥

१ 'व्यक्रमपरं प्राय' कं॰ ॥ २ इदं ''साइति'' ति भण' कं॰ ॥ ३ तदीयमायाविपरिण-तत्त्वाव् आवा' कं॰ ॥

परभार्मिका अन्यभार्मिका इत्येकोऽर्थः। ते च द्विविधाः—लिक्कप्रविद्याः पृहस्माश्च । 'लिक्कप्रविद्याः' शान्यादयः, 'गृहस्माः' मतीताः । 'तेषाम्' उमयेषामपि स्तैन्यं त्रिविषम्—आहारविषयसुपिविषयं सविचविषयं चेति ॥ ५०८८ ॥ तत्राऽऽहारविषयं ताबदाह्—

मिक्ख्ण संखडीए, विकरणरूवेण श्रुंजती छुद्धो ।

आभोगण उद्धंसण, पवयणहीला दुरप्प ची ॥ ५०८९ ॥
भिक्षवः—बीद्वालोपां सङ्ख्यां कश्चिद् छुल्यो "विकंत्परुक्षेव" लिङ्कविवेकेन भुक्के, तदीर्थ लिङ्कं इत्वेति भावः ॥ एवं भुजानं यदि कोऽपि 'आभोगयति' उपरुक्षपति तदा चतुर्कवः ॥ पत्थुपरुक्ष्य ययसौ 'उद्धर्पण' निर्मर्शतं करोति ततश्चपुर्युक्काः ॥ प्रवचनहीलां वा ते कुर्युः, यथा—दुरास्पानोऽमी मोजनिविषयेन प्रवचिता इति ॥ ५०८९ ॥ अपि च—

गिहवासे वि वरागा, धुवं खु एते अदिहुकछाणा । 10 गलतो णवरि ण विल्तो, एएसिं सत्थुणा चेव ॥ ५०९० ॥ गृहवासेऽप्येते वराकाः 'धुवं निश्चितमेव अदृष्टकल्याणाः, एतेषां च 'शाक्षा' तीर्थकृता दुश्चरतगमहारगुञ्जादिवर्णासुपदिशता गरुक एव गलने न बलितः, शेषं तु सर्वमिष कृत-मिति मावः॥ ५०९० ॥ गतमाहारविषयं सैनस्य ॥ अधोपधिविषयमाह—

उवस्सएँ उबहि उवेतुं, गतिम्म भिच्छुन्मि भिण्हती लहुगा ।

गेण्हण कन्नुण वनहार पच्छकडुङ्काह णिव्विसए ॥ ५०९१ ॥

'उपाश्रवे' मटे 'उपिष्म्' उपकरणं सापवित्य कथिद् भिक्षुकः-वौद्धो भिश्रां गतः,
तसिन् गते यदि तदीयसुपर्धं गृहाति तदा चतुर्कवदः। स शिक्षुकः समापातः सकीयसुपकरणं स्तेतितं मत्ता तस्पतस्य महणं करोति चतुर्धंदः। राजकुकारिक्षत्वभाकवैति महुरदः।

व्यवहारं कारियद्वामारुक्ये च्लेदः। पश्चास्त्रते मुक्तम्। उङ्गुद्देनेऽनवस्थाप्यम्। निविषयाज्ञान् 20
पने पाराधिकम् ॥ ५०९१ ॥ अय सचितविषयं सीन्यमाह—

सिकचे खुड़ादी, चउरो गुरुगा य दोस आणादी।
गेण्डण कहुण ववहार पच्छकडुड्डाह निन्त्रिसर ॥ ५०९२ ॥
सिकचरीतेन्यं नित्त्यमाने भिश्रकादैः सम्मन्धिनं शुष्टकम् आदिशब्दाद् अशुष्टकं वा यधपहरति तदा न्वत्यारो गुरुकाः आज्ञादयश्च दोषाः। महण-ऽऽकर्षण-व्यवहार-पश्चात्कृतोड्डाह- 26
निर्विषयाञ्चापनादयश्च दोषाः मानवर मन्तव्याः॥ ५०९२ ॥ अधेतेन्वेन मायश्चिणमाह—

गेण्डणें गुरुगा छम्मास कड्डणे छेओं होइ ववहारे । पच्छाकडिम्म मूर्ल, उड्डरण विरंगणे नवमं ॥ ५०९३ ॥ उद्दावण निष्विसस्, स्पामणेगे पदोस पारंची । अणबङ्कप्यो दोसु य, दोसु उ पारंचितो होइ ॥ ५०९४ ॥ गाणाद्वेयं गतार्थम् ( गा० ९०९-५ अथवा २५००-१ ) ॥ ५०९२ ॥ ५०९४ ॥ सुद्धं व सुद्धियं वा, णेति अवत्तं अपुच्छिमं तेले ।

१ "विकरणं लिंगविवेगो" इति चुर्णौ विद्याचचुर्णौ न ॥ २ व्ह्रयं व्यावयातार्थम् कां • ॥

25

30

वक्तिम गत्थि पुच्छा, खेतं थामं च माऊणं ॥ ५०९५ ॥

क्षक्रको वा क्षक्तिका वा योऽचापि अन्यक्तः स यस्य शाक्यादेः सम्बन्धी तमप्रद्वा यदि तं श्राहकं श्रीह्रकां वा नयति ततः 'स्तेनः' अन्यधार्मिकसौन्यकारी स मन्तव्यः, चतुर्गरुकं च तस्य प्रायश्चित्तम् । यस्तु व्यक्तस्तत्र नास्ति पृच्छा, तामन्तरेणापि स प्रताजनीयः । किं सर्व-क बेव ! उत्त न ! इत्यालक्याऽऽह—क्षेत्रं स्थाम च ज्ञात्वा । किमुक्तं भवति !—यदि विव∗ क्षितं क्षेत्रं शाक्यादिभावितं राजवल्लभतादिकं वा तेषां तत्र बलं तदा पृच्लामन्तरेण व्यक्तोऽपि प्रमाजियतं न करूपते, अन्यथा त करूपत इति ॥ ५०९५ ॥

एवं तावलिक्सपविष्टानां स्तैन्यमुक्तम् । अथ गृहस्थानां तदेवाह-एमेव होति तेण्णं, तिविहं गारिश्यमण जं वर्त्त ।

गहणादिगा य दोसा. सविसेसतरा भवे तेस ॥ ५०९६ ॥

10 एवमेवागारस्थानामपि 'त्रिविधम्' आहारादिमेदात् त्रिपकारं स्तैन्यं भवति यदनन्तरमेव परतीर्थिकानामुक्तम् । 'तेषु च' गृहस्थेषु आहारादिकं स्तेनयतां महणादयो दोषाः सविशेषतरा भवेय: । ते हि राजकले करादिकं प्रयच्छन्ति. ततस्तद्वलेन समधिकतरान प्रहणा-ऽऽकर्षणा-दीन कारयेयः ॥ ५०९६ ॥ कथं पनरमीषामाहारादिकं स्तेनयति ? इति उच्यते---

> आहारे पिद्राती, तंत खड़ादि जं मणित पुरुवं । पिइंडिय कब्बद्री, संछभण पडिग्गहे कुसला ॥ ५०९७ ॥

आहारे-पिष्टादिकं बहिविरिलतं दृष्टा श्रुलिकाः स्तेनयति । उपधी -- "तंतु" ति सन्नाष्टि-काम् उपलक्षणस्वाद् वस्त्रादिकं वाऽपहरति । सचिते —क्षुलकः -बालकस्तम् आदिशब्दाद अक्षलकं वा स्तेनयति । एवं यदेव पर्वे परतीर्थिकानां भणितं तदेवात्रापि मन्तव्यम् । कथं 20 पुनः पिष्टं स्तेनयति ? इत्याह—"पिटंडि" इत्यादि, काश्चित् क्षष्टिका भिक्षामटन्त्यः किञ्चिद गृहं प्रविद्याः, तत्र च बहिः पिष्टं विसारितमास्ते, तच इट्टा तासां मध्यादेका कल्पस्थिका पिष्टपिण्डिकां गृहीत्वा पतद्वहे प्रक्षिप्तवती, सा चाविरतिकथा दृष्टा ततो भणितम् - एनां पिष्टपिण्डिकामत्रेव स्थापयतः ततस्तया क्षक्षिकया कुशरुत्वेनान्यस्याः सङ्घाटिकाया अन्तरे प्रक्षिप्ता । एवं सूत्राष्ट्रिकामपि दक्षत्वेनापहरेत ॥ ५०९७ ॥ अथ सचित्रविषयं विधिमाह--

नीएहिं उ अविदिनं, अप्यत्तवयं पुनं न दिविस्ति। अपरिग्गहो उ कप्पति, विजडो जो सेसदोसेहिं ॥ ५०९८ ॥

'निजकैः' माता-पित्रभृतिभिः स्वजनैः 'अवितीर्णम्' अदत्तम् 'अपाप्तवयसम्' अव्यक्ते पुमांसं न दीक्षयन्ति । यदि पुनरपरिगृहीतोऽब्यक्तः सः 'शेषदोषैः' बाल-जडु-ब्याधितादिभि-र्विप्रमुक्तः प्रवाजयितुं कल्पते ॥ ५०९८ ॥ ⊲ स्त्रीविषयं विधिसाह—ь

अपरिग्नहा उ नारी, ण भवति तो सा ण कप्पति अदिण्या । सा वि य हु काय कप्पति, जह पउमा खुइमाता वा ॥ ५०९९ ॥

र °हारे -- कस्याप्यगारिणो सृहाक्षणे पिष्टा'कं ॥ २ °कं पुरुषं 'न दीक्षयन्ति' न प्रवाजयन्ति । यदि कं ०॥ ३ ৺ ० एतविहान्तर्गतम्बरणं आ० एव वर्तते ॥

'नारी' श्री सा मानेशापरिमहा न अवति, प्रितृ-गतिप्रसृतीनामन्यतरेण परिगृहीता भवतीति भावः । ⊲ उक्तं च—

> भिता रक्षति कीमारे, भर्ता रक्षति यौवने । पुत्राश्च स्थानिरे भावे, न स्त्री स्थातक्ष्यमहिति ॥ ⊳-

ततो नासावरण सती करूपते प्रशाययितुष् । साऽपि च काचिदरणऽपि करूपते, यथा व प्रधावतीदेवी करकण्डुमाता प्रशाजिता, यथा वा क्षुक्षकञ्चमारमाता योगसङ्गद्दाभिहिता (आव० हारि० टीका निर्शुक्तिगा० १२८८-९० पत्र ७०१) यञ्चोभद्रा नासी प्रशाजिता ॥ ५०९९ ॥ अथ द्वितीयपदमाह—

बिह्यपदं आहारे, अद्धाणे हंसमादिगो उनही । उनउक्तिरुण पुर्विन, होहिंति जुगप्पहाण ति ॥ ५१०० ॥

द्वितीयपदमाहारादिषु निष्विष अभिषीयते—तन्नाऽऽहारेऽध्वानं मबेहुकामातातो वा उचीणां उपलक्षणत्वाद् अधिवादो वा वर्तमाना असंसरणे अदस्मिप सक-पानं गृद्धीषुः । आगादे कारणे उपिमिप हंसादेः सम्बन्धिना मयोगेणोत्पादयेत् । सचिवविषयेऽपि —'भवि-ध्वन्यमी युगत्रवानाः' इत्यदिकं पृष्टालभ्वनं 'पूर्व' प्रथममेव 'उपयुज्य' परिमाज्य गृहस्वद्धक्तः कान् अन्यतीथिकक्षक्रमान् वा हरेत् ॥ ५१०० ॥ इदमेव मावयति—

असिनं ओम विहं ना, पविसिउकामा ततो व उत्तिण्णा । थलि लिंगि अस्तितिथग, जातित अदिण्णे निण्हंति ॥ ५१०१ ॥

अशिवगृहीत विषये स्वयं वा साधवोऽशिवगृहीता मक्त-पानकाभाभावाच संस्तरेयुः, अवसं— दुर्भिक्षं तत्र वा भक्त-पानं न रूमेरन्, 'विह्न्य' अध्वानं वा प्रवेदुकामास्तते वा उदीर्णा न संस्तरेयुः, ततः स्विक्षितां या स्वरिका-देवद्रीणी तस्यां याचन्ते, यदि ते न मयच्छन्ति तदा ३० वरुतिष गृहन्ति । अध वरुवन्तस्ते दारुणप्रकृतयो वा ततोऽन्यतीधिकानामपि स्वर्षेषु याच्यति, यदि न मयच्छन्ति ततः स्वयमेव प्रकृटं प्रच्छनं वा गृहीयुः । एवं गृहसेष्विप याचितमरूममानाः स्वयमि गृहन्ति । असंस्तर्णे उपियरपेवमेव स्नेन्यययोगेण प्रदीतन्यः ॥ ५१०१॥

> नाऊण य वोच्छेदं, पुन्त्रगते कालियाणुतोगे य । गिहि अण्णतित्थियं ना. हरिज एतेहिँ हेत्रिं ॥ ५१०२ ॥

ागाह जनातारपत्र पा, शरण स्थाव व्यक्ति । स्थाव । स्थाव । स्थाव । पूर्वेगते क्रालिकानुयोगे वा व्यक्ति । व्य

गतमन्यधार्भिकस्तैन्यम् । अय ''हत्थादारुं दलेमाणे'' इत्यादि पाठनमं निवरीषुराह— 30

हत्याताले हत्यालंबे, अत्यादाणे य होति बोधन्वे । एतेसि णाणतं, बोच्छामि अहाणुपुन्तीए ॥ ५१०३ ॥

र् → Þ एतिकहान्तर्गतः पाठः स्त्रं ॰ एव वर्तते ॥

15

हस्ताताको हस्तालम्बोऽर्धादानं चेति त्रिषा पाठोऽत्र बोह्रत्यः । एतेषां त्रयाणामपि नानासं बस्यामि यथाऽऽनुपूर्व्योऽहम् ॥ ५१०३ ॥ तत्र हस्तातालं तावद् विद्युणीति—

उम्मिष्णस्मि य गुरुगो, दंडो पिडयम्मि होह भयणा उ । एवं खु लोहयाणं, लोउत्तरियाण वोच्छामि ॥ ५१०४ ॥

इह हस्तेन उपकक्षणत्वात् सङ्गादिभिश्च यद् आताडनं स हत्ताताकः । स च द्विभा— जैकिको लोकोत्तरिकश्च । तत्र लैकिके हत्ताताले पुरुषवधाय सङ्गादानुद्रीणे 'गुरुकः' रूप-काणामशीतिसहस्रलक्षणो दण्डो भवति । पतिते तु महारे यदि कथमणि न मृतसद्धा 'भजना' देशे देशेऽपरापरदण्डलक्षणा भवति । अथ मृतसद्धा तदेवाशीतिसहस्रं दण्डः । एवं 'खुः' अवधारणे, लैकिकानां दण्डो भवति । लोकोत्तरिकाणां तु दण्डमतः परं वक्ष्यामि ॥५१०॥

हत्थेण व पादेण व, अणवद्वप्यो उ होति उग्गिण्णे । पडियम्मि होति भयणा, उद्दवणे होति चरिमपदं ॥ ५१०५ ॥

हस्तेन वा पारेन वा उपलक्षणस्वाद् यष्टि-मुख्यादिना वा यः साधुः स्वयक्षस्य परपक्षस्य वा प्रहासुद्धिरति सोऽनवस्थाच्यो भवति । पतिते तु महारे मजना, यदि न मृतस्ततोऽनवस्थाच्य एव. अयापदाणः-मृतः तदा 'चरमपदं' पाराधिकं भवति ॥ ५१०५ ॥ अत्रेदं द्वितीयपदम्—

> आयरिय विणयगाहण, कारणजाते व बोधिकादीसु । करणं वा पडिमाए, तस्य तु भेदो पसमणं च ॥ ५१०६ ॥

आचार्यः क्षुष्ठकस्य विनयमाहणं कुर्जेन् हस्तातालमपि दयात्। 'कारणजाते वा' गुरु-गच्छप्रमृतीनामात्यन्तिके विनारो मात्रे वेथिकस्तेनादिन्यपि हत्तातालं मयुक्तीत । पश्चार्द्धेन हस्तात्ममाह—"करणं वां' इत्यादि, अशिव-पुरोधादी तत्यशमनार्थं 'मितमां' पुचचकं 20 करोति, तत सभिचारुकमात्रं परिजयम् 'तेजैव' मितमार्या मेदं करोति, ततस्तस्योपद्रवस्य मश-मनं मवति ॥ ५१०९॥ एपा नियंक्तिगाया अल एना विश्वणीति—

> विणयस्स उ गाहणया, कण्णामोड-खडुगा-चवेडाहिं । सावेक्ख हत्थतालं, दलाति मम्माणि फेडिंतो ॥ ५१०७ ॥

इह विनयशब्द: शिक्षायामपि वर्तेते, यत उक्तम् —''विनयः शिक्षा-मणत्योः'' (हैम० 26 ब्रने ि त्रिव्हरः क्षीं० ११०५) इति । ततोऽयमधैः —'विनयस' महणशिक्षाया आसेवना-शिक्षाया वा माहणायां कियमाणायां कंणोमोटकेन लड्डकाभिः चपेटाभिवां 'सारेक्षः' जीवि-तापेकां कुमैन् कत पर 'ममणि स्केटयन्' येषु प्रदेशेप्वाहतः सन् ब्रियते तानि परिहरन् आचार्यः श्रुकक्तसे हस्ताताबं ददाति ॥ ५१०० ॥ अत्र परः माह्—ननु परस परितापे कियमाणेऽसातवेदनीयकर्मबन्त्रो मवति तत् क्षमसावनुत्रायते ! उच्यते —

3) कामं परपरितावो, असायहेतू जिलेहिं पण्णत्तो । आत-परहितकरो पुण, इन्छिज्ज दुस्सले स खब्छ ॥ ५१०८ ॥

१ 'कर्णामोढकेन' प्रतीतेन 'सङ्गक्या' टोलकेन 'चपेटया' प्रसिद्धया 'सापेक्षः' कां॰ ॥ २ 'व्य सम्यक्त शिक्षाममतिपद्मानस्य इत्सा' घं॰ ॥

'कामस्' अनुमतमिदमसाकम्—परपरितायो जिनैरसातेहेतुः मञ्चासः, परं 'सः' परपरि-तापः 'दुःशले' वाक्छिक्षया दुमेहे दुर्विनीते शिष्ये 'सानुः' निश्चितमिष्यत एव । कुतः ! इत्याह—''आय-परिहयक्तरे'' पि हेती प्रधाना भावमधानस्थ निर्देशः, ततोऽयमधेः —आत्मनः परस्य च हितकस्त्वात् । तत्राऽऽप्तनः शिष्यं शिक्षां ग्राह्यतः कर्मनिर्वराज्ञानः, पत्य दु सम्यम्गृहीतिश्वस्य यथावत् चरण-करणानुपाळनात्यो स्वासी ग्रुणाः । पुनःश्चात्वे विशेषणे, ऽ स चैतद् विशिवष्टि—यो दुष्टाध्यवसायतया परपरितारः क्रियते स प्यासातहेद्वः प्रज्ञसः, यस्तु ग्रुद्धाध्यवसायेनाऽऽरम-परहितकरः क्रियते स नैवासातहेद्वरिति ॥ 'प१०८ ॥

अमुमेवार्थे दृष्टान्तेन द्रदयति---

सिप्पंणेउणियहा, घाते वि सहंति लोह्या गुरुणो ।

> अहवा वि रोगियस्सा, ओसह चाझूहिं पिज्जर पुर्वि । पच्छा तालेचुमवी, देहहियद्वारॅ दिज्ज्ञ्च से ॥ इय भवरोगचस्स वि, अणुक्कुलेणं द्व सारणा पुर्वि । पच्छा परिक्कुलेण वि, परलोगहियद्व कायन्या ॥

"ओसह" ति विभक्तिलोपादीषधमिति मन्तन्यम् ॥

11 4809 11

20

अत एव साधुरेवंविधो भवेत्--

संविग्गो महविओ, अप्तर्ड अणुयत्तओ विसेसम् । उज्जनमपरितंतो, इन्छिपमत्थं लहह साहु ॥ ५११० ॥

'संतिम्नः' गोक्षांभिरूषी, 'मार्देविकः' स्तब्धताविकरूः, <sup>रे</sup>जमोचि' गुरूषाममोचनशीरूः, 25 'अनुवर्तकः' तेषामेव च्छुन्दोऽनुवर्ती, 'विरोषज्ञः' वस्तवस्तुविभागवेदी, उशुक्तः साच्यार्यादी, अपरितान्तो वैयाक्त्यादी, एवंविधः साधुरीप्सतमर्थमिह परत्र च रूमते ॥ ५११० ॥

अध "कारणजाते व बोहिगाईसु" (गा० ५१०६) ति पदं व्याचष्टे---

बीहिकतेणभयादिसु, गणस्स गणिणो व अवए पत्ते । इच्छंति इत्थतालं, कालातिचरं व सर्ज वा ॥ ५१११ ॥

१ 'तबेदनीयकर्मचन्धनिक्षनं प्रज्ञ' कं∘॥ २ प्राप्त प्रतिता पढः कं॰ एर वर्तते॥ ३ 'णासवष्यन्त्रयाऽमोचकः 'अलु' कं॰॥ ४ 'थादी सोत्सादः, 'अपरितास्तः' वैया-ब्रुत्यादी भनिर्वेद्वात्, पर्ष' कं॰॥ बोषिकंत्रोक्तमने आदिज्ञन्दात् खापदादिमयेषु वा यदि 'गणस' गच्छस्य 'गणिनो वा' बाव्यविषयं 'अत्यवः' आत्यन्तिको विनाद्यः प्राप्तवदा 'कालातिवरं वा' कालातिकमेण 'सयो बा' ककाक्रमेव इत्यताक्रमिच्छन्ति, गीतायौ इति गम्यते ॥ ५१११ ॥

जब हस्तालम्बं व्याख्यानयति--

अभिवे पुरोवरोधे, एमादीवहससेसु अभिभृता । संजायपच्या खल्ड, अण्णेसु य एवमादीसु ॥ ५११२ ॥ मरणभएणऽभिभृते, ते णातुं देवतं बुवासंते । पडिमं काउं मण्ये, विंघति मंते परिजर्वेतो ॥ ५११३ ॥

अशिवेन लोको मुयान् मियते, परबलेन वा पुरे समन्तातुपस्द्रस् , तत्र बहिःकटकसोषैः 
10 आस्यन्तराणां कटकमर्दः क्रियते, अन्नक्षयाद्वा श्रुभा भ्रियते, आदिशब्दाद् गलगण्डादिभियां 
तेनैदिने दिने ममूतो जानो मरणमञ्जते, एवमादिभिः 'वैश्वतेः' दुःवैरिमन्ताले पौरजनाः 
'सञ्जातस्ययाः' 'योऽत्र पुरे आचार्यो बहुश्रुतो गुणवान्तम्बी स शक्तो वैशलिदि तिरोद्धुस्, 
नान्यः किन्द्र्यं सिमिति—सम्य जादः भत्ययो येषां ते तथा, न केवलमन्नेव क्रिन्तु 
अन्येष्यप्येवमादिश्व सक्षातमत्ययाने सम्भय तमाचार्यं 'श्रायस्य' इति शरणमुगमताः माक्रिक15 प्रदाः पादपतितालिष्ठानि ॥ ५९१२ ॥

ततः स आचार्यस्तान् पौरजनान् मरणभगेनाभिभृतान् देवतामिनाऽऽस्मानं पर्युपासीनान् ज्ञास्या तदनुकम्पापरीतिचतः प्रतिमां इत्या तत अभिचारकमम्बान् परिचपन् ता प्रतिमां मध्य-भागे विष्यति, ततो नष्टा सा कुरुदेवता, प्रशमितः सर्वोऽप्युपद्वः। एदंविषदस्तारुम्बदायी यदाऽभ्युचिष्ठते तदा तत्कारुमेव नोपस्थाप्यते किन्तु कियन्तमपि कारुं गच्छ एव वसन् 20 न्यामर्दनं कार्यते॥ ५११३॥ अथाऽर्थादानमाह—

अणुकंपणा णिमित्ते, जायण पडिसेहणा सउणिमेव ।

दायण पुच्छा य तहा, सारण उच्यावण विषासे ॥ ५११४ ॥ कत्याप्याचार्थस भागिनेयो व्रतं परिखाज्य सुक्कापयति, तत आचार्यस्य 'अनुकप्पा' 'कम्यम्य द्रव्यमन्तरेण गृहवासमध्यारिप्यते !' इत्येवंत्रक्षणा वमूव । स च 'तिमिचे अतीव 20 कुसकः' इति क्रवा तेनेवावार्जित्योर्द्दसोणिजोरित्तकं तं भागिनेयं रूपक्याचनाय भिषतवान् । स च तेकेन विण्या 'किं मम राकुनिका रूपकान् हृदने !' एवसुचचा पतिषिद्धः, द्विती-येन तु रूपक्रवच्यकानां दर्शना कृता । द्वितीये च वर्षे द्वाम्यामपि विणम्यां पृच्छा कृता । तत आचार्येष 'सारणा' म्याणकमहण्यविषया शिक्षा दचा । ततो येन रूपका न दचास्तस्य सर्वस्विताशः समजति, येन दु दचास्तस्य शिक्षा दचा । ततो येन रूपका न दचास्तस्य सर्वस्विताशः समजति, येन दु दचास्तस्य (उद्घावनं' महर्दिकत्वसम्यादनं कृतवान् । एष शिक्षितामाथास्रार्थः । भागार्थस्य कथानकादवसेयः । तक्षेदनः—

उन्नेणीए एगो ओसकायरिओ नेमितितो । तस्त य दुलि मिरा वाणियगा, ते तं आपु-च्छिडं आपुच्छिडं वषहर्राते—िक संडं गिण्हामो द्ययामो वा ? । एवं ते इस्तरीसूमा । तस्त य आयरियस्त भागिणेजो नेगामिकासी आगम्य तं आयरियं केक्द्र सम्मित तस्ट्रे आवरियेणं

सुङ्गपण समं तेसिं दोण्हं पि मिणाणं सगासं पेसवितो— कवगसहस्सं देहिं। तेण गंतुं आवरियवगणेणं मिणतो— देहिं। भणइ— किं मम सउणी रूवणा हगंति ? निरंच सम प्रिया,
वीसमेचे देखिं। तेण नेष्टियं, आवरियसस्य व निवेदियं। ताहे आयरिएण वितियमित्तस्स
सगासं पेचवितो, मांगतो य आयरियवयणेणं। तेण वंगोडण काउं बहु णवळ्या देसिया—
एचो जावतिपहिं में रूवपहिं इच्छा तावतिप गिण्हह । तेहिं आगंत्रों आयरियस्स उवणोतो ०
नठक्यों, ताहे भाइणिज्ञस्त दिलों। वितियवरिसे ते विणयगा दो वि आयरियं पुच्छति—
एसमंविरिते केसिंसं भंडं गेण्हांगें !। आयरिपिहिं सउणिवहचों भणितो—वित्ते ते परसारो
तेण कप्पास-पय-गुले घेचुं अंतोषरं संगोवेह । वितिओ अप्पसारियं भणितो—वित्तं सुबंहुं
तण-कटु-वेसे घण्णं च घेचुं वाहिं नगरस्स निरमोयहाणे संगोवाहि । तदा य अणबुद्धी जाया, अह
अमंगी उद्दितों, सबं नगरं दहुं। सउणीइचस्स सबं कप्पासाति दहुं, वितयस्स न दहुं, ताहे 10
तेण तं तण-कट्टं घण्णं च मुनहायं विकित्तं, अणेगाणं सयसहस्साणं आमागी जातो। तजो सउणिवाहचो वाविर्य मणति—किट्टं में निभिचं विसंवित्यं !। आयरिपणं भणियं—किं मम
निमिचं सउणीया हगईं!। तजो पायपडिएणं खामिओं। [पुणो उब्भाविओं] ॥५९१॥
अममेवार्थं गायाव्ययेण भाष्यकार आह—

उजेणी जोसण्णं, दो बणिया पुन्छियं बनहरंति ।

भोगाभिलास भष्य, धुंचंति न रूनए सउणी ॥ ५१९५ ॥
चंगोड णउलदायण, वितितेणं जिचए तिहिं एको ।
अण्णिम हायणिम य, गिण्हामो किं ति पुन्छंति ॥ ५११६ ॥
तण-कट्ट-नेह-पण्णे, गिण्हह कप्पास-दूस-गुलमादी ।
अंतो बहिं च ठवणा, अग्गी सउणी न य निमित्तं ॥ ५११० ॥

20

तिसोऽभि व्याख्यातार्थाः । नवर्र भवको भागिनेय उच्यते । "जित्त तिहं एको" वि 'यावन्तो युष्पभ्यं रोचन्ते तावतो नवरुकान् गृष्कीत' एवं द्वितीयेन विण्या भणितम् 'तत्र' तेषां मध्ये एको नवरुको गृहीतः । अन्यसिन् 'हायते' वर्षे इत्यर्थः । 'दृष्यं' वस्रमुच्यते । "सरुणी न य निमित्तं" ति 'न च' नैव मम शकुनिका निमित्तं हदते ॥ ५११५॥ ॥ ५११६॥ ५१४०॥

> एयारिसी उ पुरिसी, अणवहष्पी उ सी सदेसम्मि । णेतण अण्णदेसं. चिट्टवट्टावणा तस्स ॥ ५११८ ॥

'एताहरकः' अर्थादानकारी यः पुरुषोऽस्युचिष्ठते स स्वदेशे 'अनवस्थाप्यः' न गहामतेषु स्थाप्यते किन्तु तमन्यदेशं नीत्वा तस्य च तत्र तिष्ठत उपस्थापना कर्तव्या ॥ ५११८ ॥ कतः ' इति चेद उपयते —

> पुरुवन्मासा भासेज किंचि गोरव सिणेह भवतो वा । न सहर परीसहं पि य, णाणे कंडं व कच्छछो ॥ ५११९ ॥

१ °इ १। तेण 'कुविको' सि नाउं सो आयरिको पाय° का ।। इ॰ १५२

तं नैमिषिकं तमस्तितं लोकः पूर्वाभ्यासाद् निमित्तं प्रच्छेत्, सोऽपि ऋद्विगौरवतः खेहाब्राः भयाद्वा 'किश्विष्' लामा-रल्लगोदिकं तमस्ति । अपि च —स ज्ञानविषयं परीषदं तम न सस्ते, सोखुं न शक्तोतीत्यर्थः । यथा कच्छः—पामा तद्वान् पुरुषः 'कप्हूं' क्षाजितं निना स्यातुं न शक्तोति एवमेषोऽपि तम्र निमित्तकथनमन्तरेण न स्यातुं शक इति भावः ॥ ५११९ ॥ 

 अभ पूर्वोक्तमप्यर्थे निरोषज्ञापनार्थं मृत्योऽप्याहः—

तइयस्स दोक्षि मोत्तुं, दब्वे भावे य सेस भयणा उ । पडिसिड लिंगकरणं, कारणें अण्णत्थ तत्थेव ॥ ५१२० ॥

इह "साधिमियतिणियं करेनाणे" हत्वादिसुनकममामाण्येन हत्वायावरुतृतीय उच्यते, स त्रिधा—हस्तानाको हस्तावरुनोऽर्धादानं चेति । तत्राऽऽधे द्वे पदे मुलग्न यत् रोषम्—अधीदानारूयं 10 तृतीयं पदं तत्र द्ववतो मानतस्र लिक्नदाने भनना भनति । कथम् ! इत्याह्—"पिदित्यं" इत्यादि, उत्तरत्र "कारणे" इत्यक्षियस्यानत्वाद् इह निष्कारणमिति गय्यते, ततो निक्कारणे मृतिषद्वसर्थोदानकारिणो 'लिक्नकरणे' द्रव्यलिक्कत्यं मानिकस्य वा तत्र क्षेत्रे प्रदानम् । 'कारणे तुं भक्तमत्याख्यानपतिः विख्यणेऽत्यत्र वा तत्र वाऽनज्ञातमेव ॥ ५१२०॥

एषा पुरातना गाथा, अत एनां विवरीषुराह-

हत्थाताली ततिओ, तस्स उ दो आइमे पदे मोत्तं । अत्थायाणे लिंगं, न दिति तत्थेव विसयम्मि ॥ ५१२१ ॥

हस्तातालः सुनकमपामाण्येन तृतीयः, तस्य द्वे आदिमे हस्तातालः स्तालम्बद्धणे पदे मुचवा यद् अर्थादानाल्यं पदं तत्र वर्तमानस्य तत्रैव 'विषये' देदो लिक्नं न ददति ॥ ५१२१ ॥ स च अर्थादानकारी ग्रहिलिक्नी वा स्यादयसचलिक्नी वा । तत्रे—

शिहिलिंगस्स उ दोण्गि वि, ओसक्रें न दिंति भावलिंगं तु । दिक्रंति दो वि लिंगा, उविष्टए उत्तिमद्रस्स ॥ ५१२२ ॥

यो गृहिलिक्की प्रवज्यार्थमभ्युषिष्ठते तस्य 'द्वे अपि' द्रव्य-भाविलेक्के तस्मिन् देशे न दीयेते । यः पुनरवसकस्तस्य द्रव्यलिक्कं नियत एव परं भाविलक्कं तस्य तत्रैय न ददति । यदा पुनरसावुचनार्थयतिषस्यर्थसुपतिष्ठते तदा तस्मिक्षपि देशे द्वयोरिष गृहस्या-उवसक्तयोर्द्वे अपि ४० लिक्के दीयेते ॥ ५१२२ ॥ अथवेदं कारणम्—

ओमा-ऽसिवमाईहि व, तिष्पस्सति तेणै तस्स तत्थेव ।

न य असहाओ मुचह, पुट्ठो य भणिज वीसरियं ॥ ५१२३ ॥ अवमा-ऽशिव-राजद्विष्टादिषु वा समुपस्थितेषु गच्छस्य 'भृतितर्पिय्यति' उपग्रहं करिष्यति

तेन कारणेन तत्रेव क्षेत्रे तस्य लिक्नं प्रयच्छन्ति । तत्र चेथं यतना—''न य असहाओ'' 30 इत्यादि, स तत्रारोपितमहान्नतः सन् 'असहायः' एकाकी न गुच्यते, छोकेन च निमित्तं पृष्टो

१ भाषः। अतोऽन्यदेशान्तरे नीत्वा स महावतेषु स्थापनीय इति प्रक्रमः॥ ५११९॥ स्थानन्तरोक्तमप्ययं कं।॥ २ एतर्नन्तरं प्रन्याप्रम्—१५०० कं।॥ ३ °ण दिति तत्थे' तारीः साः कं। तामाः॥ स्थाप्यम् ॥ ५१२४ ॥

30

मणति—निस्मृतं मम साम्मतं तद् निमित्तमिति ॥ ५१२३ ॥ अय साधर्मिकादिसैन्येष पायश्चित्तस्पदर्शयति—

साहस्मिय-ऽन्नधस्मियतेण्णेसु उ तत्य होतिना भयणा । लडुगो लडुगा गुरुगा, अणगद्वपो व आएसा ॥ ५१२४ ॥ सोधर्मिकसैन्या-उन्यधार्मिकसैन्ययोद्यत्र ताबदियं 'भगता' पायश्चित्रयना मगति —आहारे ऽ सेनयतो लघुमासः. उपिं सेनयतश्चतुर्लेश, सचितं सेनयतश्चतुर्गरः । आदेरोन वाऽनव-

> अहवा अणुवज्ज्ञाओ, एएसु पएसु पावती तिविहं । तेसुं चेव पएसुं, गणि-आयरियाण नवमं तु ॥ ५१२५ ॥

अथवा 'अनु राष्ट्रायायः' य उपाध्यायो न भवति किन्तु सामान्यमिश्चः सः 'एतेषु पदेषु' १० आहारोपिय-सनिच सैन्यरुपेषु यथाकर्म 'त्रिविधं' लघुमास-चत्रुरुपु-चतुर्गुरुरुक्षणं प्रायश्चितं प्रामोति । 'एतेष्येव व' आहारादिषु पदेषु गणिनः-चपाध्यायसाऽऽवासेस व 'नवमम्' अनव-साप्यं भवति ॥ '५१२'५ ॥ अत्र पर ग्राह—ननु सुत्रे सामान्यनानवस्थाध्य एव भणितः न पुनरुष्ठेषु नामान्यनानवस्थाध्य एव भणितः न पुनरुष्ठेषु नामान्यनानवस्थाध्य एव भणितः न पुनरुष्ठेषु नामान्यनानवस्थाध्य एव भणितः न मोसेकान्तवादः कापि न भवति । तथा चाह—

तुष्ठम्मि वि अवराहे, तुष्ठमतुष्ठं व दिजाए दोण्हं । पारंचिके वि नवमं, गणिस्स गुरुणो उ तं चेव ॥ ५१२६ ॥

तुरय:-सहबोऽपराभः द्वाभ्यामपि-आचार्योपाध्यायाभ्यां सैवितस्तत्र ह्वयोरिष तुरुवमतुरुवं वा प्रायक्षित्रं दीयते । तत्र तुरुवदानं प्रतीतमेव, अतुरुवदानं पुनारेदम्—'पाराधिकेऽपि' पाराधिकापित्योग्येऽप्यरापपदे सेविते 'गणिनः' उपाध्यायस्य 'नवसम्' अनवस्थाप्यमेव 20 दीयते न पाराधिकम्, 'गुरोः' आचार्यस्य पुनः 'तदेव' पाराधिकं दीयते । ततो यदापि सूत्रे सामान्येनाऽनवसाप्यमुक्तं तथापि तत् पुरुविदोषोभं प्रतिपच्यम्, यद्वाऽभीक्ष्णसेवानिष्यक्षम् ॥ ५२६६ ॥ तथा वाहः—

अहवा अभिक्ससेवी, अणुवरमं पावई गणी नवमं । पावंति मूलमेव उ, अभिक्सपिडसेविणो सेसा ॥ ५१२७ ॥

अथवा साथर्मिकतैन्यादै: 'अभीश्णसेवी' पुनः पुनः प्रतिसेवां यः करोति स ततः स्वानाद् 'अनुवरमन्' अनिवर्षमानः 'गणी' उपाध्यायो नवमं प्राप्नोति । 'रोषास्तु' ये उपाध्यायतमा-चार्यस्वं वा न प्राप्तास्तेऽभीस्णपतिसेविनोऽपि सूरुमेव प्राप्नुवन्ति नानवस्थार्ध्यम् ॥ ५१२७ ॥ अस्थादाणो ततिओ. अणवडी स्वेत्तयो समक्साओ ।

अत्यादाणो ततिओ, अणवद्दी खेचओ समक्खाओ । गच्छे चेव वसंता, णिज्जृहिजंति सेसा उ ॥ ५१२८ ॥

१ 'तत्र' तयोः-अनन्तरोक्तयोः साधर्मिकसौन्या-उन्यधार्मिकसौन्ययोसाविदयं र्जन ॥ २ 'प्यम्, तथा भगवद्वजनप्रामाण्यात् ॥ ५१२७ ॥ अथ पूर्वोक्तमर्वेषुपसंहरन् विशेषं चामिधातुकाम इदमाह—अस्था र्जन ॥

15

अहाक्रनिमित्तपयोगेण अर्थ-द्रव्यमादचे इति अर्थादानः, ततोऽर्भादानारूयो यस्तृतीयोऽ-नवस्थाप्यः स क्षेत्रतः समाख्यातः, तत्र क्षेत्रे नीपस्थाप्यत इत्यर्थः । 'शेषास्त्र' हस्तातालकारि-प्रमृतयो गच्छ एव बसन्तो निर्युद्यन्ते, आलापनादिभिः पेदैः बहिः कियन्ते इत्यर्थः ॥ ५१२८॥

**अथ कीदश**गुणयुक्तस्यानवस्थाप्यं दीयते ! इत्याह—

संघयण-विरिय-आगम-सत्तत्थविहीय जो समग्गी त । तवसी निगाइजत्तो. पवयणसारे अभिगयतथो ॥ ५१२९ ॥ तिलतसतिभागमेची. वि जस्स असमी न विज्ञती भावी। निज्जहणाएँ अरिहो, सेसे निज्जहणा नित्य ॥ ५१३० ॥ एयगुणसंपउत्तो, अणवद्रप्पो य होति नायव्वो । एयगुणविष्यम्भे, तारिसयम्मी भवे मुलं ॥ ५१३१ ॥ आसायणा जहण्ये. छम्मासकोस बारस उ मासा । वासं बारस वासे. पहिसेवओं कारणे महओ ॥ ५१३२ ॥ इत्तिरियं निक्खेवं, काउं चडकं गणं गमित्ताणं। दब्बाइ सहे वियदण, निरुवस्सरगद्व उस्सरगो ॥ ५१३३ ॥ अप्पचय निरुभयया. आणामंगी अजंतणा सगणे।

परगर्णे न होति एए. आणाथिरवा मयं चेव ॥ ५१३४ ॥

गाथाषद्रकं यथा पाराश्चिके व्याख्यातं (गा० ५०२९-३४) तथैव मन्तव्यम् । नवरं "दच्याह समे वियडण" ति द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेष 'शमेष' प्रशातेष: द्रव्यतो बटबक्षादौ क्षीरकृत्रे, क्षेत्रत इक्षक्षेत्रादी, कालतः पूर्वोह्ने, भावतः प्रशस्तेषु चन्द्र-तारादिबलेषः गुरुणां 20 'विकटनाम' आलोचनां ददाति । तत आचार्या भणन्ति-"'एयस्स साहुस्स अणबद्वप्पतवस्स निरुवसम्मनिमित्तं ठामि काउसम्मं ति अन्नत्थूससिएणं इत्यादि वीसिरामि" इति यावत चतुर्विशतिस्तवमुचार्याऽऽचार्या भणन्ति-एष तपः प्रतिपद्यते ततो न भवद्भिः सार्धमालापादिकं विधास्यति. ययमप्येतेन सार्धमालापादिकं परिहरूविमिति ॥ ५१२९ ॥ ५१३० ॥ ५१३१ ॥ ॥ ५१६२ ॥ ५१३३ ॥ ५१३४ ॥ एवं तपः प्रतिपद्य यदसौ विद्याति तद उपदर्शयति--25

सेहाई वंदंती. परगहियमहात्वी जिणो चेव ।

विहरह बारस वासे. अणवद्रप्यो गणे चैव ॥ ५१३५ ॥

शैक्षादीनिप वन्दमानः 'जिन इव' जिनकरिपक इव च प्रगृहीतमहातपाः, 'पारणके निर्हेपं मक्त-पानं महीतव्यम्' इत्याद्यनेकाभिमहयक्तं चतर्थ-पष्टादिकं विपुरुं परिहास्तपः क्रवीक्षिति भावः । एवंविधोऽनवस्थाप्यः 'गण एव' गच्छान्तर्गत एवोरकर्षतो द्वादश वर्षाण विहरति 30 || ५१३५ || इदमेव भावयति---

> अणवहं वहमाणी, वंदइ सी सेहमादिणी सन्वे । संवासी से कप्पइ, सेसा उ पया न कप्पंति ॥ ५१३६ ॥

परगणेऽनवस्थाप्यं वहमानः 'सः' उपाध्यायादिः शैक्षादीनपि सर्वान साधन वन्दते । तस्य च गच्छेन सार्थमेकत्रोपाश्रये एकस्मिन् पार्थे शेषसाधुजनापरिभोग्ये प्रदेशे संवासः कर्त्र कस्पते । शेषाणि त पदानि न करपन्ते ॥ ५१३६ ॥ कानि पुनस्तानि ! इत्याह---

> आलावण पडिपुच्छण, परियदृहाण बंदणग मत्ते । पहिलेहण संघाडम, भत्तदाण संग्रंजणा चेव ॥ ५१३७ ॥

आळवनं स साधिमः सह न करोति तेऽपि तं नाऽऽळपन्ति । सत्रार्थयोः शरीरोदन्तस्य बा मितप्रच्छनं स तेषां न करोति तेऽपि तस्य न कर्वन्ति । एवं 'परिवर्तनम्' एकतो गणनम 'उत्थानम' अभ्यत्थानं ते अपि न क़र्वन्ति । वन्दनकं त सर्वेषामपि स करोति तस्य पनः साधवो न कुर्वन्ति । "मचे" चि खेलमात्रादिपत्यर्पणं तस्य न कियते सोऽपि तेषां न करोति । उपकरणं परस्परं न प्रत्यपेक्षन्ते । सङ्घाटकेन परस्परं न भवन्ति । भक्तवानमन्योऽन्यं 10 न कर्वन्ति । एकत्र मण्डल्यां न सम्मञ्जते । यचाऽन्यत किञ्चित करणीयं तत तेन सार्ध न कर्वन्ति ॥ ५१३७ ॥

"संघो न रुभइ कर्ज़॰" इत्यादिगाथाः (५०५३-५७) पाराश्विकवद द्रष्टव्याः ॥ ॥ अनवस्थाप्यप्रकृतं समाप्तम् ॥

प्रवाजनादि प्रकृतम्

15

20

स्त्रम्-

तओ नो कप्पंति पञ्चावित्तए तं जहा-पंडए वाईए कीवे ४॥

अस्य सम्बन्धमाह----

न ठविजई वएसुं, सजं एएण होति अणवद्री । इविहम्मि वि न ठविजह, लिंगे अयमक जोगो उ ॥ ५१३८ ॥

येन तहोषोपरतोऽपि 'सद्यः' तत्क्षणादेवानाचरिततपोविशेषो भावलिक्ररूपेषु महावतेषु न स्थाप्यते एतेन कारणेनानवस्थाप्य इत्युच्यते. स चानन्तरसूत्रे भणितः। अयं पुनः 'अन्यः' पण्ड-कादिद्विविघेऽपि द्रव्य-भावलिक्ने यो न स्थाप्यते स प्रतिपाद्यते। एष 'योगः' सम्बन्धः ॥५१३८॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या-श्रयो नो कल्पन्ते प्रत्राजयितम् । तद्यथा-25 'पण्डकः' नपंसकः । 'वातिको नाम' यदा खनिमित्ततोऽन्यथा वा मेहनं काषायितं भवति तदा न शकोति वेदं धारियतं यावल प्रतिसेवा कता । 'क्रीवः' असमर्थः, स च इष्टिकीवा-दिलक्षणः । एव समार्थः ॥ अथ भाष्यविस्तरः---

१ °पि तथैव तेन सह नारूपन्ति । तथा सन्ना° कां० ॥

नीसं तु अपन्वजा, निजुत्तीए उ निश्वया पुन्ति । इह पुण तिहिँ अधिकारो, पंडे कीवे य नाईया ॥ ५१३९ ॥

'विंशतिः' बारू-इदादिसेदाद् विंदातिसङ्गाः अपनाज्याः 'पूर्व' नामनिष्यन्ने निवेषे 'निर्युक्ती' पञ्चकरुपे समपश्चं वर्णताः । इह पुनक्षिभिरेवधिकारः —पण्डकेन क्रीवेन अवातिकेन चेति, गुरुतरदोषदुष्टा अमी इति कृत्वा ॥ ५१३९ ॥

अथ प्रवाजनाविधिमेव तावदाह-

गीवत्थे पन्नावण, गीयत्थें अपुच्छिऊण चउगुरुगा । तम्हा गीयत्यस्स उ, कप्पइ पन्नावणा पुच्छा ॥ ५१४० ॥

गीतार्थनेव प्रवाजना कर्तव्या नागीतार्थन । यदगीतार्थः प्रवाजयित तदा चतुर्गुहकम् । 10गीतार्थोऽपि यदि 'अष्ट्वा' प्रच्छामन्तरेण प्रवाजयित तदा तदा तसापि चतुर्गुहकाः । तसादि गीतार्थस्य प्रच्छाग्रद्धं इत्या प्रवाजना कर्तुं करूपते । प्रच्छाविधिश्चायम् —कोऽसि स्वम् १ को वा ते निर्वेदो येन प्रवजसि ! ॥ ५१४० ॥ एवं प्रष्टे संति —

> सयमेव कोति साहति, मित्तेहिँ व पुच्छिओ उवाएणं । अहवा वि लक्खणेहिं, हमेहिँ नाउं परिहरेजा ॥ ५१४१ ॥

असमेम क्लोऽपि पण्डक कमयति, यथा— सहरो मनुष्यत्वे ममेहराः त्रैराशिकवेदः समुदीण इति । यद्वा मित्रैसस्य निर्वेदकारणमभिधीयेत । प्रत्राजकेन वा स एबोपायपूर्वे पृष्टः कथयेत् । अथवा 'ठवणैः' महिळाल्यावादिभिः 'एभिः' वश्यमाणैजीत्वा तं परिहरेत् ॥ ५९४१॥ तत्र पृष्टां तावद माययति—

नजंतमणजंते, निन्वेयमसहें पढमयो पुच्छे ।

अन्नाओ पुण भन्नाइ, पंडाइ न कर्ष्य अम्हं ।। ५१४२ ।। यः प्रज्ञितुपुण्सितः स ज्ञायमानो वा स्वाद्रज्ञायमानो वा । ज्ञायमानो नाम –अमुकोऽ-मुक्तपुत्रोऽअम्, तद्विपरीतोऽज्ञायमानः । - ४ तंत्र यो ज्ञायमानः ⊳ स यदि आदः-आवको न भवति ततः प्रथमतः निर्वेदं प्रच्छेत् । यः पुनरज्ञातः स समासेन भण्यते — न कर्ष्यतेऽस्माकं पण्डकादि प्रयाजयितुस् ॥ ५१४२ ॥ स च यदि भण्डकस्ता च वं विन्तयिति —

25 नाओ मि त्ति पणासह, निन्वेयं पुच्छिया व से मित्ता । साहंति एस पंडो, सयं व पंडो ति निन्वेयं ॥ ५१४३ ॥

ज्ञातोऽस्म्यहममीभिरिति मत्वा प्रणरयति । अथवा यानि ''से'' तस्य मित्राणि तानि प्रच्छयन्ते—एप तस्ण ईश्वरो नीरोगध वियते ततः केन निर्वेदेन प्रवत्नति ! । एवं प्रष्टानि तानि ह्यते—एप पण्डक इति । स्वयं वा सः 'पण्डकोऽस्म्यहम्' इति निर्वेदं कथयति 2011 '११२३ ॥ अध पूर्वोक्षिक्रितानि पण्डक अक्षणानि निक्त्ययति—

१ °ज्याः' प्रवाजित्तुमयोग्याः । 'पूर्व' कां ।। २ ''मिजुती पंजकप्यो' इति खूर्णी विशेषः चूर्णी न ॥ ३ °त्वा । गाथायां सप्तमी तृतीयार्थे ॥ ५१३९ ॥ कां ० ॥ ४ सति किम् १ इसाइ—सय' कां ० ॥ ५ प ० एतन्मपगतः गठः भा० एव वर्तते ॥

### महिलासहावी सर-वश्रमेओ, मेर्ण्ड महंतं मउता य वाया । ससहगं प्रचमफेणगं च. एयाणि छ प्यंडगलक्खणाणि ॥ ५१४४ ॥

ससद्दा सुनमारूणना च, एयाणा छ प्यडागलक्वाणाणा ॥ ५१४४॥ पण्डको वश्यमाणनीत्या महिलालमावो भवति । सर-वर्णमेदझ त्यस्य भवति । सर-वर्णनेदझ त्यस्य भवति । सर-वर्णनेदझ त्यस्य भवति । सर-वर्णनेदा स्वा जिल्लान्ते, ततो वर्णमेदो नाम-वर्णादयः तत्य क्षो-पुरुषविल्यणा अन्याद्वा भवति । 'मेद्म्' ठ अङ्गादानं तत्व 'मह्द' पल्यनं भवति । वाक् च 'मृदुका' कोमला भवति । मूत्रं सशब्दम-केनकं च भवति । एतानि षट् पण्डकल्याणानि मन्तव्यानि ॥ ५१४४॥

'महिलाखभावः' इति पदं व्याचष्टे---

# गती भवे पचवलोइयं च, मिदुत्तया सीयलगत्तया य ।

धुवं भवे दोक्खरनामधेजो, सकारपर्वतिशो ढकारो ॥ ५१४५ ॥ गतिः स्नीवद् मन्दा सविभ्रमा च भवति । पार्श्वतः प्रष्ठतश्च मत्यवकोकितं कुर्वन् गच्छति । शरीरस्य च त्यन् गृद्धी भवति । 'शीतकाग्रवता च' अक्षोपक्षानां शीतकः स्पर्धो भवति । 'शतिकाग्रवता च' अक्षोपक्षानां शीतकः स्पर्धो भवति । पत्तानि स्त्रिया दव कक्षणानि दृश्चा मन्तव्यम्—'भुवं' निश्चितमयं द्यक्षरनामभेगो भवेत् । तच्चाक्षरद्वयं सकारमत्यन्तरितो ढकार इति मतिषचव्यम्, प्राक्षतवेष्ट्या 'संदः' संस्कृते व विषयः हित मतिषचव्यम्, प्राक्षतवेष्ट्या 'संदः' संस्कृते व विषयः हित मतिषचव्यम्, प्राक्षतवेष्ट्या 'संदः' संस्कृते व

#### गइ भास वत्थ हत्थे, किंड पिंहु भ्रमा य केसऽलंकारे। पर्व्छन्न मजाणाणि य. पर्व्छन्तयरं च णीहारो ॥ ५१४६ ॥

''गह'' ति यथा स्त्री तथा शतैः सविकारं गच्छति । स्त्रीवद् भागां भाषते । तथा वसं यया स्त्री तथा परिभत्ते, शिरो वा वस्त्रेण स्थायति । ''हर्त्ये'' ति हस्त्री कृर्यरायो विन्यस्य कपोल्योथी निवेदय जस्पति । सभीक्ष्णं च कटीभक्तं करोति, पृष्ठं वा वस्त्रेण सुस्पीतं करोति । 20 भाषमाण्यस सवित्रमा श्रृयुगल्युस्त्रिपति, यूरोमाणि वा स्त्रीसहशानि । स्त्रीवद् केशानामोटयति । महिल्यानामक्कारान् पिनस्ति । प्रच्छले च प्रदेशे 'मज्जानि' स्त्रानादीनि करोति । प्रच्छल-तरं च 'निहार' उत्त्रार-प्रस्नुवगालकस्तेन कियते ॥ ५११६ ॥

### पुरिसेसु भीरु महिलासु संकरो पमयकम्मकरणो य । तिविहम्मि वि वेदम्मि, तियभंगो होह कायच्यो ॥ ५१४७ ॥

'पुरुषेषु' पुरुषमध्ये 'भीरः' सभयः श्राह्ममान आस्ते । महिलाधु 'सहरः' सम्मिलनशीलो निःश्रह्मो निर्भयसिष्ठति । प्रमदाः—स्नियः तासां यत् कर्मे—कण्डन-दलन-पचन-परिवेषणोदका-हरण-प्रमार्जनादिकं तत् स्वयमेव करोतीति प्रमदाकां मंतरणः, कृत् ''बहुल्स्'' (सिद्ध० '५-१-३) हित वचनात् कर्तरि जन्द्रसत्ययः । एवमादिकं बाह्यल्या पण्डकस्य मन्तव्यम् । क्याय्यनते द्व लक्ष्यां तस्य सुतीयवेदोदयः । स च नपुंसक्वेदस्त्रिविचेऽपि वेदे भवति, यत् ३० आह्— त्रिविचेऽपि वेदे प्रस्यकं त्रिकमञ्चः कर्तव्यो भवति । कथ्य १ हति चेद् उच्यते— पुरुषः पुरुषवेदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवस्त्रा

बोरपि वेदत्रबोदयो मन्तन्यः ॥ ५१४७ ॥ आह यद्येवं ततो यदुच्यते 'सी-पुरुष-नपुंसकवेदा यशाकमं फुन्फका-दवाग्नि-महानगरदाहसमानाः' तदेतद् व्याहन्यते ! अत्रोच्यते--

उस्सम्मलक्खणं खलु, फ्रंफम तह वणदवे गगरदाहे।

अववादतो उ भाओ, एकेको दोस ठाणेस ॥ ५१४८ ॥

इह विवक्षितस्य वस्तुनः कारणनिरपेक्षं सामान्यस्यरूपमुत्सर्ग उच्यते, ततस्रयाणामप वेदानामिद्यस्तर्गरूक्षणमेव मन्तव्यम् । यथा-स्तिवेदः फुम्फकामिसमानः, पुरुषवेदो वनद-बाग्निसमानः, नपंसकवेदो महानगरदाहसमान इति । अपनादतस्तु त्रिविघोऽपि वेदः 'भक्तः' विकल्पितः । कथम ! इत्याह - एकैको वेदः खस्यानं मुक्तवा इत्रयोरिष द्वयोः स्थानयोर्व-र्तते । यथा-- स्त्री स्त्रीवेदसमाना वा पुरुषवेदसमाना वा नपुंसकत्रेदसमाना वा भवेत , एवं 10 पुरुष-नपंसकयोरपि वक्तव्यम् ॥ ५१४८ ॥ अथ प्रकारान्तरेण पण्डकलक्षणमाह-

दुविही उ पंडओ खलु, दुसी-उवषायपंडओ चेव।

उनघाए वि प दुविही, वेए य तहेन उनकरणे ॥ ५१४९ ॥

द्विविधः सत् पण्डकः, तद्यथा- द्षितपण्डक उपघातपण्डकश्च । द्षितपण्डको द्विविधः-आसिक्त उपसिक्तश्च । र एतच भेदद्वयमर्थाद व्याख्यातम् । > उपपातपण्डकोऽपि द्विविधः-15 वेदोपघाते उपकरणोपघाते च ॥ ५१४९ ॥ तत्र दृषितगण्डकं तावद् व्याख्यानयति-

दुसियवेओ दुसिय, दोसु व वेएसु सजल दुसी।

इसेति सेसए वा, दोहि व सेविजए इसी ॥ ५१५० ॥

दुषितो वेदो यस्य स दृषितवेदः, एष दृषित उच्यते । 'द्वयोवां' नपुंसक-पुरुषवेदयोः अथवा नपंसक-स्वीवेदयोर्थः 'सजिति' प्रसक्तं करोति स प्राकृतशैल्या दूसी भण्यते । यौ वा 'शेषी' अधी-पुरुषवेदौ 'दूषयति' निन्दति स दूपी । 'द्वाभ्धां वा' आस्वक-पोसकाम्यां यः सेव्यते सेवते वा स दुर्पा ॥ ५१५० ॥ अस्यैव भेदानाह---

> आसित्तो ऊसित्तो, दविहो दसी उ होइ नायव्वो । आसित्तो सावची, अणवची होइ ऊसित्तो ॥ ५१५१ ॥

स दूषी द्विविधो ज्ञातव्यो भवति -- आसिक उपसिकश्च । आसिको नाम 'सापत्यः' 26 यस्यापत्यमुत्पद्यते, सनीज इति भावः । यस्तु 'निरपत्यः' अपत्योत्पादनसामध्येविकलः. निर्वीज इत्यर्थः, स उपसिक्त उच्यते ॥ ५१५१ ॥

व्याख्यातो द्षिपण्डकः, अथोपघातपण्डकमाह---

पुर्विव दुचिण्णाणं, कम्माणं असुभफलविवागेणं। तो उबहुम्मह बेओ, जीवाणं पावकम्माणं ॥ ५१५२ ॥

उ० पूर्व 'दुश्चीर्णानें।' दुराचारसमाचरणेनार्जितानां कर्मणामग्रुनफलः 'विपाकः' उदयो यदा भवति ततो जीवानां पापकर्मणां वेद उपहन्यते ॥ ५१५२ ॥ तत्र चायं दृष्टान्तः---

जह हेमी उ कुमारी, इंदमहे भूणियानिमित्तेणं।

१ ४ > एतदन्तर्गतः पाठः कां • एव वर्त्तते ॥ २ °नां' परस्तीगमनाविद्वरा° कां • ॥

म्रन्छिय गिद्धो य मओ. वेओ वि य उवहओ तस्स ॥ ५१५३ ॥ यथा हेमो नाम कुमार इन्द्रमहे समागता या अणिका:-बालिकास्तासां निमित्तेन 'मुच्छितो गृद्धः' अत्यन्तमासक्तः सन् 'मृतः' पञ्चत्वमुपगतः, वेदोऽपि च तस्योपहतः सङ्घात इत्यक्षरार्थः । भावार्थः कथानकादवसेयः । तचेदम-

हेमपुरे नगरे हेमकुड़ो राया । हेमसंभवा भारिया । तस्स पुत्तो वस्तवियहेमसिन्नभो । हेमो नाम कुमारो । सो य पत्तजोब्बणो अन्नया इंदमहे इंदद्राणं गओ, पेच्छइ य तत्थ नगरकुरुबालियाणं रूववईणं पंचसए बलि-पुष्फ-धूवकडुच्छयहरये। ताओ दहं सेवगपुरिसे भणइ—किमेयाओ आगयाओ ? किं वा अभिरुसंति ? । तेहिं रुवियं — इंदं मग्गंति वरं सोभागं च अभिरुसंति । भणिया य तेण सेवगपुरिसा-अहमेएसिं इंदेण वरो दत्तो, नेह एयाओ अंतेउरम्मि । तेहि ताओ घेत्तुं सव्वाओ अंतेउरे छूडाओ । ताहे नागरजणो रायाणं 10 उबद्रियो—मोएह ति । तओ रत्रा भणियं— किं मज्झ पूर्वो न रोयति तहं जामाउओ ?। तओ नागरा तण्डिका ठिया । 'एयं रत्नो सम्भतं' ति अविणाप्प गया नागरा । कमारेण ता सब्बा परिणीया । सो य तास अतीव पसत्तो । पसत्तरस य तस्स सन्ववीयनीगालो जाओ । तओ तस्स वेओवघाओ जाओ गओ य । अने भणंति-ताहि चेव 'अप्पडिसेवगो' चि रूसियाहिं अह।एहिं मारिओ ॥ 15

एष वेदोपबातपण्डक उच्यते ॥ ५१५३ ॥ अथोपकरणोपबातपण्डकमाह---उवहय उवकरणम्मि, सेजायरभूणियानिमित्तेणं ।

तो कविलगस्स वेओ. ततिओ जाओ दरहियासो ॥ ५१५४ ॥ शस्यातरभूणिकानिमित्तेन पूर्वम् 'उपकरणे' अङ्गादानारूये 'उपहते' छित्रे सति ततः कमेण कपिलस्य दर्शिसहस्त्रतीयो वेदो जात इत्यक्षरार्थः । भावार्थस्य कथानकेनोच्यते- 20

सुद्रिया आयरिया । तेसिं सीसो कविलो नाम खुडुगो । सो सिजायरस्स भूणियाए सह खेडूं करेति । तस्स तत्थेव अञ्जोववाओ जाओ । अन्नया सा सिज्जातरभूणिया एगागिणी नातिद्रे गावीणं दोहणवाडगं गया । सा तओ दुद्ध-दृहिं घेत्तृषाऽऽगच्छति । कविलो य तं चैव वाडगं भिक्लायरियं गच्छति । तेणंतरा असारिए अणिच्छमाणी बला भारिया उप्पा-इया । तीए कब्बहियाए अदरे पिया छित्ते किसि करेड । तीए तस्स कहियं । तेण सा दिझ 25 जोणिब्मेए रुद्दिरोक्खिता महीए लोलितिया य । सो य कोहाडहत्थगओ रुद्रो । कविली य तेण कालेण भिक्लं अडितं पडिनियतो. तेण य दिहो । मुलाओ से सागारियं सह जलधरेहिं निकंतियं । सो य आयरियसमीवं न गओ. उन्निक्वंतो । तस्स य उवगरणोवधाएण ततिओ वेदो उदिण्णो । सो जनकोड़िणीए संगहिओ । तत्थ से इत्यीवेओ वि उदिनो ॥

एष उपहतीपकरण उच्यते । अयं च पुं-नवंसकवेदीदयाद आत्य-पोसकप्रतिसेवी भवति, 90 वेदोदयं च निरोढ़ं न शकोति ॥ ५१५४ ॥ तथा चात्र दृष्टान्तः---

जह पढमपाउसम्मि, गोणो घाओ त हरियगतणस्स ।

अञ्जलकाति कोर्डिनि, नारण्यं दुष्मिगांचीयं ११ ५९५५ ॥ वर्ष हु केद दुरिसा, भोत्त्वा वि भोयणं वतिविसिर्ड ! ताव व होंति उ तुद्दा, जाव च पढिसेविओ सन्धो १। ५९५६ ॥

गहणं तु संजयस्ता, आयरियाणं व स्विष्पमाठोए ।
विद्या व गिग्म्याणं, चरिचसंभेयणी विकहा ॥ ५१५७ ॥
स पण्डकः प्रेत्रजितः सन् प्रतिसेनाभिप्रायेण संस्तस्य प्रदणं कुर्यात् । स च संस्कः
श्चिपमाचार्याणामाठोचयेत् । सदि नाठोचयति ततस्वतुर्गुरः । अथवा प्रतिस<del>्वसन्तर्वस्य स्वयः</del>
सावः 'बहिः' विचारमृत्ये गतानां चारित्रसन्त्रेदिनी विकत्यां कुर्यात् ॥ ५१५७ ॥
स्वर्वेच भावयति—

'बार्वसभयणा निकह'' ( गाठ ५१५७ ) ति पद व्यायह— इस्थिकहाउ कहिचा, तासि अन**चं पुणो पयासेति ।** समलं साबि अगंपि, खेतो य ण एयरे ताहं ॥ ५१५९ **॥** 

स यण्डकः सीकथाः कथयति, यथा ताः परियुज्यन्ते यद् वा सुसं तव सम्बत्ते । यदं 

कवित्वा पुनस्तासासवर्षे मकाशयति, यथा—समर्कं स्थावि 'अमन्ति व' दुक्तेयं सम्बद्धं 
किक्स्प, तासु च परियुज्यमानासु पुरुषस्य खेदो आयते, ''प्तते'' वि अस्मार्कं पुनस्तवको 
कवित्व दुव्यानि न अवन्ति ॥ ५१५९ ॥ स च एण्डक एवंविषैः कुचेहितैकंक्षविकावः—
साधारियं निरिक्तति, तं च मलेऊष जिन्हं इत्यं।

पुष्कित सैचिबसेची, जतिव सुद्दं जई विश्व दूदर वि श ५१६० ॥ १४) का कामोरिकनात्मवः परस्य वा सरकममीकृतं निरीक्षते । 'तव' समारिकं द्वीप कामीवा तं हस्तं जिन्नति । सुक्तभोगिनं च साधुं रहति पृच्छति—नवुंककस्य यूचं सुद्दक्तसे सेविजी

१ प्रमाजि॰ भा॰ को॰ श २ हिंतो गुडणं साथा॰ श ३ सेचि असिसुड, अहं खिय दुहा वि सेडेमि तामा॰ ॥

वा न वा!, तसिन् सेव्यमाने अतीच जुलकुल्बते ! तत्तवास सापीराशयं क्रास्य मणति—अहमेव मर्चुलकः 'द्विपाऽपि' आल्कि-मोसकाभ्यां क्रतिसेक्नीयः । एवं तं पण्डकं ज्ञासा गुरुणामाकोक्नीविक्ति मकमः ॥ ५१६०॥

सो समग्राविदितेसुं, पविवारं कत्यई अलगनानी।

तो सेविजनारको, गिष्टिको तह जनतिस्थी य ॥ ५१६१ ॥

'सः' पण्डकः 'श्रमणश्चनिहितेषु' साञ्चाव-ध्याननिरतेषु साधुत्र वेषुनगण्डिकारं कुनाय-व्यवस्थातो मृहिणक्षणाऽन्यतीर्थिवध्य प्रतिसेनितुमारच्यः ॥५१६१॥ तत्रेते दोणा अवेषुः—

अवसी व अकिसीया, तम्मूलावं तहिं पत्रयणस्स । तेनि वि होड संजा. सच्चे एयारिसा मने ॥ ५१६२ ॥

"तिहिं" ति 'तत्र' विश्वित आगादी 'तन्म्' ते ति प्रविकास्यावत्रश्चाकीरिक भवति । 18 तत्रा विश्वित आगादी 'तन्म्' तद्धेतुकं प्रवचनस्यावत्रश्चाकीरिक भवति । 18 तत्रायको नाम-छावाघातः, ककीर्तिः—सवर्षण्यस्य । वे च मह-यह-गर्तकप्रकृत्यत्तं क्रिकेस्ते नेक्सारि शहां भवति—सर्वेऽययम् अगवा 'इंड्सा एव' त्रेराविका अविष्कारित । 'मन्ये' इति निपातो वितकीर्थः ॥ ५१६२ ॥ अयदा-पदमकीर्तिपदं च व्याचडे—

एरिससेवी सब्दे, वि एरिसा एरिसो व वासंडो ।

सो एसी न वि अजो, जसंसर बोटनाईहिं ॥ ५१६३ ॥

प्रमृतजनगीकते कोक एवं मृत्यस्—ईदर्श-नदंशकं सेवितुं शीकं वेशं ते ईदरासेविनः,
सर्वेऽप्येते 'ईदराशः' नैराविकाः, 'ईदरो वा' तस्मवहुक एक सालव्यः । एवगयराःकीर्तिस्वाः सर्वेजानि प्रवर्ति । साकृत् वा निर्धा-विवासिनिर्गतात् दृष्टा बुवानः केलिपिया
सुसरी—करे धरे यित्रः । गोमिन् ! स एक शीमन्दिरकारकः । अन्यस्य मह—वानेव स
हित । अववा ते नवीरन्—सवायच्छत समागाः । बूयमपि ताव्यं ताव्यं सुकरो । १०
हर्षकः स्वादिक्तिकुलीकोद्योदिनिः सहसमुद्धं कुर्वात् । घोटाः—क्याः, अमिष्यस्यस्य 
स्वादिक विवन्न-गोमकादिकोद्याः ॥ ५१६३ ॥ उकाः क्यक्तः, अथ श्रीवराह——

कीवस्त मोच नामं, बन्धदय निरोहें जावती तनिश्रो ।

तिमा वि सहे वेष गयो, पण्डिलुस्सग्य जवनादे ११ ५१६ । १ स्विक् स्थान 'मेण्ड व्यानिक्यं वान, क्षित्रमते इति होतः । कियुक्तं भवति ?---मेलुक्यभिष्यं अन्यक्षान् । कियुक्तं भवति ?---मेलुक्यभिष्यं अन्यक्षान् । कियुक्तं भवति । यदा च परिश्वत्रस्य परिश्वत्रि हात्रम्य । अयं च महामोक्ष्यभिष्यं भवति । यदा च परिश्वत्रस्य निर्देषं करोति तदा निरुद्धत्रक्षि काव्यक्रमञ्चले कृतिक्यो । तत्र अव्यक्तं । तत्र क्षान्ति । वत्र क्षान्ति । विश्वत्रक्षां । निर्देषं यस्ति स व्यक्तं स्थानिक्षान्ति । व्यक्तियः । वस्तु विश्वेष्यभिष्यं । निर्देषं व व्यक्तं स्थानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक्षानिक

१ °भिः सार्धमस° कां॰ ॥

स्थोकः ॥ ५१६४ ॥ गतः क्लीवः, अथ वातिकं ज्याचष्टे--

उद्रष्ण वादियस्सा, सविकारं जा ण तस्स संपत्ती । तचनि-असंबुडीए, दिइंतो होइ अलमंते ॥ ५१६५ ॥

यदा सनिमित्तनानिमित्ते वा मोहादयेन सागारिकं 'सबिकारं' काषायितं भवति तदा न क्शकोति वेदं पारियतुं यावन 'तत्व' शतिसेवमानस्य सम्प्राप्तिभवति, एष वातिक उच्यते । अन्न च तचनिकेनासंवृताया अगार्थाः प्रतिसेवकेन दृष्टान्तो भवति—

एगो तक्षतिओ जळयरनावारूढो । तस्य तस्त पुरओ अहाभावेण अगारी असंबुहा निबिद्वा । तस्त य तक्षतियस्त तं दहुं सागारियं थद्धं । तेण वेयउकडवाए असहमाणेण जणपुरओ पडिगाहिया अगारी । तं च पुरिसा हंतुमारद्धा तहावि तेण न मुक्का । जाहे से

अयमपि 'अलमगानः' अशामुक्त् तिरुद्धवेदो नर्युसकतया परिणमति ॥ ५१६५ ॥ उक्तो वातिकः । ''प्रुम्प्रहणेन तजातीयानां सर्वेषामपि गद्दणम्'' इति क्रत्वा अपरानिप नर्यसकमेदान निरुपयति—

> पंडए बाइए कीने, कुंभी ईसाखए ति य । सउणी तकम्मतेवी य, पक्षियपापिक्षिते ति य ॥ ५१६६ ॥ सोगंधिए य आसिने, बद्दिए चिष्पिए ति य । मंतोपिद्धोवहते, इसिसने देवसचे य ॥ ५१६७ ॥

पण्डक-बातिक-क्षीचा अननतरमेव व्याख्याताः । कुम्मी द्विधा-जातिकुम्मी वेरकुम्मी चर्षा समापिकं आनुद्वयं वा वावदीषेण ध्वं महाममाणं भवति स जातिकुम्मी । अयं च मबा- २० जनायां भवनीयः — यदि तम्यातिमहाप्रमाणं सागारिकादिकं तदा न प्रबाध्यते, अधेषच्छूनं ततः भवावयते । वेदकुम्मी नाम-यस्पोत्करमोहतया प्रतितेवनामकममानस्य मेहनं वृषणद्वयं वा ध्यूते स एकानेते निषद्वः, न प्रवाजनीय इति । 'ईप्योड्नाम' यस्य प्रतिसेवमानं हृश्ला हृष्यां-निधुनामं अपतिसेवमानं हृश्ला हृष्यां-निधुनामं अपतिसेवमानं हृश्ला हृष्यां-निधुनामिकाप उत्पयते सोऽपि निरुद्धवेदः कालानतेण त्रेपाशिको भवति । 'धाकृती' वेदोत्करतया प्रवृद्धवेदः प्रतिसेविते त्रा आन इव वदेव जिल्ला हेल् एवं विक्रीनमावसासेवमानः सुन्दमिति मन्यते । पाक्षिकापक्षिकमञ्ज स उच्यते यस्थकाम्यतः शुक्त कृष्णे वा पक्षेऽतीव मोहोदयो भवति । प्रवित्वविते द्वातीयपक्षे न्तु स स्वरुगे भवति ॥ प्रविद्धा

'सोगानिशको नाम' सागारिकस्य गन्धं तुमं मन्यते, स च सागारिकं जिन्नति मरूबित्वा बा इन्हां जिन्नति । ''आसितो नाम'' सीजरीगसक्तः, स मोहोस्कटतमा योनी मेहनमनुप्रविषय <sup>30</sup> नित्यमास्ते । एते सर्वेऽपि निरुद्धक्सयः कालान्तरेण नपुंसकतया परिणमन्ति । ⊲ ऐते च पण्डकादयो दञ्जापि प्रमाजयितुमयोग्याः । तथा ⊳ 'बांद्वेतो नाम' यस्य बालस्येव च्छेद्र वै दस्वा

१ "कारं तस्स जाय संप° तामा०॥ २ ⁴ा रू एतिबहान्तर्गत पाठः कां० एव वर्तते॥ ३ °द्रं इत्या ३०॥

द्वौ आतरावपनीतो । 'विध्वित्तु' यस्य जातमात्रस्वैवाहृष्ठ-प्रदेशिनी-मध्यमाभिर्मजयिस्वा वृषणद्वयं गालितम् । अपरस्तु मन्नेणोपहतो भवति । अन्यः पुनरीषध्या उपहतः । कश्चिद् ऋषिणा हाप्तो भवति---मम तपःप्रभावात् पुरुषमावस्ते मा भूयात् । एवमपरो देवेन रुष्टेन हाप्तः । एते वर्द्धितादयः पडिप यद्यप्तिसेवकास्तदा प्रत्राजयितव्याः ॥ ५१६७॥

'अथैतेषां प्रवाजने प्रायश्चित्तमाह---

दससु वि मूलाऽऽयरिए, वयमाणस्स वि हवंति चउगुरुगा । सेसाणं छण्हं 'पी, आयरिएँ वदंति चउगुरुगा ॥ ५१६८ ॥

पण्डकादीन् आसिकान्सान् दशापि नयुंसकान् यः प्रवाजयति तस्वाऽऽचार्यस्य दशस्पि प्रत्येकं मुक्तम् । तेष्वेव दशस्य यो बदति 'प्रवाजयत' तस्याऽपि चतुर्गुरुका भवन्ति । 'शेषाणां' वर्द्धितादीनां षण्णामपि प्रतिसेवकानां प्रवाजने आचार्यस्य चतुर्गुरुकस् । यो बदति 'प्रवाजयत' 10 तस्यापि चतुर्गुरुकस् ॥ ५१६८ ॥ अथ शिष्यः प्रश्नयति—

थी-पुरिसा जह उदयं, धरॅति झाणोववास-णियमेहिं। एवमपुमं पि उदयं, धरिज जति को तिहें दोसो ॥ ५१६९ ॥ यथा की-पुरुषा ध्यानोपवास-नियमैरुयुक्ता वेदोदयं धारयन्ति, एवम् 'क्युमान्' न्युंस-कोऽपि यदि वेदोदयं धारयेत ततः 'तत्र' मत्राजिते को दोषः स्यात!॥ ५१६९ ॥

> अहवा ततिए दोसो, जायह इयरेसु किं न सो भवति । एवं ख़ नित्थ दिक्खा, सर्वेययाणं न वा तित्थं ॥ ५१७० ॥

अथवा युष्माकमभिमायो भवेत् — 'तृतीये' नधुंतके वेदोवये चारित्रमङ्गळक्षणो दोषो' भवेत्, संत उच्यते — 'इतरयोः' स्त्री-पुरुषयोरिष वेदोदये स दोषः कि न भवति !। अपि च — श्रीणमोहादीन् मुक्तवा रोषाः सर्वेऽिष संसारसा जीवाः सवेदकाः, तेषां च दोषदर्श्वनादेव 20 भवदुक्तनीत्या नास्ति दीक्षा, तदभावाच 'न तीर्थं' न तीर्थस्य सन्ततिर्भवति ॥ ५१७० ॥ सरिराह —

> थी-पुरिसा पत्तेयं, वसंति दोसरहितेसु ठाणेसु । संवास फास दिद्दी, इयरे वत्थंबदिद्वंतो ॥ ५१७१ ॥

की प्रवाजिता कीणां मध्ये निवसति, पुरुष: प्रवाजित: पुरुषमध्ये वसति, एवं ती प्रत्येकं दोष- 26 रहितेषु खानेषु वसत: । इतरस्तु—पण्डको यदि कीणां मध्ये वसति तदा संवासे स्पर्शतो हष्टितश्च दोषा भवन्ति, एवं पुरुषेष्वपि संवसतस्तस्य दोषा भवन्ति । वत्सा-ऽऽब्रह्णान्तश्चात्र भवति—

यथा बस्सो मातरं दृष्ट्या स्वन्यमभिलयति, माताऽपि पुत्रं दृष्ट्या प्रक्रोति; आम्रं वा स्वाद्यमान-मस्वाद्यमानं वा दृष्ट्या यथा मुसं क्कियति; एवं तस्यँ संवासादिना वेदोदयेनामिलाप उत्पद्यते ॥ . सुक्ता-ऽभुक्तमोगिनः साववो वा तमभिल्येषुः । यत एवमतः पण्डको न दीक्षणीयः ३०

१ पि य, आ° तामा॰ ॥ २ तस्यैवं वदतोऽपि कां॰ ॥ ३ °षो जायते 'इत° कां॰ ॥ ४ °स्य पुरुष-स्रीसंवासादिससुरथेन वेदो° कां॰ ॥ ५ साधु-साध्वीजना वा त° कां॰ ॥

25

# **५१७१** # सिलीकारे एतेः सारकेः ननाजनेरंपि-

जिसके जोकीयरिए, रायबुट्टे भए व जानाटे ! केलब उक्तिके, जाके तह देंसण करिये !! ५१७२ !!

स प्रमाजिक सन् अञ्चलकुरक्यकिकां, अञ्चलकुरीतानां वी प्रतिकर्वने करियति । अपनमनमीदर्ये राजद्विष्टे बोधिकादिमये वा आगादे ग्रान्तने उच्चार्ये वा ज्ञाने दर्वने करित्रे वा साहायक क्रिक्यदि । एतेः कारणेः क्ष्यकं प्रमाजयेत ॥ ५१७२ ॥

अभैजामेडे बाशां स्यास्त्वानि ---

शसदुबु-मएसुं, ताबदु निक्स्स वेव समबद्दा । विजो व सबं तस्स व, ताबस्सित वा शिलाबस्त ॥ ५१७३ ॥ सुरुवो व जब्बो या, नावादी निष्युत्तव तस्विद्दिति । चर्चा देसावकपि, तस्वे जोका-अविकेटि वा ॥ ५१०४ ॥

राजिद्विद्वे वोधिकादिको च क्रांणाके नुवस्त क अधिवानकार्यक् । क्रिकुकं भवति !—
राजिद्विद्वे सक्तकतिते देशान्तरं तच्छतां तक्तिकारकार्यक् मं भक्त-धानापुणक्रमं करिप्यति, राजव-क्रांके वा क क्ष्णकारको राज्य-जनुक्रिक्टिक्सि, वेशिकादिको क स क्षण्यास् क्रांक्टस्त परि-12-त्राणं विभावति । स्वान्तकारकारके — स फ्लाकः सक्तेत वैद्यो भक्तेन ताले क्षण्यास् विकित्सं करिप्यति, यद्वा स्वान्तकारके विकास कार्यक्त के वेतन-वेवश्वादिना 'भतिवर्षिय्यति' उपकरि-म्यति । वाश्यक्तिक् उपमार्थकतिभक्तः क क्षणकाद्वायस्य साहाककं करिष्यति, स्वयनेव वाऽ-स्वकुक्तार्थक्रतिस्वत्ते ॥ ५१७३ ॥

त्था पुरोत्त्यस्ये वा इतर्षः व्यक्तिकत्वत् वर्षान्यव्यक्ति शास्त्रत्वि बृह्तोऽद्धे भक-३६ प्रसिदिष्टिक्विनिक्षीयकरिष्यदेति । परवे— वव चारित्रं सक्तितुं न सक्तिते ततो वेसाव-पत्रमणं कुर्वतां मार्थेक्यवादिषु सावनादिष्यत्व कक्ति प्रमादिष्यत्वकार्यक्रियस्ति । कवमा-ऽशिवयोगी प्रतितर्विष्यति । अत्र चानानुपूर्णी अपि वस्तुत्वस्वापनार्थे अवस्थ-ऽशिव-हारयोः पर्वतने व्यक्तिमम् ॥ ५१७६ ॥

एएहिं कारणेहिं, आसादेदिं तु जो उ पन्यावे ।

पंडाईसोलसमं, क्य उ कन्ने विगिक्यमा ॥ ५१७५ ॥

षतः सम्पेरायदेः सपुरसिर्वेरः पण्डकारिशेरयकस्यान्यतः नपुंतकं प्रयाजयति तेस्टऽ-चार्येकं 'कृते' समापिते कार्ये तस्य नपुंतकस्य 'विवेचनं' परिक्षपनं कर्तम्यस् ॥ ५१७५ ॥ तत्र प्रवाजनायां वावद् विभिमाह—

> दुविहो जाममजाणी, अजाणमं पश्चति उ द्वेद्धि । जणपत्वयद्वयाए, नर्जनमणक्रमामे वि ॥ ५१७६ ॥

१ 'त्रचि । के: १ इत्याह—असित्रे का॰ ॥ २ वा वैवादुत्यं करि' कां॰ ॥ ३ 'व विदेशिक मार्थां कां॰ ॥ ४ 'वकमें, त' तामा॰॥ ५ वा वेपाकमें वेतक-मेपजोत्पादनायुक्दस्सं करि' कां॰ ॥ ६ 'म्-आजारादि जावि' कां ॥

्रे विने नपुंतकः — अपको प्राप्तकः । यह यो स्वयति 'प्राप्तकं वेशिकः स्थान-वित्तं न सम्पते' स सानकः, त्रिप्तितोऽज्ञानकः । यह ज्ञानकत्रक्रमानं स्वाप्तक्रियः — मनात् वीक्षाया अयोग्यतः । स्वाप्तक्रमान्येन्यते सावक्ष्यमं स्वित्यस्त, स्वाप्तक्रमं निर्द्धति प्राप्तक्रमं स्वाप्तक्रमं स्वाप्तक्रमं निर्द्धति प्राप्तक्रमं स्वाप्तक्रमं जनप्रत्यार्थम् क्ष्यस्तिः स्वाप्तक्रमं स्व

### कविष्ट्रम् च छिहली, कत्तरिया बंड लोव पाटे य । यम्पकट् समि राउल, यदहार देविविवणा विदिवा ॥ ५१७० ॥

कटीपट्कं स परिषापियतव्यः ३ 'किह्तवे' क्षित्सः तस्य श्विरित धारवीश्व । अप वेष्णकी ३० ततः कर्षयां 'भाण्डेन वा' श्वरेण ग्रण्डनं वियेषम्, लोनो वा विश्वतव्यः । 'धार्ष्टः" वि परतीधिकमतादीनि ल परत्नीयः । इते कार्ये धर्मकथा कर्तन्या वेन लिल्नं चरित्यत्य गण्डलि । अभैवं लिक्नं च ग्रुवाति ततः 'संश्विभिः' आवकैः मञ्जापनीयः । अभ राजकुलं गता कथयति तत्ने व्यवहारोऽपि कर्तव्यः । एवं तस्य 'विभिव्या' परिश्वापना 'विभिव्या' वस्यव्यव्यायाविवेया । एव श्वरापा 'विभिव्या' वस्यव्यव्यायाविवेया । एव श्वरापा । एव श्वरापा 'विभिव्या' वस्यव्याव्यायाविवेया । एव श्वरापा । परिश्वापना भविभिव्या ।

#### कडिपद्वयो अभिनवे, कीरह छिइली व अम्द्रवेबाऽऽसी। कत्तरिया भंडं वा. अणिच्छें एकेकपरिडाणी॥ ५१७८ ॥

कटीपहकोऽभिनवभन्नवितस्य तस्य क्षियते न पुनरमावपूरकः, शिरस्य च ख्रिब्दस्य वाम' शिला भ्रियते । यदि नूषात्—किं ममाभावपूरकं सर्वेषुण्डनं वा व क्ष्मुक्व ?; ततो वृषमा भणन्ति—व्यस्पक्रमपि प्रक्मसेवमेव कृतमासीत् । तत्र्य ग्रुष्टनं कर्तवी कर्तव्यस्य, अत्र नेच्छति २० ततः 'भाष्टेन' धुरेण, द्वारमप्यनिच्छतो लोवः कर्तव्यः । एवसेकैकपरिद्वाणिर्मन्तस्य । शिक्या तु सर्वेत्रापि भारणीया ॥ ५१७८ ॥

> छिइति तु अधिच्छंते, धिक्खुममादीमतं पऽणिच्छंते । परउत्थियवत्तव्यं, उक्तमदाणं ससमए वि ॥ ५१७९ ॥

अय शिक्षामि नेच्छति ततः सर्वमुण्डनमापि विधोयते । यहस्तु-द्विविद्य शिक्षा— 25 महषे आसेवने च । आसेवनाशिक्षायां क्रियाककापमसी न प्राव्यते । यहप्यधिक्षास्यस्— भिक्षकाः—सीमतासेवाम् आदिशब्दात् क्रियालाहीनां च परतीर्थिकानां मतमध्याप्यते, अय तदापै नेच्छति ततः शृद्धारकाव्यं पाठ्यते, तदप्यनिच्छतां द्वादरप्रक्रे यानि परतीर्थिकवकः स्थतानिषद्वानि सृत्राणि तानि पाठवन्ति, तान्यप्यनिच्छतः स्वसमयस्यालापका उत्क्रमण विद्यक्तिता दीयन्ते ॥ ५१७९ ॥ आसेवनाशिक्षायां विविमह्—

वीचार-गोबरे थेरतंजुजो रित ट्रॅं तरुणाणं । बाहेह वर्ष वि बतो, थेरा माहेति जतेणं ॥ ५१८० ॥

१ "इक-परिधानाविभिः कां । । २ विविच" वाधा । ॥ ३ "धारवः । 'श्रिः दे ।।

विचारमूर्मि गच्छन् गोचरं वा पर्यटन् स्विदसाधुसंयुक्तो हिण्डाप्यते । रात्रौ तरुणानां बुद्दे किपेते । तं च सामवो न पाठपन्ति ततो यदि त्रूयात्—मामि पाठ माहयत, ततः कविताः सामवो यत्रन माहयन्ति ॥ ५१८० ॥ कि तत् १ इत्याह्—

वेरग्नकहा विसयाण णिंदणा उद्द-निसियणे गुत्ता ।

चक-खिलएस बहसो, सरोसमिव चोदए तरुणा ॥ ५१८१ ॥

यानि सुत्राणि वैरायकथायां विषयनिन्दायां च निवदानि तानि प्राव्यते, अथवा वैरायक कथा विषयनिन्दा च तस्य पुरतः कथनीया । उतिष्ठन्तो निषीदन्तश्च साभवः 'गुसाः' सुर्षद्वता भवन्ति यथाऽक्षादानं स न पश्यति । तस्य यदि सामाचार्यां जुक-स्वलितानि भवन्तिः, जुकं नाम-विस्थतं किश्चित् कार्यम्, स्वलितं-तदेव विनष्टम्, ततो ये तरुणासे सरोपमिव तं 10 परुषवोभिषेद्वतो नोदयन्ति येन तरुणेषु नानुवन्धं गच्छति ॥ ५१८९ ॥

अध धर्मकथापदं व्याचष्टे---

धम्मकहा पाढिजति, कयकजा वा से धम्ममनखंति ।

मा हण परं पि लोगं, अणुव्वता दिक्ख नो तज्झं ॥ ५१८२ ॥

भैमैकथाः वा स पाठ्यते । 'कृतकार्या वा' थेन कार्येण दीक्षितत्तं समैगिपतवन्तः 'सी' 16 तस्य भर्ममारूपान्ति, यथा— महाभाग ! रजीहरणादि लिक्नं भारयन् परमवं बोपेरुपपातकर-णाय स्वं वर्तसे, ततो मा परमि लोकं 'हन' विनाशय, युख्य रजीहरणादि लिक्नम् , तवाणुव-तानि भारियतुं बुश्यन्ते न दीक्षा ॥ ५१८२ ॥

एवं प्रज्ञापिनो यदि सञ्चति तदा लष्टम् , अथ न सञ्चति ततः--

सिन खरकम्मिओ वा, भेसेति कतो इधेस कंचिको ।

निवसिट्ठे वा दिक्लिवों, एतेहिं अणातें पडिसेहो ॥ ५१८३ ॥

र्थेः सरकर्मिकः संज्ञी स पूर्व प्रज्ञाप्यते — अस्माभिः कारणे त्रेराशिकः प्रवाजितः, स इदानी लिक्नं नेच्छति परित्यक्तं ततो यृथं प्रज्ञापयत । एवमुक्तोऽसावागस्य गुरूत् वन्दिस्वा सर्वोनापि साधूद्र निरीक्षते, ततस्तं पण्डकं पूर्वकथितिचिह्नस्वस्थ्य भूमितलास्कालन-विरः-कम्पन-सर्वाष्टितिरीक्षण-परुपवर्वनेभाष्ययि —कुत एषः 'इह' युव्माकं मध्ये 'कच्चिक्तः' नर्यु- 22 सकः है इति तं च व्रवीति —अपसर साम्प्रतिमितः, जन्यभा व्यपरिपियण्यामि भवन्तम् । प्रयुक्तोऽपि यदि लिक्नं च गुम्रति, त्यरक्षांकस्य वा श्रावकस्यानावे यदि तृपस्य कथयति — अव्यर्ति साम्प्रतं पुतः परित्यज्ञितः, तो व्यवहरिण जेतव्यः । कथम् है हत्याह् — यद्मी जनेनाम्नातो दीक्षितस्ततः मित्येषः क्रियते, 'नासाभिद्धितः' इति अपरुष्प्यत् इत्यर्थः ॥ ५१८३ ॥ अथासी वृवात्—

अज्झाविओ मि एतेहिँ चेव पडिसेघों कि वऽधीयं ते।

१ थते । ते च साधवस्तं न पा' कां ।। २ 'धर्मकथाः' धर्मप्रधाना आस्यायिका उत्तराज्ययनाधन्तर्गताः स पाळा कां ॥ ३ 'माण्य ''से'' ३० ताटी ।। ४ घरि 'खर-कर्मिकः' आरक्षकः 'संकी' आयकस्ततः स पूर्व वां ॥

छलियातिकहं कहृति, कत्थ जती कत्थ छलियाहं ॥ ५१८४ ॥ अहमेतेरेबाध्यापितक्तांतेऽपि प्रतिषेशः कार्यः, न किमप्यसामिष्यापित हत्यथैः। अथवा बक्तस्यस्—किं स्वारंतिस्य ! ततोऽसी छलिवकाव्यादिकधामाकर्षेत् तत्र वक्तस्यस्—कुत्र वस्तयः ! कुत्र च छलितादिकाय्यकया !, साधवो बैरायसागिखिताः युक्तारकथां न पठन्ति न वा पाठपन्ति ॥ ५१८४॥ वयमीहर्यः सर्वेजमाषितं स्त्रं पठानः—

#### पुरुवावरसंज्ञत्तं, वेरम्गकरं सत्तंतमविरुद्धं ।

पोराणमञ्जमागृहभासानियतं हवति सत्तं ॥ ५१८५ ॥

यत्र पूर्वसूत्रनिबन्धः पाश्चात्यसूत्रेण न ज्याह्न्यते तत् पूर्वापरसंयुक्तम् । 'वैराग्यक्रं' विष-यसुस्वयुक्त्वजनकम् । खतन्नेग-स्वसिद्धान्तेन सहाविरुद्धं स्वत्रश्राविरुद्धम्, 'सर्वेशा सर्वेकार्छं सर्वत्र नास्त्यात्मा' इत्यादिस्वसिद्धान्तविरोधरहितमित्यर्थः । 'वोराणं नाम' पुराणेः-तीर्थकर-10 गणधरुक्षणेः पूर्वयुरुषेः प्रणीतम् । अर्थमागधभाषानियतमिति भकटार्थम् । एवंविधमस्पदीयं सूत्रं भवति ॥ '५१८'५ ॥ किश्च-

## जे सुत्तगुणा भणिया, तन्त्रिवरीयाहँ गाहए पुन्ति ।

नित्यिस्नेकारणाणं, सं चेत्र विगिचणे जयणा ॥ ५१८६ ॥
ये सुत्रस्य गुणाः ''निहोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमरुक्तियं ।'' इत्यादयः पीठिकायां ( गा० 16 २८२ ) भणिताः 'तद्विपरीतानि' तद्वुणविकत्यांत भूत्राणि पूर्वमेव तं प्राहयेत् । ततः 'निसीर्ण-कारणानां' समाप्तवित्रश्वितप्रयोजनानां सैव 'विवेचने' परिष्ठापने यतना भवति ॥ ५१८६ ॥

एवं ब्यवहारेण परिष्ठापनविधिरुक्तः । यस्तु ब्यवहारेण न शक्यते परित्यक्तं तस्यायं विधिः— कावालिए सरकस्ते, तचण्णिय वसम ठिंगरूवेणं । वडुंबगपव्यद्दए, कायव्य विहीऍ वोसिरणं ।। ५१८७ ।।

गीतार्था अविकारिणो वृषमा उच्यन्ते, ते कापालिक-सरजस्क-तचिकिकैवेषमर्णेन ते परिष्ठापयन्ति । यः वद्धन्यकः-बहुब्बजनः प्रमाजितस्तस्वेवविषेन विधिना व्युत्सर्जनं कर्तव्यम् ॥ ५१८७ ॥ एतदेव भावयति----

> निववछह बहुपक्लिम वा वि तरुणैविसहामिणं बिंति । भिन्नकहा ओभट्टा, न घडह इह वच परतिर्दिथ ॥ ५१८८ ॥

यो तृपस्य ब्रह्मभो बहुपाक्षिको बा-प्रभृतत्वजन-मित्रवर्गस्योरसं परिष्ठापने विधिः — यदा नयुंसको रहिस तरुणिमश्चमवमापते भित्रकयां वा करोति तदा ते तरुणप्रभा इदं हुवते — 'इह' यतीनां मध्ये इदंशं न घटते, यदि त्वभीदशं कर्त्रुकामोऽसि तत उत्तिष्कमणं कुरु पर-तीर्थिकेषु वा व्रज ॥ ५१८८ ॥ ततो यदि बृयात् —

तुमए समगं आमं, ति निग्गओ भिक्लमाइलक्लेणं। ३० नासति भिक्लुगमादिसु, छोट्टण ततो वि हि पलाति ॥ ५१८९ ॥

१ °वा। पुण, तेर्ण चिय णं विर्विचंति तामा ॥ २ °कसम्बन्धिनः 'लिङ्गरूपेण' वेषप्रहणेन का ॥ २ °वाचसहा इमं विं° तामा ॥ ४ वि विपळा वामा ॥ इर १४४

'स्वया समग्रहं पातीविकेषु गानिष्यामि' प्रसुक्तः स तरुणवृष्य व्याममिति मणित्वा निर्गेष्छति । निर्गेतस्य मिश्रुकादिवेषण गत्या तेषु मिश्रुकादिषु प्रक्षिप्य नश्यति । वः पुगस्तत्र मीतोऽपि तं साधुं न मुक्ति तं रात्रो सुसं मत्या 'तत प्रय' मिश्रुकादिस्थानात् पर्व्यते, मिश्रादिस्त्रस्येण वा निर्गेतो नश्यति ॥ ५१८९ ॥

**७** सूत्रम्—

एवं मुंडावित्तए सिक्खावित्तए उवट्ठावित्तए संभुंजि-त्तर संवासित्तए ५-६-७-८-९ ॥

यथैते एण्डकादयस्यः प्रवानियत् न करुपन्ते एवमेत एव कथिवत् छल्तिन प्रवानित्रा अपि सन्तः 'पुण्डापयितुं' शिरोस्रोचेन छिवतुं न करुपन्ते । एवं 'शिक्षापयितुं' प्रस्पेषणा-10 दिसामानारीं प्राहयितुम् 'उपस्थापयितुं' महावतेषु व्यवस्थापयितुं 'सम्मोकुम्' एकमण्डस्रीसपु-देशादिना व्यवहारयितुं 'संनासयितुय' आस्मसमीपे आसयितुमिति सुत्रार्थः ॥ अत्र भाष्यम्—

पव्वाविओ सिय चि उ, सेसं पणगं अणायरणजोग्गो । अहवा समायरंते, प्ररिमपदऽणिवारिता दोसा ॥ ५१९० ॥

स पण्डकः 'स्मात्' कदाचिदनाभोगादिना मनाजितो भवेत्, इतिशब्दः सक्तःपरामग्रीर्थः ।
18 एवं मनाजितोऽपि यदि पश्चाद् जातखदा ''सेसं पणगं'' ति विभक्तिव्यत्यताद 'शेषपञ्चकस्य'
ग्रुण्डापनादिरुश्चणस्मानाचरणयोग्यः, न तद् आचरणीयमिति भावः । अथ लोभाषमिभूततस्य।
वदिष समाचरति ततः पूर्वस्मिन्-मनाजनास्ये पदे ये मचचनापयशःमनादादयो दोषा उक्ताखे
अनिवारिताः, तदबस्या एव मन्तव्या इति भावः ॥ ५१९० ॥

म्रंडाविजो सिय ची, सेसचउक् अणायरणजोग्गो । अहवा समायरंते, पुरिमपदऽनिवारिया दोसा ॥ ५१९१ ॥

अहवा समायरंते, पुरिमपदऽनिवारिया दोसा ॥ ५१९१ ॥ अनामोगादिना मुण्डापितोऽपि स्मात् ततः 'शेषचतुष्कस्य' शिक्षापनादिरुक्षणस्याचरणे अयोग्यः । अथ समाचरति ततः पूर्वपदरोषा अनिवारिताः ॥ ५१९१ ॥

एवं तिस्रो गाया बक्तव्याः, यथा---

सिक्खाविजो सिय ची, सेसतिगस्सा अणायरणजीग्गो । अहवा समायरंते, पुरिमपदऽनिवारिया दोसा ॥ ५१९२ ॥ उवहाविजो सिय ची, सेसदुगस्सा अणायरणजीग्गो । अहवा समायरंते, पुरिमपदऽनिवारिया दोसा ॥ ५१९३ ॥ संग्रंजिजो सिय ची, संवासेडं जणायरणजीग्गो । अहवा संवासिते, पुरिमपदऽनिवारिया दोसा ॥ ५१९४ ॥

30 प्रवं षद्विधसचित्रज्ञयकस्पस्त्राणि कमेणै भवन्ति ॥ ५१९२ ॥ ५१९३ ॥ ५१९४ ॥ तथा भागामी इष्टान्ताः—

25

१ °ण षडेव भ° कां॰॥

बुकाको कंदाची, उच्छुनिकारा य बह रतावीचा । विक्षित-मोरसाय य, होति विकास जह कमेर्य ॥ ५१९५ ॥ बह वा विसेनवादी, गर्मे जातस्स वाममादीया । होति कमा जोयम्मि, तह छन्तिह कप्यसुता उ ॥ ५१९६ ॥

ववा मुक्तस् कन्द-कन्ध-शालावयो मेदाः क्रमेण भवन्ति, इञ्जविकासध्य स्त-कक्षण्ययो उ ववा क्रमेण कामन्तै, सृत्यिण्डस्य वा यथा स्वाश-कोश-कुशूळादवो गोरसस्य च दिष-ववनीतादवो विकाश यथा क्रमेण भवन्ति, वधा वा गार्भे प्रविद्यस्य जीवस्य निवेकः—जोजा-शुक्तगुद्धलाहर-णळक्षणस्तदाद्यः आदिशब्दान् कळला-ऽर्बुद-पेशीमसृतयः पर्याया भवन्ति, वासस्य वा तस्येव 'नामादयः' नामकरस्य-वृडाकरणप्रसृतयः क्रमाद् यथा ठोके भवन्ति, तथा पद्विभकत्य-स्त्राणि यथाक्षमभाविममानैनास्यिष्ट्कविषयाणि क्रमेण भवन्ति ॥ ५१९५ ॥ ५१९६ ॥ 1

॥ प्रवाजनादिपकृतं समासम्॥

वाचना प्रकृत स्

सूत्रम्--

तेओ नो कप्पंति वाइत्तप्, तं जहा-अविणीष्, विगईपडिवळे, अविओसवियणाहुडे १०॥ तओ कप्पंति वाइत्तप्, तं जहा-विणीष्, नोविगई-पडिवळे, विओसवियपाहुडे ११॥

अखें सम्बन्धमाह---

पंडादी पडिकुट्टा, ङिवह कप्पन्धि या विदिश्वेदं । अविधायवादितितयं, पवादए एस संबंधो ॥ ५१९७ ॥ 20 पण्डकावयसय पर पद्विषे सचित्रव्यकरूपे प्रतिकृक्षाः सम्पे केचित्, एवं विदित्वा 'मा क्षिकीतादिक्तित्वं प्रशाचित्र्ं दृदि क्रत्वा मस्तुतस्वयारम्यते । एव सम्बन्धः ॥ ५१९७ ॥ - अविधायत्रोण सम्बन्धायाः — >

सिक्याक्यं च मोतुं, अविकिक्यादीक सेक्या राजाः । योगंता पश्चित्वा, अवक्को होइ रूपो उ ॥ ५१९४ ॥ ये पुर्वदो च्ह अनुसन्तर्वे इस्कन्नाः अस्तिपदिताः तेनां मध्यवेकां महणशिक्षापणां

१ "जना-मुण्डापना-शिक्षापनोपस्थापना-सम्भोजन-संवासनळक्रणपर्यायचङ्क" को॰ ॥ २ बुक्किसार-विदेशस्त्रुक्तिसारी १वेन स्वयम् "असिजीयसुस्तरत एव वेनंवे" क्षेत्रं अविनीत-बुक्किस निर्देशित ॥ १ क्षा सुबक्क स्तु" स्तंत १ ४ प्राप्तिकस्थवर्यकारनं कोन एव कोते ॥ ५ "दः सचित्रमुख्य" को॰ ॥

मुक्त्वा शेषाणि स्वानानि अविनीतादीनां त्रयाणां नैकान्तेन प्रतिषिद्धानि । महणशिक्षापतिषे-षार्ये त प्रस्तुतं सुत्रमारभ्यते । अयमपरः सम्बन्धस्य 'कल्पः' प्रकारो भवति ॥ ५१९८ ॥

अनेनायातस्याय व्याख्या—त्रयो नो करुपन्ते 'वाचिषदुं' सूत्रं पाटिषदुमधै वा श्राविक तुम् । तद्यथा—'अनिर्मातः' सूत्रा-ऽर्धदातुर्व-दनादिनित्यरहितः । 'निकृतिमतिचद्धः' शृता-६ दिरसिन्दोत्तरुद्धः, अनुम्यानकारीति भावः । अध्यवद्यमितम्-अनुपद्मान्तं मामृतिमिन मामृतं— नत्त्रभावकौद्यत्विकं तीक्ष्रभायवक्षां यस्यासौ अध्यवद्यमितमामृतः ॥ एतद्विपरीतास्तु त्रयोऽपि करूपने वाचित्रप् । तद्यथा—विनीतो नोविकृतिमतिबद्धो व्यवशामितमामृतःश्रेक्षते सुन्नार्थः ॥ अध्य निर्मेक्षित्यताः—

> विगइ अविणीएँ लहुगा, पाहुड गुरुगा य दोम आणादी । सो य इयरे य चत्ता, वितियं अद्धाणमादीसु ॥ ५१९९ ॥

विक्कृतिमतिबद्धमिवनीतं च बाचयनश्रव्युर्ङ्घुकाः । अव्ययदामितपाभृतं बाचयतश्रव्युर्धुरुकाः । आज्ञादयश्र दोषाः । सं च 'इतरे च' साधवः परित्यक्ता भवन्ति । तत्र स तावद् विनयमकुर्येन् ज्ञानाचारं विराधयतीति कृत्वा परित्यकः, इतरे च तमिनीतं दृष्ट्वा विनयं न कुर्यन्तीति परित्यक्ताः । द्वितीयपदमत्र भवति—अध्वादिषु वर्तमानानां योऽविनीतादिरप्युप-15 महं करोति स बाचनीयः । एषा निर्मुक्तिगाथा ॥५१९९॥ एनामेव भाष्यकृद् विद्युणीति—

अविणीयमादियाणं, तिण्ह वि भयणा उ अद्विया होति । पढमगभंगे सुनं, पढमं वितियं तु चरिमम्मि ॥ ५२०० ॥

अविनीतादीनां त्रयाणामपि पदानां अष्टिका भजना भवति, अष्टमङ्गीत्यर्थः । यथा—
अविनीतो विकृतिप्रतिबद्धोऽब्यवशमितमाभृतः १ अविनीतो विकृतिप्रतिबद्धो ब्यवशमित20 प्राभृतः २ इत्यादि यावदष्टमो भङ्गो विनीतो विकृत्यप्रतिबद्धो ब्यवशमितप्राभृतश्चेति । अत्र
च प्रथमे भङ्गे प्रथमतुत्रं निपवति, 'चरमे' अष्टमे भङ्गे द्वितीयं सुत्रमिति ॥ ५२००॥

अथ त्रयाणामपि वाचने यथाकमं दोषानाह----

इहरा वि तार्वं थव्भित, अविणीतो लंभितो किम्रु सुएण । मा णड्डो णस्सिहिती, खए व खारावसेओ तु ॥ ५२०१ ॥

5 'इतरथाऽपि' श्रुतमदानमन्तरेणापि ताबदिबनीतः 'स्तम्यते' स्तन्न्यो भवति किं पुनः श्रुवेन रूम्मितः सन् !, महिमानमिति रोषः । अतः स्वयं नष्टोऽसौ अन्यानपि ना नाशिवप्यति, क्षते वा साराबसेको मा भृदिति हृस्ता नासौ वाचनीयः ॥ ५२०१ ॥ अपि च—

गोजूहस्स पडागा, सयं पयातस्स बहुयति वेगं।

दोसोदए य समर्ण, ण होइ न निदाणतुस्त्र वा ॥ ५२०२ ॥ 30 इह गोपालको गवामप्रतो भूखा यदा पताका दर्शयति तदा नाः शीप्रतरं गच्छन्तीति श्वतः; ततो गोपुश्स्य सर्वं प्रयातस्य यथा पताका वेगं वर्षयति तथा दुर्विनीतस्यापि श्वतप्र-

१ 'स्य सोऽव्य' भा॰ को॰ ॥ २ 'स च' अविनीताविर्वाच्यमानः 'इतरे को॰ ॥ ३ 'ब तस्म' को॰ ॥

15

दानमधिकतरं दुर्विनयं वर्धयति । तथा दोषाणां—रोगाणामुदये 'चः' समुखये 'शमनम्' औषधं न दोयते, यतथ निदानादृश्यितो व्याधिः तसुल्यं—तस्सदृशमि वस्तु रोगमृद्धिमयात्र दीयते; यहा दोषोदये दीयमानं शमनं न निदानतुल्यं भवति, किन्तु भवत्येव, ततो न दातस्यम्; एवमस्याधि दुर्विनयदोषभरे वर्तमानस्य श्वतौषधमहितमिति कृत्वा न देयम्॥ ५२०२॥

विणयाहीया विजा, देंति फलं इह परे य लोगस्मि।

न फलंति विषयहीषा, सस्साणि व तोयहीणाई ॥ ५२०३ ॥

विनयेनाषीता विद्या इह परत्र च छोके फर्छ ददति, जनपूजनीयता-यशःभवादछामादिक-मैहिकं निःश्रेयसादिकं चाऽऽमुध्मिकं फर्छ ढोकयन्तीति हृदयम् । विनयहीनास्तु ता अबीता न फर्छन्ति, सस्यानीव तोयहीनानि—यथा जरुमन्तरेण धान्यानि न फर्छन्ति ॥ ५२०३ ॥

अथ निकृतिप्रतिबद्धमाह—

रसलोलुताइ कोई, विगति ण मुयति दढो वि देहेण । अञ्मोगण व सगडे, न चलइ कोई विणा तीए ॥ ५२०४ ॥ रसलोलुपतया कश्चिद् देहेन दढोऽपि विकृतिं न मुझति स वाचियतुमयोग्यः। कश्चित् पुनरम्पक्रेन विना यथा शकटं न चलति तथा 'तया' विकृत्या विना निर्वोहं न शकोति तस्य

गुरूणामनुज्ञया विधिना गृहतो वाचना दातन्येति ॥ ५२०४ ॥ किञ्च— उस्मर्ग्ग एगस्स वि. ओगाहिमगस्स कारणा कुणति ।

गिण्हति व पडिग्गहए, विगाति वर मे विसर्जिता ॥ ५२०५ ॥ योगं वहमानः कश्चिदेकस्याध्यवगाहिमस्य कारणाट् च विकृत्यनुज्ञापनाविषयं ⊳ कायोस्तर्गे करोति । प्रतिमहे वा विकृति गृह्णाति, वरममुनाऽप्युपायेन मे विकृति विसर्जयितारः ॥ ५२०५ ॥ एवं मायां कृर्वतः किं भवति १ इत्याह—

> अतवो न होति जोगो, ण य फलए इन्छियं फलं विजा। अवि फलति विउलमगुणं. साहणहीणा जहा विजा॥ ५२०६॥

आव फलात विश्वलम्पुण, साहणहाणा जहा विजया ॥ ५२०६ ॥
'अतपाः' तपता विहीनः 'शोगः' शुतस्योद्देश्यापारों न भवति । न चतपता विना
गृह्यमाणा 'विचया' श्रुतज्ञानरूवा 'ईप्सितं' मनोऽभिभेतं फर्ल फलित, 'अपि' इति अभ्युचये,
मखुत वियुक्त 'अगुणम्' अनये फलित । यथा साधनहीना विचा, यस्याः प्रद्रासिमगृतिकाया 25
विद्याया उपवासादिको यः साधनोपशारः सा तमन्तरेण गृह्यमाणिति भावः ॥ ५२०६ ॥

अथाव्यवशमितपाभृतं व्याचष्टे---

अप्पे वि पारमाणि, अवराधे वयति खामियं तं च । बहुसो उदीरयंतो, अविओसियपाहुडो स खलु ॥ ५२०७ ॥ 'अस्पेऽपि' परुषभाषणादावपराधे ''पारमाणि'' परमं कोषसद्यद्धातं यो व्रजति, 'तच्च' ३० अपराधजातं क्षामितमपि यो बहुश उदीरयति स लक्ष्वव्यवशमितप्राभृत उच्यते ॥ ५२०७ ॥

१ <sup>०</sup>न्ति, एवं विद्या अपि विनयमन्तरेण निष्मला मन्तव्येति ॥ ५२०३ ॥ कां॰ ॥ २ ৺ ▷ एतन्मभ्यनतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥

अस्य वाचने दोषानाह---

दुविधो उ परिवाओ, इह चोदण कलह देवपच्छलणा । परलोगस्मि य अफलं, खितस्मि व ऊसरे बीजं ॥ ५२०८ ॥

दुर्विनीजदेशात्रस्य वाचनावाने 'द्वित्यः परित्यानः' इह-परलोकमेदाद् भवति । तत्रेब-। कोकपरित्याना नाम-स यदि स्नारणादिना प्रेयेते तदा कळ्ढं करोति, अपात्रवाचनेन च ममर्च प्रान्तदेवता ळळ्येन् । परलोके तु परित्यागः --तत्व धुतप्रदानं 'अफ्डं' सुगति-वोधिलामादिकं पारत्रिकं फलं न प्राप्यति, उत्तर इव क्षेत्रे बीजमुसं यथा निष्फलं भवति ॥ ५२०८ ॥

"सो य इयरे य चता" (गा० ५१९९) इति पवं व्यारूपाति—

वाइजंति अपत्ता, हणुदाणि वयं पि एरिसा होनी । इय एस परिचातो. इह-परलोगेऽणवत्था य ॥ ५२०९ ॥

स तावद् ज्ञानाचारविराधकतथा संसारं परिश्रमतीति परिस्वकः । इतरेऽपि साधवस्नान् बाच्यमानान् इष्ट्रा चित्तयन्ति — अहो ! अपात्राण्यपि यदि बाच्यन्ते ''हणुदाणि'' चि ततैः साम्भतं वसमपीदशः भवामः; ''इय'' एवं तेषामपि तुर्विनयादौ भवतीमानानामिह-परलोकयोः परिस्वामः कृतो भवति । अनवस्था वैवं भवति, न कोऽपि विनयादिकं करोतीत्यर्थः॥ ५२०९॥ अथ 'द्वितीयपदमध्वादिषु भवति' (गा० ५१९९) इति बसुक्तं तद् व्याचष्टे—

अद्धाण-ओमादि उनमाहरिंम, वार अपत्तं पि त बद्रमाणं ।

धुष्टिल्जमोशान्मि स संधरे वी, अण्णासतीए वि तु ते पि बाए ॥ ५२१० ॥ अपनि वा अवशेषर्थे मा आदिशन्दाद् राजद्विष्टादिषु वा भक्त-पानादिना गच्छस्योपमहे सर्तमानम् 'अपामपि' दुविनीतादिकं छिन्यसम्पन्नं बाचयेत् । अथवा किमप्यपूर्वे धृतं तस्मा20 ऽऽचारेस समस्ति, पानमुत्त्व शिप्यो न मान्यते, तत्त्वान्यत्रासङ्काम्यमाणं व्यवस्थित्वते, ततः संसरणेऽपि अपान्नं वाचयेत् । मान्यते तत्त्वान्यः कोऽपि विष्यस्ततोऽन्यस्मामावे 'मा स्वार्थी विकारताप्' इति इत्या 'वनमि' अपान्नमुत्तं वाचयेत् ॥ ५२१०॥

# ॥ वाचनाप्रकृतं समाप्तम् ॥

संज्ञाच्य प्रकृत मृ

25 सूत्रम्---

तओ दुस्सन्नप्पा पन्नत्ता, तं जहा—दुट्टे मूढे वुग्गा-हिए १२॥

अस्य सम्बन्धमाह---

सम्मचे वि अबोग्या, किष्ठ दिक्खण-वायणास दुइादी । दुस्सक्षत्पारंभो, मा मोह पहिस्समो होजा ॥ ५२११ ॥

१ °तत इदानीं वय' कां०॥ २ °माणे विय संख° तासा०॥

हुद्दादस्कर्थः सम्यक्षकाहणेऽप्ययोग्याः कि धुनर्दीक्षण-वाक्तवीः ?, अतसीषां प्रकापने 'भोकः' निष्फळः प्रकापकस्य परिव्रमो मा मृदिति दुं:संज्ञाप्यस्त्रनारम्यते ॥ ५२११ ॥ अनेन सम्यन्येनायातस्थालः व्यास्त्रया—त्रयः दुः:सेन-हुष्ण्ये संज्ञाप्यन्ते—प्रतिविध्यन्त इति दुःसंज्ञाप्याः भज्ञानाः । तथ्या—(तृष्टः' तस्तं प्रजापकं व प्रति द्वेपवाद् , स वामज्ञप-नीयः हुरेकोपदेशामतिषयेः । एवं 'मृदः' गुण-दीवानिकः । 'खुद्धादितो नान' कुपज्ञापकः ऽ इडीक्कतिविपतिवाववीषः । एव पुत्रार्थः ॥ अब माण्यविस्तरः—

दुस्सम्प्यो तिविहो, दुइाती दुहों विणाती पुन्ति ।

मुंदस्त व निक्खेतो, अद्विद्दो होह् कायच्यो ॥ ५२१२ ॥ दुःसंज्ञाच्यो दुष्टादिमेदात् त्रिविधः । तत्र दुष्टः 'पूर्व' पाराश्चिकप्रत्ने यथा वर्णितः तंथा-ऽत्रापि मन्तव्यः । मुदस्य पुनरष्टविषो निक्षेपो वक्ष्यमाणनीत्या कर्तव्यो भवति ॥ ५२१२ ॥ 10 तत्र पदत्रयनिष्णक्षामध्यक्षेष्ठी तावदाह—

दुहे मृदे बुग्गाहिए य भयणा उ अद्विया होइ । पदमाममें सुनं, पदमें विद्दयं तु चिरिमिश ॥ ५२१३ ॥ दुहो मुदो खुद्धाहित हति त्रिमिः प्रैरिष्टिका मजना मबति, अद्यो मङ्गा इत्यर्थः । अत्र च प्रयोग मङ्गे सर्वमं सूनं निपतित, 'चरमे' अष्टमे भङ्गे 'अटुष्टेऽमूदोऽब्युद्धाहितः' इस्पेनं-18 ठब्रणे 'त्रितीयं' वश्याणं स्त्रसिति ॥ ५२१३ ॥ अत्र युदस्याष्टमा निवेषनाह—

दन्त दिसि खेत काले, गणणा सारिस्ल अभिभवे वेदे । बुग्गाहणममाणे, कसाय मत्ते य मृहपदा ॥ ५२१४ ॥

द्रव्यमुदो दिग्मुदः क्षेत्रमुदः कारुमुदो गणनामुदः सोहर्यमुदोऽभिमवसूदो वेदसृदक्षेत्रखंखा मृदः। तथा "सुगाहण" वि द्युद्धाहणामुदो द्युद्धाहित इति चैकोऽधः, सः च वहसमाणद्भीस- 20 जातवणिकसुतादिवत् । ''अक्षाणि' वि ननः कुस्त्यास्वाद् ' अक्षाने' सिष्ट्याझानस्, तक्ष भारत-रामायणादिकुञासक्षुतिसमुत्यम्, तेन यो मृदः सोऽपि द्युद्धाहितो मण्यते । 'कवाय-मृदः' तीक्षकपायनान्, सः च कपायदुष्टे सूर्यवनास्त्रादिद्धान्तसिद्धेऽन्तमेवति । 'नवो नाग' यक्षाचेरोन मोहोदयेन वा उन्मयीयृदः, सः च अभिमवसूद-वेसमुद्धाद्यावकरतीति । एतानि मृद्धम्दानि भवन्तीति द्वारगावासङ्कोषार्थः ॥ ५२१९ ॥ साम्प्रतमेनामेव विकृणोति— 28

धुमादी बाहिरतो, अंतो धत्त्रगादिणा दव्दे ।

जो इच्चं व ण जाणाति, घडिंगावोद्दों व्य दिद्वं पि ॥ ५२१५ ॥ इह यो बाधेनाभ्यन्तरेण वा इंत्येण मोहसुंगगतः स द्रव्यस्य उच्चते । तत्रं बाधंनी पूनादिनाऽऽक्किलेते यो झाबति, 'अन्तः' अम्यन्तरे च धत्तकेण मंदनकोन्नवेदिनैन वा अकेन यो झबति । अथवा यः पूर्वदृष्टं द्रव्यं कालान्तरे दृष्टमपि न जानीते से द्रव्यम्द्रः। १०० षटिकावोद्वयत—

१ °वः प्रस्तुतस्त्रीपासाः सम्य<sup>०</sup> क्षं । । २ एतदनगरे क्षं ० पुस्तके प्रश्याश्रम्—२००० इति वर्तते ॥ ३ °क्कीमाह मो० ॥ ४ °क्को व दिद्वतो तामान ॥

पगस्स वाणियस्त पविस्वस्त मज्ज पंडरोगण समंसंपरुगा। पंडरोगण मण्णति — व्यणिव्युयण् हियण् केरिसी रती ?, विविक्तविसम्मरसो हि कामः, तो नस्सामो। 'मा य अयसो
होहिति' चि जणाहमङ्यं छोढुं पसीवित्ता नद्दाणि गंगातडं गयाइं । सो विणितो अलया
आगजो घरं दक्कं पासिता ताणि य अद्वियाणि रोवित्रमाडतो । मज्जासिणेहाणुरागेणं 'एयाणि
। अद्वीणि से गंगं नेमि' ति ताणि जणाहमङ्याद्वियाणि पश्चियाण् छोढुं गंगं गती । तीए
भज्जाए य दिहो, न य संजाणित । ताण् पुष्टिछजो — को तुमं ! तेण अक्वायं –पविस्यस्त
घरं रहुं, भज्जा य मे दक्का, ततो मण् भज्जाणुरागेणं 'ताणि अद्वियाणि गंगं नेमि' ति
आगतो, 'गंगाण् छुटेहिं सुगतिं जाहिति' एवं पि ता से सेयं करिम । तीसे अणुकंशा
जाया। तीए भणियं — अइं सा तव भज्जा। न पिचयित । एयाणि अद्वियाणि के अलिक10याणि १। बहुविहं भल्तमणो जाहे न पिचयित ताहे तीए जं पुर्वि कील्टियं जेपियं सुर्व एवमादि सर्व साभित्राणं संवादियं ताहे पिचित्राओ। एम दबसुढो ॥ ॥ ५२१५॥

अथ दिग्मद-क्षेत्रमृद-कालमृदानाह-

#### दिसम्हो पुन्वाऽवर, मण्णति खेत्ते तु खेत्तवचासं । दिव-रातिविवचासो, काले पिंडारदिद्रंतो ॥ ५२१६ ॥

ह सिम्बूडो नाम — विषरीत्रो दिशं मन्यते, यथा—पूर्वीमपरामिति । क्षेत्रमुढः — क्षेत्रं न जानाति, क्षेत्रस्य वा विषयीसं करोति, विषरीतमबुङ्यते हत्यर्थः, रात्रा वा परसंतारकमास्मीयं मन्यते, एप क्षेत्रमृढः । कारुमुढो दिवसं रात्रिं मन्यते । अत्र पिण्डारहृष्टान्तः —

एगो पिंडारगो उठमामिगासुतो अठमवहरू माहिमद्भि-दुद्धं निमदं पाउं दिवसतो मुत्तो । तओ उद्विओ निह्मचमदितो जोण्हं मण्णमाणो दिवा चेव महिसीओ घरेसु छोहूण उठमामि-२० गावरं पहितो । 'किमेवं !' ति जणकरूकको जातो तओ विरुक्षणीमुओ ति । एवं दिव-सङ्-विवक्षासं कुणंतो कारुमुद्दो भण्णह् ॥ ॥ ५२१६ ॥

गणनामूढं सादृश्यमूढं चाह---

ऊणाधिय मत्रंतो, उट्टारूडो व गणणतो मृदो । सारिक्स थाणु पुरिसो, कडंबिसंगामदिदंतो ॥ ५२१७ ॥

यो गणयन् ऊनमधिकं वा मन्यते स उष्ट्रारुह इव गणनामृदो भण्यते ।

जहा — एगो उद्दयको उद्दीओ एगवीसे स्वसद । अन्नया उद्दीग आरूढो गणितो जस्य आरूढो सं न गणेद, सेमा वीस गणेद । पुणो वि गणेद चीस । 'निस्य मे एगो उद्दोग' वि अण्णे पुच्छद । तेहिं भणितो — जस्यारूढो सि एस ते इगवीसद्दमो ॥

साहद्रथम्हो यथा खाणुं पुरुषं मन्यते । अत्र च कुटुम्बिनी—महत्तर-सेनापती तयोः ३० सङ्गासेण दृष्टान्त:—

एगो गामो चोरसेणावइणा चोरेहिं समं आगंतण रचीए हतो । तत्थ य गामे जो महचरी

१ °णियस्स भजा पंडरंगेण समं संपद्धग्गा । अन्नया सो वाणियो पडत्थो । पंडरंगेणं भण्णति—अणिब्बुयपहिं केरिसी कां॰ ॥

80

सो तत्व चोरसेणावहस्स सरिसो । तञो संगामे उविद्वर चोरसेणावई मारितो, गामिक्वराई 'महस्वरो' वि मण्णमाणेहिं दहुो । चोरेहि य गाममहस्यरो 'सेणावह' वि काउं पिंक नीओ । सो मणति—नाहं सेणाहिचो । चोरा भणंति—एस रणिसमाइओ वि पठवइ । अलग सो नासिउं सगामं गतो । ते भणंति—को सि तुमं १ पेतो पिसाओ वा तेण पिडक्तिण आगओ । तका सामिक्वरा ॥ पर १०॥ ठ अवाभो । ते भणंति—को सि तुमं १ पेतो पिसाओ वा तेण पिडक्तिण आगो । तो सामिक्वरा ॥ पर १०॥ ठ अवाभिमवस्यमाह—

अभिभूतो सम्मुज्झति, सत्थ-ऽग्गी-वादि-सावयादीहिं । अन्भुदय अणंगरती, वेदम्मि तु रायदिव्वंतो ॥ ५२१८ ॥

सङ्घामादी सङ्गादिना अक्षेण, प्रदीपनके वा अभिना, वादकाले वा बादिना, अरण्ये बा श्वापद-स्तेनादिभिश्वाभिमृतो यः सम्मुखति सोऽभिभवमृदः । वेदमृदस्तु स उच्यते यः 10 'अभ्युदयेन' अतीववेदोदयेन 'अनङ्गतिम्' अनङ्गकीडां करोति । राजदृष्टान्तवात्र भवति —

जहा आर्णदपुरं नगरं। जितारी राया। वीसत्था भारिया। तस्स पुरो आर्णमी नाम बाल्क अन्विरोगण गहितो निष्कं रुपंतो अच्छति। अलया जणणीते णगिणियाए आहाभावेण जाणु-करुअंतरे छोडुं उवगृहितो। दो ति तीस गुन्झा परीप्तरं समस्पिडात, तहेब दुण्डिको दितो। ह्यात रुपंत पुणो पुणो पुणो तस्य करेति। सो वि हायति रुपंती पब्रुमाणो तस्य 15 मिद्धो। मातुप्त व अणुप्पियं। पिता से मतो। सो राजे दितो तहावि तं मायरं परियुंजति। सविवादीह बुबमाणो वि णो दितो॥ ।

पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं चार्थे सङ्ग्रहीतुमिमां गाथामाह-

राया य खंतियाए, विण महिलाए कुला कुईबिम्मि । दीवे य पंचसेले, अंधलग सुवण्णकारे य ॥ ५२१९ ॥

'राजा' अनन्तरोक्तः सन्तिकायामनुरक्तो वेदम्हः । 'वणिग्' **घटिकावोद्रास्त्रः समहि** त्ययां रक्तः समहेलामनुपत्रक्षयम् द्रन्यमूदः । 'कुदुन्विनः' सेनापतेर्महत्तरस्य च कुलानि साह-स्यमुद्धे उदाहरणम् ॥

"दीवे" वि द्वीपजातः पुरुषः । "पंचसेर्ले" वि पश्चशैलवास्त्रव्याभिरप्सरोभिन्धुंद्वाहितः धुवर्णकारः । "अंचलगं" वि धूर्तव्युद्धाहिता अन्याः । "चुवन्नगारे" वि धुवर्णकारःयुद्धाहितः अ पुरुषः । पते चत्वारोऽपि वक्ष्यमाणलक्षणा व्युद्धाहणामुद्धा मन्तन्याः । एष सङ्गह्दगाधासमा-सार्थः ॥ ५२१९ ॥ साध्यतमेनामेव विवृणोति—

> बार्डस्त अच्छिरोने, सागारिय देवि संफुसे तुसिणी। उभय चियचऽभिसेने, ण ठाति चुचो वि मंतीहिं॥ ५२२०॥ छीद्रणऽणाद्दमडयं, झामित्तु घरं पतिम्मि उ पउत्थे। घुच हरणुज्य पति अद्वि गंग कहिते य सदद्दणा॥ ५२२१॥ सेणावतिस्स सरिसो, वणितो गामिछतो णित्रो पर्छि।

१°ळच्च अ'ताभा०॥ २ छोदुं अणा°ताभा०॥

णाहं ति रणिसाई, घरे वि दह्वो ति योच्छति ॥ ५२२२ ॥ हेदं गावात्रवं गतार्थम् । नवरम्—"उमय चियपऽभिसेगे" ति 'उमयोरिष' दे<del>वी कुमारवोः</del> प्रीतिकरं तद् विषयसेवनम् । राज्याभिषेकेऽपि सङ्गाते तामसी न मुखति ॥ ५२२० ॥

हितीयगात्रायाम्—''युत्त हरणुञ्झ'' वि पूर्तेन तस्ता वणिग्मार्थाया अपहरणम् । क्ला क्षणि पतिस्रज्ञित्वा ग्रह्मातटे गमनम् ॥ ५२२१ ॥

तृतीयगाथायाम्—"नाहं ति" इत्यादि, महत्तरेण 'नाहं सेनापतिः' इत्युक्ते चौरास्थित-यन्ति—एष रणपिशाचकी तेनैवं वक्ति । गुहेऽपि गतं तं महत्तरे ते प्रामेषकाः 'दग्वः' इति इत्या नेच्छन्ति सक्कीतम् ॥ ५२२२ ॥

व्यास्थातो मुदः । सम्पति व्युद्धाहितं व्याचिस्यामुद्धीपजातदृष्टान्तमाह— पोतविश्वनी आवण्यसच फलएण गाहिया दीवं ।

सुतजम्म विद्व भोगा, बुग्गाहण णाववणियाऽऽया ॥ ५२२३ ॥

प्यो बिलतो । तस्य भजा अर्ध्व रहा । सो बाणिज्ञेण गंतुकामो तं आयुच्छिति । तीप भिष्यं — अर्ह पि आगच्छामि । तेण सा नीता । सा गुविणी । समुद्दमञ्जे बिणहं जाणवर्ष । सा फत्या विकरमा अंतरदीने पणा । तर्थव पद्ता दार्य । सो बिणिजो समुद्दे मजी । सा 15 महिका समि चेव दारए संपठमा । ताए सो बुम्माहितो — जह माणुसं विप्छिज्ञासि तो नासिज्ञाति ते नाणुसक्ष्येण रक्तवा । अन्नया दुन्यावह्ययोप्ण वाणिया आगया । ते दहुं सो नासिद्द । तेहि वायं बुम्माहिजो केणावि । कह वि अर्धाणो पुच्छिजो सम्बं कर्दह । तेहि बहुसो पन्नविजो — एयं महायावं, परिचयाहि । तहा वि नो परिचयति ॥

अधासराधः—'पोतः' प्रवहणं तस्स विपतिः । आपन्नसस्या च सा फरूकेन द्वीपं प्राहिता । १० सुतस्य जन्म इद्धिधाभवेत्, भोगांध्र तेन सह भोकुमारच्या । व्युद्धाहणकं च कृतम् । नीव-णिजस्य चिरादायाताः । एवंतिधा व्युद्धाहिताः प्रज्ञापनाया अयोग्याः ॥ ५२२३ ॥

तथा चाह---

पुर्विय दुग्गाहिया, केई, णरा पंडियमाणिणो । णिच्छंति कारणं किंची, दीवजाते जहा नरे ॥ ५२२४ ॥ 25 पूर्वे स्युद्राहिताः केचिद् नराः पण्डितगानिनो नेच्छन्ति कारणं किश्चित् श्रोद्धामिति शेषः, द्वीपजातो यथा नरः॥ ५२२४ ॥ अय पश्चरीलहष्टान्तमाह—

चंपा अणगसेणो, पंचाडच्छार थेर णयण दुम नलए । विद्वपास णयण सावग, इंगिणिमरणे य उवनातो ॥ ५२२५ ॥ चम्पायामनङ्गसेन: सुवर्णकारः, कुमारन-दीति तस्य नामानतस्य । तस्य च **पंचाडीतः** उठ द्वीपनास्त्रत्याभ्यामप्रसरोन्यां खुद्धाहितस्य स्विरेण तत्र नयनम् । 'द्वमश्य' वटकुरोऽपान्ताले

१ इदं माधात्रयं चूर्णिद्धयेऽप्यग्रहीतत्नाइन्यकर्ष्टकमित्र सङ्ग्रते । गतार्थं चैतत् । नवरम् भाष्यः २ वताम् ।भोष्योगः ॥ ३ ताः, तैः प्रकापितोऽपि न परित्यकवाद् । पर्षं धंगा ४ व्यासिक्ष्येतः॥ हद्वः तबाऽऽरोहणन् । सनिरल 'बळ्ने' आवर्षे गरवा मरगम् । 'बिहपास' चि 'बिहगाः' भारण्डनामानः पश्चिणक्षेत्रां दर्शनम् । तैः प्रेस्चीलद्वीपे नयनम् । हास-प्रहासाम्यां स्थ इहानीतस्य आवकेष च बहुतरं प्रज्ञाप्यमानस्य तस्त्रेन्निनीमरणमतिपविः । ततः प्रेस्चन्नैलद्वीपे उपपात इत्यक्षरार्थः । कथानकं तु (ग्रन्याप्रम्—२००० । सर्वप्रमाप्रम्—२५०२५), स्रमतीतं बहनिस्तरं चेति इत्या न लिस्पते ॥ ५२२५ ॥ अन्यस्वष्टान्तमाह—

अंधलगमत्त परिथव, किमिच्छ सेजऽण्ण धुत्त बंचणता । अंधलमत्तो देसो. पव्ययसंबादणा हरणा ॥ ५२२६ ॥

कारभक्तः किस्त् गार्थिवः । स किसीप्सितं शप्या-ऽनादिदानं ददाति । धूर्नेन च तैकां वचना । कचन् ! इत्याह—'अन्यरुमकोऽनुको देशः समस्ति तत्र पुष्पान् नयामः' इत्युक्तः पर्वते सङ्घाटना कृता, परस्परं रूगियत्वा तत्रै आभिता इत्यर्थः । ततः 'हर्णं' तदीयं प्रस्यं 10 हृत्वा गत इत्यक्षरार्थः । भावार्थः पुनरयस—

अंधपुरं नगरं । तत्व अर्णाची राया । सो य अंधभतो । तेण समं काउं अंधलयाणं लगाहारो दिन्नो । तत्य लाण-पाणाहर सुपरिमाहिया सुस्सूसिजंता अच्छंति । तेर्सि सुवहं दं अध्य । अन्नया य एगेण पुरेण दिहा । तलो 'एए सुसामि' ति मिच्छोबयारेणं ते अतीव उवचरति । अन्या तेण अंधरुमा मणिया—अन्ये अंधरुमादासा, जास अन्ये बसामो 18 सी सखी वि देसो अंधरुमारो, राया य तत्य अंधरुणं अम्मापियरं, तुक्रमे एरव दुहिया, जह इच्छह तो तत्य गेमो । तेर्हि इच्छियं । तजो रावो नीणेषा नाहदूरेण भणिया—इह्डलिय नोरा, जह में किंजि अंतदणं अध्य तो अपरेह । तेर्हि बीसंमेण अध्यमं । तजो तेण ते पुरिहं मिमाहस्स काइचा अन्नोकस्मा महंत सिर्छ छिन्नदं के डीगरसमं मामिया भणिया य—पथरे गेणहर, जो में अक्षियह तं परणेजाह, जह में कोह भणेजा—'सुसिया केण वि 20 अंधा होगरं मामिया' जाणह ते चोरे, तजो परणिजाह । एवं मणिया पकाणो । ते य गोवाधमाईहि दिहा, मणंति य—मुद्धा दारामा होगरं मामिया पुरेणं । तक्षो 'एते ते चोर' ति काउं पत्थरे स्विती दोयं च न देति ॥ ५२२६ ॥ सुवर्णकारहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शन्तमाहर्शनसाहर्शन्तमाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्यास्त साहर्यास्त साहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनसाहर्शनस

लोमेण मोरगाणं, भवन ! छेजेज मा हु ते कचा । छादेमि णं तंबेणं, जति पत्तियसे ण लोगस्स ॥ ५२२७ ॥

कथिय् बोदः मुर्चणकारेण मणितः, यथा—'भयकः ।' भागिनेयः । 'भोरगाणं' ति कुण्ड-कानां कोयेन मा 'ते' तत कर्णों क्रियेताय्, अतो यदि कोकल न मत्ययते ⊲ तैतः ''ण'भिति एतत् कृष्डल्युगर्ज ⊳ तामेण कादयान्यद्वभित्यक्तार्थः । भावार्थस्यमय्—

पगस्स बोह्स्स जन्मधुनणपाडियाणि क्वंडकाणि कवणेष्य सुनण्यकारेण विद्वाणि। तजो तेण भण्णह—भागिणेजा! जहां तब पते एवं करेमि जहा पगाणियस्स पंथे नव्यमाणस्स न ३० कोइ हरह, अलहा ते सुनण्याखोमेण शेरेहिं कच्या केजेस्सति। तेण मणियं—एवं होउ

१-२ °श्चरीक° वे ।। ३ °श्च ले कार्वेऽप्यन्थाः आसि° कां ।। ४ प ▷ एतदानार्यतः पाठः कां ० एव वर्षते ॥

पि। कलाएण ते कुंडले चेतुं अन्ने सुवनतीरियामया काउं दिण्णा, भणिओ अ—जणो मणिडिङ्—कलएण मुद्दो बराओ, न य ते पिंचिज्ञयव्यं। 'एवं' पडिबज्जिता निमाओ। कोगो जो जो पासह सो सो भणइ—सुंदरा रीरिया। सो भणह—सोबन्निया एए, तुब्से चिसेसं न साणह।। ५२२७॥ किस्र—

जो इत्थं भृतत्थो, तमहं जाणे कलायमामी य।

बुग्गाहितो न जाणति. हितएहिं हितं पि मण्णंतो ॥ ५२२८ ॥

योऽत्र कोऽपि 'भूतार्थः' परमार्थः तमहं जाने कलदमामकश्च जानाति । एवमसौ तेन सुवर्णकारेण व्युद्धाहितो हितैः पुरुषेः हितमपि भण्यमानो न जानाति । ईदशा व्युद्धाहणासूदा मन्तव्याः । अञ्चानमूदादयस्य सुगमत्वाद् भाष्यकृता न व्याख्याताः, अत प्रवासाभिद्धीरगा10 सायानेव व्याख्याता इति ॥ ५२२८ ॥

अधैषां मध्ये के मुदाः ! के वा ल्युद्धाहिताः ! इति दर्शयन्नाह—

रायकुमारो वणितो, एते मूढा कुला य ते दो वि । बुग्गाहिया य दीवे, सेलंघल-भच्चए चेव ॥ ५२२९ ॥

यो राजकुमारो मातृपतिसेवकः, यथ विष्ण घटिकाबोद्राख्यः, ये व 'ते' सेनापति-मह-15 परसत्के द्वे अपि कुले, एते मृदा मन्तव्याः । यस्तु द्वीपवानः, यश्च पञ्चक्रैलखुवर्णकारः, ये बान्धाः, यश्च 'भषकः' सुवर्णकारमाणिनेयः, उपलक्षणस्वाद् ये च भारतादिकुशास्त्रश्चति-मानिता अञ्चानमृद्धाः, एते व्युद्धाहिता मन्तव्याः ॥ ५२२९ ॥

अवेषां मध्ये के प्रवाजयितुं योग्याः ? के वान ? इत्याह—

मोत्तृण वेदमृढं, अप्पडिसिद्धा उ सेसका मृहा।

बुग्गाहिता ये दुद्वा, पडिसिद्धा कारणं मोर्त्तुं ॥ ५२३० ॥

वेदमुदं मुक्ता ये 'होषाः' इत्य-क्षेत्रमृदादयसोऽप्रतिपिद्धाः, प्रत्राजयितुं कत्यन्त इत्यर्थः । ये द्व न्युद्धाहिताः 'दुष्टाश्च' कषायदुष्टादयसे कारणं मुक्ता प्रतिपिद्धाः, कारणे द्व कत्यन्त इति भावः ॥ ५२३० ॥ किमयेमेते प्रतिपिद्धाः ? इत्याह—

जं तेहिँ अभिग्गहियं, आमरणंताए तं न म्रंचंति ।

25 सम्मर्च पि ण लेग्गति, तेसिं कत्तो चरित्तगुणा ॥ ५२३१ ॥

यत् 'तैः' न्युद्वाहितादिभिः किमपि शाक्यादिदर्शनम् अन्यद्वा भारतादिकं मिध्याश्चतम् 'अभिगृहीतम्' आभिमुख्येनोपादेयतया सीकृतं तद् आमरणाद्वा न मुझन्ति । अत एवेतेश्रां सम्यक्तमपि न रुगति, कृतश्चारित्रगुणाः ' इति ॥ ५२३२ ॥

कथं पुनरमीयां सम्यत्त्वमपि न लगति ! इत्याह-

80

सोय-सुय-घोररणग्रुह-दारभरण-पेयकिश्वमहष्सु । सम्मेसु देवपूर्यण-चिरजीवण-दाणदिद्वेसु ॥ ५२३२ ॥

१ °त्र-काळ-गणना-सादस्यमृदा विशेष २ लब्भित तामा ॥ ३ 'आमरणान्ततया' मरणळभ्रणमन्ते यावद् न मु का ॥

इवेनमाहलोइयकुस्युहनुग्गाहणाकुहियकचा । फुडमवि दाइजंतं, गिण्हंति न कारणं केई ॥ ५२३३ ॥

इह भारतारी शीच-पुत-घोररणप्रस-दारमरण-भेतक्कत्यमथेषु देवपूजन-चिरजीवन-दान-हुटेषु च स्रोपु ये मानिता भवन्ति, यथा—शौचनिधानात् पुत्रोत्पादनाद् वोरसमरशिरः-प्रवेज्ञाद् धर्मपत्रीपोषणात् पिण्डपदानादिभेत्यकर्मनिधानाद् वैधानसदिदेवपूजनात् चन्द्रसहसा- ऽ दिक्रपचिरकाळजीवनाद् धेनु धरिच्यादिदानात् सर्गा अवाप्यन्ते ॥ ५२३२ ॥

इत्येवमादिकीकिककुश्चतित्युद्धाहणाकुष्यितकर्णाः सन्तत्तत्त्वाः कुश्चतेरघटनायां स्कुटमिष दर्श्यमानं 'कारणम्' उपपर्ति 'केचिट्' गुरुकर्भाणो न प्रतिपद्यन्ते अवस्ते दुःसंज्ञाच्या मन्तस्याः ॥ ५२३३ ॥

सूत्रम्--

तओ सुसण्णप्पा पन्नत्ता, तं जहा—अदुट्टे अमृढे अवुग्गाहिए १३ ॥

त्रयः 'सुर्पेज्ञाय्याः' सुलप्रज्ञापनीयाः प्रज्ञपाः । तद्यथा —अदुष्टोऽप्रदोऽन्युद्राहितथेति ॥ आह्—पूर्वस्त्रेणेवार्थापत्त्या इदमवसीयते —यदेतद्विपरीता अदुष्टादयः सुसंज्ञाप्याः ततः किमर्थमिदमारच्यम् ! उच्यते —

> कामं विषक्लसिद्धी, अत्थावत्तीइ होतऽवृत्ता वि । तह वि विवक्लो बुचति, कालियसुयधम्मता एसा ॥ ५२३४ ॥

पह । व । पपमचा चुनात, काराव्यकुष्य व्यक्ता एता । ११२३ । क्षाम व कहान महात तथापि काम का प्रकृति तथापि विश्व साहित्यकार्यक्षीयच्या महति तथापि विश्व साहातुच्यते । कुतः ! हत्याह —कार्किकधुत्रयः 'धर्मता' स्वमादः ठीठी एपा — यदर्थापविक्रक्षोऽप्यर्थः साक्षाद्रीभयीयते ॥ ५२३७ ॥ तथा च तक्ष्रणान्येव दर्शयति — 20

वनहार णड्स्थवत्ती, अणप्पिएण य चउत्थमासाए । मृहणय अगमितेण य, कालेण य कालियं नेयं ॥ ५२३५ ॥

"ववहारे"ति नैगम-सङ्गह-स्ववहाराख्याखयो ज्यवहाराय उच्यते, ऋजुम्जाधास्त्र चलारो निश्चवनथः। तत्र 'व्यवहारण' ज्यवहारत्यमतेन कालिकश्चने प्रायः सूत्रार्धनिवन्यो भवति, ''अहिगारो तीहि लोसलं" ति' ( लाव० निर्यु० गा० ७६० ) बचनात् । ''नऽरववनी''ति १८ ल्यांपिः कालिकश्चते न व्यवहियते किन्द्र तथा ठळ्योऽप्ययंः प्रपश्चितज्ञविनेयजनानुमहाय साखादेवाभिषीयते, यथा उत्तराख्यमुष्ट प्रयमाध्ययने ''आणानिहेसकरे'' (गा० २ ) हत्यादिना विनीतस्तरपमिभाषार्थापिठक्यमप्यविनीतस्तरपम् ''आणालिहेसकरे'' (गा० ३ ) हत्यादिना सूयः साक्षाद्विमिहितमिति । ''अण्णिएण् य'' वि 'अनर्पितं—विषय-विमान्सवर्णं तेन कालिकश्चतं रचितम् विनीत्यस्तर्भार्थं तथा — ''वे भिक्ष् १० हत्यादिन सूयः साक्षाद्विमिहतमिति । ''अण्णिएण् य'' वि 'अनर्पितं—विषय-विमान्सवर्णं तेन कालिकश्चतं रचितम् विभारसानर्थं तिमत्यः, यथा — ''वे भिक्षु १० हत्यादिन सूयः साक्षाद्विमिहतमित्यं । स्वापः विभारसानर्थं तेन कालिकश्चतं रचितम् विभारसानर्थं तिमत्यः । उ० १ स्त १ );

कत्र च बिक्तिक रिरो यथा हरतकर्म से बनानस्य मासगुरुकं भवति स विशेषः सृत्रे साक्षाक्षोकः परमर्वादवगन्तन्त्रः, एवमन्यत्रापि दृष्ट्यम्। "वडस्यमासाए" वि हृह सत्या-मृत्रा-मिका-इस-स्वाद्यगन्द्रवान्त्रन्तः, एवमन्यत्रापि दृष्ट्यम्। "वडस्यमासाए" वि हृह सत्या-मृत्रा-मिका-इस-स्वाद्यगन्द्रवान् कालकर्षत्र व वमानान्तरे स्वाद्याः सेव माणकर्षत्र व वमानान्तरे स्वाद्याः भागाः स्वाद्यग्ने स्वाद्यग्ने स्वाद्यगन्द्रस्य भागाः स्वाद्यगन्द्रस्य भागाः स्वाद्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्यगन्द्यगन्द्यगन्द्यगन्द्यन्याद्यगन्द्यगन्द्रस्य स्वाद्यगन्द्यगन्द्यन्य स्वाद्यगन्द्यगन्द्

॥ संज्ञाप्यवकृतं समाप्तम् ॥

#### ग्लान प्रकृत म्

सूत्रम्--

15

20

25

निगांधिं च णं गिळायमाणिं पिता वा भाया वा प्रजो वा पिळस्सएजा, तं च निग्गंधी साइजेजा, मेहुणपिडसेवणपत्ता आवजह चाउम्मासियं परिहारट्टाणं अणुग्घाइयं १४॥ निग्गंधे च णं गिळायमाणं माया वा भगिणी वा भूता वा पिळस्सएजा, तं च निग्गंधे साइजेजा, मेहुणपिडसेवणपत्ते आवजह चाउम्मासियं परिहार-ट्टाणं अणुग्घाइयं १५॥

अथास्य सूत्रद्वयस्य कः सम्बन्धः ? इत्याह---

उवहयभावं दब्वं, सिंबत्तं इति णिवारियं सुत्ते । भावाऽसुभसंवरणं, गिलाणसुत्ते वि जोगोऽयं ॥ ५२३६ ॥

१ इति नन्द्रध्ययनवन्त्र<sup>०</sup> का० ॥

दुष्टतादिमियोंकैः वपहतः-पूर्वतः भावः-परिणामो यस्य तदुषहतमावम् , एवंविषं सम्बन्धं द्रव्यं प्रमाजनादी ''ह्य'' एवमनस्तरस्ये निवारितम् । इहाषि ग्लानख्येःशुभभावस्य परिप्त-जनानुमीदनरुक्षणस्य 'संवर्ण' निवारणं विश्वीयते । जयं 'बीगः' सन्वन्यः ॥ ५२३६ ॥

अनेनायातस्वास्य व्यास्था—'निर्मन्यां' प्रागुक्तशब्दाश्चीम्, चशक्यो वाक्यान्तरीवस्वासे, ''अं'' इति वाक्याकक्कारे, ''गिकायमाणिं' ति 'स्कायन्तीं' ''क्षे द्ववेशने'' शरीरखनेल द्वेष-६ वसनुवनन्तीं पिता वा जाता वा पुत्रो वा निर्मन्यः सन् 'परिच्वजेत्' प्रयक्तीं शारवन् निर्व-शवन् उत्थापयन् वा शरीरे स्पृशेत्, 'तं व' पुरुषस्थं सा निर्मन्यो मैशुनभित्येवनगाशा 'आवजेत्' अनुमोदवेत् तत आपयते चातुर्मीसिकं परिद्वारक्षानमगुद्धातिकम् ॥

एवं निर्फ्रन्यसूत्रमपि व्यास्त्रेयम् । नदरम्-माता वा मिगनी वा दृष्टिता वा परिष्वजैल्, एव सुवार्थः ॥ अथ निर्पुक्तिनिस्तरः-तत्र परः माह-नतु 'पुरुजोत्तमो धर्मः' इति इत्वा 10 प्रथमं निर्फ्रन्यस्य सुत्रमिधातस्य ततो निर्फ्रन्यमः, अतः किमधै स्यसासः ! इत्याह-

> कामं पुरिसादीया, धम्मा सुत्ते विवज्जतो तह वि । दुम्बलःचलस्समावा, जेणित्थी तो कता पदमं ॥ ५२३७ ॥

'कामन्' अञ्चनतिनित्म — यत् 'पुरुषादयः' पुरुषपुरुष्य धर्मा समन्ति, तशाणि सूते विपर्वयः इतः । कुतः : इत्याहः — दुर्वछः चृतिवछविकछः चरुरुमावा च स्त्री येन कारणैन 15 सवति ततः मधनमसी कृता इत्यदीषः ॥ ५२३७ ॥

नहणि चि जनरि भेम्मं, अण्णा नि ज कप्पती सुनिहिषाणं। अनि पसुजाती आर्लिगिउं पि किसु ता पलिस्साउं।। ५२३८ ॥ इह सुत्रे यद् 'अतिगी' निर्माणी भणिता तद् नवर 'नेमं' चिद्दा उपस्त्रणं द्रष्टव्यम्, तेनान्याऽपि से सुनिहितानां न कस्पते परिप्ककुम्। इसमेन व्यावष्टे —'पसुजातिरपि' १० क्राणिकामसूतिपञ्चातातीसकीरिप आलिज्ञिं न कस्पते, किमु तावत् परिष्कुम् १॥ ५२३८॥

बत् तु सूत्रे परिव्यजनमभिहितं तत् कारणिकम् अत एवाह-

निग्गंथो निग्गंधि, इत्थि गिहत्यं च संजयं चेव । पुलिसयमाणे गुरुगा, दो लहुगा आनुमादीणि ॥ ५२३९ ॥

निर्मन्थो निर्मन्थी परिज्जति चतुर्गुरुकाः तथसा कालेन च गुरवः। 'श्वियम्' अविरतिकां क्षः परिज्जति त एव तपसा गुरवः। गृहसं परिज्जति चतुर्खेषुकाः कालेन गुरवः। संयतं परिज्जति त एव 'क्षान्यमापि कपवः' तथसा कालेन च । सर्वत्र चाहादीनि दूषणानि सवन्ति ॥ भरवर ॥ धृद्वसेव स्थाचष्टे—

निर्मांथी थी गुरुगा, गिहि पासंडित्समणे य चउलहुगा। देशिह गुरू तबगुरुगा, कालगुरू दोहि वी लहुगा।। ५२४०।। निर्धन्यस्त निर्धन्थी परिष्वजतः चतुर्गुत्वो द्वाभ्यामपि गुरुकाः। स्तियं परिष्वजनस्त दर तपोगुरवः। गृहस्तं परिष्वजतः चतुर्कववः कालगुरवः। पापण्डियुरुवं 'श्रमर्गं वा'सावुं

१ °कम्, बतुर्युक्कमिखायाः ॥ वर्ष कां- ॥ २ होहि वि गुरु तव° ताना- ॥

**परिज्याजतस्मतुर्केषय एव 'द्वाभ्यामिप' तपः-कालाभ्यां रूघवः ॥ ५२४० ॥** -

मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा फास भावसंबंधो । आतंको दोण्ह भवे, गिहिकरणे पच्छकम्मं च ॥ ५२४१ ॥

निर्मन्त्रे निर्मन्त्री परिष्वजन्तं दृष्ट्रा यथामद्रकादयो मिथ्यात् गच्छेयुः, एते यथा बादिन-5 साचा कारिणो न भवन्ति । उङ्काहो वा भवेत् , एते संयतीमिरिष सममन्नक्षत्रारिणः । एवं शक्कायां चतुर्गुक, तिःशक्कितं मुरुस् । एवं प्रवचनत्य विरापना भवेत् । तेन वा स्पर्शेण द्वसोरिष मोहोदये सङ्माते भावसम्बन्धोऽपि स्यात्, ततस्य मितगमनादयो दोषाः । आतक्को वा द्वसोरम्यतस्य भवेत् स परिष्वजने सङ्कामेत् । गृहस्यस्य च परिष्वजनकरणे पश्चाःकर्मदोषो भवेत ॥ ५२४१ ॥ इत्रमेव पश्चार्द्धं व्यायष्टे—

> कोढ खए कच्छु जरे, अवरोप्पर संकर्मते चडभंगो । इत्थीणाति सहीण य. अचियत्तं गिण्हणादीया ॥ ५२४२ ॥

कुष्ठ-कृत-कच्छू-ज्वश्वभृतिक रोगे परस्तरं सङ्कामति चतुर्भक्की भवति — संयतस्य सम्बन्धी कुछादिः संयत्याः सङ्कामति १ संयत्याः सम्बन्धी वा संयतस्य सङ्कामिति २ द्वयोरप्यन्थोन्यं सङ्कामिति ३ द्वयोरिय न सङ्कामिति ३। अञायभक्षत्रये रोगमङ्कमणकृतीः परितापनावयो । । । वेषाः। । तथा ''इर्ग्या' इत्यादि, तस्याः क्षियः सम्बन्धिनो ये ज्ञातयो ये च खुद्धरत्वेषामभी-तिकं भवति — ० किमैयं अमणोऽस्यतस्य-चिन्धनीमित्यमालिङ्गति ! इति । ⊳ ततस्य भद्दणा-ऽद्धन्तेणादयो दोषाः॥ ५२९२॥

गिहिएसु पच्छकम्मं, भंगो ते चेव रोगमादीया । संजय असंखडादी, भ्रता-ऽभ्रते य गमणादी ॥ ५२४३ ॥

गृहिषु परिष्वयमानेषु पश्चारकर्म भवति, 'संयतेन स्पृष्ठोऽह्य' इति कृत्या गृहस्यः आर्व कुर्योदिति भावः । अविरतिकायाः परिष्वक्ने मावसम्बन्धोऽपि जायेत, ततश्च 'भक्तः' त्रसम्बन्धे-विरापना भवेत्, रोपसङ्कमणादयश्च त एव दोषाः । संयतं तु परिष्वजनसेन सहासङ्क्षडादयो दोषाः । कुक्तभोगिनश्च म्हतिकरणेनागुक्तभोगिनः कौतुकेन प्रतिगमनादयो दोषाः । एवं ताविक्षकारणेऽञ्चानायाश्चीकत् ॥ ५२७३ ॥

एमेव गिलाणाए, सुत्तऽफलं कारणे तु जयणाए । कारणे एग गिलाणा, गिहिकुल पंथे व पत्ता वा ॥ ५२४४ ॥

एवमेव ग्लामा अपि संबत्धाः परिष्वजने कियमाणे दोषजालं मन्तव्यम् । परः भाह—
नन्वेवं सुत्रमफलं प्राप्तोति, तत्र हि परिष्वजनमनुज्ञातं खादनं पुनः मितिषद्धम् । सूरिराह—
कारणे यतनया कियमाणे परिष्वजने सुत्रमवतरित । कथं पुनस्तत्य सम्भवः ! इत्याह—कारणे
80 काचिदार्थिका "परा" वि एकाकिनी संहुता, सा च पश्चाद् ग्लानीमृता, "गिहिकुल" वि
गृहस्पकुलानिश्रया सा स्थिता, अथवा "गिहिकुल" वि सा तस्येककुलसमुद्भूना भगिन्यादि-

१ °ता अनागादा-ऽऽगादपरि° कं॰ ॥ २ ৺ Þ एतःसध्यतः पाठः कं॰ एव वर्तते ॥ ३ °कुळ॰ निश्र° कं॰ । "गिहिकुल ति सा गिहत्यकुलं गिस्साए ठिया" इति क्यूर्णों विदोचक्यूर्णों च ॥

सम्बन्धेन निजका गृहस्वतां परित्यज्य तदन्तिके प्रश्नजिता, सा चानीयमाना पिष वा वर्तमाना विविक्षतमामं वा प्राप्ता म्ळाना जाता ॥ ५२४४ ॥ तत्रेयं यतना—

माता भगिणी धूता, तधेव सण्णातिगा य सङ्घी य । गारत्थि कुर्लिगी वा, असोय सोए य जयणाए ॥ ५२४५ ॥

तस्थाः संयत्या या माता भिगनी दुहिता वा तया तस्या उत्थापनादिकं कार्यते । एतासा- 5 ममाने या तस्याः 'संज्ञातका' भागिनेयी-पौत्रीप्रभृतिका तया कार्यते । तस्या अभावे श्रादि-कमा । तदमाने गृहस्थया यथाभद्रिकया कुलिक्षित्या वा कार्यते । तास्विष प्रथममञ्जीचवादि-नीभिः, ततः शौचवादिनीभिरण यतन्या कार्ययतस्य ॥ ५२४५ ॥

> एयासि असतीए, अगार सण्णाय णालबद्धो य । समणो वऽनालबद्धो. तस्सऽसति गिद्धी अवयत्रस्त्रो ॥ ५२४६ ॥

समणो वऽनालबद्धो, तस्सऽसति गिही अवयत्तुक्को ॥ ५२४६ ॥ 10 एतासां स्त्रीणानभावे योऽगारः 'संज्ञातकः' तस्याः स्त्रजनः, स च माद्धरु-पुत्रादिरिषे स्याद् अतस्तर्त्यतिषेधार्थमाह—'नारुबद्धः' वहीबद्धः, पितृ-मातृ-पुत्रप्रमृतिक इत्यर्थः, स उत्थापनादिकं तस्याः कार्यते । तदभावे श्रमणोऽपि यस्तस्या नारुबद्धो असमानवयाः । तस्यासति अनारुबद्धोऽपि यो गृही वयसा अनुस्यः स कार्यते ॥ ५२४६ ॥

दोन्नि वि अनालबद्धा उ, जुजंती एत्थ कारणे । किटी कण्णा विमज्झा वा, एमेव पुरिसेस वि ॥ ५२४७ ॥

मालबद्धाभावे 'द्वाविप' स्नी-पुरुषावनालबद्धाविष 'कारणे' आगाढे उत्थापनादिकं कारियेतुं युज्यन्ते । तत्रापि प्रथमं "किहि" वि स्वविसा स्त्री कार्यते । तद्दभावे कन्यका । तद्दमासी मध्यमा । एवं पुरुषेप्यपि वक्तव्यम् ॥ ५२४७॥ अमुमेनार्थं परातननगाथया व्याख्यानयि —

असईय माउवरगे, पिता व भाता व से करेजाहि।

दोण्ह वि तेसिं करणं, जित पंथे तेण जतणाए ॥ ५२४८ ॥

माहुवर्गो नाम—स्त्रीजनः तैस्याभावे यः तस्याः संयत्याः सम्प्रणी पिता वा म्राता वा स उत्थापनादिकं करोति । "दोण्ड वि" इत्यादि, द्वयोरिष तयोः करणम्, किमुक्तं भवति !— पिष वर्तमानायाः प्राशाया वा अथवा निजकाया वा अनिजकाया वा अनन्तरोक्तविभिना तस्या उत्थापनादिकं कर्तव्यम् । यदा च पिष ग्लाना संद्वता तदा स्वयमेव 'यतनया' 26 गोपारुकस्कुकतिरोपानस्त्रया तस्याः परिकर्म करोति ॥ ५२४८ ॥

अथवाँ ''दोण्ड वि'' ति विभक्तिच्यत्याद् द्वाभ्वामपि द्रष्टव्यम् । तत्राबमर्थः—
थी पुरिस पालञ्जाले, सपक्त परपक्त सोयञ्ज्ञीये य ।
आगादम्मि उ कजे, करेति सन्वेहि जतणाए ॥ ५२४९ ॥
आगादे कार्ये क्रिया वा परपेश्चण वा नाल्यदेन वा अगाल्यदेन वा सपन्नेण वा परपेश्चण १०

१ "पतदेवार्थं स्मीए पुरातनाए गाहाए वन्त्वाणेह—'असर्व माउवरगे' गाहा ॥" इति विशेष-सूर्यो ॥ २ तस्त्रिन् 'असति' अविद्यमाने यः कां ॥ ३ कार्ये आत्यन्तिके स्टान्ये कां ॥ ॥ व- १०६

20

वा झौषवादिना वाड्योववादिना वा सर्वेरिप यतनया कारयति ॥ ५२४९ ॥ पंथम्मि अपंयम्मि व, अण्णस्सऽसती सती वऽकुणमाणो । अंतरियकंत्रकादी, सं विय जतणा तु पुब्युत्ता ॥ ५२५० ॥

पैथि अपिथ वा बर्तमानाया अन्यस्थाभावे यहा विचतेऽन्यः परं स भणितोऽपि न कन्नरीति ततः स्वयमेवै कुवेन् गोपालकञ्चकादिभिरन्तरितः करोति । अत्र च सेव पूर्वोक्ता बतना मन्तव्या या तृतीयोदेशके प्रथमसूत्रे ग्लानसंयत्याः प्रतिचरणे प्रतिपादिता (गा० ३७६८ तः ।॥ ५२५०॥ एवं तावदेकाकिनः साभीविधिरुक्तः । अथ गच्छे तमेवाह—

> गच्छिमि पिता पुत्ता, भाता वा अज्जगो व णत्तू वा । एतेसि असतीए, तिविहा वि करेंति जयणाए ॥ ५२५१ ॥

10 गच्छे बसतां यदि तस्याः पिता पुत्रो आता वा 'आर्यको वा' पितामहादिः 'नाता वा' पोत्रोऽह्वित ततः संयतीनामगरस्य वा लीजनस्याभावे तैः कर्तव्यम् । 'प्तेषा' पितृमस्रतीनाम- भावे 'त्रिविया आपि' व्यविर-मध्यम-तरुणाः सापवः 'यननया' गोपालकञ्चकतिरोहिताः कुर्वन्ति ॥ ५२५१ ॥ इतं गच्छे प्रासाया अभिहितम्, अथ पिथ वर्तमानाया उच्यते —

दोण्णि वि वयंति पंथं, एकतरा दोण्णि वा न वचंती । तत्थ वि स एव जतणा, जा बुत्ता णायगादीया ॥ ५२५२ ॥

ंद्वें आरी' निजका-ऽनिजके संबयों पन्धानं ब्रजनः, प्कतरा वा ब्रजति, द्वे आपि न ब्रजतः, एवमेते त्रयः प्रकाराः । अत्र तृतीयः प्रकारः शून्यः, स्थानस्थितानां वा आश्रक्तवतां गच्छमप्राप्तानां वा भवति । विष्यपि चामीपु ा वेतना सेव मननव्या ⊳ या पूर्वे ज्ञातकादि-क्रमेण गच्छे प्राप्तायाः शोक्ता ॥ ५२५२ ॥

एवं पि कीरमाणे, सातिञ्जणें चउगुरू ततो पुच्छा । तम्मि अवत्थाय भवे, तहिगं र्च भवे उदाहरणं ॥ ५२५३ ॥

'प्रवमि' यतनया कियनाणे परिकर्मीण यदि सा निर्मत्यी पुरुषस्पर्धे स्वादयति तदा चतुर्पुरवो द्वाभ्यामि तपः-कालभ्यां गुरवः । ''ततो पुच्छ'' ति ततैः शिष्यः पुच्छति— यस्यां ग्रजानस्सायामुरशतुमि न शक्यते तस्यामिः मेशुनामिछायो भवतीति कथं श्रद्धेयम् ? ।

१ 'या तस्याः प्रतिकर्म करोति, काग्यतीत्यर्थः ॥ ५२४९ ॥ अत्रेव विशेषविधिक्रातिः दिशक्षाह—पंपिमा ६० ॥ २ 'पवि' मागं 'अपवि वा' ग्रामे वर्णमानायाः संप्यताः अन्यस्य 'प्रतिचनक्रस' अवति 'अमाने, अभाग्यो नाम-नास्यत्ती यद्वा शं० ॥ ३ 'व तस्याः प्रतिचरणं कुवै' शं० ॥ ४ पवि वर्षमानायाः संयत्यात्वयः प्रकाराः—तत्र 'द्वे अपि' निजका 5निजके संयत्यो साधुना समं पन्धानं वजन इति प्रथमः, एकतरा वा बजतिति दितियः, द्वे अपि न वजन इति दित्तयः, प्रवासे चया प्रकाराः । अच त्तरीति दित्रयाः, द्वे प्रकाराः । अच त्तरीति प्रकारः इत्यः, पवि वर्षमानायाः स्थानं शं० ॥ ५ '० प्रतन्तर्वतः वाः शं० एव पति ॥ ६ च इमं उदा' तथा॰ ॥ ७ 'ततः' पूर्वोक्तार्थमतिपादनातन्तरं विष्या शं० ॥ १ प्

सूरिसह—'तत्र' इति तारगवसायागि गोहोदये इत्युदाहरणं भवेत् ॥ ५२५३ ॥ कुलवंसिम्म पद्दीणे, ससै-भसएिंह च होइ आहरणं । सुकुमालियपञ्चजा, सपचवाता य फासेणं ॥ ५२५४ ॥

श्चाक-असकास्यामाहरणं भवति । कबम् ! इत्याह—कुटवंशे सर्वेसिन् अशिवेन प्रक्षीणे सति सुकुमारिकायाः भवज्या ताभ्यां दचा । सा चातीव सुकुमारा रूपवती च ।ऽ ततस्त्रेन स्पर्वदेषिण उपरुक्षणत्या रूपदेषिण च समत्यग्या जाता ॥ ५२५४ ॥

एनामेव निर्पृक्तिगाथां व्याख्वाति-

जियसनुतरवरिदस्स अंगया सस-भता य सुक्कमाली ।
धम्मे जिणपण्णते, कुमारगा चेव पव्यक्षता ॥ ५२५५ ॥
तरुणाइन्ने निम्नं, उनस्सए सेसिगाण रनसद्दा । 10
गणिणि गुरु-भाउकहँणं, विहुवसए हिंडए एको ॥ ५२५६ ॥
इनस्तामा दसमागं, सन्वे वि य विद्योगे उ उठमागं ।
अम्हं पुण आयरिया, अद्धं अद्वेण विमयंति ॥ ५२५७ ॥
इत-महित-विप्परद्धे, विष्कुमारेहिँ तुरुमिणीनगरे ।
किं काहित हिंडतो, पच्छा सस्तो व मसतो व ॥ ५२५८ ॥
आसर्थ वर्षिय परिण्णा, समोहेर्य एगों भंडगं वितितो ।
आसर्थ वर्षिय गाउग सारिक्स दिक्सा य ॥ ५२५९ ॥

हैंदेव अङ्कभरहे वणवासीए नगरीए वासुदेवजेहभाउणो जराकुमारस्स पडप्पए जियसन् राया । तस्स दुवे पुजा समझो भसओ य, धूया य सुकुमालिया नामेणं । अन्नया ते भाउणो दो वि प्लदया, गीयत्था जाया, सन्नायगदंसणत्थं आगया । नवरं सन्त्रो वि वि कुळ्बंसी पहीणो सुकुमालियं एकं मोछु । सा तेहि प्ल्याविया, तुरिमिणि नगरि गया, सह-यरियाए दिला । सा अतीय रूववई जओ जओ भिन्छा-वियारादिसु बच्ह तओ तओ तज्ञा तरुण-जुवाणा पिहतो वर्ष्वति । वसहीए पविहाए वि तरुणा उवस्ययं पविसित्ता निहंति । संजर्धको न तरंति पहिलेहणाइ किंवि काउं ताहे ताए मैह्यारीयाए गुरूणं कहियं—सुकुमालियाए तणएणं मम अन्नतो वि विणस्तिहिते । ताहे गुरूणा सस्तम-भसना भणिता—सारक्वह एतं ३५ भगिणि । ते तं चेपुं वीसुं उवस्सए ठिया । तेर्सि एगो भिन्छं हिंडह, एगो तं पयरेण रक्वह । दो वि भायरो साहस्समछा जे तरुणा अहिवंदिति ते हत-महिते काउं धाउँति । ते य

१ °स-भिस्त ' कं । १ वमधेऽपि सर्वत्र मुखे टीकावां च 'भसक' स्थाने 'भिस्तक' इति पाधन्तरं हे यम् । चूर्णो विशेषचूर्णो च 'मिस्त' इति दासते ॥ २ 'व्यां भाष्यकारो दवा' कं ॰ ॥ ३ 'हणं, विसुद्ध ' तामा॰ ॥ ४ 'णो स्थ छ' तामा॰ ॥ ५ तत्र ताचत् प्रथमं कथानकसुरुष्यते—सहेव कं ० ॥ ७ 'मबहरियाए सस-भस्तता मणंति—सुकुमालियाए तापणं मम कणावी वि विपित्तहित तो फेडेला तुन्मे कण्णत्य सारवेव । तेहिं चौद्धं उवस्तमं महाव बौद्धं विस्ता' इति चूर्णो विशेषचुर्णो जि ॥

विराहिमा भिक्सं न देंति । तजो सो एगो भिक्सं हिंडतो तिण्हं पञ्चतं न रुद्ध । विद्यजो पच्छा देसकाले फिडिए हिंडतो न संथर द्वाहे सा अणह—चुन्मे दुक्तिया मा होह, अहं अपं पचक्ताए मारणंतियसमुग्वाएणं समोहया। तेहिं नार्य—कालगव ति । ताहे एगेणं उवारणं गहियं, विद्युणं सा गहिया । गच्छंताणं ताए देसि ति पुरिसकासो वेहजो ७ बाह्यज्ञं वा । तजो ते तं परिठिवता गया गुरुसगमं । इयरी रचीप सीव्यजाएणं समासस्य सचेवाणा जाया । गोसे एगेणं सस्यवाहपुरोणं दिहा । ताए सो मणिजो—जड्ड ते मप कजं तो सारवेहिं । सा तेण सारविया महिला से जाया । ते सायरो अलया भिक्सं हिंडते दर्डुं पाएमु परिवा एकता । सा तेहिं सारिक्संण पच्चिताया पुण्यं जड्ड ताव तीप समुग्वायगयाए साहज्जयं, क्रिमंग पुण इयरी गिरुणी न साहज्जजा । ॥

अधाक्षरार्थः — जितश्चनरवरेन्द्रस् 'अक्रजी' पुत्री शश्चक-मसकी सुकुमारिका च इहिता। ततो जिनमणीते धर्मे कुमारिका च इहिता। ततो जिनमणीते धर्मे कुमारकावेव तो मबिजती। क्रमेण च तास्यां भिगन्यिप मबाजिता॥ तत्त्वस्या रूपदोषेण तरुणैराकीर्णे नित्यस्य प्राप्ते निवेदितम् । गुरुभिश्च मात्रोः कथितम् । ततः प्रथमुपाश्रये तां गृहीत्वा स्वितौ । तयोमेध्यादेको भिक्षार्थं हिण्डते, एकतां रक्षति ॥

10 किमये पुनस्तस्या रक्षणमेवं तो कृतवन्ती ? इत्याह—"इक्खागा" इत्यादि । 'इश्बाकवः' इक्खाकुवंशनुपनयः प्रजाः सम्यक् पालयन्तोऽपाल्यन्तक्ष यश्वाकमं तदीयपुण्य-पायवोर्द्द्यभागं लमन्ते । अस्माकं पुनः प्रवचने आचार्याः साधु-साध्वांकनं संयमा-ऽऽस-प्रवचनविषयमत्यपायेभ्यः सम्यक् पालयन्तो अपाल्यन्तो व्ययाक्रमं पुण्यं पापं चार्द्वमद्वेन विभवन्ति अत्य एव तौ तां रिक्षिवनन्ताविति भावः ॥ २० तत्व — "विश्वकृत्तारिह" वि कृष्णयः—यादवाक्षेषां कुमारो कृष्णिकुमारो, अञ्चक-स्तकानित्वर्थः, तान्यां तुरुसिणीनगर्यो उपसर्गकानो स्थान् हत-प्रियत-विभारकः कृतः। तत्र हत्वभौगाः विश्वकृत्तारी, मथतः—वानम्कानित्वर्थः, तान्यां तुरुसिणीनगर्यो उपसर्गकारी मिष्तिः, विश्वत्वर्थः—विविधं स्वर-स्वर-वचनैः प्रकर्षेण निवारितः । तत एवं प्रयुत्तलेकं विराधित सर्वि कि करिण्यति स्थाद् सिखां हिण्डमानः अञ्चके ससक्ते । सन्त स्वर-प्रनः साम्यावितः , कि करिण्यति स्थाद् सिखां हिण्डमानः अञ्चके ससक्ते । सन्त स्वर-पानस्यानामावातः , न किमपीति सादः ॥

25 ततः सुक्कमारिकाया भात्रोरनुकम्पया 'परिका' भक्तमत्याख्यानम् । ततो मरणसद्धद्वातेन 'समबहता' काळगतेयमिति झाला एकः 'भाष्डम्' उपकरणं द्वितीयसां गृहीतवात् । ततः शीतळवातेन आक्षस्तायाः तस्या वणिजा महणम्, काळान्तरेण च आतृभ्यां सादस्येण मत्यभि-ज्ञाय दीक्षा प्रदत्तेति ॥ ५२५५ ॥ ५२५६ ॥ ५२५० ॥ ५२५८ ॥ ५२५९ ॥

न्य पाता अरवात ॥ पर्पप ॥ पर्पद ॥ पर्पप ॥ पर्पर ॥ पर्पप ॥ व्याख्यातं निर्मन्यासूत्रं । अथ निर्मन्यसत्रं व्याचष्टे—

एसेव गमो नियमा, निर्माधीणं पि होति नायब्वो । वार्ति कुल पव्यक्ता, भचपरिण्णा य मातुम्मि ॥ ५२६० ॥ एष एवं गमो निर्मन्थस परिष्वजनं कुवैतीनां निर्मन्थीनां ज्ञातब्वो अवति । नवरम्—

१ ° घ निर्मन्धीस्त्रोक्तो गमो नियमाद् निर्मन्धः कां ॥

25

'तासां' निर्भन्यीनां सम्बन्धी ''कुरु'' चि एककुरुोद्धवो आता रूपवान् प्रवजितस्तस्यापि क्रमेण भक्तपरिज्ञा सङ्गाता ॥ ५२६० ॥ इदमेव व्याचष्टे—

> विउलङ्कले पव्वरते, कप्पट्टग किहिबकालकरणं च । जोञ्चण तरुणी पेष्टण, भगिणी सारक्खणा वीर्सु ॥ ५२६१ ॥ सो चेव थ पढिवरणे, गमती जुवतिजण वारण परिण्णा । कालगती चि समोहर्तो, उञ्झण गणिया पुरिसवेसी ॥ ५२६२ ॥

कापि विपुक्कुले समुद्रत्नं भगिनीहृयं मन्नजितम् । ततः कुळवंशस्यैव सर्वोऽपि मक्षीणः । नवरमेकः करूपस्यको जीवति । ततः संज्ञातकदर्शनायागतेन तेनार्थिकाह्रमेन किटिका—स्वितरा मातेत्ययैः तस्प्रभृतिकुटुम्बस्य कालकरणं श्रुतम् । स च करूपस्यकः प्रवाज्य गुरूणां दत्तः । यौवनं च मासोऽसावतीव रूपवान् समजनि, तत्तत्तरुणीभिः प्रेर्थते । ततो गुरूणामञ्ज्या ते १० भगिन्यौ विष्यगुपाश्रये नीत्वा संरक्षितवत्यौ ॥ ५२६१ ॥

कथम् ! इत्याह—स एव 'मित्वरणे' रक्षणे गमो भवित यः सुक्कमिरिकाया उक्तः । एवं युवितजनवारणे क्रियमाणे तत्म भगिनीदुःसं तथाविषं हृष्ट्रा मक्तपरिज्ञा । ततः 'समबहतः' कारुगत इति विज्ञाय 'उज्झनं' परिष्ठापनम् । तत्म च स्त्रीत्मर्थेन समाधासितत्म पुनश्चैतन्ये सङ्जाते' पुरुषद्वेषिण्या गणिकया महणम् । ततस्तत्याः पतिः सङ्जातः । कियत्यपि कारुं गते 15 समागताभ्यां भगिनीभ्यां गत्यभिज्ञाय भूयः प्रजाजित इति ॥ ५२६२ ॥

## ॥ ग्लानप्रकृतं समाप्तम् ॥

# का ल क्षेत्राति कान्त प्रकृत म्

सूत्रम्---

नो कप्पइ निगंधाण वा निगंधीण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पढमाए पोरिसीए पडिग्गाहिता पच्छिमं पोरिसिं उवाइणावित्तए । से य आहच्च उवाइणाविए सिया तं नो अप्पणा मुंजिजा, नो अन्नेसिं अणुप्पएजा, एगंते बहुफासुएँ थंडिले पडिलेहिता पमजित्ता परिट्टवेयव्वे सिया। तं अप्पणा मुंजमाणे अन्नेसिं वा दलमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं उग्धाइयं १६॥

१ 'रक्षणं तस्य कृतच' कं।। २ 'ते रूपवान् इति कृत्वा पुरु' कं।। ३ 'य पएसे पृष्टि' कं।। एतदनुसारेणैव कं। टीका, हस्यता पत्रं १४०० टिप्पणी ३॥

नो कप्पइ निग्गंथाण वा २ असणं वा ४ परं अद्ध-जोयणमेराए उवायणावित्तए। से य आहच उवाइ-णाविए सिया तं नो अप्पणा भुंजिजौ जाव आव-जह चाउम्मासियं परिहारहाणं उग्घाइयं १७॥

अस्य सूत्रद्वयस्य सम्बन्धमाह—

भावस्स उ अतियारो, मा होज हती तु परशुते सुचे । कालस्स य खेचस्स य, दुवे उ सुचा अणितयारे ॥ ५२६३ ॥ 'भावस्य' त्रक्रवपरिणास्य 'अतिचार' अतिकसो मा मृदिति अनन्तरंपसुते सुत्रे प्रति बादिते। अथ कालस्य च क्षेत्रस्य चातिवारः—अतिकसो मा मृदिति हे सुवे गरम्येत ॥५२६६॥ अनेत सम्बद्धीनायानसम्बद्धान्यः—से क्ष्युये निर्धस्थानं वा निर्धस्यीतां वा अकानं

बादिते। अथ कारुत्य च क्षेत्रस्य चातिवारः—अतिकमो मा गृदिति हे सुत्रे प्रारम्भेते ॥५२६३॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याव्या—नो करुपते निर्मम्थानां वा निर्मम्थीनां वा व्यवनं वा गानं वा सादिमं वा वायमायां पोरुत्या मतिगुद्ध पश्चिमां पोरुषी "उवाइणा-विचएं" वि 'उवानायिवीनुं सम्यापियुमिति । तच "आहचां कदाचिद् उवानायितं स्यात् ततः 'तद्' अञ्चनादिकं नाऽऽस्पना भुजीत न वा अन्येषां साधूनामनुषद्धात् । कि पुनस्ताहिं विधेयमः हे ह्याद्—एकान्ते वहुपाशुँके स्विष्टिं परपुष्टेयः चलुषा मनुष्टर स्वीहरोगेन परि
15 ष्टापियत्वयं स्वात । तद् आरम्मा भुजानीऽन्येषां वा ददान आपचते चातुर्मासिकं परिहार-स्थानमुद्धातिकर्म् ॥

एवं क्षेत्रातिकान्तसूत्रमि वक्तव्यम् । नवरम्—अर्द्धयोजनङ्कणाया मधीदाया अति-कामियनुसरानादिकं न करनते । स्यात् तदुषानाथिनं भवेत् तनो यः स्वयं तद् अक्केडन्येषां वा ददाति तस्य चनुरुपुक्तिनि सुनद्वयार्थः ॥ अथ निर्म्धक्तिविस्तरः—

वितियाउ पदम पुल्वि, उत्रातिणे चउगुरुं च आणादी । दोसा संचय संसन दीह साणे य गोणे य ॥ ५२६८ ॥ अगणि भिठाणुकारे, अब्धुद्वाणे य पाहुण णिरोधे ।

सज्झाय विषय काइय, पयलंत पलोह्यों पागा ॥ ५२६५ ॥
आतां तावत् पश्चिमा चतुर्थां पोल्पी किन्तु द्वितीयायाः योहप्याः प्रथमाऽपि पूर्वा भण्यते

26 प्रथमायाश्च द्वितीया पाश्चात्या, एवं तृतीयाया द्वितीया पूर्वा द्वितीयायास्तृतीया पाश्चात्या,
चतुर्थ्यास्तृतीया पूर्वा तृतीयत्याश्चतुर्था पश्चिमा । ततः प्रथमायाः पौरूष्या द्वितीयायासञ्चादिकमतिकामयतश्चतुर्थे कम् , आज्ञादयश्च दोषाः । तथा सम्चयो भवति । चिरं चावति ।

हमानं तदशनादिकं प्राणिभिः संसक्तं भवति । दीर्षज्ञातयो वा श्चा वा समागच्छेत् ततः स

१ °जा, नो अज्ञस्म अणुप्पपजा, एगते चहुफासुर परसे पहिलेहित्ता पमजिज्ञा परिदृत्वेयव्वे सिया। तं अप्यणा अंज्ञमाणे अवस्ति चा दलेमाणे आयज्ञाद क्षं०॥ २ "स्मेव बे सुवे 'प्रस्तुते' प्रति' क्षं०॥ ३ 'शुके प्रदेशे प्रस्तु' क्षं०॥ ४ 'मू, चतुलेषुकमित्यर्थः। एवं कं०॥

द्रवमाञ्चनस्वप्रहत्त उत्बाह्मसङ्ग्रहन् ताभ्यां साधेत्। 'गीः' बलीवर्दस्तेन वा हन्येत्। अत्रा-ऽऽस्मविराधनानिष्पत्रं चतुर्पुरु । तद्भयेन च इतस्ततः स्पन्दमानो भाजनं भिन्धात् तत्र चतुर्रुषु । तेन च विना या परिद्याणसन्तिष्पत्रम् । अधैतेषां भयानिश्चिपति ततश्चतुर्रुज् ॥ ५२६४ ॥

"अगिणि" ति अप्राष्ठुरियते भाजनभारत्यापृतत्येनानिर्गच्छन् दक्षेत्र, तत्प्रतिबन्धेन वा उपर्येदिही भवेत् तत्रोपिनिप्पन्नं प्राथिश्वस् । ग्रहानस्य वैयानृत्यसुद्धर्तनादिकं भारत्यापृतो न अकरित, अिवस्माणे परितापनादिकं स प्राप्तुयात् तिम्पपनं चतुर्वेषुकादि पाराधिकानस्, अध निक्षिप्प करोति ततो भासत्व । तेन परिगृहीतेनोद्यारं स्थुरस्सु न रक्तोति ततो भार-यतो ग्रह्मानस्यारोणा, अध गृहीतेन च्युरस्कृति तत उड्डाहः । गुरूषां प्राप्तुणकस्य चाऽस्युरस्मानं करोति चतुर्वेषु, अध करोति तते भाजननेदादयो दोषाः । भृतमाजनभारणे गात्रनिरोधेना नस्याप्यतेत । अपाचार्यतेत् । तथा साध्यायं न प्रस्थाप्यति । आचार्यादेशनं पादपक्षारुत्यादेकं विनयं न 10 करोति । कायिकी न च्युरस्कृति, गृहीतेन च च्युरस्कृति । मच्यायमानस्य वा भाजनं प्रस्कृदेत्, तस्य च प्रकोटने पानकादिना हाव्यमानाः प्राणितो विषयंन्ते ॥ ५२६५॥।

अथामृनेव सञ्चयादिदोषान् व्याचष्टे---

निस्संचया उ समणा, संचिय तु गिहीव होंति धारेंता । संसर्चे अणुवभोगो, दुक्खं च विगिचिउं होति ॥ ५२६६ ॥

निस्सञ्चयाः श्रमणा उच्यन्ते, ततो यदि तेऽपि गृहीता धारयन्ति तदा गृहिण इन सञ्च-थिनो भवन्ति । चिरं चावतिष्ठमानं तद् भक्त-पानं संसञ्चेन । संसक्तं च साधूनामुपभोक्तं न करुपते, 'विवेक्तं च' परिष्ठापयितुं तद् दुःसं भवति, यतस्तत्र परिष्ठाप्यमाने येः प्राणिभिः संसक्तं ते विनाशमश्चवते ॥ ५२६६ ॥

एमेव सेसएसु वि, एगतर विराहणा उभयतो वि । असमाधि विणयहाणी, तप्पचयनिजराए य ॥ ५२६७ ॥

एक्सेव 'रोषेष्वणि' दीर्घादिषु द्वारेषु भावना कर्तत्या, सा च प्रागेव कृता । तथा 'एकत-रस्य' साधोर्धाजनस्य वा विराधना दीर्घजातीयादिषु भवति । उभयम्-आत्मा संयमधिति द्वयं तस्य विराधना उभयविराधना । "असमाहि" ित अग्रिना दक्षमानस्यासमाधिमर्गं भारेणा-कान्तस्य वा असमाधि:-दुःखेनावस्थानं भवेत् । गुरुपभृतीनां च विनयहानिं कुर्यतस्यस्य-25 निर्जराया अपि हानिर्भवति ॥ '२२६० ॥

पच्छित्तपरूजणता, एतेसि ठवेंतए य जे दोसा । गद्दितकरणे य दोसा, दोसा य परिद्ववेंतस्स ॥ ५२६८ ॥ तम्द्वा उ जिंहें गद्दितं, तिंहें भ्रुंजणें विजया भवे दोसा । एवं सोधि ण विजति, गद्दणे वि य पावती वितियं ॥ ५२६९ ॥ अ 'पतेचा' सम्बन्धतीनां सर्वेषानिष प्रायक्षिचनरूषणा कर्तव्या, सा च प्रागेव लेवतः क्रता ॥

र "चन्ते । पतेषु सर्वेष्वपि यथायोगं तत्तिष्पन्नं प्रायक्षित्तम् ॥ को० ॥ २ वा "उप-यतो बि" त्ति उभयस्य वा विराधना दीर्घजातीयादिषु भवति । अथवा उभयम् कं०॥

'स्वापसतः' निक्षिपतश्च ये दोषाः, ये च गृहीतेन कार्याणि कुर्वतो भाजनमेदप्रभृतयो **दोषाः,** ये च परिष्ठापसतो दोषासेऽपि वक्तव्या इति ॥ ५२६८ ॥

यत एताबन्तो दोषाः तसाद् यसामेव पौरुव्यां गृहीतं तसामेव भोकव्यम् । प्रं कुर्वता 'दोषाः' पूर्वोक्ता बर्किता भवन्ति । परः प्राह—नन्वेवं शोधिनं विष्यते यतः ''ग्रहणे वि'' ьिष्ठ यावद् भिक्षां गृह्वाति ताबदेव द्वितीयां पौरुर्यां प्रामोति ॥ ५२६९ ॥ सुरिराह्—

एवं ता जिणकप्पे, गच्छिम्म चउत्थियाएँ जे दोसा । इतरासि किणा होती. दन्ने सेसिम्म जतणाए ॥ ५२७० ॥

एवं तावजिनकारियकानासुक्तं यदुत् 'यस्यामेव गृहीतं तस्यामेव भोक्तव्यम्'। गच्छवासिनस्तु प्रथमायां गृहीत्वा यदि चतुर्थामतिकामयन्ति तदा ये सञ्चयादयो दोषा उक्तास्तान् मामुबन्ति । । । मस्योऽपि परः भरयति—'इतरयोः' द्वितीय-तृतीययोः पौरूष्योरमनादि द्रव्यं धारयती किमेते दोषा न भवन्ति ! । गुरुराह—भवन्ति, परं द्रव्यं सुक्तशेषे कारणे यतनया धार्यमाणे दोषा न भवन्ति ॥ ५२७० ॥ कथं पुनस्तद्विरितं भवति ! इत्याह—

पिंडलाभणा बहुविहा, पहमाएँ कैदाचि णासिमविणासी । तत्थ विणासि अंजेऽजिण्णे परिण्णे य इतरं पि ॥ ५२७१ ॥

अभिगतआहेत दानश्रोद्धेन वा किंवत् प्रकरणे प्रथमणैरुव्या बहुविधा प्रतिलाभना कृता, बहुिभिभ्दय-मोज्यद्रव्येरित्यर्थः । तच द्रव्यं द्विना—विनाशि अविनाशि च । श्रीरादिकं विनाशि अवगाहिमादिकमविनाशि । तत्र यद् विनाशि द्रव्यं तद् नमस्कार-णोरुषीप्रवास्त्रण-नवन्त्री गुजते । शेषसाधुनां यथार्जाणं यदि च तैः परिज्ञातं—तस्या विकृतेः प्रत्यास्त्रामं कृतम् अभक्तार्थो वा प्रत्यास्त्राः आस्मार्थिकः चा ते ततः 'इतरदिष' अविनाशि द्रव्यमिष 20 गुजते ॥ भर्षशे ॥ अमुनेवार्थं व्यावष्टे—

जइ पोरिसिचया तं, गर्मेति तो सेसगाण ण विसञ्जे । अगर्मेताऽजिण्णे वा, घरंति तं मत्तगादीसु ॥ ५२७२ ॥

यदि पौरुषीप्रवास्थानवर्तंसाद् इत्थं सर्वमापि 'पामयन्ति' निर्वाहिषितुं श्राकुवन्ति ततः 'रोषाणां' पूर्वार्द्धप्रवास्थानिनां 'न विसर्जयेयुः' न दषुः । अथ ते सर्वमापि न ममयन्ति ततः 26 पूर्वार्द्धप्रवास्थानिनामपि दीयते । अथ तेषामप्यजीणे ततो मात्रकादिषु 'तद्' अशानादिकं भारयन्ति ॥ '५२०२ ॥ व्यथवाऽम्राना कारणेन भारयेत्—

तं काउ कोइ न तरह, गिलाणमादीण दाउमञ्जूण्हे।

नाउं व बहुं विषरह, जहासपाहिं चरिमवज्ञं ।। ५२७३ ।। 'तद्' अश्रनादिकं 'कृत्वा' सुस्त्वा कश्चिद् ग्रानादीनां प्रायोग्यमानीय दातुम् 'अलुज्यो' 30 अतीवातपे चटिते न शक्तीति, एतेन कारणेन धारयेत् । यद्घा 'बहु' प्रमृतं भैश्चं कृष्यं ततः 'मा परिद्यापयितःयं भवेद' इति' ज्ञात्वा गुरबोऽश्चनादेषेरणं वितरन्ति, अनुजानन्तीत्यर्थः ।

१ कदापि णा° तामा॰॥ २ °ति ते म' मो॰ वे॰॥ ३ °त्तः, उपलक्षणमिदम्, तेन नमस्कारसहितप्रत्यास्थानवन्तो वा तद् द्रव्यं कं॰॥ ४ °ति कृत्यः कं॰॥  तोषायामेकवचनं प्राकृतत्वात् । अथवा >- "जहासमाहि" ति प्रथमपोरुव्यां उठ्यं परमधा-व्यजीर्णं ततो यावज्ञीर्थते तावद्धारयेदिष । एवं यथा यथा समाधिभवित तथा तथा अुत्रीत परं चरमावर्जम् , चतुर्थी पौरुर्थां नातिकामयेदिति भावः ॥ ५२७३ ॥

तत्र च धार्यमाणे इयं यतना---

संसजिमेस छुन्भइ, गुलाइ लेवार्डे इयरे लोगाई । जंच गमिस्संति पुणो, एसेव य अनसेसे वि ॥ ५२७४ ॥

'संसजिमेषु' संसक्तियोग्येषु 'लेशकृतेषु' गोरसादिद्वन्येषु गुडादिकं प्रक्षिप्यते येन न संसज्यन्ते । इतरज्ञाम-अलेपकृतं तद् यदि संसक्तियोग्यं तदा तत्र लक्षणदिकं प्रक्षिपेद् न गुड्य । यथ प्रथमपोरुच्यां द्वितीयपोरुच्यां वा सुक्त्वा पुनः गमयिष्यन्ति, कियतीमपि वेलां मतीक्ष्य भूयो भोक्ष्यन्त इत्यर्थः, तत्रापि सुक्तरोषे धार्थमाणे 'एन एव' गुडादिमञ्ज्ञेषगक्त्यो 10 विभिन्नेवति ॥ ५९०४ ॥

> चोएइ घरिअंते, जइ दोसा गिण्हमाणि किन्न भवे । उस्सम्म वीसमंते. उन्भामादी उदिक्खंते ॥ ५२७५ ॥

'नोदयति' मेरयति परः—यथेवं भक्त-पाने धार्यमाणे दोषास्ततो भक्तारी गृष्ठमाणे किमेते श्वान-गवादयो दोषा न भवन्ति ? भवन्त्येव । तथा कायोत्सर्गे कुर्वतोऽपि त एव बाहुपरि-16 तापनादयश्च दोषाः, एवं विश्वान्यतोऽपि त एव दोषाः, उद्धामकिभक्षाचर्यो ये गतास्तदादीनिप ''उदिक्खंते'' वि मतीक्षमाणस्य त एव दोषाः ॥ ५२७५ ॥ पर एव माह्-—

एवं अवातदंसी, पूले वि कहं ण पासह अवाये।

हंदि हु णिरंतरोऽर्ज, भरितो लोगो अत्रायाणं ॥ ५२७६ ॥ यधेवं यूयमपि 'अपायदर्शितः' सुस्भानप्यपायान् भेक्षध्वे ततः स्यूकानपि भिक्षाचर्यादि-<sup>20</sup> विषयानपायान् कथं न परयथ !, 'हन्दीति' उपदर्शने, 'हु' निश्चितस्, परयन्तु भगवन्तो यदु एवं निरन्तरोऽप्ययं लोकोऽपायानां भृतः ॥ ५२७६ ॥ कथम् ! इति चेद् उच्यते—

भिक्खादि-वियारगते, दोसा पृडिणीय-साणमादीया ।

उप्पन्नते जम्हा, ण हुं ठम्मा हिंडिउं तम्हा ॥ ५२७७ ॥ मिक्षा-विचारादौ गतानां साधूनां प्रत्यनीक-धान-गवादयो बहवो दोषा यस्मादुत्पधन्ते ३५ तस्मादु 'नहि' नैव साधूना हिण्डिदं रुम्यर्थं ॥ ५२७७ ॥

> अहवा आहारादी, ण चेव णिययं हवंति घेत्रन्या । जेवाऽऽहारेयर्न्वं. तो दोसा विजया होति ॥ ५२७८ ॥

अथवाऽऽहारात्याः 'नियतं' सर्वदा न महीतन्या भवन्ति किन्तु चतुर्ध-पद्धाँदिकं क्रत्वा सर्वभैवाशकेनाहारी माधः। यद्धा नैव कदानिद्ध्याहारयितव्यम्। एवं 'दोषाः' अथायाः <sup>50</sup> सर्वेऽपि वर्जिता भवन्ति॥ ५२७८॥ एवं परेणोके स्तरिराह—

१ प रिनमध्यतः पाठः को॰ एव वर्षते ॥ २ भू, तद्यि युष्माकं न बुध्यत इत्यर्थः ॥ को॰ ॥ ३ भा-प्रमादिकं को॰ ॥ व॰ १००

30

भण्णति सज्झमसज्झं, कर्ज सज्झं तु साहए मतिमं । अविसज्झं साधेती, किलिस्सति ण तं च साधेति ॥ ५२७९ ॥

भण्यतेऽत्र प्रतिवचनम्—कार्य द्विविधम्—साध्यमसाध्यं च । तत्र मतिमान् साध्यमेव कार्य साधयति नासाध्यम् । तुशब्द एवकारार्थः । यस्तु युष्पादशोऽविसाध्यं साधयति स ५ केववरुं क्किस्यति न च तत् कार्यं साधयति, यथा मृतिण्डेन पटादिसाधनाय प्रवर्तमानः पुरुष इति, असाध्यं चात्र मिक्षाचर्यादावपर्यटनम् ॥ ५२७९ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते—

जित एयविष्पहूणा, तव-णियमगुणा भवे निरवसेसा । आहारमादियाणं, को नाम कहं पि कुन्वेजा ॥ ५२८० ॥

यदि एतै:-- शाहारादिभिविंवियं प्रकर्षण हीना:-- रहिनास्त्रपो-नियमगुण। निरवरीषा भवेषु:

10तत आहारादींनां को नाम कथामणि कुर्यात्? अत आहारप्रहणार्थ निश्रायामटनीयमिति

प्रक्रमः । एनेन ''अहवा आहारादीं'' (गा० ५२७८) इत्याचणि प्रसुक्तं द्रष्टव्यम् ॥ ५२८० ॥

इवमैय सविशेषधाह----

मोक्खपमाहणहेतु, णाणाती तप्पमाहणो देहो । देहहा आहारो, तेण तु कालो अणुण्णातो ॥ ५२८१ ॥

10 इह मोक्ष्यसाधनहेतवः 'ज्ञानादीति' ज्ञान-दर्धन-चारित्राणि, तेषां च प्रसाधनी देही भवति, अती देहाथमाहार हव्यते । स च काले गृक्षमाणो घार्थमाणो चा चारित्रत्यानुषपातको भवति, तेन कारणेन कालोऽनुज्ञातः ॥ ५२८१ ॥ कथम ! इत्याह—

काले उ अणुण्णाए, जित वि हु लग्गेज तेहिं दोसेहिं। सुद्धो चुवादिणेतो, लग्गति उ विवज्जऍ परेणं ॥ ५२८२ ॥

श्रीषप्रहरवयळ्यणो द्वितीयादिषौरुपीत्रयात्मको वा काळो भक्त-पानादेषोरणोऽनुज्ञातः । एवं-विषेऽनुज्ञाते काळ वयापि 'तैः' पूर्वोक्तरोषिः 'छायेत' स्पृष्टयेत तथापि शुद्धः । अनुज्ञात-काळात् परेण 'उपानाययन्' अतिकामयन् 'विषयेते' अवियमानेच्यपि दोषेषु 'लगति' समायर्थिचो मन्तव्यः ॥ ५२८२ ॥

पदमाएँ गिष्टित्णं, पन्छिमपोरिसि उवादिणति जो उ ।

ते चेव तथ्य दोसा, चितियाए जे भणिय पुर्विव ॥ ५२८३ ॥

प्रथमाथां पौरूष्यां ग्रद्दीलां पश्चिमां पोर्शी योऽतिकामयति तत्र त एव दोषा ये पूर्वै

प्रथमाथां ग्रद्दीला दितीयाथामतिकामयतो जिनकस्थिकस्य भणिताः ॥ ५२८३ ॥

अमि चातिकामणकारणाति—

सज्झाय-लेन-सिन्वण-भायणपरिकम्म-सङ्करादीहि । सहस अणामोगेण व, उवादियं होज जा चरिमं ॥ ५२८४ ॥

१ "काले उ" नि तुशब्दो विशेषणे, स चैतद् विशिनप्टि—आद्यं कं । । २ विश्वती भवतीत्वर्षः ॥५२८२॥ इदमेवान्यपदं भावयति —पढमाए कं । ॥ ३ व्या यः सासुरुपाना-ययति तत्र कं । ॥

साध्यायेऽतीवीपयोगाद् विस्पृतम् । एवं लेपपिरकांणं कृत्रेतः, वस्नं वा सीव्यतः, भावनं वा पिरकांपतः, देशकथादिकं वा सहरम्-आळवालं कृत्रेतः, आदिशब्दः सहरस्यानेकभेद-स्चकः । एतेषु यद् अत्यन्तव्यप्रत्वं स सहसाकारः, 'अनामोगः' अत्यन्तविस्पृतिः । एवं सहसाकारेणानामोगेन वा 'वरमां' चतुर्थी यावदतिकामितं भवेत् ॥ ५२८४ ॥

> आहञ्चवाइणाविय, विभिन्नण परिष्णऽसंथरंतिम । अन्नस्स गेण्डणं ग्रंजणं च असतीएँ तस्सेव ॥ ५२८५ ॥

एतैः कारणैः ''आह्च'' कदाचिद्रतिकामितं भवेत् ततः 'विवेच्य' परित्यज्य 'परिज्ञा' दिवसचरमप्रत्याख्यानं कर्तव्यम् । अथ न संतरन्ति ततः काले पूर्यमाणे 'अन्यस्य' अञ्चनादेश्रेहणं भोजनं च कर्तव्यम् । अथ कालो न पूर्यते न वा तदानीं पर्याप्तं रूप्यते तेतः यतन्या यथा अगीतार्थाः 'तदेवेदमञ्चनादिकम्' इति न जानन्ति तथा तस्यैव परिगोगः कर्तव्यः॥भर८५॥ वि

विइयपएण गिलाणस्स कारणा अधनुवातिणे ओमे । अद्धाण पविसमाणो, मज्झे अहवा वि उत्तिष्णो ॥ ५२८६ ॥

ज्ञां वायतानायां, नप्त ज्ञान व उत्तर्या । न्यव ज्ञान । व उत्तर्या । न्यव । हिंतीयपदे व्यान्स कारणात् प्रायोग्यं भक्तादिकमतिरिक्तमि कार्ठं धारयेत्, व्यानकृत्ये वा तावद् व्याप्रताः यावत् वस्तर्योक्षी जाता, अथवा अवमे पर्यटत एव चर्डार्थं सङ्गातां, अध्वानि वा प्रविश्चन् सार्थवश्चगोऽतिकामयेत्, एवमध्वनो मध्ये वर्तमानस्ततो वा उत्तीर्णोऽ-15 संस्तरन् अतिकामयेद् भुझीत वा न कश्चिद् दौषः ॥ ५२८६ ॥

व्याख्यातं कालातिकान्तस्त्रम् । अथ क्षेत्रातिकान्तस्त्रं व्याख्यानयति-

परमद्रजीयणाओ, उजाण परेण चउगुरू होंति ।

आणादिणो य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽपाए ॥ ५२८७ ॥ अर्थयोजनं-द्विगब्यूतं ततः परमञ्जादिकमतिकामयतश्चतुर्गुरु । आसां नावद् अर्थयोजनम् २० अप्रोद्यानादिष परेणातिकामयतश्चतुर्गुरुकाः । आज्ञादयश्च दोषाः, संयमा-ऽऽत्मनोश्च विराधना ॥ ५२८७ ॥ तामेवाह—

> भारेण वेदणाए, ण पेहती खाणुमादि अभिघातो । इरिया पगलिय तेणग, भाषणभेदो य छक्काया ॥ ५२८८ ॥

भारेणाकान्तो वेदनाभिम्तः स्वाण्-कण्टकादीनि न प्रेक्षते, अश्वादिभिवाऽभिहन्यते, अथवा 25 "अभिवाइ" वि वरशासादिना शिरसि षट्यते, 'ईयाँ वा न शोधवति, दूरनयनेन च भक्त-पाने परिगळिते प्रथिन्यादिनिराधना, सेनैर्वा समुदेशो द्वियेत । क्षुधा-पिपासार्तस्य वा क्षीण-करुस भाजनमेदो भवेत् तत्र षट्कायविराधना । आत्मनः परस्य च तेन विना परिहाणिः ॥ ५२ ८८ ॥ परः माह—

१ तत प्रवमन्यस्य 'असति' अभावे यत' कं ॥ २ एतदनन्तरम् अधात्रैय द्वितीयपद-माह एववतर्षा कं ०॥ ३ "विषयपूर्ण" ति सप्तम्यये तृतीया दितीय' कं ०॥ ४ ता, अतस्त्रप्ति उपानाययेत्, चरमपौरुपीसित्यर्थोद् गम्यते । अध्वति कं ०॥ ५ एतदनन्तरं प्रन्याप्रम्—२५०० कं ०॥

उजाण आरएणं, तहियं किं ते ण जायते दोसा । परिहरिया ते होजा. जति वि तहिं खेतमावजे ॥ ५२८९ ॥

उचानादारतो मामादेरानीयाने भक्त-पाने किंते दोषा न जायने यदेवसुयानात् परत हत्यभिषीयते ! । सुरिराह—'ते' दोषाक्षीर्थकरवचनमामाण्येन परिहता भवन्ति यद्यप्यनु-। आतम्रेत्रे तान दोषानापद्यते ॥ ५२८९ ॥ पुनरिष परः भैरयति—

. एवं सुत्तं अफलं, सुत्तनिवातो इमो तु जिणकप्पे । गच्छम्मि अद्धजोयण, केसिंची कारणे तं पि ॥ ५२९० ॥

ननु यनुषानात् परतो नातिकामियतव्यम् ततो यत् "परमद्भजोयणमेराजो" चि सूर्वं भिणतं तद् अफलं प्राप्नोति । आचार्यः प्राह्म—यद् 'अभोधानात् परतो नातिकामियतव्यम्' 10 ह्युस्यत्मे स एम सूत्राधिनपातः 'जिनकहमे' जिनकित्यवयो मन्तव्यः, यत् पुनः "अर्द्धे- योजनात् परतः" ह्यादि सूत्रं तद् गच्छवासिविषयम् । केषाधिदाचार्याणामयमिभायः, यथा——चच्छासितिपत्र उत्तरं उद्यानात् परतो नातिकामणीयम्, कारणे तु तद्रपर्थयोजनं नेतव्यम्, एवमापवादिकं सूत्रम् । यद्वा "केसिंची कारणे तं पि" चि अन्यथा व्याख्यायते— 'केषाधिद् आचार्य- च्याव्यायते मान्यति— 'केषाधिद् भावाये नाल-इद्वादीनां कारणे 'तैदिप' अर्थयोजनं गम्यते ॥ ५२९० ॥

सक्खेर्ने जदा ण लमति, तत्तो दूरे वि कारणे जतति ।

गिहिणो वि चिंतणमणागतिम्म गच्छे किमंग पुण ॥ ५२९१ ॥
'स्वक्षेत्र' समागे यदा न रुभते तदा दूरेऽप्यावायादीनां कारणे भक्त-पानमहणार्थं यतते,
अर्थभोजनमपि गच्छतिति मावः । अपि च—यवपि स्वमागे प्रापुर्वेण रुभ्यते तथाऽप्युस्तट्रश्गंतस्त्वन न हिण्डनीयम् । कुतः ! इत्याह—यदि तावद् गृहिणोऽपि स्वविक्यसम्प्रक्ता
अनागतं प्राप्त्रकाथये चुन-गुड-रुवण तण्डुरुदीनां चिन्तां कुर्वन्ति किमक्क पुनर्गेच्छे समाछ-बृद्धे
येषां क्यविक्यः सम्रयक्ष नास्ति तैः प्राप्तुणकाययेगनागतं न चिन्तीयम् ! ॥५२६॥ ततः—

#### संघाडेगो ठवणाकुलेसु सेसेसु बाल-बुह्वादी । तरुणा बाहिरगामे, पुच्छा दिद्वंतऽगारीए ॥ ५२९२ ॥

क्समाने यानि वानम्मादादीनि स्थापनाङ्गलनि तेषु गुरूणां सङ्घाटक एकः प्रविश्वति । यानि सम्रामे शेषाणि कृळानि तेषु वारू-इदार-श्विरण्युप्पनुत्रयो हिण्डन्ते । ये तु तरुणासे विद्यमिन पर्यटन्ति । शिष्यः एच्छति—किमादरेण क्षेत्रं प्रत्युपक्ष रक्षव ! । गुस्ताह— अगार्या दृष्टान्तीऽत्र कियते ॥ ५२९२ ॥

परिमियभत्तपदाणे, णेहादवहरति थोवथीवं तु ।

पाहुण वियाल आगत, विसण्ण आसासणा दार्ण ॥ ५२९३ ॥ एगो किविणवणिओ अगारीए अविस्ससंतो तंदुरु-घत-लगण-कडुमंडादियं दिवसपरिव्ययं

१ °न्ते, गाथायामेकवचनं प्राकृतत्वात्, यदेव° कां ।। २ 'तत् ' अर्थयोजनमपि भक्त-

परिमितं देति, आवणातो घरे ण किंति तंतुकादि घारेति । अगारीए विंता—जदि एयस्स अकमरहितो मित्रो वा अन्नो बा पदोसादिअवेकाए आगमिस्सति तो किं दाहं ! । तओ अप्पणो बुद्धिपुक्वगेण विणयस्स अजाणतो णेह-तंतुकादियाण घोवयोवं फेडेति । कालेण बहु- धुस्तकं । अन्नया तस्स मित्रो पदोसकाले आगतो । आवणं आरक्तिवयमया गंतुं न सकति । विणयस्स विंता जाता, विसन्नो 'क्रहमेतस्स भन्तं दाहामि !' ति । अगारी विणयस्स मणो-5 गतं मार्व जाणिया भणति—मा विसार्व करेहि, सक्वं से करेमि । तीए अक्मंगादिणा ण्हावेडं विसिद्धमहारं भुंजाविज्ञो । बुद्दे। पित्रो पमाए पुणो जेमेडं गतो । वणिजो वि बुद्दे। भारियं अणह— अहं ते परिमियं देमि, कतो एतं ! ति । तीए सक्वं कहिंयं । बुद्देण विणएण 'एसा घर्रवितिय' ति सत्वो घरसारो समिष्पओ ॥

अधाक्षरार्थ: — परिमितमक्तमदाने सति खेहादेर्मध्यादगारी खोकखोकमपहरति । प्राचूर्ण-10 कस्य च विकाले आगमनम्, ततो गृहपतिर्विषण्णः । तथा तस्याधासना कृता । ततः प्राचूर्ण-कस्य भक्त-पानदानमकारि ॥ ५२९३ ॥

# एवं पीईवड्ढी, विवरीयऽण्णेण होइ दिद्वंतो ।

लोगुत्तरे विसेसा, असंचया जेण समणा तु ॥ ५२९४ ॥ एवं कियमाणे तथोः बुढ्दोः परस्परं मीतिड्रहिरुपजायते । विपरीतथान्येन मकारेण 15 इष्टानो भवति—तत्र परिसित्तमकाभयादगारी स्वीकतीकं नापहरति ततः बुढ्दादेः माषुण-कस्य केट्टवें भवति। एवं परि गृहस्य परिसामाणं विन्तवित ततः क्षिरामणैः माषुण-कस्य केट्टवें भवति । एवं परि गृहस्य परिसामाणातं विन्तवित ततः क्षिरामणैः माषुपिः स्तरामनागतं विन्तवित्व माष्ट्रास्य अस्य स्वतामनागतं विन्तवित्व माष्ट्रास्य स्वतामनागतं विन्तवित्व स्वतामनागतं वित्व स्वतामनागतं स्वतामनं स्वतामनं स्वतामनं स्वतामनं स्वतामनं स्वतामनं स्वतामनं स्वतामनं स्वताम

षतः क्षेत्रं रक्षणीयम् ॥ ५२९४ ॥

### जणलावो परगामे, हिंडित्ताऽऽणेंति वसहि इह गामे । देखह बालादीणं. कारणजाते य सलमं त ॥ ५२९५ ॥

जनस्यात्मीयात्मीयगृहेवु प्राममध्ये वा मिलितस्यालायः—प्रवादो भवति — जमी साघवः परमामे हिण्डित्वा भिक्षामिहानवन्ति ततः केवलं वसतिरेवेह मामे अमीवास् । एवं श्रुद्धा गृहपतयः स्वस्याहेळा जादिवन्ति — ये बालावयोऽत्र हिण्डन्ते तेषामादरण सविदोषं मयच्छत । एवं-विभायां चिन्तायां माधूर्णकादिकारणजाते यदि देशकालेऽदेशकाले वा हिण्डन्ते तदाऽपि श्रुळमं 25 मवति ॥ परेरुपः

#### पाहुणविसेसदाणे, णिजर कित्ती य इहर विवरीयं । पुर्टिव चमढणसिग्गा, न देंति संतं पि कजेसु ॥ ५२९६ ॥

माचूर्णकस्य 'विदोषेण' आदरेण सक्त-पाने दीयमाने परलोके निर्नरा इहलोके न कीर्ति-भैनति, नशस्त्रात् भीतिइद्धिः परस्यरोपकारिता न भनति । 'इतरवा' माचुणकस्याकियमाणे एत-३० देव विपरीतं मनति, निर्जरादिकं न भनतीत्यर्थः । कथं पुनस्तद् दानं न भनति ! इत्याह— पूर्वं नमदनया—दिने दिने मिनकाद्धिः साधुभिः सिग्गानि—परिश्रान्तानि स्वापनाकुलानि 'सदिष' गृहे विद्यमानमपि घृतादिकं द्रव्यं प्राचूर्णकादिकार्येषु उत्यनेषु न प्रयच्छन्ति । एवं गुण-दोषान् विज्ञाय क्षेत्रं प्रयक्षेन रक्षणीयसिति प्रकणः ॥ ५२९६ ॥ अयं जायरस्तत्र गुणो भवति— बोरीह य दिद्रतो, गच्छे वायामीं तिहें च पतिरिक्षं ।

केइ पुण तत्थ भुजण, अधिमाणे भणिय दोसा ॥ ५२९७ ॥

बहिर्मीमे भिक्षाटने कियमाणे प्रमूर्त दुग्ध-द्रप्यादिकं प्रायोग्धं प्राप्यते, तथा चात्र बद्धी • इष्टान्तो भवति । अपि च गच्छे एपैच सामाचारी गणपरमणिता—यद् बहिर्मीमे तरुणै-किंक्षायामटनीयम् । व्यायामश्च मोहचिकित्सानिभित्तं तैः इतो भवति । 'तत्र' बहिर्मीमे चल-व्याद् इह च ग्रामे ''पहरिकं'' एकान्तं भवति, मुक्किलिस्थाः । यद्वा ''पहरिकं'' ति पचुर्द मक्तपानं तत्रावाप्यते । केचित् पुनराचायेदेशीया मुवते—'तत्रेव' बहिर्मीमे भोजनं कर्त्तव्यम्, यतो थे पूर्वमानयतो भार-वेदनादयो दोषा मणितास्ते एवं परिहता भवन्ति । एतत् परमत-10 मतत्रत्र विराकिष्यते ॥ ५२९० ॥ अथ वदरीहष्टान्तमाइ—

गामऽन्मासे वदरी, नीसंदकहुष्कला य खुझा य । पक्काऽऽमाऽलस चेहा, खायंतियरे गता दूरं ॥ ५२९८ ॥ सिग्यतरं ते आता, तेसिऽण्णेसिं च दिंति सयमेव । खायंति एव इतर्रं, आय-परसहावहा तरुणा ॥ ५२९९ ॥

कस्त्यापि मामस्य 'अस्यासे' प्रत्यासन्त वदरी । सा मामनिस्वन्द्रपानीयेन संवर्षिता ततः कडुकफडा संवृता । अन्यच सा स्वभावत एव कुब्जा ततः सुलारोहा । तस्यां च कानिचित् फडानि पकानि कानिचित्मानि, अथवा 'पकाऽऽम' ति मन्द्रपकानि । तत्र ये अठसाः 'चोटकाः' बाठकाले तां वदरी सुलारोहामारक कड्नान्यपि वदराणि भक्ष्यन्ति, तान्यपि स्वस्वन्तया न पर्यातानि भवन्ति । 'इतरे नाम' अनठसाः-उत्साहवन्ते । बाठकाले दूरमध्वी गताः, २०तत्र च महावदरिवनेष परिपकानि वदराणि यथेच्छ लावनित ॥ '२९८ ॥

ततो यावत् तेऽल्यास्तस्यां कटुकवद्यां क्रिड्यमाना आसते तावत् 'ते' दूरगामिनो बालका आस्तनः पर्योधं कृत्वा बदरणेहल्कमाराकान्ताः शीष्रतरमागताः 'तेषाम्' अलसानाम् 'अन्येषां च' गुहे श्वितानां स्वजनानां वदराणि पर्यास्या ददति, स्वयमेय च भक्षयन्ति । एवम् 'इहाणि' गच्छवासे तरुणा भिक्षयो वीर्यसप्तमा उत्साहवन्तो बाह्यप्रामे हिण्डमाना 25 आस्तनः परेषां च-बाल-बृद्धादीनां सुमावहा मयन्ति ॥५२९९॥ कथम् ' इति चेद् उच्यते—

स्तीर-दहीमादीण य, लंभी सिग्धतर पढम पहरिके।

उग्गमदोसा विजदा, भवंति अणुकंपिया चितरे ॥ ५२०० ॥
यथा तेऽलसाक्षेटकास्त्रथा बाल-वृद्धादयोऽपि कुकावदरीकरूपे तस्तिन् मूल्यामे प्रत्यहमुद्देप्रमानतया चिरमपि हिण्डमानाः कोद्रव-क्रुरादिकमेव लभन्ते, तदपि न पर्याप्तम् । ये तु
30 तरुणा बहिमोमे गच्छन्ति तेऽनलसचेटककरूपाः, ततः क्षीर-दश्यादीना प्रायोग्यद्वस्थाणां
लाभक्षेत्रणां बहिमोमे भवति, शीमतरं च ते स्वमामे आगच्छन्ति । 'पदम" ति प्रथमालिकां
च स्वयं कुर्वेन्ति, बालादिभ्यः प्रथमतरं वा समागच्छन्ति । 'पद्रिकं" ति प्रचुरं सक्त-पानमु-

१ °स्तद्वणो ताटी • मो • दे • ॥

त्पादयन्ति । उद्भगदोषाश्च 'विजदाः' परित्यका भवन्ति । 'इतरे च' बाळादयोऽनुकस्पिता भवन्ति ॥ ५३०० ॥ अमुमेवार्थं सविशेषमाह--

एवं उग्गमदोसा, विजढा पहरिकया अणोमाणं।

मोहतिगिच्छा य कता. विरियायारी य अणुचिण्णो ॥ ५३०१ ॥ 'एवं' बहिर्मामे गच्छद्भिस्तैः 'उद्भवदोषाः' आधाकमीदयः परित्यक्ता भवन्ति । "पइरिक्वय" ठ ति प्रचरस्य भक्त-पानस्य लाभो भवति । 'अनपमानं' खपक्षापमानं न भवति । 'मोहचिकित्सा च' परिश्रमा-ऽऽतप-वैयावत्यादिभिर्मोहस्य निग्रहः कृतो भवति । वीर्याचारश्च 'अनुचीर्णः' अनुष्ठितो भवति ॥ ५३०१ ॥ अथ परः पाह---

> उजाणतो परेणं. उवातिणंतम्मि पुन्व जे भणिता । भारादीया दोसा, ते चेव इहं त सविसेसा ॥ ५३०२ ॥

नन शोभनमिदम्-यद अर्धयोजनं गम्यते, किन्तु तेषां भरितभाराणामाचार्यसकाशमाग-च्छतां ये पूर्वमुद्यानात परेण 'उपानाययति' अतिकामयति भारादयो दोषा भणितास्त एवेह सविशेषा भवन्ति ॥ ५३०२ ॥ ततः किं कर्तव्यम् १ इत्याह—

> तम्हा त ण गंतच्यं, तहिँ भोत्तच्यं ण या वि भोत्तच्यं। इहरा में ते दोसा, इति उदिते चोदगं भणति ॥ ५३०३ ॥

तसादाचार्यसमीपे भक्त-पानेन गृहीतेन न गन्तव्यं किन्तु 'तत्रैव' बहिर्शीमे भोक्तव्यम् , एवं भारादयो दोषाः परिहृता भवन्ति । "न वा वि भोत्तव्वं" ति वाशव्दः पश्चान्तरचोतकः. अथ भवन्तो भणिप्यन्ति--- नैव बहिर्झामे भोक्तव्यम् , तत एवमितरथा ''मे'' भवतां 'त एव' भारादयो दोषाः । एवं 'उदिते' भणिते सति सरिनोदकं भणति-यदि तत्र समुद्रिशन्ति ततो मासल्छ, भवतोऽप्येवं भणतो मासल्छ, तैश्च तत्र प्रायोग्यं समुद्धिशद्भिराचार्यादयः ३० परित्यक्ता मन्तव्याः, तेषां प्रायोग्यमन्तरेण परितापनादिसम्भवात ॥ ५३०३ ॥

आह किमिवाचार्यमन्तरेण न सिध्यति यदेवं तदर्थं प्रायोग्यमानीयते ? इत्याह-

जइ एयविष्पद्रणा, तव-नियमगुणा भवे णिरवसेसा । आहारमाइयाणं, को नाम कहं पि क्रव्वेजा ॥ ५३०४ ॥

यदि एतेन-आचार्येण विप्रहीणाः-एनमन्तरेणेत्यर्थः तपो-नियमगुणा निरवशेषा भवेयुः 25 तत आचार्यप्रायोग्याणामाहारादीनामन्वेषणे को नाम कथामपि कुर्वीत ?, न कश्चित । इदमन्न हृदयम---सर्वोऽपि तपो-नियमादिकः प्रयासोऽसाकं संसारनिस्तरणार्थम् . ते च तपःप्रमतयो गुणा गुरूपदेशमन्तरेण न सम्यगवगम्यन्ते, न वा निरवशेषा अपि यथावदनुष्ठातुं शक्यन्ते. अतः संसारनिस्तरणार्थमाचार्याणां प्रायोग्यानयनादिना कर्तव्यमेव वैयावृत्यमिति ॥ ५३०४ ॥ अपि च—

> जित ताब लोइय गुरुस्स लहुओं सागारिओ पुरुविमादी। आणयणे परिहरिया, पढमा आपुच्छ जतणाए ॥ ५३०५ ॥

30

यदि ताबक्षीकिका आपि यो गुरु:—पिता ज्येष्ठवन्धुर्वा कुटुम्बं घारयति तसिष्ठभुके न सुक्कते, यश्वीत्कृष्टं शास्योदनादिकं तत् तस्य प्रयच्छिन्तिः, ततः किं पुनर्थस्य प्रमावेन संसारो निस्तीर्थते तस्य प्रायोग्यमदस्या एवमेव भुज्यते ?। यस्तु सुक्के तस्य मासक्यु । वसतरमावाश्व तत्र सुक्कानान् सागारिको यदि परयति तदा चतुर्केषु, आज्ञादमश्च दोषाः । अस्विष्ठके च समुद्दिशतां । प्रायविद्यायाना । आगवने तु सर्वेऽप्यते दोषाः परिहृता भवन्ति, अतो गुरुसम्पिपनानेतन्त्रम्य । द्वितीयपदे प्रथमालिकां कुर्वन्तो गुरुसमुख्या गच्छिन्त । यतनया च यथा संसृष्टं न भवति तथा प्रथमालिकां कर्तन्या ॥ ५३०५ ॥

चोदगनयणं अप्पाऽणुकंपिओ ते य मे परिचत्ता । आयरिए अणुकंपा, परलोए इह पसंसणया ॥ ५३०६ ॥

ंनोदकवचनं नाम' परः प्रेरयति—यावत् ते ततो प्रामात् प्रत्यागच्छित्त तावत् तृष्णा-क्षुचाङ्कान्ता अतीव परिवाप्यन्ते, एवं प्रस्पापयद्भिभवद्भिरास्मा अनुकम्पितः 'ते च' साघवः परित्यक्ता भवन्ति । गुरुराह—ननु मुग्व ! त एवानुकम्पिताः, कथम् ? इत्याह—"आयरिए" इत्यादि, यद् आचायेवैयाद्यये नियुक्ता एगा पारळेकिकी तेषामनुकम्पाः इह्छोकेऽपि तेऽनु-कम्पिताः, यतो बहुम्यः साधु-साध्वीजनेम्यः प्रशंसामासादयन्ति ॥ ५ई०६॥ परः प्राह—

> एवं पि परिचत्ता, काले समए य असहुपुरिसे य । कालो गिंम्हो उ भवे. समुजो ना पढम-बितिएहिं ॥ ५३०७ ॥

यतस्ते बुमुक्षित-तृषिता भाराकान्ताः श्रीत-बाता-ऽऽतपैरभिहताः पन्थानं बहन्ति, यूयं तु श्रीतरूच्छायायां तिष्ठथ, तत एवमपि ते परित्यक्ताः । सुरिराह—तेषामपि कालं क्षपकमस-हिप्णुपुरुषं च प्रतीत्य प्रथमालिकाकरणमनुज्ञातम् । तत्र कालः-प्रीप्मलक्षपास्त्रस्तिन् प्रथमालिकां 20 कृत्वा पानकं पिबन्ति, क्षपको वा प्रथम-द्वितीयपरीषद्यभ्यामतीय बाधितः प्रथमालिकां करोति, प्रवमसिष्ठण्यापि बुसक्षातः प्रथमालिकां कुर्योत् ॥ ५२०७ ॥ अत्र परः प्राह्—

जइ एवं संसद्धं, अप्पत्ते दोसियाइणं गहणं।

लंबण भिक्ला दुविहा, जहण्णमुक्तोस तिय पणए ॥ ५३०८ ॥

यथेवमसी बहिरेव मयमालिकों करोति ततो भक्तं संख्ष्टं भवति, संख्ष्टं च गुर्वादीनां 28 दीवमानेऽभक्तिः कृता भवति । गुरुराह — अप्राप्ते देश-काले दोषाक्षादेर्महणं कृत्वा येषु वा कुलेषु प्रमाते वेका तेषु पर्वत्य प्रथमालिकां कुर्वेन्ति, माजनस्य च करूपं कुर्वेन्ति । प्रथमालिकामाणं च द्विषा — ल्यन्ततः प्रथमातिक । तत्र जयन्येन त्रयः 'ल्य्चनाः' कवलासिक्तः भिक्षाः, उल्लेशंतः पञ्च ल्यनाः पञ्च चा मिक्षाः । होषं सर्वमिष मध्यमं प्रमाणम् ॥ ५३०८ ॥ अय तैः कृत्र कि महीतव्यम् र हति निक्तप्यति —

एगत्य होइ भनं, बितियम्मि पडिग्गहे दवं होति । गुरुमादीपाउग्गं, मत्तऍ बितिए य संसत्तं ॥ ५२०९ ॥ साधुद्वयस द्वा प्रतिमही द्वी च मात्रकी भवतः । तत्रैकसिन् प्रतिमहे भक्तं महीतन्यम्,

१ गिंभो उ तामा॰ ॥ २ °सिणादिणं तामा॰ ॥

द्वितीये च 'द्रवं' पानकं भवति । तथैकस्मिन् मात्रके आचार्यादीनां प्रायोग्यं गृक्षते, द्वितीये तु संसक्तं भक्तं वा पानकं वा प्रत्युपेक्षते । यदि शुद्धं ततः प्रतिब्रहे प्रक्षिप्यते ॥ ५३०९ ॥

जित रिको तो दवमत्तगिम्म पढमालियाएँ गहणं तु । संसत्त गहण दवदस्त्रभे य तत्थेव जं पंत ॥ ५३१० ॥

यदि रिक्तोऽसी द्रवमात्रकः ततस्त्रत्र पथमालिकाया महणं कर्तव्यम्, एवं संख्ष्टं न 3 भवति । अथवा तस्मित् द्रवमात्रके संतक्तं द्रवं गृहीतम्, द्रवं वा तत्र क्षेत्रे दुर्छमं ततः 'तत्रैव' भक्तभतिमहे यत् मान्तं तद् एकेन हस्तेनाक्रृष्य अन्यस्मिन् हस्ते क्रस्वा समुद्दिशति, एवं संस्ष्टं न भवति ॥ ५३ १०॥

### विइयपदं तत्थेवा, सेसं अहवा वि होइ सन्वं पि।

तम्हा गंतन्वं आणणं, व जित वि पुद्वो तह वि सुद्वो ॥ ५२११ ॥ 1) द्वितीयपदमत्रोच्यते —अतीव बुग्धक्षितासत्रैवातमः संविभागं मुझते, होषं सर्वमप्यान-यन्ति, अथवा तत्रैव सर्वमास-परसंविभागं मुझते । यत एष एवंविधो विधिसासाद् विधिना गन्तस्यं विधिना आनेतन्यं विधिना तत्रेव भोकन्यम् । एवं सर्वत्र विधिं कुर्वन् यद्यपि दोषै: स्ष्टो भवति तथापि ग्रुद्धः ॥ ५१११ ॥

कथं पुनः सर्वेमसर्वं वा भिक्षाचर्यागतेन भोक्तव्यम् ? इत्याह-

अंतरपछीगहितं, पढमागहियं व भ्रुंजए सच्चं । संखडि धुवलंभे वा, जं गहियं दोसिणं वा वि ॥ ५३१२ ॥

यद् अन्तरपश्चिकायाँ गृहीतं प्रथमपौरुषीगृहीतं वा तत् सर्वमिषि शुक्के । यत्र वा जानन्ति सङ्क्ष्यां धुवो कामो भनिता तत्र यत् पूर्वे गृहीतं तत् सर्वमिषि भोक्तव्यम् । यद् वा दोषात्रं गृहीतं तदशेषमिषि भोक्तव्यम् ॥ ५३१२ ॥

दरहिंडिएन भाणं, भरियं भ्रतुं पुणो नि हिंडिजा। कालो नाऽतिकमई, भ्रंजेजा अंतरा सन्वं ॥ ५३१३ ॥

अथवा 'दरहिण्डिते' अर्धेपर्वटित एव भाजनं सृतं ततोऽरूपसागारिके तत् पर्यातं सुक्तवा पुनरिष भिक्षां हिण्डेत । अथवा यावद् आचार्यान्तिके आगच्छन्ति तावत् काखोऽतिकामति, चतुर्वेपौरिषी खगति सुर्यो वाऽस्तमेतीत्यर्थः, ततः सर्वमिष 'अन्तरा' तत्रैव सुङ्कीत ॥५३१३॥ 25

परमद्धजोयणातो, उजाण परेण जे भणिय दोसा । आह्बबनातिणाविष्, ते चेब्रस्सम्म-अववाता ॥ ५३१४ ॥

अथार्थयोजनात् परेण अतिकामयति तदा ये उद्यानात् परतोऽतिकामणे दोषाः पूर्वं भिण-तास्त एव द्रष्टन्याः । अश्र "आहम्ध" कदाचिदनाभोगादिनाऽतिकासितं ततस्तावेवोत्सर्गा-ऽपवादौ, उत्सर्गतस्तद् न भोक्तव्यम् अपवादतः पुनरसंस्तरणे भोक्तव्यमिति मावः॥ ५३१॥ ३०

॥ काल-क्षेत्रातिकान्तप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °यां-मूलप्रामाद्धेतृतीयगब्यूतिभाविन्यां गृही° कां० ॥ इ० १५८

# अने पणीय प्रकृत म्

सूत्रम्---

निगांथेण य गाहावइकुळं पिंडवायपिडयाए अणु-प्यविद्वेणं अञ्चतरे अचित्ते अणेसणिज्जे पाण-भोयणे पिडग्गाहिए सिया, अत्थि या इत्थ केइ सेहतराए अणुवद्वावियए कप्पद्व से तस्स दाउं अणुप्पदाउं वा; नित्थ या इत्थ केइ सेहतराए अणुबद्वावियए तं नो अप्पणा भुंजेजा, नो अन्नेसिं दावए, एगंते बहुफासुए पएसे पिडळेहिता पमजित्ता परिट्टवे-यद्वे सिया १८॥

अस्य सम्बन्धमाह---

आहार एव पगतो, तस्स उ गहणम्मि विणया सोही । आहच पुण असुद्धे, अचित्त गहिए इमं सुत्तं ॥ ५३१५ ॥

आहार एवानन्तरस्त्रे मक्कतः । 'तस्य च' आहारस्य प्रहणे द्योधिर्वर्णिता, यथा ग्रुद्ध आहारो 15 प्रहीतच्यः तथा भणितमिति भावः । ''आहच'' कदाचित् पुनरगुँद्धो अचित्त आहारो गृहीतो भनेत् तत्र को विधिः ! इत्यस्यां जिज्ञासायामिदं सुत्रमारभ्यते ॥ ५३१५ ॥

> अहवण सचित्तदब्बं, पिंडसिद्धं दब्बमादिपिंडसेहे । इह पुण अचित्तदब्बं, वारेति अणेसियं जोगो ॥ ५३१६ ॥

अँथवा पूर्वतरसूत्रेषु "तओ नो कप्पंति पद्याविष्णः" (स्० ४) हत्यादिषु सन्विद्धस्य २० 'इब्बाद्मितिषेषेन' द्रव्यं-पण्डकादिकं तदाश्रित्य प्रतिषेषो द्रव्यपतिषेषस्तेन, आदिशब्दाद् "दुहे मुदे" इत्यादिषु च भावमतिषेषेन प्रतिषद्धम् । 'इह पुनः' प्रकृतसूत्रेत्रऽचित्तद्रव्यमनेषणीयं वारायि । एष 'योगः' सम्बन्धः ॥ ५३१६ ॥

अनेनायातस्मास्य व्याख्या—ितर्मन्येन च गृहपतिकुळं पिण्डपातमितज्ञयाऽनुमिष्टेन ''अन्नतरे'' चि उद्गमेत्पादनैषणादोषाणामन्यतरेण दोषण दुष्टम् 'अनेषणीयम्' अशुद्धम् <sub>25</sub>'अचित्तं' निर्जीवं पान-भोजनमनाभोगेन प्रतिगृहीतं स्यात् , तच्चोत्कृष्टं न यतस्ततः परिस्यक्तुं शक्यते, अस्ति चात्र कथ्यित् 'शैक्षतरकः' लघुतरः 'अनुपस्यापितकः' अनारोपितमहाब्रदः

१ °धाऽनन्तरस्वे अणि कं । ॥ २ 'गुद्धः-अनेषणीयः परम् अस्तितः-प्रशुकः एवं-सिप्र आहा' कं । ॥ २ ''अहवण' 'सि असण्डमञ्जयमध्यार्थे । अध्या कं । ॥ ४ 'यहे 'अस्तित्त्रक्रम्' अहाररूपम् 'अनेषितम्' अनेषणी' कं । ॥ ५ च 'अत्र' विवक्षितनि-र्रम्यसास्त्राच्छमध्ये किस्ति' कं । ॥

कस्पते ''से'' 'तस्य' निर्भन्यस्य 'तस्तै' शैक्षाय दातुमनुमदातुं वा । तत्र दातुं मधमतः, 'अनुप-दातुं' तेनान्यस्मिनेषणीये दत्ते सति पश्चात् मदातुम् । अध नास्त्यत्र कोऽपि शैक्षतरकोऽनुप-स्मापितकस्ततस्तद् नैव आस्मना भुक्तीत न वाऽन्येषी दचात् किन्तु एकान्ते बहुपाशुके भदेशे प्रस्तुपेक्ष्य ममुख्य च परिष्ठापितत्र्यं स्मादिति सुत्रार्थः ॥ अध निर्मूक्तिविस्तरः—

अ च पारशायवन्य स्थादात त्त्रायः ॥ चय मिश्राकावस्तरः-अस्ततरऽणेसणिजं, आउद्गिय गिण्हणे त जं जस्य ।

अषमोग गहित जतपा, अजतण दोसा इमे होति ॥ ५३१७ ॥
'अन्यतरर्' उद्गमदोनामेकतररोषदुष्टमनेषणीयमाकुट्टिक्या यो गृह्वाति । आकुट्टिका नाम— स्वयमेव भोक्ष्ये शैक्षस्य वा दास्यामि । एवसुपेत्य महणे येन दोषणाशुद्धं तमापचते, यच यत्र दोषे प्रायक्षित्तं तत् तस्य भवति । अथानामोगेनानेषणीयं गृहीतं ततो यतनया शैक्षस्य दातव्यम् । यदि अयतनया ददाति तत इमे दोषा भवन्ति ॥ ५३१७ ॥'

मा सन्वमेयं मम देहमशं, उक्कोसएणं व अलाहि मज्झं ।

किं वा ममं दिखति सन्बंसेयं, इवेब बुचो तु भणाति कोई ॥ ५२१८ ॥ तेन अनेषणीयमिति इत्या शैक्षम्य दत्तम्, स च शैक्षो वृथात्—मा सर्वेसेतद् 'अलं' भक्तं मम दत्त, अथोत्कृष्टमिति इत्या मे दीयते तत्रोतकृष्टेन भक्तेन ममालम्, किं बा सर्वेसे-तद् मम दीयते ! इति । एवं शैक्षेणीक्तः कश्चिद् भणति ॥ ५२१८ ॥

एतं तुरुमं अम्हं, न कप्पति चउगुरुं च आणादी । संका व आभिओग्गे, एगेण व हच्छियं होजा ॥ ५३१९ ॥

'एतत् तव करूरते, असाकं द्व न करूरते' एवं मणतश्वद्यग्रिकम् आज्ञादयश्च दोषाः । शक्का च तस्य शैक्षस्य आभियोगः-कार्मणं तद्विषया भवति । 'एकेन वा' केनचित् शैक्षेण तद् दीयमानमीप्सितं भवेत् तस्य च ग्लानत्वे यथामावेन जाते सित द्वितीयशैक्ष उद्घाहं 20 कुर्योत् ॥ ५३९९ ॥ इदमेव भावयति—

कम्मीदय गेलके, दृहुण् गती करेज उष्टाहं।

एगस्स वा वि दिण्णे, गिलाण विभिक्षण उङ्गाही ॥ ५२२० ॥
कर्मोदयाद यथाभावेनैव म्लानखे जाते सति स चिन्तयेत्—एतैः 'मा वतादवं प्रतिभज्यताम्' इति इत्वा ममाभियोग्यं दत्तम् । एवं 'द्रष्ट्य' ज्ञात्वा स सूयो गृहवासं गतः सन् 2० उङ्गाहं कुर्यात्—एतैः कार्मणं नम दत्तमिति । एकस्य वा दत्ते सति यदाँ म्लानत्वं जातं तदा द्वितीयः श्रेक्षो व्रतं विभिन्ता ममुतजनसमक्षसुङ्काहं कुर्यात् ॥ ५२२० ॥

किं पुनक्षिन्तयित्वा स वर्त वमति ! इत्याह-

मा पडिगच्छिति दिण्णं, से कम्मण तेण एस आगल्लो । जाव ण दिखति अम्ह वि, ह पु दाणि पलामि ता तुरियं ॥ ५३२१ ॥

१ 'चां साधूनां ''दाचप'' ति आपैत्वाद द्या' को॰ ॥ २ इतोऽप्रे को॰ प्रतो के पुनत्ते ? इत्यत आह इत्वनतरणं निषये ॥ २ इतोऽप्रे को॰ प्रतो किस् ? इत्यत आह इत्वनतरणं नर्पते ॥ ४ 'दा ''गिलाण'' ति भाषप्रधानत्याद् निर्देशस्य स्था' को॰ ॥

30

मी प्रतिगमिष्यतीति बुद्धा कार्मणमस्य दत्तं तेनायं ''आगक्षो" म्लानः सङ्गातः, अतो यावदस्माकमपि कार्मणं न दीयते तावत् स्वरितमिदौनीमहमपि प्रत्ये ॥ ५२२१ ॥

अथवा कश्चिदिदं ब्रयात-

मत्तेण में ण कड़ां, कहुं भिक्खं गती व भीक्खामि।

अर्ण्ण व देह मज्झं, इय अजते उज्झिणिगदीसा ॥ ५३२२ ॥
भक्तेन 'मे' मम न कार्यम्, करूये वा भिक्षां गतो वा भोक्ष्मे, अन्यद्वा भक्तं मसं पयच्छत । "इय" एवमयतनया दीयमाने 'उज्झिनिका' पारिष्ठापनिका भवेत् । तस्यां च दोषाः
कीटिका-मश्चिकादिविराधनारूपा मन्तन्याः ॥ ५३२२ ॥

अथवा एकस्य ग्हानत्वे जातेऽपरिधन्तयेत---

ह णुताव असंदेहं, एस मओ हं तुताव जीवामि ।

वग्या हु चरंति इमे, मिगचम्मगसंवुता पात्रा ॥ ५३२३ ॥
"ह णु" वि 'हः' इति खेदे 'तुः' इति वितर्के । एव तावद् अहन्देहं सृतः, अहं तु
तावदिदानीं जीवासि, इमे च पापाः अगणका सृगचर्मसंवृता व्याप्राध्यत्ति, बहिः साधुवेदाव्यक्ता हिंसका अभी इति भावः । अतो यावद् पते मां जीवितात्र व्यपरोपयन्ति तावत्
10 प्रतिपाच्छामीति ॥ ५३२३ ॥ किञ्च —

अभिओगपरज्झस्स हु, को धम्मो किं व तेण णियमेणं। अहियकरगाहीण व. अभिजोएंताण को धम्मो ॥ ५३२४ ॥

अभियोगेन-कार्मणेन "परज्झसा" वि परवशीकृतस्य मम को नाम धर्मो भविष्यति ?, किं वा तेन नियमेन मम कार्यव् ?, तथा अधिककरशाहिणामिवागीवामप्येवमभियोजयतां को 26 मर्मः ? न कश्चिदित्यर्थः । एवं विचिन्त्य गृहवासं भ्योऽपि कुर्यात् ॥ ५३२४ ॥

यो ग्लानीम्योत्पन्नजितः स प्रवजन्तमित्थं विपरिणमयेत्-

किच्छाहि जीवितो हं, जति मैरिउं इच्छसी तहिं वच ।

एस तु भणामि भाउग !, विमकुंभा ते महुपिहाणा ॥ ५३२५ ॥

'कुच्लाद' अतिदुःसेनाहं ताबद् जीवितः, अतो यदि त्वमिष मर्तुमिच्छित तदा 'तत्र' 25 तेषां साष्ट्रामन्तिके तत्र , येन भवतोऽप्येवं सम्पवत इति भावः। अपि च — हे आतः। प्रोप्तक्तिकात्तिहेतो सूत्वा भवन्तं भणामि — ते साथवो विषक्तमा मृशुपिशनाः सन्ति, ग्रुस्तेन जीवदयाधुपदेशकं मधुरं वचो जन्यित, चेतसा तु विषवत् परव्यपरीपणकारिदारुणपरिणामा इति हृदयम्। एवं विपरिणामितोऽसी प्रकथामपतिष्यमाः प्रकायविराधनादिकं यत् करोति तिलप्तं अयतनादाधिनः प्राथिवत् ॥ ५३२५॥ किन्न —

वातादीणं खोमे, जहण्णकाछित्थए विसाऽऽसंका । अवि जजति असविसे, पेव य संकाविसे किरिया ॥ ५३२६ ॥

१ "वर्चमानासचे वर्चमाना" इति वचनात् 'मा पढिगच्छई' ति मा प्रति° कां० ॥ २ "दानीं "इ:" इति खेदे, "चु:" इति वितर्के, किं पलाये १ कां० ॥ ३ मरणं इ" तामा॰ विना॥

तस्यागुद्धाहारदानानन्तरं वातादीनां होभे 'जचन्यकाळात' तस्यागुदेगेरिथते विवाशङ्का मबति—मन्ये विवममीभिर्मम दस्यं येनैबं मे सहसेव धातुक्षोभः समजित । एवं चिनतप्तस्तस्याचिरादेव मरणं भवेत् । कुतः ! इत्याह—''अवि' इत्यादि, ''अपिः' सन्यावनायाम्, सम्भाव्यते अयमर्थः—यद् अन्यस्य सर्वस्यापि विषस्य मझादिकिया युज्यते, शङ्काविषस्य यु 'किशा' चिकित्सा नैव भवति, मानसिकत्वेन तस्य मतिकर्तुपशक्यस्वात् । यत एते दोषा वि अतो नायतन्त्रया दात्रव्यम् ॥ ५३२६ ॥ अत्र परसत्युप्तस्यस्य दुवयति—

केह पुण साहियन्वं, अस्समणो हं ति पडिंगमो होज । दायन्वं जतलाए, णाए अजुलोमणाऽऽउट्टी ॥ ५२२७ ॥

केचित् पुनराचार्या धुवते— स्फुटमेव तस्य कथियतव्यम्— भवत एवेदं करुपते; एतच न युग्यते । यत एवयुक्ते कदाचिदसौ ब्रूयाद्य—यत् श्रमणानां न करुपते तद् मम यदि करुपते 10 तत एवमहम् 'अश्रमणाः' न श्रमणो भवामि, अश्रमणस्य च निर्मर्थकं में शिरस्तुण्डयुण्डनम्; इति विचन्त्य प्रतिगमनं कुथीत् । यत एवमतौ यतनया दातव्यम् । यतनया च दीयमानं यदि ज्ञातं भवति तदा बश्चमाणवचनेः 'अनुकीमानं प्रज्ञापना तथा कर्तव्या यथा नस्य 'आधुत्तिः' समाधानं भवति ॥ ५२०॥ प्रज्ञापनाविधिश्रायम्—

अभिनवधम्मो सि अभावितो सि बालो व तं सि अणुकंषो । तव चेवऽद्दा गहितं, क्षुंजिजा तो परं छंदा ॥ ५३२८ ॥ कप्पो चिय सेहाणं, पुच्छमु अण्णे वि एस हु जिणाणा । सामाइयकप्पठिती, एसा सुत्तं चिमं बेंति ॥ ५३२९ ॥

'अभिनवधर्मा' अधुनैव गृद्दीतप्रवृज्योऽसि त्वम्, अत एव 'अमावितोऽसि' नाथापि भैक्षमोजनेन भावितः, बाहश्च त्वमसि अत एव 'अनुकम्प्यः' अनुकापनीयः, तत इदमुक्कृष्ट- 20 द्रव्यमगुद्धमपि तनेवाधीय गृद्दीतम्, अतः परं 'छन्दात्' खच्छन्देन सुझीयाः ॥ ५३२८ ॥

अपि च — करूप एवेष शैक्षाणां यदनेषणीयमधि भोकुं करूपते, यदि भन्तो न मत्ययस्ततः प्रच्छ 'अन्यानिष' गीतार्थसाधून् । तेऽपि तेन पृष्टाः सन्तो कृतते — एषा 'हु' निश्चितं 'जिनाजा' तिथिकतात्रपदेशः, सामाधिककरपस्य चैषेव खितिः । सूत्रं च ते साथवः 'हृतं' प्रस्तुतं ''अश्चि या हृत्य केह सेहतराय'' हत्यादिरूपं बुवते । भवेत् कारणं येनाकुटिकयाऽपि द्यात् ॥५३२९॥ 25 कथम हत्यादा —

> परितित्थियपूरातो, पासिय विविहार्तो संखडीतो य । विष्परिणमेज सेघो. कक्खडचरियापरिस्संतो ॥ ५३३० ॥

कापि क्षेत्रे परतीर्थिकानां पूजाः-सादरिक्षण्य-मधुरभोजनादिरूपाखदुणसकैर्विधीयमाना दृष्टा विविधाश्य सङ्ख्यदीरक्शेक्य श्रेकः कर्कश्चवर्यापरिश्रान्तैः सन् विपरिणमेत् ॥५३३०॥ ततः — ३०

नाऊण तस्स मार्व, कप्पति जतणाएँ ताहे दाउं जे।

१ °ते---"साहियब्वं" ति स्फु॰ कां ।। २ °न्तः समस्तदोपविशुद्धभैक्षप्रहणनिर्विष्णः स' कां ।।

संधरमाणे देतो. लगाइ सद्राणपच्छिते ॥ ५३३१ ॥

श्वाला 'सस्य' दीक्षस्य 'भावं' क्षिण्य-मुपुरमोजनविषयमिभाययेषणीयालामे यतनया तस्या-नेषणीयमपि दानुं कल्पते । अय संसारतोऽपि ददाति ततः स्वस्यानभायश्चिते लगति, येन दोषणाशुद्धं तनिष्पन्नं मायश्चितमापयत इति भावः ॥ ५२२१ ॥

सहस्स व संबंधी, तारिसमिन्छंतें बारणा णत्थि । कक्खर्डे व महिद्रीए. वितियं अद्धाणमादीस ॥ ५२३२ ॥

हीक्षस्य वा सम्बन्धिनः केऽपि ब्रेहातिरेकत उद्धृष्टं मक्तमानीय द्युः, तस्य च ताहरं मोक्क्तिम्ब्छतः 'बारणा' प्रतिषेषो नाति । ''कबसडे व'' ति कर्कशम्-अवमीदयै तना-संस्तरणेऽछ्यद्वं शैक्षस्य दातव्यप्, ग्रुद्धमाराना भोकव्यप् । ''मिहङ्कीए' वि महाँद्धकः-नाजादि-10 प्रत्रतितः स यावद् नाथापि भावितः तावत् प्रायोग्यमनेषणीयं दीयते । ''बिह्यं अद्याणमा-दीमु'' ति अध्वादिषु कारणेषु द्वितीयपदं भवति, स्वमप्यनेपणीयं भुक्तानाः छुद्धा इति भावः। पृषा पुरातनी नायथा ॥ ५३३२ ॥ साम्यतमेनामेव विद्यणीति—-

नीया व केई तु विरूवरूवं, आणेज भत्तं अणुवद्वियस्सा ।

स चाबि पुरुकेज जता तु थेरे, तदा ण बारेंति ण मा गुरूना ॥ ५३३३ ॥

तर्जकाः केचिद् 'विरूपरूपं' मोदका-इशोकवर्ति-शाल्योदनप्रभृतिकप्रकृष्टं भक्तमनुषस्थितस्य शैक्षस्यार्थायानयेयुः । स च तैर्निमम्नितं यदा 'स्वितरान्' आचार्यान् पुण्छेत्—
गृह्वाम्यहमिदस् १ न बा १ इति; तदा गुरवो ''ण'मिति 'तं' शैक्षं न बारयन्ति । कुतः १
इत्याह—"मा गुरून्" ति मा बारयतां चत्वारो गुरुकाः प्रायश्चितं भवेत् ॥ ५३२३ ॥

किमर्थ पुनर्न वार्यते ? इत्याह---

20

लोलुग सिषेहतो वा, अण्णहमावो व तस्स वा तेसि ।

गिण्डह तुरुभे वि बहुं, पुरिमङ्की णिन्त्रियतिगा भो ॥ ५२३४ ॥
कोञ्चपतया संज्ञातककोहतो वा स तद् भक्तं भोकुमभिल्येष् ततो यदि बायेते तदा 'तस्य'
श्रेक्षस्य 'तेगां वा' संज्ञातकावाम् 'अन्यवाभावाः' विपरिणमनं भवेत् । संज्ञातकावाम् साधुनामस्यन्ते—अहेतद् भक्तप् अतो युगमि गृहीतः, ततो वक्तव्यम्—"भो" इति वयं
26 पूर्वोद्धास्यास्यानिनी निर्विकृतिका वा ॥ ५३३४ ॥ अथ ते संज्ञातका क्रवीरन्—

मंदक्खेण ण इच्छति, तुब्मे से देह वेह णं तुब्मे । किं वा वारेग्र वर्ष, गिण्हत छंदेण तो बिति ॥ ५३३५ ॥

एप युष्माभिरतुज्ञातः 'मन्दाक्षेण' रुज्जया न महीतुमिच्छति तती यूर्य तत्य प्रयच्छत, भणत वा यूयम्—गृहाणेति । तत्र हुवते—किं वा वयं वारयामः १ गृहातु खयमेव छन्देन ३०यदि रोचते ॥ '५३५५ ॥ अध "कक्खडे व महिन्नीष्" ित पदद्वयं व्यास्याति—

वीसुं बोमे घेतुं, दिंति व से संधरे व उज्झति । भावेता विद्विमतो, दरुंति जा भावितोऽणेसि ॥ ५३३६ ॥

१ 'निजकाः' शैक्षसन्कसङ्गातकाः केचिद् कां॰ ॥ २ मंतक्खेण तामा॰ ॥

'अवमे' दुर्भिक्षे यावन्तिकादिकमनेषणीयं 'विष्वक्' पृथग् गृहीत्वा शैक्षस्यार्थायाऽऽनीतं तस्यैव प्रयच्छन्ति, संस्तरन्तो वा उज्झन्ति । यो वा ऋद्धिमत्पत्रजितस्तं 'भावयन्तः' मैक्ष-मोज-नभावनां आहयन्तो यावद् भावितो न भवति तावद् येन वा तेन वा दोवेणानेवणीयं प्रायोग्यं लक्ष्या ददति । यद्येवं ऋद्भिमस्प्रवित्तं नानवर्तयन्ति ततश्चर्त्रग्रहकम् ॥ ५३३६ ॥

कुतः ? इति चेद् उच्यते---

तित्यविवही य पभावणा य ओभावणा क्रिंगीणं। एमादी तत्य गुणा, अकुन्वती मारिया चतुरी ॥ ५३३७ ॥

ऋदिमति पत्रजिते तीर्थविवृद्धिर्भवति, 'यदीदशा अप्येतेषां सकाशे प्रतजन्ति ततो वयं द्रमकपायाः किमेवं गृहवासमधिवसामः ?' इति बुद्धा भृयांसः प्रवजन्तीति भावः । प्रभावना च प्रवचनस्य भवति कुलिङ्गिनां चापश्राजना भवति, तेषां मध्ये ईदृशामृद्धिमतामभावात । 10 एबमादयः 'तत्र' राजादिपत्रजिते यतो गुणा भवन्ति अतस्त्रत्यानुवर्तनामकुर्वतश्चत्वारो भारिका मासाः प्रायश्चित्तम् ॥ ५३३७ ॥ अथ द्वितीयपदमाह---

अद्धाणाऽसिव ओमे, रायहुट्टे असंधरेता उ । सयमवि य भ्रंजमाणा, विसुद्धभावा अपन्छित्ता ॥ ५३३८ ॥ अध्वा-ऽशिवा-ऽवम-राजद्विष्टेषु असंस्तरन्तः स्वयमप्यनेपणीयं विशुद्धभावा भुक्षाना अप्रा-15 यश्चिता मन्तव्याः ॥ ५३३८ ॥

# ॥ अनेषणीयवकृतं समाप्तम् ॥ कल्प थिताकल्प थित प्रकृत मृ

सूत्रम्-जे कडे कप्पट्टियाणं कप्पइ से अकप्पट्टियाणं, नो से कप्पइ कप्पट्टियाणं। जे कडे अकप्पट्टियाणं णो से कप्पइ कप्पट्टियाणं कप्पइ से अकप्पट्टियाणं। कप्पे ठिया कप्पट्रिया, अकप्पे ठिया अकप्पट्रिया १९॥ अस्य सम्बन्धमाह---

सुत्रेणेव उ जोगी. मिस्सियभावस्स पश्चवणहेउं। 25 अक्लेव णिणाओं वा, जम्हा तु ठिओ अकप्पम्मि ॥ ५३३९ ॥ सत्रेणैव 'योगः' सम्बन्धः कियते — 'मिश्रितभावस्य' 'किमर्थमिदमग्रद्धं मम दीयते !' इत्येवं कळुषितपरिणामस्य शैक्षस्य प्रज्ञापनाहेतोरिदं सूत्रमारभ्यते । यद्वा 'कथं शैक्षस्यानेषणीयं करूपते ?' इत्येवं केनापि 'आक्षेपे' पूर्वपक्षे कृते 'निर्णयः' निर्वचनमनेन कियते । कथम ! इत्याह—यसाद असौ शैक्षः 'अकरपे' सामायिकसंयमलक्षणे स्थितः ततः करपते तस्याने-30 षणीयमिति ॥ ५३३९ ॥

20

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—'यद्' अधनादिकं 'कृतं' विहितं करुपसितानामधीय करुपते तद् अकरुपसितानाम्, नो तत् करुपते करुपसितानाम् । इहाचेल्म्यादो दशविषे करुपे सिताले करुपिसता उच्यन्ते, पद्मयामधर्मप्रतिपना इति भावः । ये पुनरेतसिन् करुपे सम्पूर्णे न स्विताले अरुरपिसताः, चतुर्यामधर्मप्रतिपना इत्यर्थः । ततः पद्मयामिकानुदिद्य कृतं नो तत् करुपते स्वताः चतुर्यामधर्मप्रतिपत्ता इत्यर्थः । ततः पद्मयामिकानुदिद्य कृतं नो तत् करुपते 'अरुरपिसतानां' पद्मयामिकानां करुपते स्वता नित्त करुपते 'अरुरपिसतानां' पद्मयामिकानां करुपते करुपते 'अरुरपिसतानां' पद्मयामिकानां करुपते करुपते स्वता करुपतिसताः । व्यव्यामिकानाम् । अत्रेव रद्यपतिमाद्य—'करुपे आचेल्ययादी दशविषे स्वताः करुपत्यिताः । 'अरुरुर्वि स्वताः अरुरपिसताः । एष सूत्रार्थः ॥ अथ निर्धुक्तिवितरः—

कप्पठिइपरूवणता, पंचेव महत्वया चउजामा । कप्पट्टियाण पणगं, अकप्प चउजाम सेहे य ॥ ५३४० ॥

करुपक्षितेः प्रश्मतः प्रस्तणा कर्तव्या । तद्यथा—पूर्व-पश्चिमसाधूनां करुपक्षितिः पश्च-महाव्रतरूपा, मध्यमसाधूनां महाविदेहसाधूनां च करुपक्षितिश्रव्ययामञ्क्षणा । ततो ये करुप-स्पितास्त्रेषां "पणपां" ति पश्चेव महाव्रतानि भवन्ति । अकरुपक्षितानां तु 'चरवारो यामाः' चयारि महाव्रतानि भवन्ति, 'नापरिपृष्ठीता स्त्री भुज्यते' इति क्रव्य चतुर्थवतं परिमहत्तत 10 एवं तेषामन्तभवतीति भाषः । यथ पूर्व-पश्चिमार्थकरसाधूनामिष सम्पन्त्री शैक्षः सोऽपि सामायिकसंयत इति कृत्या चतुर्योभिकोऽकरुपस्थितश्च मन्तव्यः, यदा पुनरुपस्थापितो भविष्यति तदा करुपस्थित इति ॥ ५२४० ॥ प्रस्त्रिया करुपस्थितिः । इह "जे कडे कप्पडियाणं" इत्यादिनाऽऽधाकर्मं स्वितम् अतस्त्रस्योस्यिषाह—

साली घय गुल गोरस, णवेसु बल्लीफलेसु जातेसु ।

पुण्णहु करण सङ्घा, आहाकम्मे णिमंतणता ॥ ५३४१ ॥

कस्यापि दानरुचरिभगमश्राद्धस्य वा नवः शालिर्भूयान् गृहे समायातस्ततः स चिन्तयति— 'पूर्वे यतीनामदस्त्वा ममास्मना परिमोक्तं न युक्तः' इति परिमान्याऽऽधाकर्म कुर्यात् । प्रं इते गुडे गोरसे नवेषु वा तुम्ब्यादिवश्चीकलेषु जातेषु पुण्यार्थे दानरुचिः श्राद्धः "करणं ' ति आधाकर्म कृत्या साधूनां निमम्नणं कुर्यात् ॥ ४३४१ ॥

तस्य चाधाकर्मणोऽमन्येकाथिकपदानि —

आहा अहे य कम्मे, आताहम्मे य अत्तकस्मे य । तं प्रण आहाकम्मं, णायव्वं कप्पते कस्म ॥ ५३४२ ॥

आधाकमं अधःकर्म आत्मन्नम् आत्मकर्म चेति चत्वारि नामानि । तत्र साधूनामाधयाप्रणियानेन यत् कर्म-पद्कायविनादोनाशनादिनिष्णादनं तद् आधाकमं । तथा विद्युद्धसंयमउ० स्थानेन्यः प्रतिपाल आलानं अविद्युद्धसंयमस्यानेषु यद् अधोऽपः करोति तद् अयःकर्म ।
आत्मानं-चान-दर्शन-चारित्ररूपं हन्ति-विनाशयतीति आत्मन्नम् । यत् पाचकादेः सम्बन्धि

१ १ ताः किन्तु केषुचित् राष्ट्यतरपिण्डादिषु स्थानेषु स्थिताः केषुचित् तु आवेलकथादिषु अविद्यासं अकरण्य कः ॥

कर्म-पाकादिकक्षणं ज्ञानावरणीयादिकक्षणं वा तद् आस्मनः सम्बन्धि क्रियते अनेनेति आस्म-कर्म । तत् पुनराधाकर्म कस्य पुरुषस्य करुपते ! न वा ! यद्वा कस्य तीर्धे कर्षं करुपते ! न करुपते वा ! इत्यमीभिद्वीरीक्षीतव्यम् ॥ ५३४२ ॥ तान्येव दर्शयति——

संघस्स पुरिम-पच्छिम-मन्त्रिमसमणाण चेन समणीणं। चउण्हं उनस्सयाणं, कायन्ना मग्गणा होति ॥ ५३४३ ॥

आधाकर्मकारी सामान्येन विदोषेण वा सङ्घ्याहेश कुर्योत् । तत्र सामान्येन-अविशेषितं सङ्घ्याहेशति, विशेषण तु पूर्वं वा मध्यमं वा पश्चिमं वा सङ्घं चेतिस प्रणिषचे । अमणा-नामप्योधतो विभागतस्य निर्देशं करोति । तत्रीवतः—अविशेषितअमणानाम्, विभागतः पष्ट- आमिकअमणानां चत्रीमिकअमणानां वा । एवं अमणीनामिष वक्तस्यम् । तथा चत्रुणामुप्या- असाणामप्येवनेव सामान्येन विदेशेषण च मार्गणा कर्तस्या मनति । तत्र चलार उपाश्रया इसे— । तथा चत्रुणाम्या- असणानाम्येवनेव सामान्येन विदेशेषण च मार्गणा कर्तस्या मनति । तत्र चलार उपाश्रया इसे— । पद्यापिकानां अपाणानामुप्यावस्य इति तति एकः, पष्ट्यापिकानां स्वर्णानां द्वितीयः, प्वं चतुर्यासिकानां अपणानामुप्यावस्य इति तति एकः, पष्ट्यापिकानां स्वर्णानां द्वितीयः, प्वं चतुर्यासिकानं अपणानामुप्यावस्य इति वृत्यावस्य द्वावयास्य मन्ति ।। ५२४२ ॥ इत्येव भावयति—

संघं समुद्दिसत्ता, पढमो नितिओ य समण-समणीओ ।

तितओ उवस्सए सन्छ, चउत्थओ एगपुरिसस्स ॥ ५३४४ ॥ आधाकमकारी प्रथमो दानश्राद्धादिः सङ्घ सामान्येन विदेषिण वा समुद्दिस्याधाकर्म १५ करोति । द्वितीयः श्रमण-श्रमणीः प्रणिषाय करोति । चृतीय उपाश्रयानुद्दिस्य करोति । चतुर्ध एकपुरुषसोदेशं इत्या करोति ॥ ५३४४ ॥ अत्र यथाकमं कल्प्या-ऽकल्प्यविधिमाह—

जित सन्वं उद्दिसिउं, संघं कारेति दोण्ह वि ण कप्पे। अहवा सन्वे समणा. समणी वा तत्थ वि तहेव॥ ५३४५॥

'यदीति' अभ्युपगमे । यदि नाम ऋषमस्यामिनोऽजितस्यामिनथः तीथेमेकत्र मिलितं २० भवति पार्श्वसामिनथः तीथेमेकत्र मिलितं १० भवति पार्श्वसामिनथः तिथेमिलतं यदा भाष्यते तदा तत्कारुमक्रीइत्यायं विधिरभिषीयते— सर्वमिष सङ्गं सामान्येनोद्दिश्य यदा आषाकर्म करोति तदा 'द्वयोरिष' पश्चयामिक-चतुर्यामिकसङ्घर्योने करपते । अथ सर्वान् अमणान् सामान्येनोद्दिशति ततः 'तत्रापि' अमणानामिषि सामान्येनोद्देशे (त्रवेव' सर्वेषामिष पश्चयामिकानां चतुर्यामिकानां च अमणानां न करपते । एवं अमणीनामिष सामान्येनोद्देशे सर्वासामकरूपम् ॥ ५३४५ ॥

अथ विभागोदेशे विधिमाह---

जह पुण पुरिमं संघं, उदिसती मन्त्रिमस्स तो कप्पे। मन्त्रिमउदिहे पुण, दोण्हं पि अकप्पितं होति॥ ५३४६॥

यदि पुनः पूर्वमृष्यस्थामिसकं सङ्घं सद्विष्टित ततः 'मध्यमस्य' अजितस्वामिसङ्क्ष्य कस्पते । अथ मध्यमं सङ्घ्यदिशति तदा 'द्वयोरिप' पूर्व-मध्यमसङ्घ्योरकस्यं मवति । ३० प्रवं पश्चिमतीर्थकरसस्कं सङ्घ्यदिस्य इतं मध्यमस्य कस्पते, मध्यमस्य इतं द्वयोरिप न कस्पते ॥ ५२ १६ ॥

्रमेव समणवन्गे, समणीवन्गे य पुन्वग्रुहिहे। इ॰ १०६

मिक्समगाणं कप्पे, तेसि कडं दोण्ह वि ण कप्पे ॥ ५३४७ ॥ एक्सेड श्रमणवर्गे श्रमणीवर्गे च पूर्वेषाम्-ऋष्मस्वासिसम्बन्धिनां श्रमणानां श्रमणीनां वा बद उद्दिष्टम्-उद्दिश्य कृतं तद् मध्यमानां श्रमण-श्रमणीनां कलाते । 'तेषां' मध्यमानाम-र्बाय कतं 'उभयेषामपि' पूर्व-मध्यमानां साध-साध्वीनां न कल्पते । एवं पश्चिम-मध्यमानामपि B बक्तव्यम् ॥ ५३४७ ॥ अधैकपुरुषोहेशे विधिमाह--

> पुरिमाणं एकस्स वि. कयं त सब्बेसि पुरिम-चरिमाणं । ण वि कप्पे ठवणामेत्तर्ग त गहणं तर्हि नित्य ॥ ५३४८ ॥

'पूर्वेषाम्' ऋषभस्वामिसत्कानामेकस्यापि पुरुषस्याधीय कृतं सर्वेषामपि पूर्व-पश्चिमानाम-करूप्यम् , पश्चिमानामप्येकस्यार्थाय् कृतं सर्वेषां पूर्व-पश्चिमानामकरूप्यम् । एतन्त्र 'स्वापना-10 मात्रं' मह्तपणामात्रं संज्ञाविज्ञानार्थं कियते, बहुकाळान्तरितत्वेन पूर्व-पश्चिमसाघूनामेकत्रासम्भ-बात तत्र परस्परं महणं 'नास्ति' न घटते । मध्यमानां तु बदि सामान्येनैकं साधुमुद्दिश्य कृतं तत एकेन गृहीते शेषाणां कल्पते । अथ कमप्येकं विशेष्य कृतं ततः तस्यैवाकल्प्यम् , शेषाणां सर्वेषामपि करूप्यम् , पूर्व-पश्चिमानां त सर्वेषामपि तन्न करूपते ॥ ५३४८ ॥

अथोपाश्रयोदेशे विधिमाह-15

एवम्रवस्सय पुरिमे, उदिहु ण तं तु पन्छिमा भुंजे । मज्जिम-तञ्बजाणं, कप्पे उद्दिष्टसम् पुव्वा ॥ ५३४९ ॥

एवं यदि सामान्येनोपाश्रयाणामुदेशं करोति तदा सर्वेषामकरूप्यम् । अथ पूर्वेषाम्-आध-तीर्थकरसाधूनामुपाश्रयानुद्दिशति ततस्तदर्थमुद्दिष्टं पश्चिमा उपलक्षणत्वात पूर्वे वा साधवः सर्वेऽपि न सुञ्जते, मध्यमानां पुनः कल्पनीयम् । अथ मध्यमसाधूनासुपाश्रयान सर्वानृहिश्य 20 करोति तत्तो मध्यमानां पूर्व-पश्चिमानां च सर्वेषामकरूप्यम् । अध कियत एव मध्यमोपाश्रयान-हिशाति ततः 'तद्वर्जानां' तेषु-उपाश्रयेषु ये श्रमणास्तान् वर्जयित्वा शेषाणां मध्यमश्रमण-अमणीनां कल्पते । "उडिट्रसम पुत्र" चि पूर्वे साधवः-ऋषभस्वामिसत्का भण्यन्ते. ते 'उहिष्टसमाः' यं साधुमुहिस्य कृतं तत्तुल्याः, एकमुहिस्य कृतं सर्वेषामकल्पनीयमिति मावः ॥ ५३४९ ॥ एवं तावत् पूर्वेषां मध्यमानां च भणितम् । अथ मध्यमानां पश्चिमानां चाभिषीयते-25

सच्ये समणा समणी, मन्त्रिमगा चेव पच्छिमा चेव ।

मन्त्रिमग समण-समणी, पञ्छिमगा समण-समणीतो ॥ ५३५० ॥ सर्वे श्रमणाः श्रमण्यो वा यदोहित्रयन्ते तदा सर्वेषामकरूप्यम् । "मण्डिमगा चेव" चि अथ मध्यमाः श्रमणाः श्रमण्यो वा उदिष्टास्ततो मध्यमानां पश्चिमानां च सर्वेषामकरूप्यम् । ''पच्छिमा चेव'' ति पश्चिमानां श्रमण-श्रमणीनामुहिष्टे तेषां सर्वेषामकरूप्यम् , मध्यमानां 30 करूच्यम् । मध्यमश्रमणानासृद्धिष्टं मध्यमैसाध्वीनां करुपते, मध्यमश्रमणीनासृद्धिष्टं मध्यमसाधूनां करुपते । पश्चिमश्रमणानामुहिष्टे पश्चिमसाधु-साध्वीनां न करुपते, मध्यमानामुभणेनामवि कल्पते । एवं पश्चिमश्रमणीनामप्युद्धिष्टे वक्तन्यम् ॥ ५३५० ॥

उवस्सग मणिय-विमाह्य, उज्जुम-जड्डा य वंक-जड्डा य । मज्जिमम उज्ज-पण्णा, पेच्छा सम्मायमाऽऽगमणं ॥ ५३५१ ॥

अधोपाश्रयेषु साष्ट्र गणित-विभाजितान् करोति गणिता नाम-इयतां पश्चादिसङ्काकानां दातन्यम्, विभाजिता नाम-'अमुकस्याप्टकस्य' इति नामोरकीर्तनेन निर्द्धारिताः । अत्र चतु-भंश्ली—गणिता आपि विभाजिता अपि १ गणिता न विभाजिताः २ । अत्र मचतु-भंश्ली—गणिता अपि विभाजिताः २ । अत्र मचतु-भंश्ली—गणिताः विभाजिताः । अत्र मचतु-भंश्ले मध्यमानां गणित-विभाजितानां निर्माणितः । अत्र मचतु-भंश्ले मध्यमानां गणित-विभाजितानां नान्यान् करून्यम्, रोषणां करून्यते । विद्रतियभक्षे यावद् गणितपमाणेनं गृहीतं तावत् सर्वेषामानं करून्यम्, रोषणां करून्यम् । चतुर्थभक्षे सर्वेषामकरून्यम् । पूर्व-पश्चिमानां तु सर्वेषाम कर्ष्यम् । सर्वेषामकरून्यम्, रोषणां करून्यम् । चतुर्थभक्षे सर्वेषामकरून्यम् । पूर्व-पश्चिमानां तु सर्वेष्यपि भक्षेषु न करुनते । परः प्राह—ननु सर्वेषां सर्वेष्रामकरून्यम् । पूर्व-पश्चिमानां तु विद्यामिकानां च विद्यस्या-करुन्यविभिः । त्रिष्टि सर्वेष्यम् विक्ष्यम् तिर्मेष्यम् विक्षयम् । स्विभानामेष्यम् तिर्मेष्टि । तथा चाह्य— "उज्जुग-जङ्का य" इति, पूर्वसायवः कर्जु-जङ्गाः पश्चिमसाध्यो वक्ष-जङ्गा मण्या कर्जु-प्राज्ञः । परिक्षा च विविधानामपि साधूनां नरमेक्षाह्यान्तेन प्रकृष्ण कर्तव्या । विविधानामेष च साधूनां सञ्जाककृरुक्रमागतानां गृहिण । विद्याने कर्तव्यम् ॥ ५३५१ ॥

तत्र नटप्रेक्षणकदृष्टान्तं तावदाह-

नडपेच्छं दडूणं, अवस्स आलोबणा ण सा कप्पे । कउयादी सो पेच्छति, ण ते वि पुरिषाण तो सब्वे ॥ ५३५२ ॥

कश्चित् प्रथमतीर्थकरसाञ्चर्भिक्षां पर्यटन् नटस्य 'प्रेक्षां' प्रेक्षणकं दृष्ट्य कियन्तमपि कारुमय-20 लोकय समागतः, स च ऋजुत्वेनायद्यमाचार्याणामाळोचयित, यथा—नटो नृत्यन् मया विलोकितः । आचार्यरुक्तम्—'सा' नटावलोकना साध्नां कर्तुं न करुपते । ततः 'यथाऽऽदिशन्ति
भगवन्तसायैव' इत्यिभाय भूयोऽपि भिक्षामटन् केयोकादिकमसो प्रेक्षते । क्योको नाम—
वेषपरावर्तकारी नटविदोषः । आदिक्रव्याद् नर्तकीममृतिपरिषदः । तत्स्वयैवालोक्षते गुरवो
भणित—नतु पूर्व वारित्तत्वमासीः । स माद—नट एव दृष्टुं वारितो न क्योकः, एव च 20
मया क्योको दृष्टः । एवं यावन्माकं परिस्कृटेन वससा वार्यन्ते तावन्मात्रमेवैते वर्वयन्ति, न
पुनः सामय्योक्तमपरस्य तादशस्य प्रतिषेषं प्रतिपचन्ते । यदा तु भण्यते "न ते वि" वि
'तैऽपि' क्योकाद्यो न करुपन्ते दृष्टुं तवा सर्वोत्ति प्रयम्तेवित वरिष्टर्गन्त, अतः पूर्वेषां साधूनां
सर्वेटिष नटावयौ न करुपन्ते दृष्ट् तिवा सर्वोत्ति । ५२५ । ॥ ५३५२ ॥

स्मेन उम्ममादी, एकेक निवारि एतरे गिण्हे । सन्ने वि व कर्ष्यति, कि वारितो जिलयं वजे ॥ ५३५३ ॥

१ °तां यमित-विमाजितानाजेवाक रूपम् । तृतीय° कां ।। २ कां प्रती 'कयोक'स्थने सर्वेशिक 'कास्पक' इति पाञे वर्तवे ॥

'एवमेव' नरमक्षणोक्तेव प्रकारेण पूर्वतीर्थकरसाधुर्यदि एकैक्सुद्वमादिदोषं निवार्यते ततो स्मेवाथाकमादिकं दोषं निवारितस्त्रमेव वर्जयति 'इतरांस्तु' पूतिकर्म-कीतकृतादीन् गृह्वाति, न वर्जयतीत्यर्थः। यदा तु 'सर्वेऽपि' उद्गमदोषा न करुपन्ते इति वारितो भवति तदा सर्वानपि यावजीवं वर्जयति॥ ५३५३॥ अथ संज्ञातकागमनपदं व्यायष्टे—

> सण्णायगा वि उज्जुत्तणेण कस्स कत तुज्झमेयं ति । मम उद्दिष्ट ण कप्पद्द, कीतं अण्णस्स वा पगरे ॥ ५३५४ ॥

प्रथमतीर्थंकरतीर्थे यदा साधुः संज्ञातककुळं गच्छति तदा ते संज्ञातकाः किषिदाणक-मीदिकं क्रव्या साधुना 'करणार्थाय युष्पामिरिदं कृतम् ?' इति प्रष्टाः सन्त ऋजुत्वेन कथयन्ति— युष्मदर्थमेतद् इति । ततः साधुर्भणति—ममिहिष्टमकं न करपते । एवसुक्तः स गृही क्रीत-10कृतं अन्यद्वा दोषजातं कृत्या दयात्, 'उदिष्टमेवागुना प्रतिषिदं न क्रीतादिकम्' इति बुद्धा । अथवाऽन्यस्य साधोरर्थायाशकर्म मकुर्योत्, 'ममोहिष्टं न करपते इति भणता तेनात्मन प्रवाशकर्म प्रतिषद्धम् नान्येषाय्' इति बुद्धा ॥ ५२५४ ॥

सव्वजईण निसिद्धा, मा अणुमण्ण ति उग्गमा णे सिं । इति कथिते पुरिमाणं, सब्बे सब्वेसि ण करेंति ॥ ५३५५ ॥

10 यदा तु तेवां गुहिणामझेऽभिशीयते—सर्वेऽप्युद्धमदोषाः सर्वेवां यतीनां 'निषद्धाः' न कस्यन्ते, मा भृदु 'णे') अस्माकं 'सिं' ति तेवां दोषाणां अनुमतिदोष इति कृत्या । तत एवं कथिते सिति ते गृहिणः सर्वेषामपि साधूनां सर्वोचप्युद्धमदोषान् न कुर्वेन्ति । एवं पूरेंबां तीर्थे ये दानश्राद्धादय उद्घनदोषकारिणलेऽपि ऋजु-जडा इति आवः ॥ ५३५५ ॥

अब ऋजु-जडपदव्याख्यानमाह—

उज्जुचणं में आलोयणाएँ जङ्कचणं में जं भुजो । तज्जातिए ण याणति, गिही वि अन्नस्स अनं वा ॥ ५३५६ ॥

ऋजुत्वं ''से'' 'तस्य' प्रथमतीयंकरसाधोरेवं मस्तव्यम्—यद् एकान्तेऽप्यकृत्यं कृत्वा गुक्रणामवदयमाकोचयति । यत् पुनर्भूयस्तव्यातीयान् दोषान् न जानाति न च वर्जयति तेन तस्य जडत्वं द्रष्टव्यम् । गृहिणोऽपि यद् एकस्य निवारितं तद् अन्यस्य निमितं कुर्वन्ति 'अन्यं 20 वा' कीतकृतादिकं दोषं कुर्वन्ति एतत् तेषां जडत्वम् । यत् तु प्रष्टाः सन्तः परिस्फुटं सद्भावं कथयन्ति एतत् तेषां ऋजुत्वम् ॥ ५३५६ ॥ अय मध्यमानामृजु-यज्ञतां भावयति—

उञ्जनणं सें आलीयणाऍ पण्णा उ सेसवजनया । सण्णायमा वि दोसे. ण करॅतऽण्णे ण यऽण्णेसि ॥ ५३५७ ॥

'रहस्यिप यत् प्रतिसेवितं तद् अवस्यमाळोचियत्य्यप्' इत्याळोचनया मध्यमतीर्थक्रस्ताधू-३० नास्युत्तं मनतव्यम्, यत् पुनः शेषाणां—तज्ञातीयानामर्थानां त्यमम्यूक ते वर्जनां कुर्वन्ति ततः प्रज्ञा तेषां प्रतिपत्तव्या । ते हि 'नटावळोकनं कर्तुं न कल्पते' इत्युक्ताः प्राञ्जतवा स्वचेतिस परिभावयन्ति—यथा एतद् नटावळोकनं 'राग-द्रेषनिवन्यनम्,' इति कृत्वा परिह्वियते तथा क्योक-नर्तव्यादिदर्शनमपि रागद्वेषनिवन्यनतया परिह्तव्यमेवः इति विचिन्त्य तथैव कुर्वन्ति ।

संज्ञातका अपि तेषाष् 'इदसुद्दिष्टमक्तं मम न करूपते' इत्युक्ताक्षित्तयन्ति — पर्येतत्यायं टोपो-ऽकरूपनीयसाधाऽन्येऽपि तज्जातीयाः सर्वेऽप्यकरूपनीयाः, यथा चैतस्य ते अकरूपनीयास्तथा सर्वेषामपि साधूनां न करूपन्ते । एवं विचित्त्य 'अन्यात्' उद्गमदोषान् न कुर्वेन्ति, अन्येषां च साधूनां हेतोनं कुर्वेन्ति ॥ ५३५७ ॥ अथ वक-जडक्यास्थानमाह—

वंका उ ण साहंती, पुट्टा उ मणंति उण्ह-कंटादी ।

पाहुणग सद्ध ऊसव, गिहिणो वि य वाउलंतेवं ॥ ५३५८ ॥

पश्चिमतीर्थकरसाधवो वकत्वेन किमप्यकृत्यं प्रतिसेन्यापि 'न कथयन्ति' नाङोचयन्ति, जडतया च जानन्तोऽजानन्तो वा मृयस्त्रेचेवापराधपदे मवर्तन्ते । नटावङोकनं कुर्बाणाश्च दृष्टास्त्रतो गुरुभिः पृष्टाः—किभियतीं वेळां स्थिताः !। ततो भणन्ति——उणोनाभितापिता वृक्षादिच्छायायां विश्वामं गृहीतवन्तः, कण्टको वा रुप्त आसीत् स तत्र स्थितरपनीतः, आदि-10 द्याद्यप्त क्ष्यद्यप्तं कुर्वन्तिति । गृहिणोऽ आधाकभादी कृते पृष्टा भणन्ति—— माष्टुणका आगतास्तर्वभित्यसुयम्कृतम्, अस्याकं वा ईदरो शास्त्र्योवनादी भक्तेऽद्य श्रद्धा समजित, उत्सवो वा अवाधुकोऽस्याकम् । एवं गृहिणोऽपि वक्त-जडतया साभृत् 'व्याकुळवनित' व्यायोहयनित, सद्धावं नास्त्र्यान्तीर्त्यर्थः । एतेन कारणेन चातुर्यभिक-पश्चयामिकानामाधाकर्म- प्रहणे विशेषः कृत इति प्रकमः ॥ ५२५८॥ अथ द्वितीयपदमाह—

आयरिए अभिसेंगे, भिक्सुम्मि गिलाणए य भयणा उ । तिक्सुत्तऽङिव पवेसे, चउपरियट्टे तओ गहणं ॥ ५२५९ ॥

जीचार्या-ऽभिषेक-भिक्षणामेकतरः सर्वे वा ग्लाग अवेषुः तत्र सर्वेषामि योग्यशुद्धमादिदोषशुद्धं महीतव्यम् । अरूभ्यमाने पद्मकपरिहाण्या यतित्वा चतुर्पेषुकं यदा प्राप्तं भवति
तदाऽऽधाकर्मणः 'भवना' सेवना भवति । अथवा भवना नाम-आचार्यव्याभिषेकत्य गीतार्थ-२०
भिक्षोध्य येन दोषणाशुद्धमानीतं तत् परिस्फुटमेन कथ्यते । यः पुनरगीतार्थोऽपरिणामको वा
तत्य न निवेषते । अक्षिवादिभिर्वा कारणेरटवीम्-अध्वानं प्रवेष्टुमभिरुष्यन्ति तत्र प्रयममेव
शुद्धोऽध्यकरुषः 'क्रिक्स्यः' त्रीत् वाराम् गवेष्यते, यदा न रूभ्यते तत्र चतुर्वे परिवर्ते पद्मकपरिहाण्या आधाकर्मिकस्य महणं करोति ॥ ५३५९ ॥ अध्वनिर्गतानां चार्य विधः—

चउरो चउत्थमत्ते, आयंबिल एगठाण पुरिमहुं । णिव्यीयम दायन्वं, सयं च पुन्योग्गहं कुआ ॥ ५३६० ॥

आचार्यः स्वयमेव चतुःकस्याणकं प्रायश्चितं गृह्वाति, तत्र चत्वारि चतुर्यभक्तानि चत्वार्या-चाम्झानि चत्वारि 'एकस्यानानि' एकाशनकानीत्यर्थः चत्वारि पूर्वार्द्धानि चत्वारि निर्वृतिकानि (निर्विकृतिकानि) च भवन्ति । ततः शेषा अप्यपरिणामकमत्ययनिमितं चतुःकस्याणकं प्रतिपद्यन्ते । योऽपरिणामकस्तस्य पश्चकस्याणकं दातन्यस्, तत्र चतुर्थभकौदीनि प्रत्येकं 30 पश्च पश्च भवन्ति । त्वयं चाचार्यः पूर्वेनेव प्रायश्चित्तस्यावग्रहणं कुर्याव् येनं शेषाः सुत्वेनेव

१ वष्ठी-सप्तम्योरर्थे प्रत्यभेदाद् आचा°कां॰॥ २ °क्या चतुर्गुद्धकं प्राप्तः सन् आधा°कां॰॥ ३ °का-८८चाम्छादीनि पूर्वेकानि पश्च स्थानानि भवन्ति को॰॥ ४ °न डीक्षाः स<sup>\*</sup> कां॰॥

मितपपन्ते ॥ ५३६० ॥ आह—यत् पूर्वे प्रतिषिद्धं तत् किमेवं भूयोऽनुज्ञायते ! अनुज्ञातं चैत् ततः किमर्थे प्रायक्षिणं दीयते ! इत्याह—

> काल-सर्गरावेक्खं, जगस्सभावं जिणा वियाणिता । तह तह दिसंति धम्मं, झिजति कम्मं जहा अखिलं ॥ ५३६१ ॥

७ 'काळ-शरीरापेक्षं' काळस्य झरीरस्य च यादझः परिणामो बळं वा तदनुरूपं जगतः— मनुष्यलोकस्य स्वभावं विज्ञाय 'जिनाः' तीर्थंकराख्यं तथा विधि-प्रतिषेशक्रपेण प्रकारेण धर्मसुपदिशन्ति यथा अस्तिरुमि कर्म क्षीयते । यश्वानुज्ञातेऽपि प्रायश्चित्तवानं तद् अनवस्था-प्रसम्वारणार्थम् ॥ ५३६१ ॥

॥ कल्पस्थिता-ऽकल्पस्थितश्रकृतं समाप्तम् ॥

### गणान्तरोपसम्पत्त्रकृतम्

सूत्रम्—

10

15

20

भिनस्तू य गणाओ अवक्षम्म इच्छेजा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नो से कप्पइ अणापु-च्छित्ता आयरियं वा उवज्झायं वा पवित्तं वा धेरं वा गणिं वा गणहरं वा गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए; कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उव-संपज्जित्ताणं विहरित्तए । ते य से वियरेजा एवं से कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरत्तए; ते य से नो वितरेजा एवं से नो कप्पइ अण्णं गणं उव-संपज्जित्ताणं विहरित्तए २०॥

ऐवमग्रेतनमपि स्त्राष्टकसुचारणीयम् ॥ अथास्य सुत्रनवकस्यं कः सम्बन्धः ! इत्याह— करपातो व अकप्पं, होज अकप्पा व संकमो कप्पे ।

गणि गच्छे व तदुमए, चुतस्मि अह सुत्तसंबंधो ॥ ५३६२ ॥ 25 पूर्वसूत्रे करपस्थिता अकरपस्थिताश्रोकाः । तेषां च 'करपात' स्थितकरपाद् 'अक्रस्थे' अस्थितकरुपे सङ्क्षमणं भवेतुं, 'अकरपाद् वा' अस्थितकरुपात् 'करपे' स्थितकरूपे सङ्क्षमणं

१ "एवं त्रीमि सुत्राण उचारयितव्यानि ॥ वंबची—कपाती॰ गाहा।" इति चूर्णो । "एवं तिषि पुत्राणे उचारयेत्र्यानि ॥ वंबच्यः—कपाती व॰ गाहा।" इति विशोषचूर्णो ॥ २ 'क्य सम्बन्धं क्वीवति—कप्पातो कं॰॥ ३ 'त्, यथा ऋषभस्याभितीर्योदजितनायतीर्थं सङ्ग्रासतः, 'सकस्यन्धं कं॰॥

मवेते, अवन 'राणी' आचार्य उपाध्यायो वा तस्य गच्छे सूत्रा-ऽर्थ-तदुभयस्मिन् 'च्छुते' विस्तृते सति गच्छान्तरे सङ्क्षमणं भवेते, अतस्तद्विधिरनेनाभिषीयते । एव सूत्रसम्बन्धः ॥ ५३६२ ॥

तिद्वाणे अवक्रमणं, णाणहा दंसणे चरिचहा । आपुन्छिऊण गर्मणं, मीतो त नियचते कोती १ ॥ ५३६३ ॥ चिंततो २ वहगादी ३, संखडि ४ पिसुमादि ५ अपडिसेहे य ६ । परिसिक्षे सचमए ७. ग्रह्मेसचिए य ८ सुद्धे य ॥ ५३६४ ॥

स्थानं कारणमित्येकोऽर्धः, ततिस्राभिः स्थानैः—कारणैर्गच्छाद् अपक्रमणं भवति—ह्यानार्थं 16 दर्शनार्थं चारित्रार्थं च । अथ निष्कारणमन्यं गणगुपसम्पयते ततस्त्रद्वगुरुकं आज्ञादस्थ्य दोषाः । कारणेऽपि यदि गुरुमनापुच्छ्य गच्छति ततस्त्रद्वगुरुकंम्, तस्याद् आपुच्छ्य गन्तव्यम् । तत्र ज्ञानार्थं तावद् असिधीयते—यावद् आचार्यक्कारे छुतमस्ति तावद् अप्रेममपि
केनापि शिष्येणाधीतम्, अस्ति च तस्यापरस्यापि छुतस्य प्रदणे शक्तिस्तरोऽधिकछुत्रप्रशाण्यापे माचार्यमापुच्छत । आचार्यणापि स निसर्वेतितकयः । तस्येवमापुच्छ्य गच्छत इसेऽतिचारा २०
भवन्ति ते परिहर्तद्वाः। तत्र कश्चित् तेपामाचार्याणां कर्कश्चयं छुत्वा मीतः सन् निवर्तते १ ॥

तथा 'कि वजामि ! मा वा !' इति चिन्तयन् वजित २ । विजकायां वा प्रतिबन्धं करोति, आदिशब्दाद् दानश्राद्धादिषु दीर्घो गोचरवर्षो करोति, अमासं वा देशकालं प्रतीक्षते ३ । ''संस्वित्रे'' कि सङ्कुष्णां प्रतिकथ्यते ४ । ''संप्रगाह'' कि विशुक्त-मद्कुणादिभयाद् निवर्तते अन्यत्र वा गच्छे गच्छिति ५ । ''अ। ''सिप्रगाह'' कि किथ्यतावार्थसं परममेधाविनमन्यत्र 26 गच्छन्तं शुल्ता परिस्कृटवचसा तं न प्रतिकेधयति किन्तु शिच्यान् व्यापारयति — तिमकागते व्यक्त-वीषशुद्धं पटनीयस् चेनात्रैवेच तिष्ठति; एवनप्रतिभवस्ति प्रतिकेषको रूप्यते, तेनैवं विपरिणामितः सन् तदीये गच्छे पविश्वति ६ । ''परितिष्ठे'' कि पर्वद्वान् स उच्यते यः संविज्ञाया असंविज्ञायाश्च पर्वदः सङ्गहं करोति, तस्य पार्थे तिष्ठतः सप्तमं पदम् । ''गुरुपेस-

१ °त्, वधा पार्श्वनाधतीर्धाद् वर्धमानस्वामितीर्धं सहामतः; अथवा कं०॥ २ °त्, उपकक्षणमित्रम्, तेन भिक्षोरपूर्वेषमार्थप्रदेशकार्धि गणान्तरसहमणं भवेतः अते कं०॥ ३ °खा पुत्रनवक्करा मध्यात् प्रथमसम्बद्धः तावद् व्यास्या कं०॥ ४ °याणं, क्रितेर य निमातो कोची॥ १४३१ ॥ कीची १ श्रीरंतो २ वर्षः नागः॥

विए य' ित्त तन सम्प्राप्तो व्रवीति—ष्वहमाचार्यैः श्रुताध्ययनिमित्तं युष्मवन्तिके प्रेषितः ८। एतेषु भीतादिष्वष्टस्वि पदेषु वश्यमाणनीत्या मायश्चित्तत् । यस्तु भीतादिदोषित्रमुकः समागतो व्रवीति—'अहमाचार्यविदार्थितो युष्मवन्तिके समायातः' इति सः 'शुद्धः' न माय-श्चित्तमाक् ॥ ५३६३ ॥ ५२६४ ॥ भीतादिपदेषु मायश्चित्तमाहः—

> पणमं च भिष्णमासो, मासो लहुगो य संखडी गुरुगा । पिसुमादी मासलहू, चउरो लहुगा अपहिसेहे ॥ ५३६५ ॥ परिसिक्ष चउलहुगा, गुरुरेपसियमिम मासियं लहुगं । सहेण समं गुरुगा, परिसिक्ष पितसाणस्स ॥ ५२६६ ॥ पंडिसेहगस्स लहुगा, परिसेक्ष छ च चरिमओ सुद्धो । तेसिं पि होति गुरुगा, चं चाऽऽमब्यं ण तं लमती ॥ ५३६७॥

10 तेसि पि होति गुरुगा, जं चाऽऽमञ्चं ण तं लभती ॥ ५३६७ ॥ भीतस्य निवर्तमानस्य पद्मकम् ॥ चित्तयतो भिलमासः । निजकादिदु मितवच्यमानस्य मासल्छु । सङ्कव्यां चतुर्युक्ताः ॥ पशुक्रादिभयानिवर्तमानस्य मासल्छु । अप्रतिवेधकस्य पार्थे विष्ठतस्रवारो ल्युकाः ॥ ५३६५ ॥

पर्यद्वत आचार्यस्य सकारो तिष्ठतश्चतुर्रुखुकाः । 'गुरुभिः प्रेषितोऽद्दम्' इति भणने रुचुमा-15 सिकम् । शैक्षेण समं पर्यद्वतो गच्छे प्रविशतश्चतुर्गुरुकाः । मृहीतोषकरणस्य तत्र प्रविशत उपधितिष्यक्षमः ॥ ५२६६ ॥

'प्रतिषेधकस्य' प्रतिषेषकस्य कुवैतक्षत्त्रकेष्ठु । पर्षदं मोठ्यतः षद् रुषुकाः । 'वरमः' भीतादिदोषरहितः स शुद्धः । 'तेषामपि' प्रतिषेषकादीनामाचार्याणां तं सगच्छे प्रवेशयतां चसारो गुरुकाः । यद्य सचित्तमचित्तं वा वाचनाचार्यस्यामाव्यं तत् ते किथिदपि न रूभन्ते, 20 यः पूर्वमिमधारितस्तस्येवाचार्यस्य तदामाज्यमिति भावः ॥ ५३ ६७ ॥'

पूर्वमामधारतस्तस्यवाचायस्य तदामान्यामातं मावः ॥ ५३५७ ॥ अथ भीतादिपदानां ऋगेण व्याख्यानमाह—

> संसाहगस्स सोउं, पडिपंथिगमादिगस्स वा भीओ । आयरणा तत्थ खरा, सयं व णाउं पडिणियत्तो ॥ ५३६८॥

संसाघको नाम-बोलापकः प्रष्ठतः कुतिश्चितागतो वा सायुष्तन्युलेन श्वत्वा, प्रतिपन्धिकः-26 सम्युषीनः साध्वादिखदादेवी ग्रुखात् श्चत्वा, स्वयं वा 'ज्ञात्वा' स्टूखा । किम् ! इत्याह— 'आचरणा' वर्यो 'तत्र' तस्याचार्यस्य गच्छे 'खरा' कर्कशा । एवं श्वत्वा ज्ञात्वा वा भीतः सन् यः प्रतिनिष्ट्रस्तस्य पश्चकं भवतीति शेषः ॥ ५३६८॥ अथ चिन्तयश्चिति पदं व्याचष्टे—

पुर्व्व चितेयव्वं, णिगगतों चितेति किं णु हु करेमि । वश्वामि नियत्तामि व. तर्हि व अण्णत्य वा गच्छे ॥ ५३६९ ॥

'पूर्वमेव' यावन निर्गम्यते तावश्विन्तयितन्यम् । यस्तु निर्गतश्चिन्तयित—िकं करोमि क्ष्रिमान्यस्य विकासि निवर्ते वा !, यहा तत्र वाऽन्यत्र वा गच्छे गच्छामि ! इति; स मासख्यु प्रावश्चित्तं

१ "यं गुत्रयं तामा॰ ॥ २ अप्पहिसेचे लहुगा तामा॰ ॥ ३ एतदनन्तरम् प्रन्थाप्रम्—२००० इति को॰ ॥ ४ "ञ्चकं प्रायक्षित्तमिति प्रकृतः ॥ ५३६८ ॥ व्याक्यातं भीतप्रवृत्त् । अय को॰ ॥

1)

25

प्रामोति इति प्रकमः ॥ ५३६९ ॥ त्रजिका-सङ्घर्डीद्वारद्वयमाह----उन्वत्तरामप्पत्ते, लहुओ खुद्धस्स खुंजणे लहुगा ।

षीसद्वृ सुवर्षे लहुओ, संखिंड गुरुमा य जं चडण्णं ॥ ५३७० ॥

श्रीककां श्रुत्या मार्गाद्वद्वर्तने करोति अपाषां वा वेळां प्रतीक्षते ख्युनासः। अय खदं-प्रमूतं तत्र युक्के ततश्रवुक्छेय । प्रजुरं श्वन्या अजीर्णभयेन 'निस्तृष्टं' प्रकामं खिपित ख्युनासः। इ सङ्क्ष्णामपासकालं प्रतीक्षमाणस्य प्रमूतं गृहतो वा चतुर्गुरुकाः। ''वं चडकं' ति यच हत्तेन हस्तसङ्ख्यामपासकालं प्रतिक्षमाणयं शीर्षेण शीर्षस्थाकुटनिसत्यादिकनन्यदिष सङ्क्ष्ण्यां भवति तिक्षप्यतं प्रायक्षित्तम्॥ ५३००॥ अथ प्रतिवेधकद्वारमाह—

अमुगत्य अमुर्गो वचित, मेहावी तस्स कडूणद्वार । पंथ ग्गामे व पहे, वसधीय व कोह वावारे ॥ ५३७१ ॥ अभिलावसुद्ध पुच्छा, रोलेणं मा हु मे विणासेजा । इति कडुंते लहुगा, जित सेहद्वा ततो गुरुगा ॥ ५३७२ ॥

कश्चिदाचार्यो विशुद्धर्त्त्रार्थः सुन्दिकटम्बजनाभिलापी, तेन च खुतप्—अमुक्ताचार्यान्तिकटमुको मेथाची साशुर्द्धकश्चलाध्ययनार्थं नजति । तोतोऽती 'मा मामतिकम्यान्यत्र गमद्'
इति कृत्वा तस्याकर्षणार्थम् 'अथ' अनन्तरं तिष्यान् प्रतीच्छकांख अपापस्यति । कः !15
इत्याह—''पंथ गामे व पहें' चि यत्र पथि आमे स मिक्षां करिष्यिति, मध्येन सामेच्यति,
येन वा पथा समागमिष्यिति, यसां वा वसती स्थायति तेषु स्थानेषु गरवा यूपविष्ठप्रसुद्धं
परिवर्तयन्तिस्त्वतः । यदा स आगतो भवित तदा यदि असी पृच्छेत्—केन कारणेन यूपविद्यागताः !; ततो भवद्विकच्यम्—असार्कं वाचनाचार्या अमित्यपग्चद्धं पाठयन्ति, यदि अभिव्यापः
कथाश्चिदस्यथा क्रियते ततो महर्दमीतिकं ते कुवैनिन, मणन्ति च—अत्रोपात्रये सहन्ते रोले-20
नाभित्या 'भे' यूवं मा विनाश्चयति, ततस्तद्वदेशेन वयमत्र विजने परिवर्तवामः । एवमाकर्षणं कुवेतश्चर्त्वकुक्तः । अथ तेन आगच्छता शैक्षः कोऽपि कन्नः तदर्थम्—'पच शैको
मे भूयाद् इति कृत्वा आकर्षति ततश्चर्तुगुरुकाः ॥ ५२०१ ॥ ५२०२॥ । ५२०२॥

पूँवं बहिरावर्ज्य किं करोति ? अत आह— ⊳

अक्लर-वंजणसुद्धं, मं पुच्छह तम्मि आगए संते । घोसेहि य परिसुद्धं, पुच्छह् णिउणे य सुत्तत्ये ॥ ५३७३ ॥

स आचार्यः शिष्यान् प्रतीच्छकान् वा भणति—यदा युष्माकमिम्लापशुद्धगुणनया रिजतः स उपाश्रयमागच्छिति तदा तिस्त्रनागते अक्षर-व्यक्तनशुद्धं सूत्रं मां पृच्छत । अक्षराणि प्रती-तानि, व्यक्तनशब्देन अर्थाभिव्यक्तकत्वाद् अत्र पदसुच्यते । तैरक्षरेव्यक्तनेश्च शुद्धं तथा 'भोषेश्च' उदाचादिमिः परिशुद्धं सूत्रं पठनीयम्, निपुणाश्च स्त्रार्थान् मां तदानीं पृच्छत । ३० एवमनया भक्का तमन्यत्र गच्छे गच्छन्तं प्रतिषेधयति ॥ '११७३ ॥

१ °ष्यति, बादाष्त्राष्ट् यस्य प्रामस्य मध्येन कां ।। २ ल ा एताबिद्वान्तर्गतस्य तरणं कां । एव वर्तते ॥

20

गतं प्रतिषेधकद्वारम् । अथ परिसिल्लद्वारमाह---

पाउयमपाउया घट्ट मह लोय खुर विविधवेसहरा।

परिसिष्टस्स तु परिसा, थलिए व ण किंचि वारेति ॥ ५३७४ ॥

यः परिसिष्ठ जाचार्यः स संविद्याया असंविद्यायाश्च पर्षदः सङ्गई करोति, ततस्तस्य 5 साधवः केचित् प्राष्ट्रताः, केचिद्याष्ट्रताः, केचिद् 'ष्ट्रष्टाः' फेनादिना घृष्टजङ्काः, केचिद् 'ष्ट्रष्टाः' तैलेन गृष्टकेशा गृष्टशरीरा वा, अपरे लोचल्लिक्षतक्षाः, अन्ये क्षुस्कृण्डिताः, एवमादिविवि-धवेषधरा तस्यै पर्षत् । स्वली-देवद्रोणी तस्यामिर्वासो न किश्चिद्यपि वास्यति ॥ ५३७४ ॥

तत्य पनेसे लहुगा, सिंचचे चउगुरुं च आणादी । उनहीनिष्फणां पि या अचिनै चिने य गिण्डंते ॥ ५३७५ ॥

५ 'तत्र' पर्वद्वतो गच्छे प्रवेशं कुर्वतत्त्त्व्य चतुरुंषु । अथ सचिनेन श्रेक्षण सार्द्धं मिवशति तत्त्रश्रदुर्गुरव आज्ञादयश्च दोषाः । अथाचिनेन वसादिना सह मिवशति तत उपिनिण्यसं । मिश्र संयोगप्रायश्चित्तम् । तथा सचिता-ऽचितं ददतो गृहतश्चैवमेव मायश्चित्तम् ॥ ५२७५ ॥ अथ् पिश्रकादिद्वारं गुरुमेवितद्वारं चाह—

दिंकुण-पिसुगादि तहिं, सोतुं णाउं व सण्णिवत्तंते ।

अमुगसुतत्थनिमित्तं, तुज्झिम गुरूहिं पेसविओ ॥ ५३७६ ॥

दिङ्कण-पिशुक-देश-मशकादीन् शरीरोपद्रवकारिणसत्र श्रुत्या ज्ञास्य वा सन्त्रिवर्तमानस्य मासरुष्ठ् । ( प्रन्थामम्—२००० । सर्वप्रन्थामम्—२६८२५ ) तथा 'अगुकश्रुतार्थनिमित्तं गुरुमिर्युप्पदन्तिके प्रेषितोऽह्न्य' इति भणतो मासरुष्ठ् ॥ ५२७६ ॥

आह-एवं भणतः को नाम दोषः ! सरिराह-

आणाऍ जिमिदाणं, ण हु बलियतरा उ आयरियआणा ।

जिणआणाएँ परिभवो, एवं गन्बो अविणतो य ॥ ५३७७ ॥

जिनेन्द्रेरेव भगवद्भिरुक्तम्, यथा—निर्दोषे विधिना सूत्रार्थानिमित्तं यः समागतसस्य सूत्रार्थो दातव्यो । न च जिनेन्द्राणामाज्ञायाः सकाशादाचार्याणामाज्ञा वर्जयस्ता । अपि च—'एवम्' आचार्यानुष्टस्य श्वते दीयमाने जिनाज्ञायाः परिभवो भवति, तथा भेषयत उप23 सम्ययमानस्य प्रतीच्छतश्च त्रयाणामपि गर्वे भवति, तीर्थकृतं श्वतस्य चाविनयः कृतो भवति, ततः 'गुरुक्तः भेषिनोऽङ्ग्य' इति न वक्तव्यम् । यद्ध मीतादिदोषविम्द्वकोऽभिघारिताचार्यस्यान्तिके आयातः स गुद्धः ॥ ५३०० ॥ यद्ध प्रतिपेषकार्यनां पार्थे तष्टति तत्र विधिमाह—
अस्रं अभिधारेतं, अप्पदिसेष्ठ परिसिक्षमस्यं वा ।

जन जानवारतु, जप्पाडसह पारासक्षमन वा । पविसंतें कुरुादिगुरू, सिचचादी व से हाउं ॥ ५३७८ ॥ ते दोऽबुवारुभिचा, अभिधारेजेंतें देंति तं थेरा ।

१ °स्य त्रिप्यपर्पत्, किंबहुना? स्थ<sup>3</sup> कं०॥ २ 'वासी वस्तुभृतमबस्तुभृतं न कि° कं०॥ ३ सिक्ते देति य गिण्डन्ति तामा०॥ ४ °म्,। अथ मिश्रेण सह प्रविशति ततो मिश्रे संबोगप्रायक्षित्तम्। तथा अवित्तं सिवतं च ददतो गृहतस्तस्यावार्यस्य प्रवसेव कं०॥

90

25

# बहुण विचालणं ति य, पुन्छा विष्फालणेगद्वा ॥ ५३७९ ॥

यः पुनस्त्यमाचार्यमभिभार्य अप्रतिषेषकं वा पर्रद्वन्तं वाऽन्यं वा प्रविवाति, तस्य पार्थे उपसम्पधत इत्यर्थः, तं यदि 'कुछादिगुरवः' कुछस्विरा गणस्विराः सङ्गस्यविरा वा जानी- युस्ततो यत् तेनाचित्तं सचित्तं वा तस्याचार्यस्योपनीतं तत् तस्य सकाशाद् इत्या तौ 'द्वाविप' आचार्य-प्रतीच्छको स्थविरा उपाठमन्ते—कस्माद् त्या अयमास्यपार्थे स्थापितः ! कस्माद् वा विस्तमन्यभिभार्थ अत्र स्थितः !; एवम् 'उपाठम्य' तं प्रतीच्छकं घट्टयिस्वा 'तत् साचिवादिकं संविभिभारितस्याचार्येशः । अथ घट्टयित्वीतं कोऽधः ! इत्याह—घट्टनेति वा विचारणेति वा पृच्छेति वा विस्कालनेति वा पृकार्योनि पदानि ॥ ५३०८ ॥ ५३०९ ॥ ततः—

# घट्टें सिचनं, एसा आरोवणा उ अविहीते ।

वितियपदमसंविग्गे, जयणाएँ कयम्मि तो सुद्धो ॥ ५३८० ॥

तं प्रतीच्छकं 'बद्दियता' 'कमिभावयं भवान् प्रस्थित आसीत्?' इति प्रद्वा सचिवादिकं तस्याभिधारितस्य पार्थं स्विनराः प्रेययन्तीति गम्यते । "एसा आरोबणा उ अविद्वीए" िव या पूर्वे प्रतिषेधकस्यं पर्यन्तीहरूनं वा कुर्वेत आरोषणा भणिता सा अविधिनिष्पन्ना मन्तन्या । विधिना वु कारणे कुर्वेणस्य न प्रायधित्यम्, तथा बाह्—"विद्ययय" इत्यादि, यमसाब-15 भिधारयति स आवार्थेऽसिवस्यता हित्तीयपदे यतन्या प्रतिषेधकस्यं कुर्वोत् । का पुनर्यतना ! इति चेद् उच्यते—प्रथमं साधुभिस्तं भाणयति—मा तत्र क्रज । पश्चादासनाऽपि भणेत्, पूर्वोक्तन वा शिष्यादिक्याराणवर्योगण वारयेत् । एवं यतन्या प्रतिषेधकस्य कृतेऽपि 'ग्रुद्धः' निर्दोषः ॥ ५६८० ॥ अपुनेवार्थमाह्—

अभिधारेंतो पासत्थमादिणो तं च जति सुतं अत्थि । जे अ पडिसेहदोसा, ते कुन्वंतो वि णिदोसो ॥ ५३८१ ॥

यान् अभिभारयन्त्रसौ जजति ते आचार्याः पार्श्वसादिदोषदृष्टाः, यच श्रुतमसावभिन्छपति तद् यदि तस्य प्रतिषेषकस्यास्ति, ततो ये प्रतिषेषकत्वं कुर्वतः 'दोषाः' शिष्यव्यापारणादयस्तान् कुर्वज्ञपि निर्दोषस्तदा मन्तव्यः ॥ ५३८१ ॥

जं पुण सिचताती, तं तेसिं देति ण वि सयं गेण्हे । बितियऽचित्त ण पेसे, जावहयं वा असंघरणे ॥ ५३८२ ॥

यत् पुनः सचिचादिकं प्रतीरछकेनागच्छता उच्चं तत् 'तिषाम्' अभिधारिताचार्याणां दवाति न पुनः स्वयं गृह्णति । द्वितीयपदे यद् वस्तादिकमचित्तं तद् अशिवादिभिः कारणैः स्वयमस्-भमानो न प्रेषयेदपि । अथवा याबदुष्युज्यते ताबद् गृहीत्वा रोषं तेषां समीपे प्रेषयेत् । असं-स्तरणे वा सर्वेमिण गृह्णीयात् । सचिचमप्यसुना कारणेन न प्रेषयेत् ॥ ५३८२ ॥ ७०

नाऊण य बीच्छेयं, पुष्वगए कालियाणुओगे य । सयमेव दिसावंधं. करेज तेसिं न पेसेजा ॥ ५३८३ ॥ यस्तेन शैक्ष भानीतः स परम्मेषाची, तस्य च गच्छे नास्ति कोऽत्याचार्यपदयोग्यः, यख तस्य पूर्वगतं कालिकश्चतं वा समित तस्यापरो महीता न माप्यते, ततस्वयोर्व्यच्छेदं श्वास्या सब्सेव तस्यास्त्रीयं दिकन्यं कुर्यात्, न 'तेषां' मागिभपारितानां पार्थे प्रेययेत् ॥ ५३८३ ॥ अश्च पर्यद्वतो अश्वादमाहः—

असहातो परिसिक्षत्तर्ण पि कुजा उ मंदधम्मेस् । पुष्प व काल-ऽद्वाणे. सिचताडी वि गेण्डेजा ॥ ५३८४ ॥

'असहायः' एकाकी स आचार्यस्ततः संविग्नमसंविग्नं वा सहायं गृह्वीयात् । शिष्या वा मन्दभर्माणो गुरूणां व्यापारं न वहन्ति ततो यं वा तं वा सहायं गृह्वानः पर्यद्वस्वमपि कुर्यात् । आद्वा वा मन्दभर्माणो न वस्त-पात्रादि प्रयच्छन्ति ततो उविश्वसण्यं शिष्यं यं वा तं वा परि10 गृह्वीयात् । दुर्मिक्षादिकं वा काल्यम्बनां वा प्राप्य ये उपग्रहकारिणः शिष्यास्तान् सङ्गृह्वीयात् । एवं पर्यदुत्तं कुर्वेन्, प्रतीच्छकस्य सचित्रादिकं तत्र भेषयेत् , प्रवीक्तकारणे वा सङ्गाते स्वयमपि
ग्रह्मीयात ॥ ५३८४ ॥ अथ योऽसी प्रतीच्छको गच्छति तसापवादमाहः—

१८४ ॥ अथ याऽसा मताच्छका गच्छात तसापवादमाह— काल**गर्य सोऊणं, असिवादी तत्थ अंतरा वा वि** ।

परिसेक्षय पडिसेहं, सुद्धो अण्णं व विसमाणो ॥ ५३८५ ॥

15 बमाचार्यमिमिधार्य क्रजति तं कालगतं श्रुत्वा, यद्वा यत्र गन्तुकामसत्तत्र अन्तरा वा अधि-वादीनि श्रुत्वा पृषेद्वतः प्रतिषेधकस्य वा अन्यस्य वा पार्श्व प्रविशन् श्रुद्धः ॥ ५३८५ ॥

एतद् अविशेषितमुक्तम् । अथात्रैवाऽऽभाव्या-ऽनाभाव्यविशेषं विभणिपुराह—

वसंतो वि य दुविहो, वत्तमवत्तस्य मग्गणा होति ।

वत्तिम खेत्तवज्ञं, अन्वत्ते अणप्पिओ जाव ॥ ५३८६ ॥

20 यः प्रतीच्छको त्रजति सोऽपि च द्विविधः—व्यक्तोऽत्यक्तश्च । तथोः सहायः किं दातव्ये ! न वा ! इति मार्गणा कर्तव्या । तत्र व्यक्तस्य यः सचित्तादिरुशः 'क्षेत्रवर्जे' परक्षेत्रं मुक्तवा मस्ति स सर्वोऽप्यभिधारिताचार्यस्याभवति । यः पुनरव्यक्तः स सहायेर्योकद्वापि तस्याचार्य-स्यार्थितो न भवति तावत् परक्षेत्रं मुक्तवा यत् ते सहाया लभन्ते तत् पूर्वाचार्यस्वैवाभवति ईति सङ्गद्वाधासमासार्थः ॥ ५३८६ ॥ अधैनामेव विकृणोति—

सुतअब्बनों अगीतो, बएण जो सोलसण्ह आरेणं । तब्बिनरीओ बचो, बचमवचे य चउमंगो ॥ ५३८७ ॥

अध्यक्ती द्विधा—श्रुतेन वयसा च । तत्र श्रुतेनाव्यकोऽगीतार्थः, वयसाऽज्यकस्तु बोड-श्रानां वर्षाणामबीग् वर्तमानः, तद्विपरीतो व्यक्त उच्यते । अत्र च व्यक्ता-प्र्यक्ताभ्यां चतुर्माक्षी भवति—श्रुतेनाप्यव्यको वयसाऽप्यव्यक्तः १ श्रुतेनाव्यको वयसा व्यक्तः २ श्रुतेन ४० व्यक्तो वयसाऽज्यकः २ श्रुतेन व्यक्तो वयसाऽपि व्यक्तः ४ ॥ ५३८७॥

अस्य च सहायाः किं दीयन्ते ! उत न दीयन्ते ! इत्याह-

वत्तस्स वि दायन्त्रा, पहुष्पमाणा सहाय किम्र इयरे।

25

### सेचविवजं अवंतिएसु जं रूब्मति पुरिश्वे॥ ५३८८॥

शाचार्वेष पूर्वमाणेषु सायुष्ठ व्यक्तसापि सहाया दालव्याः किं पुतः 'इतरस' अव्यक्तस्य ?, तस्य सुतरां दातव्या इति भावः । ते च सहाया द्विषा — आत्यन्तिका अनाव्यन्तिकाश्च । आव्यन्तिका नाम-चै तेन सार्वे तत्रैवासिकुकामाः, ये चु तं तत्र कुषका प्रतिनिवर्तिक्यन्ते ते अनाव्यन्तिकाः । तत्रात्यन्तिकेषु सहायेषु यद् व्यक्तः कृतिवर्वत्ये परक्षेतं ग्रुच्या समिवादिकं ३ क्ष्मते तत् ''पुरिक्षे" ित यस्याऽऽचार्यस्याभिग्नसं अति स पुरोवतीं अव्यक्तं, अभिवादित स्वत्यां स्वयं स्ययं स्वयं स्ययं स्वयं स्य

जह षोउं एतुमणा, जं ते मिगालें वित्त पुरिमस्तं । नियमऽञ्चत सहाया, पेत णियनंति जं सो ये ॥ ५३८९ ॥

अथ ते सहाथासं तत्र नीत्वा आगन्तुक्तमाः, अनात्यन्तिका इत्वर्षः, तत्रो यत् ते सहाथा 10 लगन्ते तत् सर्वमिष "भिष्मेक्षं" ति यत्म सकाशात् मिस्ताः तत्यात्मीसस्वाचार्यस्थाभवति । "बित पुरिमस्त" ति यत् पुनः स न्यकः स्वयद्धत्यात्यति तत् 'पुरिमस्त" अभिषारितस्थाभवति । यः पुनतन्यकत्तस्य नियमेनैव सहावा दीयन्ते, ते च सहाया यदि आव्यन्तिकाष्टवा वद् अश्री ते च लगन्ति तद् अभिधारितस्थाभन्वयम् । अथ तं तत्र नीत्वा निवर्तन्ते तत्तो सद् अस्तौ ते च परक्षेत्रं मुन्तवा लग्नन्ते तत् सर्व पुवीचार्यस्थामवित यावद् अषाऽध्वसी नार्षितो 18 भित्रति ॥ ७३ ८९ ॥

बितियं अपहुचते, न देख वा तस्स सो सहाए तु । बहगादिअपडिबज्झंतगस्स उवही बिसुद्धो उ ॥ ५३९० ॥

द्वितीयपदमत्र भवति—अपूर्यमाणेषु साधुषु सहायान् साधुन् तस्याचार्यो न दवादिष । स चालाना श्रुतेन वयसा च व्यक्तः, तस्य च व्यक्तिकादावप्रतिवध्यमानस्रोपधिविद्युद्धो भवति, 20 नोपहन्यते । अथ विकादिषु प्रतिबध्यते तत उपयेरूपपातो भवति ॥ ५२९० ॥

एगे तू वर्षते, उग्गहवज्जं तु लभति सिचतं । वर्षत गिलाणे अंतरा तु तहिँ मम्मणा होइ ॥ ५३९१ ॥

यो व्यक्त एकाकी वजित स यदि अन्यस्थाचार्यस्य योऽवयहस्तद्वजितेऽनवमहस्रेत्रे यत् किश्चिद् रूभते तत् सिचत्तमिभार्यमाणस्थाभवति । ''वचत'' इत्यादि, योऽसी ज्ञानार्थं वजित स हो त्रीन् 25 बाऽऽचार्थान् कदाचिद् अभिचारयेत् 'तेषां मध्ये यो मे अभिरोचिष्यते तस्यान्तिके उपसम्पदं महीप्यामि' इति क्रत्वा । स चान्तरा स्वानो जातः, तैश्चाचार्यः श्वतस्, यथा—अस्यानिभ-धार्य साधुरागच्छन् पित्र स्क्रानो जात इति; तत्रेवमामाच्या-ऽनामाच्यार्यणा भवति ॥५३९१॥

१ °स्स । जे जबंत सहाया, तथो निवसंति तागः ॥ १ वा बंः । बंः त्रती टीघाट्येत-त्रक्रमुक्तरेवन, रसकां टियमी १ ॥ १ °स्ते, सगुरुसमीपे गरनुकामा इत्यर्थः, ततो वद् असी वाहाब्यात् ते च बंः ॥ ४ मवति । ततः परं यद्यार्गितस्तरमालाब्यम् । परस्ते ने तु रूक्तं सर्वत्र अंत्रिकस्यति ॥ ५२८ ॥ सथवाऽत्रेच द्वितीयपदमाह—वितियं कांः ॥ ५ व्याप्त ॥ ५२९० ॥ तस्य च सहायपहितस्य वजत जामाव्या-उनामाव्यविधिमाह—वर्गे बांः ॥

### आयरिय दोण्णि आगत, एके एके वऽणागए गुरुगा । ण य लभती सचित्तं, कालगते विष्परिणए वा ॥ ५३९२ ॥

### पंथ सहाय समत्थो, धम्मं सोऊण पव्वयामि ति ।

खेते य बाहि परिणयें. वाताहर्डे मग्गणा इणमी ॥ ५३९३ ॥

योऽसी ज्ञानार्थं प्रस्थितस्तस्य पथि गच्छतः कश्चिद् मिथ्यादृष्टिः 'बाताहृतः' ⊸ बेतेना-ऽऽहृत इव वाताहृतः, आकस्सिक हृत्यथैः, ⊳ समर्थः सहायो मिलितः, स च तस्य पार्धे धर्म श्रुत्वा 'प्रत्रजामि' इति परिणामग्रुपगतवान् । स च परिणामः साधुपरिगृहीते क्षेत्रे जातो 16 मवेत्, 'क्षेत्राद् वा वृद्धिः' इन्द्रस्थानादौ वा अपरिगृहीते वा क्षेत्रे, ततस्त्रत्र वाताहृते प्रश्निद्धं परिणते इयं मार्गणा भवति ॥ ५२९३ ॥

#### खेत्तमिम खेत्तियस्सा, खेत्तबहिं परिणए पुरिस्लस्स । अंतर परिणय विष्परिणए य पोगा उ मगगणता ॥ ५३९४ ॥

साधुपरिग्रहीते क्षेत्रे प्रनज्यावरिणतः क्षेत्रिकस्याभवति । क्षेत्राद् बहिः परिणतस्तु "पुरि-20 इस्स" चि तस्यैव साधौराभवति । अधानतराऽन्तरा स प्रनज्यायां परिणतो विपरिणतक्ष भवति ततः क्षेत्रेऽक्षेत्रे च धर्मकथिकस्य राग-द्वेषौ प्रतीत्यानेका मार्गणा । तद्यथा—व्यदि धर्मकथी ऋजुतवा कथयति तदा क्षेत्रे परिणतः क्षेत्रिकस्याभवति, अक्षेत्रे परिणतो धर्मकिषकस्य । अध विपरिणते भावे रागेण न क्षत्रविद्याति, यदा क्षेत्राकिगतेतो भविष्यति तदा कथ्यविष्यामि थेन मे आसत्वति । एवं क्षेत्रनिर्णतस्य कथिते यदि परिणतः तदा क्षेत्रिकस्याभवतीत्येवं १० विभाषा कर्तव्या ॥ ५३९८ ॥

### वीसजियम्मि एवं, अविसजिएं चउलहुं च आणादी।

तेर्सि पि डुंति लडुगा, अविधि विद्वी सा इमा होइ ॥ ५३९५ ॥ एवमेष विधिर्गुरुणा विसर्जिते शिष्ये मन्तव्यः । अद्याविसर्जितो गच्छति तदा शिष्यस्य प्रतीच्छकस्य च चतुर्रुखु । अथ विसर्जितो द्वितीयं बारमगष्टच्छय गच्छति तदा मासरुषु ४० आज्ञादयस्र दोषाः । येषामपि समीपेऽसौ गच्छति तेषामप्यविधिनिर्गतं तं प्रतीच्छतां भवन्ति

१ तस्य म्हानीभूतस्य प्रतिचरणाय यदि कं०॥ २ क्साचीप हे०॥ ३ अधाचैष विशेषान्तरमाह इत्यत्तरणं कं०॥ ४ व्यते, तहियं पुण मन्गणा तामा०॥ ५ ८ ० एतद-नत्तीता पाठा कं० एवं वर्तते ॥

25

चत्वारो लघवः, सचित्तादिकं चामान्यं न लभन्ते । एषोऽविधिरुक्तः, विधिः पुनरयं वक्ष्य-माणो भवति ॥ ५३९५ ॥ स पुनराचार्य एभ्रिः कारणैर्न विसर्जवति—

> परिवार-पूयहेर्ड, अविसर्जते ममत्तदोसा वा । अणुलोमेण गमेजा, दुक्खं खु विद्वंचिउं गुरुणो ॥ ५३९६ ॥

आत्मनः परिवारिनिमित्तं न विसर्वयति, बहुमिर्बा परिवारितः पूजनीयो भविष्यामि, 'मम ऽ शिष्योऽन्यस्य पार्श्वं गच्छति' इति ममलदोषाद्वा न विसर्वयति, प्वमविसर्जयन्तं गुरुम् 'अनु-लोक्षा' अनुकूदैर्वचीभः 'गमयेत' प्रजापयेत् । कुतः ! इत्याहः—'दुःसं' दुष्करं 'खुः' अव-धारणे गुरून् विमोक्तुम्, परमोपकारकारित्वाद् न ते यतस्ततो विमोक्तं शक्या इति भावः । ततः प्रथमत एव विधिना गुरूनाष्ट्रच्छ्य गन्तव्यम् ॥ ५६९६ ॥

कः पुनर्विधिः ! इति चेद् उच्यते---

नाणस्मि तिण्णि पक्तवा, आयरि-उज्झाय-सेसगाणं च । एकेक पंच दिवसे, अहवा पक्तेषण एकेकं ॥ ५३९७ ॥

ज्ञानार्थं गच्छता च श्रीचार्थीपाध्याय-होषसाधूनां ⊳ त्रीन् पक्षान् आष्ट्रच्छा कर्तव्या । तत्र प्रथममाचार्यं पद्य दिवसानाष्ट्रच्छित्, यदि न विसर्जयित तत उपाध्यायं पद्य दिवसानाष्ट्रच्छित्, यदि न विसर्जयित तत उपाध्यायं पद्य दिवसानाष्ट्रच्छित्, यदि सोऽपि न विसर्जयित तदा होषाः साधवः पद्य दिवसान् प्रष्ट्याः, एप एकः पक्षी गताः; 15 तती दित्रायं पक्षमेवमेवाचार्योपाध्याय-होषसाधून् मलेककेकं पद्यभितिदेवतैः प्रच्छति; तृती-यमिप पक्षमेवमेव प्रचलित, एवं त्रायः पक्षा भवन्ति । अथवा च पैक्षेणैकेकं प्रच्छेत् । विद्यक्तं भवित्रक्तं पक्षम्, गच्छिपाश्योऽप्येकं पक्षम्, एवं वा त्रयः पक्षाः । एवमिप यदि न विसर्जयन्ति ततोऽविसर्जित एवं गच्छति ॥ ५१९७ ॥

एयविहिमागतं तु, पडिच्छ अपडिच्छणे भवे लहुगा।

अहवा इमेहिँ आगर्ते, एगादि पडिच्छती गुरुगा ॥ ५३९८ ॥ एतेन विधिना आगतं प्रतीच्छकं प्रतीच्छेत् । अप्रतीच्छतश्चतुर्श्वका भवेयुः । अथामी-भिरेकादिभिः कारणैरागतं प्रतीच्छति ततस्वतुर्गुरुकाः ॥ ५३९८ ॥

तान्येव पकादीनि कारणान्याह--

एगे अपरिणते या, अप्पाहारे य घेरए । गिलाणे बहरोगे य, मंदधम्मे य पाहडे ॥ ५३९९ ॥

एकाकिनमानार्थं सुनवा सं समागतः । अथवा तस्यानार्थस्य पार्धे ये तिष्ठत्ति ते 'अपरि-णताः' आहार-बस्ध-पात्र-शय्या-स्वण्डिङानामकस्यिकाः तैः सहितमानार्थं युक्तवा आगतः । अथवा स आनार्थः 'अक्याधारः' तमेव पृष्टा स्त्रा-ऽर्थवाचनां ददाति । स्वितरो ना स आनार्थः, 50 बह्वा तदीये गच्छे कोऽपि साधुः स्वविरस्तस्य स एव वैयावृत्यकर्ता । म्हानो ना बहुरोगी ना स आनार्थः । 'म्हानः' अधुनोत्मकरोगः, 'बहुरोगी नामै' विरकालं बहुभिवी रोगैरिमिमृतः ।

१-२ ·प > एतिवहान्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥ ३ °म' प्रभूतकालरोगेण बहुभि' कां॰ ॥

श्रवणा शिष्पास्तस्य मन्द्रभांणस्तस्य गुणेन सामाचारीमनुषाळयन्ति । एवंविश्रमाचार्वे परित्य-ज्यागतः । ''पाहुरे'' चि गुरुणा समं 'मामुतं' कळहं कृत्वा समागतः; अथवा 'प्रामृतका-रिणः' जासङ्क्षदिकास्तस्य शिष्यासत्येव गुणेन नासङ्क्षदयन्ति ॥ ५३९९ ॥

एवारिसं विओसज, विष्यवासी ण कष्पती ।

सीस-पडिच्छा-ऽऽयरिए, पायच्छित्तं विहिजती ॥ ५४०० ॥

एताहरामाचार्यं व्यत्स्त्रस्य 'विषवासः' गमनं कर्तुं न करूरते । यदि गच्छिते ततः सिष्यस्य प्रतीच्छकस्याचार्यस्य च त्रयाणामपि प्रायक्षिचं विचीयते । तत्रेकं म्छानं वा मुक्तवा शिष्यस्य प्रतीच्छकस्य वा समागतस्य चतुर्गुरुकाः, यक्षाचार्यः प्रतीच्छितं तत्थापि चतुर्गुरु । प्रायुते शिष्य-प्रतीच्छकस्य वा समागतस्य चतुर्गुरुक्तमेत्रः जवार्यस्य पद्यशात्रिन्दिवच्छेदः । 'शेषेषु' अपरिणतादिषु । १० पदेषु शिष्यस्य चतुर्गुरुक्, प्रतीच्छकस्य चतुर्छपु, आचार्यस्यापि शिष्यं प्रतीच्छतं पतेषु चतुर्गुरु, प्रतीच्छकं प्रतीच्छतस्य तुर्छपु ॥ ५४००॥

अथ 'ज्ञानार्थं त्रीन् पक्षानाप्रच्छनीयम्' (गा० ५३९७) इत्यत्रापवादमाह---

बिइयपदमसंविग्गे, संविग्गे चेत्र कारणागाढे ।

नाऊण तस्सभावं, कप्पति गमणं अगापुच्छा ॥ ५४०१ ॥

१० द्वितीयपदमत्र भवति —आचार्यादिष्वसंविधीयृतेषु न पृच्छेदिष । संविधेष्विष वा किश्चि-दागार्द-चारित्रविनाशनकारणं स्त्रीयमृतिकमात्मनः समुत्तनं ततोऽनाष्ट्रच्छयाऽपि गच्छति । तेषां वा—गुरूणां सभावं ज्ञात्वा—'नैते षृष्टाः सन्तः कथमपि विसर्जवन्ति' इति मत्ता अना-प्रच्छवापि गमनं कल्पते ॥ ५४०१ ॥ अथाविसर्जितेन न गन्तन्वमित्यपवद्ति—-

अज्झयणं वोच्छिजति, तस्य य गहणम्मि अत्थि सामत्थं ।

ण वि वियरंति चिरेण वि, एतेणऽविसक्षिती गच्छे ॥ ५४०२ ॥ किमप्यस्ययनं व्यवच्छित्रते, तस्य च तद्वर्तेण सामध्येमितः, न च गुरबिधरेणापि 'वितर्रान्त' गन्तुमनुज्ञानते, एतेन कारणेनाविसार्वितोऽपि गच्छेत् ॥ ५४०२ ॥ 'अविधिना आगत आचार्येण न प्रतीच्छनीयः' हत्यस्यापवादमाह —

नाऊण य बोच्छेदं. प्रव्याते कालियाणुओंगे य ।

अविहि-अणापुच्छाऽऽमत, सुत्तस्यिजाणओ वाए ॥ ५४०२ ॥
पूर्वगते कालिकश्चते वा व्यवच्छेदं ज्ञात्वा अविधिना-अिकादिमतिबन्धेनागतमनापृच्छ्यागतं वा सुत्रार्थज्ञायको बाचयेत्, न कश्चिदोषः ॥ ५४०३ ॥ यस्तेन मतीच्छकेन

श्रेक्षस्त्रस्थाभिधारितस्थानामाव्य आनीतः स न महीतव्यः' इत्यपवदति-

णाऊण य वोच्छेदं, पुन्वगते कालियाणुओगे य । सुत्तत्यजाणगस्सा, कारणजाते दिसावंघो ॥ ५४०४ ॥

पूर्वगते कालिकश्चते वा व्यवच्छेदं ज्ञात्वा सुत्रार्थज्ञायकेने कारणजाते जनाभाव्यस्थापे आसमीयो दिख्याः कर्तव्यः । शाह-किमर्थमनिवद्धो न वाच्यते ! उच्यते—अनिवदः

१ °म स्रिष्ण 'कारणजाते' पुषालम्बनेऽनामाव्यस्यापि शिष्यस्य आत्मी° को॰ ॥

लक्केव कदान्विद् गच्छेत् पूर्वाचार्वेण वा नीयेत, काछदोषेण वा ममत्वीभावमालम्ब्य वाच-विष्यन्ति इति दिग्वन्योऽनुज्ञातः ॥ ५९०४ ॥ इदमेव सविशेषमाह——

ससहायअवनेणं, खेने वि उवद्वियं तु सचित्तं । दलियं णाउं बंधति, उभयममनद्रया तं वा ॥ ५४०५ ॥

क्यकेन ससहायेन वः होत्रो कब्यो यश्च परस्ते उपि उपस्ति इः सन्ति स पूर्वाचार्यक ६ क्षेत्रिकाणां वा वक्षि आमाञ्यलकाषि तं 'दलिकं' परममेषानिनमानार्यवदयोग्यं इएता वक्षा-लानि गच्छे नास्त्रानार्यवदयोग्यस्तत्वस्यालीयां दिश्चं वशाति, स्वतिष्यव्येन सापपतीत्ययः । कुतः ! इत्याह — उपयय्य-साधु-साध्येनस्य तत्र अभ्यत्य मान्ति प्रत्यं नामिकाने कृति वृद्धं नामिकाने प्रत्यं स्विव्यति । वृद्धं नामिकाने मिक्ति वृद्धं नामिकाने मिक्ति वृद्धं नामिकाने वृद्धं नामिकाने मिक्ति वृद्धं नामिकाने मिक्ति वृद्धं नामिकाने मिक्ति वृद्धं नामिकाने वृद्ध

एवं शैक्षः प्रतीच्छको वा कारणे शिष्यतया निबद्धः सन् यदा निर्मातो भवति तदा-

आयरिए कालमते, परियद्वह तं मणं च सो चेव । चोएति य अपदंते, हमा उ तहिँ सम्मणा होह ॥ ५४०६ ॥

वारात प अपवत, इसा उताह सम्माग हाह । १ २०२५ ।। अक्षनोर्वे कारुकाते सति गच्छस्य निवदाचार्यस्य च व्यवहारी अष्यते—स सक्तमेव तं 18 गणं परिवर्तवति । स च गच्छो यदि श्रुतं न पठति ततसम्पठन्तं नोदयति । बदि नोदिता अपि ते गच्छसाथनो न पठन्ति तत हयमामबद्धावहारमार्गणा भवति ॥ ५४०६ ॥

साहारणं तु पदमे, नितिए खित्तम्मि ततिय सुह-दुक्खे । अणहिञ्जते सीसे, सेसे एकारस विभामा ॥ ५४०७ ॥

कालमतस्याचार्यस्य प्रथमे वर्षे सचिचाहिकं साधारणप्, यदत्तो प्रतीच्छकावार्य उत्सादस्यि अ तत् तस्येवाभवति यद् इतरे गच्छताधव उत्पाद्यन्ति तत् तेषामेवाभवतीति भावः । द्वितीवे वर्षे यत् स्रेत्रोपसम्पन्नो लगते तत् तेऽपठन्तो लगन्ते । तृतीये वर्षे यत् सुस-दुःस्वोपसम्पन्नो लगते तत् ते लगन्ते । चतुर्षे वर्षे कालगताचार्यक्षित्यः अनुभीनाम न किस्बिल्यम्तः । रोषा सम-वेऽभीयते तेशमधीयानानां वस्यमाणा एकादश विभागा मवन्ति ॥ ५४०७ ॥

शिष्यः इच्छति — क्षेत्रीपरापनः सुल-दुःस्रोपसम्पन्नो वा कि समेते ! सूरिसह —

खेत्तीवसंपयाए, बाबीसं संधुया य मित्रा य ।

सुह-दुक्स विचवजा, चउत्वय नालबद्धारं ॥ ५४०८ ॥

१ "अते ! इत्वनि तावव् वर्ष व जावीयहे; ख्रि कां० ४

तत् ते शिष्या अनर्भायाना द्वितीये तृतीये च वर्षे यथाकमं रूमन्ते, चतुर्थे वर्षे सर्वमप्या-चार्यस्याभवति न तेषात्र ॥ ५४०८ ॥

ये तु शिष्या अधीयते तेषां विधिरूच्यते—तस्य कारुगताचार्यस्य चतुर्विधो गणो भवेत्—शिष्याः शिष्यकाः प्रतीच्छकाः प्रतीच्छकाश्चेति । एतेषां पूर्वेहिष्ट-पश्चादुहिष्टयोः ४ सेवत्सरसङ्ख्या एकादश गमा भवन्ति । पूर्वेहिष्टं नाम—यत् तेनाचार्येण जीवता तेषां श्चतम्र-हिष्टम्, यत् पुनत्तेन प्रतीच्छकाचार्येणोदिष्टं तत् पश्चादुहिष्टम् । तत्र विधिमाह—

### पुच्बुद्दिष्ठे तस्सा, पच्छुदिष्ठे पवाययंतस्स ।

संवच्छरम्मि पदमे, पहिच्छए जं तु सिचत्तं ॥ ५४०९ ॥ यद् आचार्येण जीवता प्रतीच्छकस्य पूर्वमुद्दिष्टं तदेव पठन् प्रथमे वर्षे यत् सन्वचमित्तं । १० स रुभते तत् (नक्ष्य' कारुगताचारेस्याभवति, एव एको विभागः । अथ पश्चादुद्दिष्टं ततः प्रधानस्तरे यत् सार्वचादिक रुभते तत् सर्वं 'प्रवाचयतः' प्रतीच्छकाचार्यसामवति, एव दितीयो विभागः ॥ ५४०९ ॥

पुन्वं पच्छिरिंह, पडिच्छए जं तु होइ सचितं। संवच्छरम्मि वितिष्, तं सच्वं पवाययंतस्स ॥ ५४१० ॥ १० प्रतीच्छकः पूर्वेहिष्टं पश्चादुहिष्टं वा पठतु यत् तस्य सचितादिकं तद् द्वितीये वर्षे सर्व-मपि प्रवाचयतो भवति, एष तृतीयो विभागः॥ ५४१०॥ अथ शिष्यस्याभिधीयते—

पुष्वं पच्छुद्दिहे, सीसम्मिष्यं जं तु होइ सचित्तं । संवच्छरम्मि पढमे, के सन्वं गुरुस्स आभवह ॥ ५४११ ॥

शिष्यस्य कालगताचार्येण वा उद्दिष्टं भवेत् प्रतीच्छकाचार्येण वा तदाऽसी पठन् यत् 20 सचिजादिकं रूमते तत् सर्वे प्रथमे संवस्मरे 'गुरोः' कालगताचार्यस्याभवति, एष चतुर्यो विभागः॥ ५९११॥

पुन्तुहिट्टं तस्सा, पन्छुहिट्टं पवाययंतस्स । संवच्छरम्मि बितिए, सीसम्मि उ जं तु सचित्तं ॥ ५४१२ ॥ शिज्यस्य पूर्वोहिष्टमचीयानस्य द्वितीये वर्षे सचितादिकं कारुगताचार्यस्यामवति, पञ्चनो

25 विभागः । पश्चादुविष्टं पठतः शिष्यस्य सचिचादिकं प्रवाचयत आमान्यं भवति, पष्टो विभागः ॥ ५४१२ ॥

पुर्वं पच्छुदिहे, सीसम्मिय जंतु होइ सिंबत्तं।

संबच्छरम्मि ततिष्ट्, तं सच्वं पवाययंतस्स ॥ ५४१३ ॥ पूर्वोहिष्टं पश्चादुहिष्टं वा पठति शिष्ये सचित्तादिकं तृतीये वर्षे सर्वमिष प्रवाचयत आम-50 वति, सप्तमो विभागः ॥ ५४१३ ॥

पुल्बुहिष्ट्रे तस्सा, पच्छुहिष्ट्रे पवाययंतस्स । संवच्छरम्मि पढमे, सिस्सिणिए जं तु सिचर्च ॥ ५४१४ ॥ शिव्यकायां पूर्वोहिष्टं पठन्त्यां सचिचादिकं 'तस्य' काळगताचार्यस्य प्रयमे वर्षे आभाज्यस्,

अष्टमो विभागः । पश्चादुिहमधीयानायां प्रवाचयत आभाव्यम्, नवमो विभागः ॥ ५४१४ ॥ पुरुषं पच्छुदिहे, सिस्सिणिए जं तु होह सिचर्त ।

संबच्छरम्मि बीए, तं सर्व्यं पवाययंतस्य ॥ ५४१५ ॥

पूर्वोहिष्टं पश्चादुद्दिष्टं वा पठन्त्या शिष्यिकायां सचित्तादिलाभो द्वितीये वर्षे मवाचयत स्नामवति, दशमो विभागः ॥ ५२१५ ॥

पुरुवं पच्छुदिहे, पांडिच्छिमा जं तु होति सम्बितं । संवच्छरम्मि पढमे, तं सन्वं पदाययंतस्य ॥ ५४१६ ॥

पूर्वोहिष्टं पश्चातुहिष्टं वा पठन्यां पतीच्छिकायां प्रथम एव संवत्तरे सर्वेमपि प्रवाचयत आभवति, एव एकादशो विभागः॥ ५४१६॥ एव एक आदेश उक्तः। अथ द्वितीयगाह—

संबच्छराइँ तिश्वि उ, सीसम्मि पढिच्छए उ तिह्वसं । एवं कुले गणे या, संबच्छर संघें छम्मासा ॥ ५४१७ ॥

पतीच्छकावार्यनेषां कुटसत्को गणमत्कः सङ्घतत्को वा भवेत्। तत्र बदि कुटसत्कः तदा त्रीन् संवत्सगन् शिष्याणां वाच्यमानानां सचिवादिकं न गृहाति, ये पुनः प्रतीच्छकाननेषां वाच्यमानानां यसिलंब दिने आचार्यः कारुगतस्तिहिवसमेव गृहाति। एवमेककुटसत्के विधिरुक्तः। अथ नासी गणसत्कतताः संवत्सरं शिष्याणां सचिवादिकं नापहरति। यस्तु 15 कुट्यस्ते गणसक्तो वा न भवित स नियमात् सङ्घतकः, स च षणमासान् शिष्याणां सचिवादिकं नापहरति। तेन च मतीच्छकावार्येण तत्र गच्छे वर्षत्रयमवद्यं स्थातव्यम्, परतः पनिरिच्छ।॥ ५४ १७।॥

तत्थेव य निम्माए, अणिग्गए णिग्गए इमा मेरा । सकुले तिकि तियाई, गणे दुगं वच्छरं संघे ॥ ५४९८ ॥

'तेत्रेव' प्रतीच्छका चार्यसमिप तसिन् सिनिते यदि कोऽपि गच्छे निर्मातसाद सुन्दरम्। अथ न निर्मातः स च वर्षत्रयात् पत्तो निर्मतः ते वा गच्छीयाः 'एप साम्प्रतमसाकं सिन्ता-दिकं हरति' इति इत्वा ततो निर्मतालदा इयं 'मयोदा' मामाचारी—''सकुळे'' इत्यादि, 'सकुळे' सकीयकुळस्य समवायं इत्या कुळस्य कुळस्यवित्स्य वा उपतिष्ठन्ते, ततः कुळं तेषां वाचनाचार्यं ददाति वारकेण वा वाचयित । कियन्तं काळम् ! इत्याह—''तिक्रि तियाहं'' ति 25 त्रयक्षिका नव भवन्ति, ततो नव वर्षाणि वाचयतिपुक्तं भवितः यदि एतावता निर्मीतास्त्रदा सुन्दरम्, अथेकोऽपि न निर्मातन्तेतः 'कुळं सचिचादिकं एक्काति' इति इत्या गणपुपतिष्ठन्ते, गणोऽपि द्व वर्षे पाठयित, न च सचिचादिकं हरति, यथेवमप्यनिर्मातास्त्रतः सक्कुप्रतिष्ठन्ते, वाचनाचार्यं ददाति, स च संवत्तरं पाठयति, यथं द्वादश वर्षाणे भवन्ति । यथे-वमेकोऽपि निर्मोतस्त्रदा सुन्दरम्, अथ न निर्मोतस्त्रतः पुज्यतिष्ठन्ते, ताचन्तमेव काळं कुळादिनि वयाकनं पाठयतित, न च सचिचादिकं हरति, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे भवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं हरति, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे भवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं हरनित, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे भवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं हरनित, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे भवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं हरित, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे मवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं हरित, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे मवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं हरित, एवमेतान्यपि द्वादश वर्षाणे भवन्ति। वयाकनं पाठयतित, त च सचिचादिकं

१ एवमनेन विधिना 'तत्रैय' कां ।। २ 'स्ततो वर्षनवकादुर्भ 'कुलं कां ।।

30

विंत्रतिः । यदि प्तावता कालेनैकोऽपि निर्मात्त्तदा विहरन्तु, अव न निर्मातकाते पूर्वोऽपि कुल-गण-सङ्खेषु तथैवीपतिष्ठन्ते, तेऽपि तथैवं पाठवन्ति । यतान्वपि द्वादश्च वर्षाणि चतुर्विंशत्या मील्यन्ते जाता वहर्त्रिश्चत् । यथेवं वहर्तिञ्चता वेषैरेकोऽपि निर्मातकातो विहरन्तु ॥ ५५१८॥ अधैकोऽपि न निर्मातः, कथव् ! इति चेद् उच्यते—

ओमादिकारणेहि व, दुम्मेहचेण वा न निम्माओ । काऊण कुलसमायं. कुल थेरे वा उबहंति ॥ ५५१९ ॥

अवमा-ऽशिवादिभिः कारणेरनवरतमपरापरमामेषु पर्यटतां दुर्मेशस्त्रया वा नैकोऽपि निर्मातस्त्रः कुरुसमवायं कृत्वा [कुरुं] कुरुस्विरान् वा सर्वेऽप्युवतिष्ठःने ततसीरुपसम्पदं माह-वितन्त्राः ॥ ५६१९ ॥ कृत्र पुनः । इति चेद उच्धते—

> पञ्जाएगपिक्तिय, उनसंपय पंचहा सए ठाणे । छत्तीसाऽतिकंते. उनसंपय पत्तवादाए ॥ ५४२० ॥

यः मनश्यमा एकपाक्षिकस्तस्य पार्श्वे उपसम्पदं तान् कुरुस्वविरा माह्येयुः । सा च उप-सम्पत् पद्यथा चक्ष्यगाणनीत्या भवति । तस्यां चोषसम्पदि षट्निशहर्षातिकमे मातायां "सए ठाणि" चि विभक्तिस्वत्ययात् 'स्वक्त्य' आत्मीयं म्यानम् 'उपादाय' गृहीश्वा तैरुपसम्पत्तव्यम् १४॥ ५१२०॥ इदमेव भावयति—

> गुरुसन्त्रिलओ सन्द्रंतिओ व गुरुगुरु गुरुस्स वा णत् । अहवा कुलिचतो ऊ, पन्वजाएगपन्सीओ ॥ ५४२१॥

'गुरुसजिम्नरूकः' गुरुणां सहाध्यायी पितृज्यस्थानीयः, 'सज्झन्तिकः' आत्मनः सम्ब्रह्मस्ति भातृस्थानीयः, 'गुरुगुरुः' पितामहस्थानीयो गुरुः, गुरोः सम्बन्धी 'नसा' पश्चिष्य आत्मनो २० भातृज्यस्थानीयः, एते प्रवत्यया एकपाक्षिका उच्यन्ते । अथवा 'कुरुसत्कः' समानकुरुोद्धवः सोऽपि प्रवज्ययैकपाक्षिकः । एतेषां समीपे यथाकममप्रसम्पत्त्ययः ॥ ५९२१ ॥'

> पन्वजाऍ सुएण य, चउमंगुवसंपया कमेणं तु । पुन्वाहियवीसरिए, पढमासह ततियमंगे उ ॥ ५४२२ ॥

हहैकपाक्षिकः भन्नज्यम् छतेन च भवति । तत्र प्रनःयेकपाक्षिकोऽनन्तरकुकः, श्वतैकपा20 क्षिकः—येन सहैकवाचिनिकं त्रम् । अत्र चतुर्भक्षी—भन्नज्ययेकपाक्षिकः श्वतेन च १ प्रनः
जया न श्वतेन दे श्वतेन न प्रनःयया ३ न प्रनःयया न श्वतेन ४ । एतेषु चान्ना क्रमेणोपत्मच्य प्रतिपच्या । "पटमा" हत्यादि, प्रयमतः प्रथमभन्ने उपसम्पत्यव्यम्, तदमावे तृतीये
मन्ने । कुतः ! हत्याह— यतः पूर्वाचीतं श्वतं विस्तृतं सत् तेषु सुर्वनेवोज्ज्वावयिद्धं सम्बते,
श्वतैकपाक्षिकत्वात् ॥ ५७२२ ॥ अथ पश्चविषाद्धसम्पदमाह—

सुब सुर-दुक्खे खेचे, मार्गे विणओवसंपयाए य । वाबीस संशुव वयंस दिष्टमट्टे व सन्वे य ॥ ५४२३ ॥ श्रुतोवसम्पत् १ सुस-दुःसोवसम्बत् २ स्त्रोवसम्बत् ५ ।

१ 'व द्वादश वर्षाणि पाड' कां॰ ॥ २ अत्रेव विशेषमात्र इसकारणं कां॰ ॥

"मए टाणे" (५२२०) ति यदुक्तं तस्वायमर्थः—पञ्चविधाऽप्युरसम्बत् सस्तिन् स्थाने प्रतिपत्त्वया । किमुक्तं भवति १—श्वतोपसम्पदं प्रतिपिस्तोर्यस्य पार्थे श्वतमस्ति तत् तस्य स्थानम्, सुल-दुःसार्थिनः सस्यानं यत्र वियाद्वस्वकाः सन्ति, क्षेत्रोपसम्पद्धिनो वद्य विवादस्वकाः समितः, विनयोपसम्पद्धिनो वद्य विवादस्वकार्यः समितः, विनयोपसम्पद्धिनो वद्य विवादस्वकार्यं युज्यते, पतानि स्वस्थानाति । अथवा स्वस्थानं नाम-प्रवत्वयम् श्वतेन व्यक्तः 15 पाक्षिकतः पार्थे, ततः श्वतेन गणेन पाक्षिकतः पार्थे, ततः श्वतेन गणेन केणाक्षिकतः सार्थे, ततः श्वतेने स्वर्थाक्षिकतः पार्थे, ततः श्वतेन स्वर्थाक्षिकतः सार्थेन प्रति स्वर्थेन स्वर्येन स्वर्ययेन स्वर्थेन स्वर्येन स्वर्थेन स्वर्ययेन स्वर्थेन स्वर्ययेन स्वर्थेन स्वर्थेन स्वर्ययेन स्वर्थेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्थेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स्वर्ययेन स

आह — साधर्मिकवाससस्पाराधनार्धं सर्वेणापि सर्वस्य श्रुताध्यापनादि कर्तव्यं ततः किमथै प्रथमं प्रवज्या-कुळादिभिरासत्तररेषुपसम्पद्यते ? इत्याह — 20

सञ्चस्स वि कायन्त्रं, निच्छयओं किं कुछं व अकुछं वा । कालसभावसमत्तेः, गारव-लजाहिं काहिंति ॥ ५४२४ ॥

निश्चमतः सर्वेण सर्वेष्याप्यविद्योषेण श्वतवाचनादिकमात्मनो विपुरुतरां निर्वरामभिरुवता कर्तव्यन्, किं कुरुमकुरुं वा इत्यादिविचारणया १; परं दुष्यमारुश्चणो यः कारुक्तस्य यः स्वमावः—अनुमावस्तेन 'बाल्मीयोऽयम्' इत्यादिकं यद् ममत्त्वम्, यच्च गुर्वोदिविषयं गौरवं—26 बहुमानबुद्धिः, या च तदीया रुज्जा, एतैः प्रेरिताः सुख्तेनैव करिष्यन्तीति कृत्वा प्रथमं प्रवच्या-दिभिरासवातरेष्ट्रपसम्पद्यत इति ॥५२२॥ गतं ज्ञानार्थं गमनम् । अथ दर्शनार्थं गमनमाह—

कालिय पुन्वगए वा, णिम्माओ जति य अत्थि से सत्ती । दंसणदीवगहेर्ज, गन्छह अहवा हमेहिं त ॥ ५४२५ ॥

कालिकश्चते पूर्वगते वा यद् वा यसिन् काले श्चतं प्रवरति तसिन् सूत्रेषणार्थेन च यदा 30 निर्मातो भवति, यदि च तस्य महण-भारणद्यकिस्तयात्रिचा समस्ति तस्रो दर्शनदीपकानि— सम्यस्तर्शनोज्ज्वालनकारीणि यानि सम्मत्यादीनि शास्त्राणि तेषां हेतोरन्थं गणं गच्छति ॥ ५१२५ ॥ अथवा एभिः कारणैर्गच्छेन्—

#### भिक्खुगा जिह देसे, बोडिय-थलि-णिण्हएहिं संसग्गी। तेसिं पण्णवणं असहमाणें वीसजिए गमणं॥ ५४२६॥

यत्र देशे 'भिक्षुकाः' बौद्धा बोटिका वा निद्दया वा बहबतेषां तत्र स्वस्ती तत्र ये आचार्याः स्वितातीः सार्द्धमाचार्याणां संसर्गिः प्रीतिरित्वर्यः; ते च भिक्षुकादयः स्वसिद्धान्तं प्रज्ञापयन्ति, इस चाचार्यो त्राक्षिण्येन तर्कस्यप्रवीणतया वा तृष्णीकत्तिष्ठति, तां च तदीयां प्रज्ञापनाससह-मानः कश्चिद् विनेयश्चित्वरति—अन्यं गणं गत्वा दर्शनप्रमावकानि शास्त्राणि पटामि येना-मृत् निरुत्वरात् करोमि । एवं विचन्त्य स तथेव गुरूताष्ट्रच्छ्य तीर्ववार्जनो गच्छति ।। ५५२६ ॥ इदमेव भावयति—

लोए वि अ परिवादो, भिन्तसुगमादी य गाह चमहिंति । विष्परिणमंति सेहा, ओभामिजंति सङ्घा य ॥ ५४२७ ॥

भिक्षकादीनां स्विध्यान्तं शिर उद्घाव्य प्ररूपयतामि यदा सूरयो न किमि बृवते ततो होकेऽपि च परिवादो जातः — एते ओदनमुण्डा न किमि जानते, अभी तु सौगताः सर्वम-बंदुष्पन्ते । एवं ते शिक्षुकादयः परिवादं श्रुत्वा गादनरं वैनशासनं चनदयित, श्रेक्षाश्च विपरणमन्ति, श्राद्धाश्च रक्तप्रशासक्ष्येत्राच्यन्ते — एते श्रेतिभक्ष्ये बटरिशरीमणयश्चाङ्का-शिरणः, ययन्ति सामप्ये ततोऽसाकमुत्तरं प्रयष्टकन् । अथवा तेः भिक्षुकादिभिः स्विक्रियामान्त्राध्या स्वाद्या । ५९२०॥ ततः —

> रमगिद्धो व थलीए, परतित्थियतञ्जलं असहमाणी । गमणं बहुस्सुतत्तं, आगमणं वादिपरिमा उ ॥ ५४२८ ॥

स आचार्यसासां स्विलिकायां 'रमगृद्धः' किय-मधुगहारत्व्ययः नामग्यं सत्यपि न किथि-20 दुन्तं प्रयच्छति । एवमादिकां पग्तीर्थिकतर्जनामसहमानः शिष्य आचार्यं विधिना पृष्टा 'निर्मतः' अन्यगणमानं कृतवान्, तत्र च तर्कशाक्षाणि क्षुत्वा महस्थतत्वं तत्त्व सङ्गज्ञे, नतो भूयः स्वगच्छे आगमनम्, आगतेन च पृर्वमाचार्या दृष्ट्याः, ततोऽन्यस्यां वसत्ते। स्वित्वा या तत्र वाद्मगरिकुशल पर्यत् तां परिचितां कृत्वा राजो महाजनस्य च पुरतः परतीर्थिकान् निष्पिष्टमक्षव्याकरणान् करोति ॥ ५४२८ ॥'

25 वायपरायण\$विया, जिंत पडिसेहंति साहु लट्टं च । अह चिराणुगओं अम्हं, मा से पवत्तं परिहवेह ॥ ५४२९ ॥

बादे पराजयेन कृषिताः सन्तो यदि ते भिक्षुकादय आचार्यस्य तं वण्टं प्रतिवेधयन्ति ततः 'साधु' छन्दरं 'रूष्टं च' अमीष्टं जातमिति । अथ तत्र कोऽषि सूयात्—पतस्य को दोषः ! चिरमनुगत एषोऽस्माकम्, मा पूर्वमृष्ट्चं दातस्यमस्य परिहापयत ॥ ५४२९ ॥

so ततः को विधिः ! इत्याह—

काऊण य प्पणामं, छेदसुतस्सा दलाह पडिपुच्छं। अण्णत्य बसहि जग्गण, तेसिं च णिवेदणं काउं॥ ५४३०॥ गुरोः पदकमरूस प्रणामं इत्वा वक्तव्यम् — छेदश्चतस्य प्रतिष्ठच्छां मम प्रयच्छत । अत्र वागीतार्थाः श्रृष्यति ततोऽन्यस्यां वसती गच्छावः । पवसुकोऽपि यदि तस्या वसतेने निर्म-च्छिति तत्राख्यानिकादिकथापनेन चिरं रात्रौ गुरवो जागरणं कारापणीयाः, 'तेषां च' अगी-तार्थानाम् 'वयमाचार्थमेवं नेप्यामः, भवद्विबोंको न कर्तव्यः' इति निवेदनं कृत्वा गन्तव्यम् ॥ ५४२० ॥ इतमेव व्याचष्टे —

सहं च हेतुसत्थं, अहिजओ छेदसुत्त णहं मे ।

एत्य य मा असुतत्था, सुणिज तो अण्लाह विसमी ॥ ५४३१ ॥ 'जन्दर्जासम्' ऐन्द्रादिकं 'हेत्यास्य' सम्मत्यादिकम् एवमादिकं शासमधीयानस्य

े चन्दालय रहात्राक्ष अध्यात वार्त्यात्राक्ष प्रभाव के विद्युस्त निर्माणीय के क्षेत्रस्त के क्षित्रकार्ध के प्रवच्छत । कित्र च वत्री कित्रुतार्थीः शैक्षा कपरिणासका वा मा श्रृणुष्ठः, ततोऽन्यस्यां वसती वसामः । 10 एवमन्यव्ययदेशेन निष्काशयति ॥ ५९२१ ॥

अथ तस्या वसतेः क्षेत्राद्वा निर्गन्तुं नेच्छति ततोऽयं विधिः---

खित्ताऽऽरिक्खिणवेयण, इयरे पुन्वं तु गाहिया समणा । जग्गविओ सो अ चिरं, जह णिजंतो ण चेतेती ॥ ५४३२ ॥

'आरक्षिकः' दाण्डपाशिकसास्य निवेदनं कियते—"क्तियः ति असाकं क्षिप्तचियः साधुः 10 समस्ति तं वयमर्थरात्रे वैद्यसकाशं नेष्यामः, स यदि नीयमानः 'हियेऽहं हियेऽहम्' इत्यारटेत् ततो युष्माभिनं किमपि भणनीयम् । 'इतरे' अमीतार्थाः अमणाः पूर्वेमेव माहिताः कर्तेच्याः—वयमाचार्यमेवं नेप्यामः, मा बोलं कुरुष्यम् । स चाचार्यध्यस्मास्यायिकाः कथापयित्वा जागरितः सन् यदा निर्भरं सुप्तो भवति तदा नीयते यथा नीयमानो न किश्चित् चेतयति ॥ ५४३२ ॥

निण्हयसंसम्मीए, बहुसो भण्णंतुवेह सो जुणह । तह किं ति वस परिणम, गता-ऽऽगते णीणिओ विहिणा ॥५४३३॥

पुद्दा का ता वच भारणम्, भाराज्यात्र भाषण्या । भाषणा भाषणा

एसा विही विसिजिए, अविसिजिए रुहुग दोस आणादी। तेसि पि इंति रुहुगा, अविहि विही सा हमा होह॥ ५४३४॥

एष विधित्रेरुणा विसर्जिते शिष्ये मन्तस्यः । अविसर्जितस्य तु गच्छतश्चतुरुषु रोषाधा-ज्ञादयः।'तेषामपि' गतीच्छतां चतुरुषुकाः।एपोऽविधिरुकोऽतो विधिना गन्तस्यम्॥'५४३।। स चार्य विधिर्मविति—

> दंसणनिते पक्खो, आयरि-उज्झाय-सेसगाणं च । एकेक पंच दिवसे, अहवा पक्खेण सन्वे वि ॥ ५४३५ ॥

१ 'शास्त्रं च' पेन्द्रादिकं व्याकरणं 'हेतुशास्त्रं' सम्मत्यादिकं प्रमाणशास्त्रमधी' कं ।।

दर्शनमभावकाणां शासाणामर्थाय निर्मच्छत एकं पक्षमावार्योपाध्याय-नेषसापूनां आप-च्छनकालो अवति । तथया—आवार्यः पञ्च दिक्तानाष्ट्रच्छाते, यदि न विसर्वयति तत उप-ज्ञाचोऽपि पञ्च दिवसान्, शेषसाधवोऽपि पञ्च दिवसान् । अथवा पक्षेण सर्वेऽपि ष्टच्छान्ते । किन्नकं, भवति !—दिने दिने सर्वेऽपि ष्टच्छान्ते यावत् पक्षः पूर्ण इति ॥ ५८१५ ॥

एतविहिआगतं तू, पिडल्ङ अपिडल्ङणे भवें लहुना ।
अहवा इमेहिं आगत, एगागि(दि) पिडल्ङणे गुरुगा ॥ ५४३६ ॥
एगे अपरिणए या, अप्पाहारे य थेरए ।
गिलाणे बहुरोगी य, मंदधम्मे य पाहुडे ॥ ५४३७ ॥
एतारिसं विओसअ, विप्यवासो न कप्पई ।
सीस-पिडल्ङा-ऽऽयरिए, पायिल्ङनं विहिजई ॥ ५४३८ ॥
विदयपदमसंविग्गे, संविग्गे चेव कारणाते ।
नाज्ज तस्समावं, होइ उ गमणं अणापुल्ङा ॥ ५४३९ ॥
गाआचत्रहयमेषि गतार्थेष् (गा० ५३९८-५४०१) ॥ ५४३६ ॥ ५४३६ ॥

॥ ५४३८ ॥ ५४३९ ॥ गतं दर्शनार्थं गमनम् । अथ चारित्रार्थमाह-

15 चरित्तद्व देसें दुविहा, एसणदोसा य इत्थिदोसा य । गच्छिम्म य सीयंते, आयसम्रुत्थेहिं दोसेहिं ॥ ५४४० ॥

चारित्रार्थं गमनं द्विषा—देशदीर्थेगस्तसमुख्यदीषेद्या देशदीषा द्वित्रिषाः—एषणादोषाः स्रोदीषाद्या । आत्मसमुख्या अपि द्विषा—गुरुदोषा गच्छरोषाद्या । तत्र गच्छो यदि 'आत्मस-मुद्धाः' चक्रबालसामाचारीवितयकरणल्याणैदींषेः सीदेत् तत्र पश्चमापुच्छत्रास्ते, तत उद्ध्वं २० गच्छीत ॥ ५४४० ॥ इदमेव व्याचि

जिह्ने एसणदोसा, पुरकम्माई ण तत्थ गंतव्वं । उदमपउरो व देसो, जिह्नं व चरिगाइसंकिण्णो ॥ ५४४१ ॥

यत्र देशे पुरःकारिय प्रणादीषा भवेषुः तत्र न गन्तव्यम् । यो वा उदकप्रसुरो देशः सिन्धुविषयवय् यो वा चरिकादिभिः-परिवाजिका-कापालिकी-तवनिकादिभिकंदुमीहाभिरा-25 कीणो विषयस्त्रमिष् न गुन्तव्यम् ॥५४४१॥ अथाशिबादिभिः कारणैस्त्रव गता भवेषुस्ततः—

असिवाईहिं गता पुण, तकक्षसमाणिया तथी णिति । आयरियमर्णिते पुण, आपुष्टिङ अप्पणा फिति ॥ ५४४२ ॥ अक्षिय-दुर्भिक्ष-परककादिभिः कारणेखत्र गता अपि "तकक्षसमणिय" ति प्राकृते पूर्वोपर-निपातस्वातक्षस्वात् समापिततस्कार्याः, संयमक्षेत्रे यदाऽश्विवादीनि स्किटिवानि भक्नतीति भावः,

१ भिष बानदारे व्यास्थातार्षमिति नेह सूची जास्थायसे ॥५५३६-३७-३८-३८-४०॥ गतं वं। । २ आ । गुरुरोपाः-गुरोकारिक शिबिलीभवनाविकक्षकाः, गच्छरोपाः-गच्छस्य समानवार्षे प्रमतीभवनारिकराः । तत्र राच्छो वं०॥ ३ च्छिति । गुरोस्यु सीहतो विविद्योजियासस्य ॥५५४०॥ इत् कं०॥

20

30

तदा 'तता' असंयमक्षेत्राद् 'निर्यन्ति' निर्गच्छन्ति । यद्याचार्याः केनापि प्रतिचन्त्रेन सीदन्तो न निर्गच्छेयुः ततो ये एको द्वौ बहवोऽसीदन्तत्ते गुरुमाष्ट्रच्छ्य आस्पना निर्गच्छन्ति ॥५४४२॥ तत्र चायं विचिः—

दो मार्से एसणाए, इतिय वजेज अह दिवसाई।

गच्छिमम होइ पक्लो, आयसग्रुत्थेगदिवसं तु ॥ ५४४३ ॥

एषणायामशुख्यमानायां यतनयाऽनेषणीयमपि गृहन् हो मासी गुरुमाष्ट्रच्छन् मतीक्षते । अथ स्नी-अस्यातरीमभृतिका उपसर्गयति आत्मनश्च ददं चित्तं ततीऽष्टी दिवसान् गुरुमाष्ट्रच्छ्य ततसत् क्षेत्रं वर्षयेत् । यत्र च गच्छः सीदिति तत्र पक्षमाष्ट्रच्छ्य गन्तव्यम् । अथ स्नियां स्वयमच्युपपनस्ततः ईदहो आत्मसमुखे आगाढदोषे एकदिवसमाष्ट्रच्छ्य गच्छति ॥ ५४६६ ॥'

सेआयरिमाइ सएज्झए व आउत्थ दोस उभए वा । आपुच्छइ समिहियं, सण्णाइगतं व तत्तो उ ॥ ५४४४ ॥

अथासना श्रच्यातयाँदों सियां 'सिन्झिकायां वा' प्रातिवेश्मिक्यामतीबाध्युपपन्नः, 'उभयं वा' परस्परमध्युपपन्नं ततो यद्याचार्यः सिन्निहितस्तदा तमाधुच्छ्य गच्छिति । अथासिन्निहितः संज्ञाभूम्यादो गत आचार्यस्तदा तत एवानाधुच्छ्या गच्छिति, अपरं वा सिन्निहितसाधुं भणिति— मम वचनेन गुरूणामाप्रच्छनं निवेदनीयम् ॥ ५४४४॥ ॥

एयविहिमागर्यं त्, पडिच्छ अपडिच्छणे भने रुहुगा । अहवा हमेहिं आगय, एगागि(दि) पडिच्छणे गुरुगा ॥ ५४४५ ॥ एगे अपरिणए या, अप्पाहारे य थेरए । गिरुणो बहुरोगी य पंदुक्ते य पाहुडे ॥ ५४४६ ॥ एयारिसं विओसअ, विप्यतासो ण कप्पई ॥ ५४४० ॥ सीम-पडिच्छा-ऽऽयरिष्ट, पायच्छितं विदिक्तई ॥ ५४४० ॥

गाधात्रयसि गतार्थम् (गा० ५३९८-५४००) ॥ ५४४५ ॥ ५४४६ ॥ ५४४७ ॥ भवेत् कारणं येन न पृच्छेत्---

> बिइयपदमसंविग्ने, संविग्ने चेव कारणागाढे । नाऊण तस्स भावं, अप्पर्णो भावं अणापुच्छा ॥ ५४४८ ॥

द्वितीयपदमजोच्यते—आचार्यादिसंवितमे भवेत, स्वथंत संत्रिकः परम् अहिरद्यादिकः मागादकारणमवरूच्य न प्रच्छेत, 'तस्य बा' गुरीः 'माबं' 'धुचिरणापि न विसर्वयति' इति रूक्षणं जात्वा, आत्मीयं च 'भावम्' 'अह्विह तिष्ठलवस्यं वितस्यामि' इति ज्ञात्वाऽनाप्रच्छया-ऽपि मजेत्॥ ५४४८ ॥ अत्र गुरोः चारित्रे सीदतो विधिमाह—

सेजायरकप्पट्टी, चरिचठवणाएँ अभिगया खरिया । सारूविओ गिहत्यो, सो वि उवाएण हायब्वो ॥ ५४४९ ॥

१ इदमेबान्स्यपदं भाषयति इत्वन्तरणं को ॥ २ °क्शमात्मसमुद्रधदोषयान् जातः, स्वयमिव तस्यामञ्जुपपक इत्यर्थः, 'अभवं' को ॥ इत्र

20

25

श्राध्यातस्य कैल्पसिकायां आचार्येण चारित्रस्य स्थापना कृता, तां प्रतिसेवैत इति भावः, तस्यां चारित्रस्यापनायां आतायाम्, द्यक्षरिका वा काचिद् 'अभिगता' जीवाधिपनापेषेता आविक्तययांः तस्यामाचार्योऽप्युएपकः, स च चारित्रवर्षितो वेषपार्यी भनेवः, साह्यपिको या गृहस्यो वा उपक्रशणत्वात् सिद्धपुत्रको वा । तत्र प्रतिकृतिशताः शुक्रवातःपरिधायी कच्छामव० भ्रानोऽप्रायेको सिक्षां हिण्डमानः साह्यपिक उच्यते । यस्तु सुण्डः सिक्षाको वा समार्थिकः स्व सिद्धपुत्रकः । एवर्षेणमन्यतर उपयिन हर्तव्यः । कथस् १ इति चेत् उच्यते—पूर्व तावद् प्रत्वे भण्यन्ते—वयं युय्पद्विरहिता अनाथा अतः प्रसीद गच्छामोऽपरं क्षेत्रम् । एवस्क यदि नेच्छन्ति ततो यस्यां स प्रतिबद्धः सा प्रज्ञाप्यते—एव बहूनां साधूनामाथारः, एतेन विना गच्छस्य ज्ञानादीनां परिहाणिः, अतो मा नरकादिकं संसारमात्रमनो वर्षय । यदि सा । 10स्याता ततः गुन्दरम् । जश्च न तिष्ठति ततो विद्या-मन्नादिभिरावर्लते । तदमावे केवयिका अपि तस्या दीयन्ते, गुरुख्य पूर्वक्रमेण रात्रौ हर्तव्यः। एवं तावद् निश्चमन्नीकृत्य विभिरुक्तः॥ १९४९॥ सत्रम्

गणावच्छेइए य गणादवक्रम्म इच्छेजा अण्णं गणं उवसंपिज्ज्ञाणं विहरित्तप्, कप्पति गणावच्छेइयस्स गणावच्छेइयत्तं णिक्खिवित्ता अण्णं गणं उवसंप-जित्ताणं विहरित्तप्। णो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव अन्नं गणं उपसंपिज्ज्ञ्ञाणं विह-रित्तप्; कप्पइ से आउच्छित्ता आयरियं वा जाव विहरित्तप्। ते य से वितरंति एवं से कप्पइ जाव विहरित्तप्; ते य से णो वितरंति एवं से णो कप्पइ जाव विहरित्तप् २१॥

आयरिय-उवज्झाए य गणाओ अवकस्म इच्छेजा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, कप्पइ आय-रिय-उवज्झायस्स आयरिय-उवज्झायत्तं णिक्खिवित्ता अण्णं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए। णो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव अन्नं गणं उवसं-पज्जिताणं विहरित्तए; कप्पति से आपुच्छिता जाव

१ 'कस्पस्थिकायां' दुष्टितरि आचा' कां०॥ २ 'वमानेन चारित्रं तटे स्थापितमिति भाषः, कां०॥ ३ एतरनन्तरं प्रन्थाग्रम्—३५०० इति कां०॥

विहरित्तए। ते य से वितरंति एवं से कप्पति अन्नं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए; ते य से णो वियरंति एवं से णो कप्पति अन्नं गणं उवसंप-जित्ताणं विहरित्तए २२॥

अस्य २,त्रद्भयस्य व्यास्या पावत् । नवरम्—गणावच्छेदिकत्वमाचार्योगध्यायत्वं च निक्षिप्य ६ गन्तव्यभिति विशेषः ॥ अथ भाष्यम्—

> एमेव गणावच्छे, गणि-आयरिए वि होह एमेव । नवरं प्रण नाणत्तं, ते नियमा इति वत्ता उ ॥ ५४५० ॥

'एनमेन' मिक्षुवर् गणावन्छेदिकस्य ज्ञान-दर्शन-चारित्रार्थमस्य गणं गच्छतो विधिर्द्रष्टच्यः। गणिनः-उपाध्यायस्याचार्यस्य चैवमेन विधिः। नवरं पुनिरदं नानाश्वम्—नियमात् 'ते' 10 गणावच्छेदिकादयो स्वका एव भवन्ति नास्यकौः॥ ५९५०॥

> एसेव गमी नियमा, निग्गंथीणं पि होइ नायव्वी । नाणद्र जो उ नेई, सचित्त ण अप्पिणे जाव ॥ ५४५१ ॥

'एप एव' भिक्षसूत्रीको गमो निर्भ्रत्यीनामप्यपरं गणसुपसम्पद्यमानानां ज्ञातव्यः । नव-रम्—नियमेनैव ताः ससहायाः । यः पुनः ज्ञानार्थं ता आर्थिका नयति स यावदद्यापि न 18 वाचनाचार्थस्यार्थयति तावत् सचित्तादिकं तत्यैवाभवति । अर्थितासु पुनर्वाचनाचार्यस्याभाव्यम् ॥ ५४५ १ ॥ कः पनस्ता नयति ह इत्याहः—

> पंचण्हं एगयरे, उग्गहवजं तु लभित सचित्तं । आपुच्छ अहु पक्ले, इत्थीसत्येण संविग्गो ॥ ५४५२ ॥

'पञ्चानाथ्' आचार्योपाध्याय-प्रवर्तक-स्वविर-गणावच्छेदकानामेकतरः संवतिनियति । तत्र 20 सिविचादिकं परक्षेत्रावमहवर्जं स एव उमते । तिर्मर्त्या च ज्ञानार्थं मजनती अद्यो पक्षानाष्ट-च्छित—तत्राचार्यकेकं पक्षमाष्टच्छित, यदि न विसर्जयति तत उपाध्यायं पृषमं गच्छं चैव-मेव पृच्छिति; संवतीवर्गेऽपि प्रवर्तिनी-गणावच्छेदिका-ऽभिषका-रोपसाध्यीयंबाकममेकैकं पक्ष-माष्ट्चछित । ताश्च स्नीसार्थन समं संविमेन परिणतवयसा साधुना नेतन्याः ॥ ५४५२ ॥

सूत्रम्---

25

भिक्स्तू य गणाओ अवक्षम्म इच्छेजा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छिता आयरियं वा जाव अन्नं गणं संभोगवडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए; कप्पइ

१ °क्ताः, ततो योऽव्यक्तस्य विधिष्कः सोऽत्र न भवतीति भावः ॥ कां० ॥

स आपुष्टिसा आयरियं था जाव विहरित्तए । ते य से वियरंति एवं से कप्पइ जाव विहरित्तए; ते य से तो वियरेजा एवं से नो कप्पइ जाव विहरि-त्तए । जत्थुत्तरियं धम्मविणयं छभेजा एवं से कप्पइ अझं गणं संभोगपिडियाए उवसंपिजित्ताणं विहरि-त्तए; जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो छभेजा एवं से नो कप्पड अझं गणं जाव विहरित्तए २३॥

अस्स ध्यास्त्या प्राग्तत् । नवरम् —सम्मोगः-एकमण्डस्यां समुद्देशनादिरूपः तत्मत्ययं — तन्निमिष्तप् । ''जल्युचरियं'' इत्यादि, 'यत्र' गच्छे उत्तरं-प्रधानतरं 'धर्मविनयं' सारणा-10 बारणादिरूपां धार्मिकी शिक्षां छमेत एवं ''से'' तस्य करपते अन्यं गणगुपसम्पद्य विहर्तुम् । यत्रीचरं धर्मविनयं नो छमेत एवं ''से'' तस्य नो कस्पते उपसम्पद्य विहर्तुमिति सूत्रार्थः॥ अथ माध्यस्

> संमोगो वि हु तिहिँ कारणेहिँ नाणह दंसण चरिते । संक्रमणे चडमंगो, पढमो गच्छिम्म सीयंते ॥ ५४५३ ॥

16 सम्भोगोऽपि त्रिभिः कारणैरिय्यते । तयथा—ज्ञानार्थं दर्शनार्थं चारित्रार्थं च । तत्र ज्ञानार्थं दर्शनार्थं वा यस्योपसम्यदं प्रतिपक्षत्तिस्मन् स्त्रार्थदानादो सीदित गणान्तरसङ्कमणे स एव विचित्रं पूर्तेसूत्रे भणितः । चारित्रार्थं तु यस्योपसम्यत्तप्तत्र चरण-करणिकयायां सीदित चाउभी भवति—गण्डाः सीदित नाचार्यः १ आचार्यः सीदित न गण्डाः २ गण्डाऽप्याचा-याँऽपि सीदित द न गण्डा । त्राप्याचार्यं ४ हैति । अत्र प्रथमो भङ्गो गण्डे सीदित मनतव्यः । अत्र च प्रकृणा स्वयं वा गण्डस्य नीदना कर्तव्या ॥ ५४५६ ॥

कथं प्रनः स गच्छः सीदेत ! इत्याह---

पिंडलेह दियतुअङ्गण, निक्लिब आदाण विणय सङ्झाए। आलोग-ठबण-भत्तद्र-भास-पडल-सेझातराईस ॥ ५४५४॥

ते गच्छसापवः प्रख्येषणां काले न कुर्वन्ति, न्यूना-ऽतिरिक्तादिरोपैविषयोसेन वा प्रखु20 पेक्षन्ते. गुरु-म्लानादीनां वा न प्रखुपेक्षन्ते । निष्कारणे दिवा त्वावर्तयन्ति । दण्डकादिकं
निक्षियन्त आददतो वा न प्रखुपेक्षन्ते, न वा प्रमाजेयन्ति, दुष्प्रसुपेक्षितं दुष्प्रमाजितं
वा कुर्वन्ति । यथाई विनयं न प्रयुक्तते । स्वाध्याये—सूत्रशैल्पीसर्थपीरुलां वा न कुर्वन्ति,
अकालेऽस्वाध्याये वा कुर्वन्ति । पाक्षिकादिषु आलोचनां न प्रयच्छन्ति, अथवा 'आलोय'
वि ''ठाणदिसियपासणया' (ओषनि गा० ५६३) हत्यादिकं सप्तविषमालोकं न प्रयुक्तते,

१ इति । चतुर्थो अङ्गः शुद्ध एच । आधेषु त्रिषु भन्नेषु विधिरस्थते—तत्र प्रथमो कां ॥

सङ्कर्षा वा आळोकन्ते । स्वापनाकुळानि न स्वापयन्ति । 'भकार्ष' मण्डक्यां सङ्घरेषनं न कुर्वन्ति । गृहस्वभाषामिशीयन्ते, सावयं वा भाषन्ते । पटलकेषु आनीतं अञ्जते । शब्या-तरपिण्डं भुजते । आदिमहणेन उद्गमाषगुद्धं गृहन्ति ॥ ५४५४ ॥

प्तेषु गच्छस्य सीदतो विधिमाह-

चोयावेइ य गुरुणा, विसीयमाणं गणं सयं वा वि । आयरियं सीयंतं, सयं गणेणं च चोयावे ॥ ५४५५ ॥

प्रथमभन्ने सामाचार्या विषीदन्तं गच्छं गुरुणा नोदयति, श्रथवा खयमेव नोदयति । द्विती-यभन्ने आचार्यं सीदन्तं खयं वा गणेन वा नोदयति ॥ ५४५५ ॥

दुन्नि वि विसीयमाणे, सयं व जे वा तर्हि न सीयंति।

ठाणं ठाणाऽऽसस ज, अणुलोमाईहिं चोष्टति ॥ ५४५६ ॥ वृतीयमहे गच्छा-ऽऽवार्थी द्वावीर सीदन्ती स्वयंक नोदयति, ये वा तत्र न सीदन्ति तैनींदयति, किं बहुना : स्थानं स्थानम् 'आसाथ' प्राप्यानुलेमादिभिवेचीर्भोदेवति । किष्ठकं भवति :— आचार्यापाय्यादिकं सिञ्च क्षुत्कादिकं वा पुरुषक्तु ज्ञाला स्था यादिकं नीदन्ता योग्या यो वा सरसाध्यो मुद्दास्यः कृरोऽकृते वा यथा नोदनो प्रहाति ते तथा नोदनेत् ॥५१५६॥

भणमाणें भणाविते, अयाणमाणिम्म पक्सों उक्षोसो । ठआएं पच तिक्षि व, तुह किं ति व परिणय विवेगो ॥ ५४५७ ॥ गच्छमाचार्यसभ्यं वा सीदन्तं स्वयं भणन् अन्येक्ष भाणयलासे । यत्र न जानाति एते भण्यमाना अपि नोयमं करिप्यन्ति तल्रोत्कर्षतः पक्षमेकं तिष्ठति । गुरुं पुनः सीदन्तं क्रज्या गीरवेण वा जानलि पक्ष त्रीन् वा दिवसानभणलि शुद्धः । अय नोयमानो गच्छो गुरुरु-मयं वा भणेत्—तत्व किं दुःस्वयति । यदि वयं सीदामहाहि वयमेव दुर्गेति गिमिष्यामः । 140 एविचे भावे तेपां परिणते तेपां 'विवेकः' परित्यागो विभेषः । तत्रक्षान्यं गणं सङ्कामति । तत्र जन्तर्भित्ते —संविमः संविमं गणं सङ्कामति । तत्र जन्तर्भित्ते —संविमः संविमं गणं सङ्कामति १ सीवमोऽसंविमम् २ असंविमः संविमं स्वाप्ते भावे अस्तिवमं स्वाप्ते स्वाप्ते स्वाप्ते स्वाप्ते स्वाप्ति स्वाप्ति स्वाप्ति स्वाप्ते स्वाप्ति स्वाप्ते स्वाप्ति स्वाप्ते स्वाप्ति स्वापति स्वाप्ति स्वाप्ति

संविग्गविद्याराओ, संविग्गा दुखि एज अक्यरे ।
आलोइयिम सुद्धो, तिविद्योविद्यमगणा नविर्षे ॥ ५६५८ ॥
संविग्गविद्याद् गच्छात् संविग्गे ही 'क्य्यतों' गीवार्थ-उत्ताव्यों संविग्ने गच्छे समागच्छेताय्, स व गीवार्थांऽनीवार्थ वा वते दिवसात् संविग्नेय्यः स्क्रिटतः तिद्देनावास्थ्य
स्क्रीय्याजीव्यति, आलोविते च शुद्धः । नवस्य--- त्रिविशेष्ये--यश्रक्कताय् ॥ स्कृतिव्या ॥ ५६९८ ॥ इतसेव व्यावर्धे --

गीयमगीतो गीते, अप्पडिबद्धे न होइ उबबातो । 50 अविगीयस्स वि एवं, जेण सुता ओइनिजुत्ती ॥ ५४५९ ॥ स संविमो गीतार्थो वा स्यवरातिर्था वा । यदि गीतार्थो बनिकादिव व्यवतिबद्ध वायातः

१ अथ त्रिष्वपि भन्नेषु साधारणं विधिमाह इत्यवतरणं को॰ ॥

30

तत उपघेरुपधातो न भवति, न मायश्चितम् । 'अविगीतस्य' अगीतार्थरसापि येन जघन्यत ओघनिर्युक्तिः श्रुता तस्यापि 'एवमेव' अप्रतिबध्यमानस्य नोपषिरुपदृन्यते ॥ '२८५९ ॥'

गीयाण विमिस्साण व, दुण्ह वयंताण वहयमाईसु । पहिबज्जनाणं पि ह. उर्वहि ण हम्मे ण वाऽऽहवणा ॥ ५४६० ॥

(द्वयोः' गीतार्थयोगीतार्थविमिश्रयोधी श्रेजतोशिकशदिषु मितक्यमानयोरप्पुपिभोण्हत्यते, न वा (आरोपणा' प्रायक्षितं भवति । एवमेकोऽनेके वा विधिना सनागता बत्तभृति गणाद् निर्गतास्तत आरम्यालोचनां दवति ॥ ५८६० ॥ अथ त्रिविधोषधिमार्गणामाह—

> आगंतुमहागडयं, वत्थव्वअहाकडस्स असईए । मेलिति मन्त्रिमेहिं. मा गारवकारणमगीए ॥ ५४६१ ॥

10 तस्य गीतार्थस्यागीतार्थस्य वा त्रिविध उपधिभैवेत् । तयथा—यथाक्वतोऽरूपपिकर्मा सपिर-कर्मा च । वास्त्रय्यानामध्येवमेव त्रिविध उपधिभैवति । तत्र यथाक्वते यथाक्वतेन सह मीत्यते, अरुपपिकर्मा अरुपपिकर्मा अरुपपिकर्मा अरुपपिकर्मा अरुपपिकर्मा अरुपपिकर्मा अर्थान्त्रकर्मा । अथ वास्त्रव्यानां यथाक्वते नाति तत् त्रागन्तुकर्म्य यथाक्वतं वास्त्रयमध्यमै:—अरुपपिकर्मामः सह मीलयित । किं कारणम् १ इति चेद् अत आह—मा सोऽमीलितः सत्त्रगीतार्थस्य 'मदीय उपधिरुप्तमसम्भोगिकोऽतोऽह-16मेव सुत्रस्यः इत्येवं नौरवकारणं भवेदिति ॥ ५६१ ॥

गीयर्थे ण मेलिजइ, जो पुण गीओ वि गारवं कुणइ। तस्सवही मेलिजइ, अहिकरण अपचओ इहरा॥ ५४६२॥

गीतार्थों यदि अगीरवी ततस्वदीयो यथाकृतः प्रतिम्रहो वास्तन्ययथाकृताभावेऽरूपग्रिकर्मभः सह न मीरुयते किन्तु उत्तमसम्भोगिकः क्रियते । यस्तु गीतार्थोऽपि गीरवं करोति तस्य यथा20 कृतो वास्तव्यारपपरिकर्मभिः सह मीरुयते । क्षि कारणम् १ इति चेद् अत आह— "इहर" चि यदि यथाकृतपरिमोगेन परिभुज्यते तदा केनाय्यज्ञानना अरुपपरिकर्मणा समं मेलितं हद्दा स गीतार्थाः 'अधिकरणप्' असङ्ग्रहं कृषीन्, किमर्थं मदीय उत्कृष्टोपधिरद्युद्धेन सह मीलितः ! इति । अत्रस्यो वा शेक्षणां भवेत्, अयमेतेषां सकाशादुष्यततरिवहारी चेनोपिधमुत्कृष्टपरि-भोगेन परिसुद्धे, एते द्व हीनतरा इति ॥ ५७६२ ॥

एवं खलु संविग्गे, संविग्गे संक्रमं करेमाणे । संविग्गमसंविग्गे, असंविग्गे यावि संविग्गे ॥ ५५६३ ॥

एवं खलु संविमस्य संविमेषु सङ्कर्म कुर्वाणस्य विधिरुक्तः । अत्र संविमस्यासंविमेषु सङ्का-मतोऽसंविमस्य वा संविमेषु सङ्कामतो विधिरुच्यते ॥ ५४६३ ॥

तत्र संविग्नस्यासंविग्नसङ्गमणे तावदिमे दोषाः---

सीहगुहं वग्वगुहं, उदिहं व पिलत्तगं व जो पिवसे । असिवं ओमोयरियं, धुवं सें अप्पा परिचत्तो ॥ ५४६४ ॥

१ पत्रमेकाकिनो विधिरुक्तः। अथ द्वयोर्जनयोर्विधिमाह इलवतरणं कां० ॥ २ 'वजनोः' संविद्यं गणं समागच्छतोर्वजि° कां० ॥

सिंहगुद्दां व्याव्रगुद्दां 'उर्दार्ष वा' ससुद्रं प्रदीप्तं वा नगरादिकं यः प्रविश्वति, अशिवमव-मौदर्यं वा यत्र देशे तत्र यः प्रविश्चति तेन ध्रुवमात्मा परित्यक्तः ॥ ५४६४ ॥

## चरण-करणप्पहीणे, पासत्थे जो उ पविसए समणो ।

जतमाणए पजहिउं, सो ठाणे परिचयह तिण्णि ॥ ५४६५ ॥

एवं सिंहगुहादिखानीत्रेषु चरण-करणग्रहीणेषु पार्श्वखेषु यः श्रमणः 'वतमानान्' संविमान् 5 'महाय' परित्यज्य प्रविशति स मन्दधर्मा 'त्रीणि खानानि' ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपाणि परित्य-जति । अपि च—सिंहगुहादिप्रवेशे एकमविकं मरणं प्राप्तोति, पार्श्वखेषु पुनः प्रविशक्ते-कानि मरणानि प्राप्तोति ॥ ५१६५ ॥

## एमेव अहाछंदे, कुसील-ओसन्न-नीय-संसत्ते ।

जं तिकि परिवर्षः, नाणं तह दंसण चरितं ॥ ५४६६ ॥ 10 'एवमेव' पार्श्वस्वद् यथाच्छन्देषु कुशीला-उसक्त-नित्यवासि-संसक्तेषु च प्रविशेतो मन्त-व्यम् । यच त्रीणि स्थानानि परित्यवतीत्पुक्तं तद् ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेति द्रष्टव्यम् ॥ ५४६६ ॥ गतो द्वितीयमञ्जः । अथ जृतीयमञ्जमाह—

पंचण्हं एगयरे, संविग्गे संकमं करेमाणे।

आलोइए विवेगी, दोमु असंविग्गें सच्छंदी ॥ ५४६७ ॥

पार्श्वस्था-ऽवसन-कुशील-संसक्त-यथाच्छन्दानामेकतरः संविभेषु सङ्गमं कुवैन् प्रथममाछीचनां ददाति, तत आकोचितेऽविद्युद्धेपधेवैवेकं करोति । स च यदि चारित्रार्थेष्ठप्रसम्पद्यते ततः प्रतीच्छनीयः । यस्तु 'द्वयोः' ज्ञान-दर्शनयोश्योग्यस्थिम उपसम्पद्यते तत्वः 'क्लच्छन्दः' स्वामिन्नायः, नासौ प्रतीच्छनीय इति भावः । अथवा ''दोष्ठ असंविग्ने'' ति 'असंविमोऽस्विभेष्ठ सङ्गानिते' इति क्रपे द्विचाऽन्यसंविभे चतुर्थभेन्ने 'क्लच्छन्दः' लेच्छा, अवस्तुभृतत्वाद् 20 न कोऽपि तत्र विधिरिति भावः ॥ '५४६७ ॥"

पंचेगतरे गीए, आरुभियवते जयंतए तम्मि ।

जं उवहिं उप्पाप, संभोइत सेसम्रज्यांति ॥ ५४६८ ॥

तेषां पद्मानां—पार्श्वस्थादीनामेकतर आगच्छन् यदि गीतार्थस्ततः स्वयमेव महाम्रतान्युक्वार्था-रोपितम्रतो यतमानः—मिजकादावप्रतिबध्यमानो मार्गे यगुपिश्वरुपादयति स साम्मोगिकः, 25 ''सेससुज्झंति'' ति यः प्राक्तनः पार्श्वस्थोपिशरगुद्धस्तं परिष्ठापयन्ति । यः पुनरगीतार्थस्तस्य मतानि गुरवः प्रयच्छन्ति, उपिथ्य तस्य चिरन्तनोऽभिनवोत्पादितो वा सर्वोऽपि परित्यज्यते ॥ ५१६८ ॥ तेषु चायमाकोचनाविधिः—

पासत्थाईम्रंडिऍ, आलोयण होइ दिनखपभिइं तु । संविग्गपुराणे पुण, जप्पभिई चेव ओसण्णो ॥ ५४६९ ॥

१ पर्व पार्श्वस्थेषु सङ्कामतो भणितम् । अथ यथाच्छन्दादिषु सङ्कामत इदमेवातिदि-शकाह स्वस्तरणं कां ।। २ 'शतो दोपजालं च विशेषतरं मन्त' कां ।। ३ तृतीयभङ्ग पव विधिशेषमाह इत्यनरणं कां ।।

15

20

25

कः पार्श्वसादिभिरेव द्वण्डितः-प्रशानितत्तस्य दीक्षादिनादारम्य आलेचना भवति । यस्तु पूर्वं संविग्नः पश्चाद् पार्श्वस्यो जातैः तस्य संविग्नपुराणस्य यसमृति अवसन्नो जातस्त्रहिनादारम्या-ऽऽकोचना भवति ॥ ५४६९ ॥

#### सूत्रम्---

गणावच्छेडए य गणादवक्रम्म इच्छेजा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए. णो से क-प्पति गणावच्छेइयत्तं अणिक्खिवता संभोगपडियाए जाव विहरित्तए: कप्पति से गणावच्छेडअत्तं णिक्खिः वित्ता जाव विहरित्तए । णो से कप्पड़ अणापुच्छिता आयरियं वा जाव विहरित्तए: कप्पति से आप-च्छिता आयरियं वा जाव विहरित्तए। ते य से वितरंति एवं से कप्पड अन्नं गणं संभोगपडियाए जाव विहरित्तए: ते य से नो वितरंति एवं से णो कप्पइ जाव विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं लभेजा एवं से कप्पति अन्नं गणं सं० जाव विहरि-त्रपः; जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो लभेजा एवं से णो कप्पति जाव विहरित्तए २४॥ आयरिय-उवज्झाए य गणादवक्कमम इच्छेजा असं गणं संभोगपडियाए जाव विहरित्तए, णो से कप्पति आयरिय-उवज्झायत्तं अणिक्खिवित्ता अण्णं गणं सं० जाव विहरित्तए: कप्पति से आयरिय-उवज्ञा-यत्तं णिक्खिवित्ता जाव विहरित्तए । णो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव विहरित्तए; कप्पति से आपुष्किता आयरियं वा जाव विहरित्तए। ते य से वितरंति एवं से कप्पति जाव विहरित्तए:

१ 'तः स पुराणक्षंत्रिपः, गाथायां व्यत्यासेन पूर्वापरनिपातः प्राकृतत्वात्, तस्य यस्प्र<sup>°</sup> कां ।।

15

20

ते य से णो वितरंति एवं से णो कप्पति जाव विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं छभेजा एवं से कप्पइ जाव विहरित्तए; जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो छभेजा एवं से णो कप्पति जाव विहरित्तए २५॥

अस्य सुत्रद्वयस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ अथ भाष्यम्---

एमेव गणावच्छे, गणि-आयरिए वि होइ एमेव । णवरं पुण णाणत्तं, एते नियमेण गीया उ ॥ ५४७० ॥

एवमेव गणावच्छेदिकस्य तथा गणिनः-उपाध्यायस्याचार्यस्य च सूत्रं मन्तस्यम् । नवरं पुनरत्र नानास्वम्--- एते नियमतो गीतार्था भवन्ति नागीतर्थाः ॥ ५४७० ॥

सूत्रम्--

भिक्षत् य इच्छिजा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए। ते य से वियरिजा एवं से कप्पइ अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; ते य से नो वियरेजा एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; ते य से नो वियरेजा एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पति से तेसिं कारणं अदीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पति से तेसिं कारणं दीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पति से तेसिं कारणं दीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पति से तेसिं कारणं दीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए २६॥

सस्य व्याख्या प्राग्वत् । नवरम् — अन्यम् 'आचार्योगाध्यायप्रदेशिवतुम्' आचार्यश्चोणा-ध्यायश्चाचार्योगाध्यायम् , समाहारद्वन्द्वः, यद्वा आचार्ययुक्त उपाध्याय आचार्योगाध्यायः, शाकपार्थिववद् मध्यपदलोपी समासः, आचार्योगाध्यायातित्यशः, तावन्याबुदेशिक्तुमारमन १० इन्छेत् । ततो नो करुपते अनाष्ट्रच्छपाचार्ये वा यावद् गणावच्छेदिकं वा हत्यादि प्राग्वद् इष्टव्यस् । तथा न करुपते 'तेषाय्' आचार्यादीना कारणम् 'अदीषिवता' कानियेश अन्यका-

2)

25

चार्योषाध्यायम् 'उद्देशयितुम्' आत्मनो गुरुतया व्यवस्थापयितुम् । < कारणं दीपयिश्वा तु करुपते । ⊳ एष सुत्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्—

सुत्तिम कड्डियम्मी, आयरि-उज्झाय उदिसाविति । तिण्डटक उहिसिजा, णाणे तह दंसण चरित्ते ॥ ५४७१ ॥

तिण्ड-२६ उद्दासका, जाज वह देवण पारंप । २००८ ॥ 5 'सूत्रे' सूत्रार्थे 'आकृष्टे' उक्ते सति निर्युक्तिदिस्तर उच्यते—आचार्योपाध्यायमभिनद-सुद्देशक्तृ त्रयाणामधोयोद्दिरोत् । तदाथा—ज्ञानार्थं दर्शनार्थं चारित्रार्थं चेति ॥ ५४७९ ॥ ं

नाणे महकप्पसुतं, सिस्सत्ता केइ उनगए देयं ।

तस्तऽद्व उद्दिसिजा, सा खलु सेच्छा ण जिणआणा ॥ ५४७२ ॥ जाने तावदिभिधीयते —केपश्चिदाचार्याणां कुछे गणे या महाकरपश्चतमस्ति, तैश्च गण- १० संस्थितः कृता —योऽस्याकं शिष्यतयोधाराच्छति तस्येव महाकरपश्चतं यदं नात्यस्य । तत्र चोत्तर्सतिकं तोपस्पप्तवय्यम्, यदि अन्यत्र नास्ति तदा 'तस्य' महाकरपश्चतस्यार्थय तान्यस्य । सुधिद्वतेत्, उद्दिश्य चार्थाते तसित् पूर्वाचार्यणामेवान्तिकं रच्छेतः, न तत्र तिक्केत् । कुतः ! इत्याहन्तेत्, उद्दिश्य चार्थाते तसित् पूर्वाचार्यणामेवान्तिकं रच्छेतः, न तत्र तिक्केत् । कुतः ! इत्याहन्तेत् । स्वाहन्तेत् विक्कार्यः न हित्ते विक्कार्यः न स्वित्व स्वाहन्तिकं प्रकारम् न स्वाहन्तिकं स्वाहन्तिकं प्रकारम् ।

तयोपगतस्य श्रुतं दातन्यमिति ॥ ५४७२ ॥ अथ दर्शनार्थमाह — विजा-मंत-निमित्ते. हेऊसत्थद्व दंसणदाए ।

चरित्तहा पुरुवगमो, अहव इमे हुंति आएसा ॥ ५४७३ ॥ विद्या-मन्त्र-निमित्तार्थ 'हेतुकालाणां च' गोविन्दनिर्मुत्तिममृतीनामर्थाय यद अन्य आचार्य

विद्यानसम्पर्धानिमार्थ 'हेनुसालाणां च' गोविन्हनिधुक्तिभमृतीनामधोय यद् अन्य आचार्य उद्दिस्यते तद् दर्शनार्थं मन्तर्यं । चारित्रार्थं पुनरुदेशने 'पूर्वः' मागुक्त एव गमो भवति । अथवा तत्रैते 'आदेशाः' मकारा भवन्ति ॥ ५९७३ ॥

आयरिय-उवज्झाए, ओसण्णोहाविते व कालगते।

ओसण्ण छन्त्रिहे खतु, वत्तमवत्तरस मग्गणया ॥ ५४७४ ॥

आचार्य उपाध्यायो वा अवसलः सजातः 'अवधावितो वा' गृहस्थीमृतः कारुगतो वा । यदि अवसलस्ततः पद्दविषो भवेत्—पार्धस्योऽवमग्रः कुशीलः संसक्तो नित्यवासी यथाच्छन्दस्थेति । यश्च तस्य स्निप्य आचार्यपदयोग्यः स व्यक्तोऽव्यक्तो वा भवेत् तत्रेयं मार्गणा ॥ ५२०४ ॥

वत्ते खलु गीयत्थे, अञ्चत्ते वएण अहव अगीयत्थे ।

बित्तच्छ सार पेसण, अहवाऽऽसण्णे सयं गमणं ॥ ५४७५ ॥
अंत्र चत्वारो भक्तः—तत्र वयसा व्यक्तः थोडशवार्षिकः श्रुतेन च व्यक्तो गीतार्थः, एष
प्रथमे भक्तः । वयसा व्यक्तः श्रुतेनाव्यकः, एषोऽर्थतो द्वितीयः । वयसाऽव्यक्तः श्रुतेन व्यक्तः, अयसयेतरात्तीयः । "अव्यते वएण अहव अगीयित्य" ति चतुर्यो भक्तो गृहीतः, स चायम्— 30 वयसाऽप्यव्यक्तः श्रुतेन चाव्यक्त इति १ । अत्र प्रथमे भक्ते द्विषाऽपि व्यक्तस्य 'इच्छा' अन्यमाचार्यभृहिशति वा न वा । यावकोदिशति तावत् तमवसक्तीभृतमाचार्यं दूरकां सार्यिकुं

१ < ▷ एतिव्हान्तर्गतः पाठः भा॰ एन वक्तंत ॥ २ तत्र कानार्थं ताबवाहः इत्यवतरणं कां॰ ॥ ३ वयसा श्रुतेन चाव्यको [व्यको वा] भवतीति अत्र चत्वा॰ कां॰ ॥

साधुसङ्काटकं प्रेषयति । अधासने स आचार्यस्ततः स्वयमेन गस्वा नोदयति ॥ ५४७५ ॥ नोदनायां नैवं कारुपरिमाणम् —

> एगाह पणग पक्से, चउमासे वरिस जस्य वा मिलह । चोएह चोयवेह व, फोर्च्छेतें सर्य त बहावे ॥ ५४७६ ॥

'एकाई नाम' दिने दिने गत्या नोदयति, एकान्तरितं वा । तथा 'पञ्चाह' पञ्चानां दिन-क सानामन्ते, एवं पक्षे चतुर्मासे वर्षान्ते वा 'पत्र वा' समवसरणादौ मिरुति तत्र स्वयमेव नोदयति, अपरैवा स्वयन्छीय-परगच्छीयैनोंदनां कारयति । यदि सर्वधाऽपि नेच्छति ततः स्वयमेव तं गणं वर्तापयति ॥ ५६७६ ॥

उदिसइ व असदिसं, पयावणहा न संगहहाए।

जइ णाम गारवेण वि, सुएज णिच्छे सयं ठाई ॥ ५४७७ ॥ 10 अथवा स उभयव्यक्तः 'अन्यां दिशम्' अपरमाचार्यग्रेदिशति तच तत्यावसत्राचार्यस्य 'भतापनार्थम्' उन्तेजनार्थे न पुनर्गणस्य सङ्ग्रहोपम्रहिनिमेचम् । स च तत्र गत्वा भणति— अहमन्यमाचार्यग्रहिशाभि यदि यूप्रमितः स्थानाद् नोपरमध्ये । ततः स चिन्तयेत् — अहो ! अमी मिर्य जीवत्यि अपरमाचार्यं प्रतिपयन्ते, मुझामि पार्थस्ताम् । यदि नामैवं गौरवेणापि पार्थस्ताम् । स्वतः सुन्दरम्, अथ सर्वया नेच्छन्यपरन्तुं ततः स्वयमेव गच्छापियत्ये तिष्ठति ।ऽ ॥ ५२७७॥ ॥ गतः प्रयमो भक्तः । अथ वित्रीयमाह—

सुअवत्तो वतवत्तो, भणइ गणं ते ण सारितुं सत्तो । सारेहि सगणमेयं, अण्णं व वयामों आयरियं ॥ ५४७८ ॥

यः श्रुतेन व्यक्तो वयसा पुनस्व्यक्तः स स्वयं गच्छं वर्तापवितुनसमर्थः तमाचार्यं भणति — अहमपासवयस्वेन स्वदीयं गणं सारवितुं न शक्तः, अतः सारय स्वगणमेनम् , ष्वदं पुनस्वस्य २० शिप्यो भविष्यामि, अथवा अहमेते वाऽन्यमाचार्यं त्रजामः, उद्दिशाम इत्यर्थः ॥ ५४७८ ॥

> आयरिय-उवज्झार्य, निच्छंते अप्पणा य असमत्थे । तिगसंबच्छरमद्धं, कुरु गण संघे दिसाबंघो ॥ ५४७९ ॥

पवंभणित आचार्य उपाध्यायो वा यदि नेच्छति संयमे स्थातुम्, स चारमना गणं वर्ता-पयितुमसमर्थः, ततः कुरुसस्कमाचार्यद्यपध्यायं वा उद्दिशति । तत्र त्रीणि वर्षाणि तिष्ठति, तं 25 चाचार्ये सारयति । ततः 'त्रयाणां वर्षाणां परतः सचिचादिकं कुरुाचार्यो हरति' इति कृत्वा गणाचार्यद्विहाति । तत्र संवस्तरं स्थित्वा सङ्घाचार्यस्य दिग्बन्यं प्रतिपच 'वर्षार्द्वं' वण्मासान् तत्र तिष्ठति ॥ ५४७९ ॥ कुरुाद् गणं गणाच सङ्घं सङ्कामनाचार्यमिदं भणति—

सिंचतादि हरंती, इलं पि नेच्छामों जं इलं तुब्मं । वचामो अकार्गा, संघं व तुमं जह न ठासि ॥ ५४८० ॥

यत् स्वदीयं कुरूं तदीया आचार्यां असाकं वर्षत्रयादृद्धें सचिचादिकं हरन्ति अतः कुरूमपि नेच्छामः, यदि त्वमिदानीमपि न तिष्ठसि ततो वयं गणं सङ्घं वा त्रजामः ॥ ५४८० ॥

एवं पि अठायंते, ताहे त् अद्भावमे वरिसे।

सबमेव घरेइ गणं, अणुलोमेणं च सारेइ ॥ ५४८१ ॥

एवमद्भंपचमिवेषै: पूर्वाचार्यो नोवनाभि: प्रतापितोऽपि यदि न तिष्ठति तत एतावता कालेन स श्रुतव्यक्ती वयसाऽपि व्यक्तो जात इति कृत्वा खयमेव गणं धारयति । यत्र च पूर्वाचार्ये पुरुवित तत्र अनुरुवेमवचनैदायेव सारयति ॥ ५,४८१ ॥

. अहव जह अत्थि थेरा, सत्ता परियद्विऊण तं गच्छं । दहओवचसरिसगो, तस्स उ गमओ मुणेयच्वो ॥ ५४८२ ॥

अथवा यदि तस्य श्रुतव्वकत्तस्य स्पविराक्तं गच्छं परिवर्तीयतुं शक्ताः सन्ति ततः कुरू-गण-सञ्जेषु नोपतिष्ठते किन्तु स स्वयं सूत्रार्थौ शिष्याणां ददाति, स्वविरास्तु गच्छं परिवर्तै-यन्ति । एवं च द्विधाव्यक्तसद्दशस्य गमो ज्ञातस्यो भवति ॥ ५४८२ ॥

10 गतो द्वितीयभन्नः । अथ तृतीयभन्नमाह-

वत्तवओ उ अगीओ, जह थेरा तत्थ केह गीयत्था। तेसंतिमे पढंतो. चोएड स असड अण्णत्थ ॥ ५४८३ ॥

यो क्यसा व्यक्तः परमगीतार्थः, तस्य च गच्छे यदि केऽपि स्वविरा गीतार्थाः सन्ति ततः 'तेषा' स्वविराणामन्तिके पटन् गच्छमपि परिवर्तयति, अवसन्नाचार्यं चान्तराऽन्तरा नीर्-१० वति । तेषां गीतार्थस्विराणाममावे गणं गृहीत्वाऽन्यत्रोपसम्पयते ॥ ५४८३ ॥

गतस्त्रतीयो भक्तः । अथ चतुर्थभक्तमाह-

जो पुण उमयजनतो, बद्दानम असइ सो उ उदिसई। सन्दे नि उदिसंता, मोनुणं उदिसंति इमे ॥ ५४८४॥

यः पुनः उमयथा-श्रुतेन वयसा चाञ्यक्तसस्य यदि स्वविगः पाठिपतारो वियन्ते अपरे 20 च गच्छवर्तापकासतोऽधावपि नान्यमुहिशति । स्वविराणाममावे स नियमादन्यमाचार्यमुहि-शति । 'सर्वेऽपि' भक्रचतुष्टयवर्तिनोऽध्यन्यमाचार्यमुहिशन्तोऽधृत् मुनवा उहिरान्ति ॥ ५ ३८४॥

तद्यथा---

संविग्गमगीयत्थं, असंविग्गं सलु तहेव गीयत्थं। असंविग्गमगीयत्थं, उदिसमाणस्य चउगुरुगा ॥ ५४८५ ॥ तेविम्मगीतार्थं असंविग्नं गीतार्थं असंविम्मगीतार्थं चेति त्रीनप्याचार्यत्येनोहिशतश्चर्तुर्ग रुकाः। पते च यथाक्रमं कोलेन तपसा तदमयेन च गुरुकाः कर्तव्याः॥ ५४८५॥

अत्रैव पायश्चित्तवृद्धिमाह---

सत्तरत्तं तवी होइ, तओ छेओ पहावई।

छेदेण छिष्णपरिपाए, तओ मूर्ल तओ दुर्ग ॥ ५४८६ ॥ ९० एतानयोग्यानुहिस्यानावर्तमानस्य मधमं ससरात्रं दिने दिने चतुर्गुरु, द्वितीयं ससरात्रं वद्-रूद, तृतीयं बहुरु, चतुर्थं चतुर्गुरुकच्छेदः, पक्षमं बहुरुचकः, वहं बहुरुकः, तैत एकदिवसे

१ तत एवं क्रिवन्यारिकाता हिवसेगंतैकायश्चत्यारिकादिवसे मृष्टम् , चतुश्चत्यारिकोऽन-वस्थाप्यम् , पञ्चचत्यारिके दिवसे पाराञ्चिकम् । अथवा वदुल्युकतयो° कं०॥ इदमेव व्याच्छे---

10

15

मुल्य, द्वितीयेऽनवस्थाप्यस्, तृतीये पाराश्चिकम् । अधवा पहुरुक्तपोऽनन्तरं प्रथमत एव ससरात्रं बहुरूक्षच्छेदः, तंतः मूला-ऽनवस्थाप्य-पाराश्चिकानि प्रावत् । यद्या तपोऽनन्तरं पेष-कादिच्छेदः सत सत दिनानि भवति, शेषं पूर्ववत् । एवं प्रायश्चितं विज्ञान संविधो गीतार्थं उद्देष्टन्यः ॥ ५४८६ ॥ तत्रापि विशेषमाह—

छहाणिषरिहिषं वा, संविग्गं वा वि वयह गीयत्थं । षउरो य अणुग्याया, तत्य वि आणाहणो दोसा ॥ ५४८७ ॥ बङ्किः स्थानैर्वक्षमाणैर्विरहितमपि संविद्यं गीतार्थं यदि 'सदोवं' काषिकादिदोषसहितं 'ववति' काषार्थत्वेन उहिश्चति तदा चत्वारोऽनुद्धाताः । तत्राप्याज्ञादयो दोषाः ॥ ५४८७ ॥

छड्डाणा जा नियमो, तन्त्रिरहिय काहियाहता चउरो । ते वि य उदिसमाणे, छड्डाणगयाण जे दोसा ॥ ५४८८ ॥ 'षट्टलानानि नाम' पार्श्वसोऽदसनः कुशीङः संसक्तो यथाच्छन्दो नित्यवासी चेति, एतैः पिक्कारित्ता ये 'काथिकादयः' काथिक-माश्रिक-मामाक-सम्प्रसारकाल्या चलारस्नानप्युदिश-तस्त एव दोषा ये पटस्कानेप-पार्श्वसादिष गतानां-प्रविद्यानां भवन्ति ॥ ५४८८ ॥

एव सर्वोऽप्यवसने आचार्ये विधिरुक्तः । अथावधावित-कालगतयोविधिमाह—

ओहानिय कालगते, जाधिच्छा ताहि उदिसावेद ।
अन्य ते तिविहे बी, गियमा पुण संगहहाए ॥ ५४८९ ॥
अवधानिते कालगते वा गुरो 'विविधेऽष' प्रथमम्बन्ने मन्नयेऽषि थोऽव्यक्तः स यदा
इच्छा भवति तदाऽन्यमार्थाधेद्वस्याति । अध्या 'त्रिविधेऽष' कुलसत्ते गणसत्ते सङ्घसत्ते
जावार्योगध्याये आत्मन उदेशं कारयति । स चान्यकत्ताद् नियमात् सङ्गहोपद्यार्थमेनो- 20
दिशति ॥ ५८९ ॥ जाचार्ये ग्रहीमतमयसम् चा यदा पत्रयति तदेत्यं भणति—

ओहाविष ओसके, भणइ अणाहा वर्ष विणा तुन्हें ।

कम सीसमसागरिष, दुष्पडियरमं जतो तिण्हं ॥ ५४९० ॥
अैवधावितत्यावसलस्य वा गुरोः 'कमयोः' पादयोः श्रीवेमसागरिक प्रदेशे कृत्वा
भणति—भगवन्! जनाथा वयं युष्णात् विना, अतः प्रसीद, मृदाः संयमे स्थिता सना- 25
थीकुरु डि॰भकस्पानसान् । शिष्यः पृच्छति—तस्य गुरोष्ठन अवारितिणो वा चरणणाः
कयं शिरो विषीयते ! गुरुराह—'दुष्प्रतिकरं' दुरोषेन प्रतिकर्त्वं शक्यं यतवयाणाम्,
तयथा—माता-पित्रोः स्वामिनो धर्मावार्यस्य व । यदुक्तम्—"तिष्टं दुष्पडियारं समणाउत्ते!—कम्मा-विषस्स भट्टिस चम्मायरियस्य य' (स्वानाहे स्वा० ३ उ० १) इत्यादि ।
तत प्वमवसकेडवधाविते वा गुरो विनयो विषीयते ॥ ५४९० ॥ किश्व—

जो जेण जिम्म ठाणिम्म टाविजो दंसणे व चरणे वा ।

१ ततः सप्तरात्रचतुष्टयानन्तरं मूला का ॥ २ पञ्चक-दशक-पञ्चदशकादिच्छेदाः
सप्त सप्त दिनानि भवन्ति, शे॰ का ॥ १ वडी-सप्तरयोरणे मस्तरेदाद अव॰ का ॥

सो तं तत्रो चुतं तिम्म चेव काउं मवे निरिणो ॥ ५४९१ ॥ यः 'येन' आचार्यादिना यसिन् स्थाने स्थापितः, तद्यथा — दर्शने वा चरणे वा, 'सः' शिष्यः 'तं' गुरुं 'ततः' दर्शनात् चरणाद्वा च्युतं 'तत्रैव' दर्शने चरणे वा 'कृत्वा' स्थापित्वा 'निर्फ्रणः' ऋणसुको भवति, कृतमस्यपकार इत्यर्थः ॥ ५४९१ ॥

अद्य "कप्पइ तेसिं कारणं दीवित्ता" इत्यादिस्त्रावयवं व्याचष्टे—

तीसु वि दीवियकञा, विसञ्जिता जह य तत्थ तं णित्य । 'त्रिष्विप' ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु वजन्तो भिक्षुप्रभुतयः 'दीपितकार्याः' पूर्वोक्तविषिना निवे-दितस्वप्रयोजना गुरुणा विसर्जिता गच्छन्ति । यदि च 'तत्र' गच्छे 'तद्' अवसन्नतादिकं कारणं नास्ति तत उपसम्पर्यते, नान्यथेति ॥

10 सूत्रम्---

15

20

25

गणावच्छेइए य इच्छिजा अस्नं आयरिय-उवज्झायं उदिसावित्तए, नो से कप्पइ गणावच्छेइयत्तं अनि-क्षिवित्ता अस्नं आयरिय-उवज्झायं उदिसावित्तए; कप्पइ से गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता अस्नं आयरिय-उवज्झायं उदिसावित्तए। नो से कप्पइ अणा-पुच्छिता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा असं आयरिय-उवज्झायं उदिसावित्तए। कप्पइ से आपु-च्छिता जाव उदिसावित्तए। कप्पइ से आपु-च्छिता जाव उदिसावित्तए। नो से कप्पित तेसिं कारणं अदीवित्ता असं आयरिय-उवज्झायं उदिसावित्तए; कप्पइ से तेसिं कारणं अदीवित्ता असं आयरिय-उवज्झायं उदिसावित्तए; कप्पइ से तेसिं कारणं दीवित्ता असं जाव उदिसावित्तए, कप्पइ से तेसिं कारणं दीवित्ता असं जाव उदिसावित्तए २७॥

आयरिय-उवज्झाए इच्छिजा अन्नं आयरिय-उव-ज्झायं उद्दिसावित्तपः, नो से कप्पइ आयरिय-उव-ज्झायत्तं अनिक्खिविता अन्नं आयरिय-उवज्झायत्तं उद्दिसावित्तपः; कप्पइ से आयरिय-उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावि-त्तपः। णो से कप्पति अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं

15

उहिसावित्तपः; कप्पति से आपुच्छिता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उहिसावित्तपः। ते य से वितरंति एवं से कप्पति जाव उहिसावित्तपः; ते य से णो वियरंति एवं से नो कप्पइ जाव उहिसावित्तपः। णो से कप्पइ तेसिं कारणं अदीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उहिसा-वित्तपः; कप्पइ से तेसिं कारणं दीवित्ता जाव उहिसावित्तपः २८॥

सूत्रद्वयस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ अथ भाष्यम् —

णिक्स्विय वयंति दुवे, भिक्खू कि दाणि णिक्स्वित् ॥ ५४९२ ॥ १० "निक्सिवय वयंति दुवे" इत्यादि पश्चाद्धेम् । 'द्वां' गणावच्छेदिक आचार्योपाध्यायश्च ययाक्रमं गणावच्छेदिकत्वमाचार्योपाध्यायत्वं च निक्षित्य वजतः । यस्तु भिक्षुः स किमिदानीं निक्षिपतु ? गणाभावाद् न किमपि तस्य निक्षेपणीयमस्ति, अत एव सूत्रे तस्य निक्षेपणं नोक्तमिति भावः ॥ ५४९२ ॥ अथ गणावच्छेदिका-ऽऽचीर्ययोर्गणनिक्षेपणे विधिनाह् —

दुण्हऽद्वाप दुण्ह वि, निक्लिवणं होइ उजमंतेसु । सीअंतेसु अ सगणो, वचइ मा ते विणासिजा ॥ ५४९३ ॥

'द्वयोः' ज्ञान-दर्शनवोरर्याय गच्छतोः 'द्वयोरिय' गणावच्छदिका-ऽऽवं प्रयोः स्नगणस्य निक्षेपणं ये 'उद्यच्छन्तः' संविद्या आचार्याक्तेषु भवति । अध्य सीदन्तस्ते ततः 'सगणः' स्वैगणं गृहीत्वा वजति न पुनत्तेषागन्तिके निश्चिपति । कुतः ! इत्याह्—मा 'ते' शिष्यासत्र सुक्ता विनरयेषुः ॥ ५४९३ ॥ इदमेव भावयति—

वत्तमिम जो गमो खलु, गणवच्छे सो गमो उ आयरिए। निक्खिवणे तमिम चत्ता, जम्रदिसे तमिम ते पच्छा॥ ५४९४॥

यो गम उभयव्यक्ते भिक्षाष्ट्रकः स एव गणावच्छेदिके आर्चीयें च मन्तव्यः। तत्रस्य— गणिनिक्षेपं कृत्वा तौ आत्मद्वितीयौ आत्मदृतीयौ वा नवतः। तत्र स्वगच्छ एव यः संविम्रो गीवार्यं आचार्यादिस्तत्रात्मीयसाधून् निश्चिपति। अधासंविमस्य पार्थे निश्चिपति ततः ते 25 साधवः परित्यक्ता मन्तव्याः, तसाद् न निश्चेपणीयाः किन्तु येन तेन प्रकारेणात्मता सह नेतव्याः। ततो यमाचार्यं स गणावच्छेदिक आचार्यो वा उद्दिशति तस्मिन् 'तान्' आत्मीय-साधून् पश्चाद् निश्चिपति, यथा अहं युन्माकं श्रिष्यस्था इमेऽपि युष्मदीयाः शिष्या इति

१ 'बार्योपाध्याययोर्ग' कां ॥ २ 'बार्योपाध्याययोः स' कां ॥ २ सकीयगण-सहित एव ब्रज' कां ॥ ४ 'बार्योपाध्याये च म' कां ॥ ५ 'बार्योपाध्यायो वा कां ॥

मावः ॥ ५४९४ ॥ इदमेवाह--

जह अंप्पमं तहा ते, तेण पहुष्पंतें ते ण घेत्तव्या । अपहुष्पंते गिण्हह, संघाडं मृत्तु सन्वे वा ॥ ५४९५ ॥

यथा आत्मानं तथा तानिष साधून् निवेदयति । 'तेनाषि' आचार्येण पूर्यमाणेषु साधुषु 'ते' प्रतीच्छकाचार्यसाधवो न महीतच्याः, तस्यैव तान् प्रत्यवंगति । अथ वास्तव्याचार्यस्य साधवो न पूर्यन्ते तत एकं सङ्घाटकं तस्य मयच्छति, तं ग्रुक्ता शेषानात्मना ग्रुहाति । अथ वास्त-व्याचार्यः सर्वथेवासहायस्ततः सर्वानिष ग्रुहाति ॥ ५४९५ ॥

> सहु असहुस्स वि तेण वि, वेपावचाइ सव्व कायव्वं। ते तेसि अणाएसा, वावारेउं न कप्पंति ॥ ५४९६ ॥

10 'तेनापि' प्रतीच्छकाचार्यादिना तस्याचार्यस्य सहिष्णोरसहिष्णोर्वा वैयादृत्यादिकं सर्वमपि कर्तव्यम् । 'तेऽपि' साधवः 'तेषां' आचार्याणामादेशमन्तरेण व्यापार्यितुं न कल्पन्ते ॥ ५४९६ ॥

# ॥ गणान्तरोपसम्पत्मकृतं समाप्तम् ॥

## विष्य स्म व न प्रकृत स्

सूत्रम्--

15

20

भिक्स् य रातो वा वियाले वा आहच वीसुं भिजा, तं च सरीरगं केइ वेधावचकरे भिक्स् इच्छिजा एगंते बहुफासुए पएसे परिटुविचए, अस्थि याई थ केइ सागारियसंतिए उवगरणजाए अचित्ते परिहर-णारिहे, कप्पइ से सागारिकडं गहाय तं सरीरगं एगंते बहुफासुए पएसे परिटुविचा तस्थेव उवनि-क्सिवियव्वे सिया २९॥

अस्य सम्बन्धमाह---

तिहिँ कारणेहिँ अभं, आयरियं उदिसिज तिहँ दुण्णि । सुतुं तहए पगयं, वीसुंभणसुत्तजोगोऽयं ॥ ५४९७ ॥

25 'त्रिभिः कार्रणैः' अवसन्नतादिमिरन्यमाचार्यसहिरोदिखुक्तम् (गा० ५४७४)। तत्राषे 'द्वे' अवसन्ना-ऽत्रघावितळ्कणे सुत्तवा 'तृतीयेन' काळगतरूपेण कारणेन प्रकृतम्, तद्विषयो विधिरनेनामिधीयत हति भावः। एए विध्वरम्भवनस्त्रस्य 'योगः' सम्बन्धः॥ ५९९७॥'

अहवा संजमजीविय, भवग्गहणजीवियाउ विगए वा।

१ अहर्ग तह पते, तामा । ॥ २ अत्र "आई" इस्तव्ययं वाक्यालहारे ॥ ३ विस्संभण तामा । ॥

अण्णुहेतो चुनो, इमं तु सुन्तं भवबाए ॥ ५४९८ ॥ अथवा संयमजीविताद् भवश्रहणजीविताद्वा विगतेऽन्यस्माचार्यस्य उद्देशः पूर्वसूत्रे उक्तः । इदं तु सत्रं भवजीवितपरित्यागविषयमारस्यते ॥ ५९९८ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—ि भिञ्जः चराव्दाद् आचार्योषाध्यायौ वा रात्रौ वा विकाले वा ''आहच्य' कदाचिद् 'विष्वम् भवेतं' जीव-शरीरयोः प्रयम्मावमाप्रुवात्, त्रियतः हस्यधः । तच्च शरीरकं 'कश्चिद्' वैयाद्यकरो भिञ्जरिच्छेत् 'प्कान्ते' विविक्तं 'बहुप्राशुके' कीटिकादिसस्वरिहिते पदेशे पिष्ठापितुत्त् । आसि चात्र किश्चित् सागारिकसर्कः 'अचित्तं' निर्जीतं 'परिहरणाहं' परिभोगयोग्याखुत्त् । आसि चात्र किश्चित् सहस्यते 'से'' तस्य भिक्षोस्तत् कार्ष्ठ 'सागारिककृतं' 'सागारिकस्येव सरकितं नास्याक्षम्' हत्येतं गृहीरता तत् वारिरोक्तान वहुप्राशुके पदेशे परिष्ठापितुत् । तच्च परिष्ठाप्य वतो गृहीतं तत् कार्ष्ठ तत्रेन-10 वोपनिक्षेत्रस्यं सादिति स्वयारेः ॥ सम्यति निर्यक्तिविस्तरः—

पुन्ति दन्नोलोयण, नियमा गच्छे उवक्रमनिमित्तं । भत्तपरिण्ण गिलाणे, पुन्तमाहों थंडिलस्सेन ॥ ५४९९ ॥

यत्र साधवी मासकस्यं वर्षावासं वा कर्जुकामासत्र पूर्वमेव सिष्ठन्तः द्रव्यस्-बहनकाष्टा-देरवलोकनं नियमाद् गच्छवासिनः कुर्वनित । किमैर्थम् ! इत्याह—उपक्रमः—मरणं तत्। कि कस्यापि संयतस्य भवेदित्येवमर्थम् । तच मरणं कदाचिद् भक्तपरिज्ञावतो भवेत्, कदाचित् तु ग्लानस्य, उपलक्ष्याभिदम्, तेनाशुकारेण वा मरणं भवेत्, ततः पूर्वमेव महास्यण्डिकस्य वहनकाष्टादेश्च 'अवसहः' प्रद्युवेशणं विधेयम् ॥ ५४९९ ॥ अथ द्वारगाधात्रयमाह—

वहनकाष्ट्रस्य स्विध्डिल्स्य च प्रथमत एव प्रत्युपेक्षणं विधेयम् । "दिस" ि दिग्मागो 26 निरूपणीयः । "णंतए य" ित औपप्रहिकानन्तकं मृताच्छादनार्थं गच्छे सदैव धारणीयम् ; जातिप्रधानश्चायं निर्देशः, ततो जवन्यतोऽपि त्रीणि वस्त्राणि धारणीयानि । "काले दिया व राजो अ" ित दिवा रात्रौ वा कालगते विवादो न विधेयः । रात्रौ च स्वाप्यमाने सृतके जागरणं बन्धनं छेदनं च कर्तन्यम् । एवं विधि तत्र कुर्योत् ॥

तथा नक्षत्रं विकोक्य कुशमतिमाया एकत्या द्वयोवी करणमकरणं वा । ''नियत्त्वणि'' ति ३० येन मधमतो गताः न तेनैव पथा निवर्तनीयम् । मात्रके पानकं मृहीस्वा पुरत एकेन साधुना

१ 'त्' विष्कम्भमामु' को । ''आइब' कगाई 'बीखे' प्रथम् 'सेजा' भनेवुः, प्रयक् शरीराजीनो नियत इसावैः'' इति चूर्णो विद्रोणचूर्णी च ॥ २ कि.मू १ इ' मो० के ॥

15

90

गन्तव्यम् । यसां दिशि प्रामस्ततः शीर्षं कर्तव्यम् । तृणानि समानि मस्तरणीयानि । 'उप-करणं' रजोहरणादिकं तस्य पार्श्वे धारणीयम् । अविधिपरिष्ठापनायाः कायोत्सर्गः स्वण्डिके स्वितैनं कर्तव्यः । निवर्तमानैः प्रादक्षिण्यं न विधेयम् । शबस्य चाम्युरवाने वसत्यादिकं परि-त्यजनीयम् । यसा च संयतस्य 'व्याहरणं' नामग्रहणं स करीति तस्य छोचः कर्तव्यः ॥

उमुस्तकाशमागौः कायोत्सर्गो विधेयः । साध्यायकस्य क्षपणस्य च मार्गणा कर्तव्या । उच्चारादिमात्रकाणां व्युत्सर्वनं कर्तव्यम् । अपरेऽहि तत्सावळीकनं शुभा-ऽशुभगतिज्ञानार्षे निसिचम्रहणार्थं च विधेयमिति द्वारगाधात्रयसमासार्थः ॥ ५५०० ॥ ५५०१ ॥ ५५०२ ॥ अधैतदेव विवरीषराह—

> जं दब्वं घणमसिणं, वावारजढं च चिद्धए बलियं। वेणुमय दारुगं वा. तं वहणद्रा पलोयंति ॥ ५५०३ ॥

यद् द्रव्यं वेणुनयं दारुकं वा घनमस्यणं व्यापारसक्तम्' अवहमानकं 'बळीयः' हदतरं सागारिकस्य गृहे तिष्ठति तत् काठगतस्य वहनार्थं प्रथममेव प्रकोकयन्ति, महास्थण्डिकं च प्रत्योक्षणीयम् ॥ ५५०३ ॥ अथ न प्रत्युवेक्षन्ते तत हमे दोषाः—

> अत्थंडिलम्मि काया, पत्रयणघाओ य होह आसण्णे । छड्डावण गहणाई, परुग्गहे तेण पेहिजा ॥ ५५०४ ॥

अस्मिण्डले परिष्ठापयन् यह कायान् विराधयति । प्रवचनपातश्च प्रामादेरासके परिष्ठाप-यतो भवति । परावग्रहे च परिष्ठापयतः छदीपनं भवेत् । छदीपनं नाम—ते बळादिए साधु-पार्श्वादन्यत्र तं शवं परित्याजयेयुः । प्रहणा-ऽऽकर्षणादयो दोषा भवेयुः । ततो महास्मण्डिल-मवस्यं प्रागेव मत्युपेक्षेत् ॥ ५५०४ ॥ गतं प्रत्युपेक्षणाद्वारम् । अथ विम्हातमाह—

दिस अवरदिक्खणा दिक्लणा य अवरा य दिक्लणापुन्ना ।

अवरुचरा य पुञ्चा, उत्तर पुञ्चुचरा चेव ॥ ५५०५ ॥ प्रथमम् 'अपरदक्षिणा' निर्ऋती दिग् निरीक्षणीया, तदमावे दक्षिणा, तस्या अमावेऽपरा, तदमाप्ती 'दक्षिणपूर्वा' आमेयी, तदलामे 'अपरोचरा' वायवी, तस्या अमावे पूर्वा, तदमावे उत्तरा, तदमावे उत्तरपर्वा ॥ ५५०५ ॥

सम्प्रति प्रथमायां दिशि सत्यां शेषदिश्च परिष्ठापने दोषानाह—

समाही य भत्त-पाणे, उवकरणें तुमंतुमा य कलहो य । भेदो गेलनं वा, चरिमा पुण कडूए अर्णा ॥ ५५०६ ॥

प्रथमायां दिशि शबस्य परिष्ठापने प्रजुराक्ष-पान-बक्काशतः समाधिर्भवति । तस्यां सत्यां यदि दक्षिणस्यां परिष्ठापयन्ति तदा भक्त-पानं न लगन्ते, अपरसाध्यकरणं न प्राधुवन्ति, अविक्षिणपूर्वस्यां द्वाग्नद्वमा परस्यरं साध्वां भवति, अवरोत्तरस्यां कळ्हः संयत-गृहस्वा-ऽन्यती-विके: समं भवति, पूर्वस्यां गणमेदश्यारित्रमेदो वा भवेत्, उत्तरस्यां ग्ळानत्वम्, 'बरमा' पूर्वोचरा सा क्रवस्तकपरिष्ठापना अन्यं साधुसाकवैति, मारवातीत्वर्थः ॥ ५५०६ ॥

आसम मज्य द्रे, नाघातद्वा तु थंडिले तिभि ।

खेतुदय-इरिय-पाणा, णिविङ्गादी व वाघाए ॥ ५५०७ ॥ मचमायामि दिखि मीणि स्वण्डिकानि मञ्ज्येदकणीयानि—मामादेरासके मध्ये दूरे च । किमर्च पुराक्षीण मञ्ज्येदक्षपायानि—मामादेरासके मध्ये दूरे च । किमर्च पुराक्षीण मञ्ज्येदक्षपाद क्वाचित्र म्वेदित्यर्थः । स वायस्— क्षेत्रं तत्र यदेशे इष्टम्, उदकेन वा मानितम्, हरितकायो वा जातः, त्रस-माणिभिवी संसक्तं समजनि, मामो वा निविष्टः, आदिमृत्येग सार्यो वा आवासितः । एव-5 माणिभिवी संसक्तं समजनि, मामो वा निविष्टः, आदिमृत्येग परिष्ठापयन्ति, तत्रापि ज्याचाते व्याचाते विद्यापयाने विद्यापयां विद्यापयां वृतीयायां वृतीयायां वा मञ्ज्येक्षन्ते तत्मश्रद्धिक्तः ॥ ५५०७॥ एते च दोषाः—

एसणपेक्षण जोगाण व हाणी भिण्ण मासकप्यो वा । भत्तोवधीअभावे, इति दोसा तेण पडमिम्म ॥ ५५०८ ॥

भक्त-पानाळामाद् उपचेरळामात्र एषणामेरणं कुर्युः । अधैषणां न प्रेरयेयुः ततः 'बोगानाय' बावस्यकव्यापाराणां हातिः । अपरं वा क्षेत्रं गच्छतां मासकस्यो भिन्नो भवेत् । एतमादयो दोषा भक्तोषच्योरमावे भवन्ति ततः प्रथमे दिग्मागे महास्यण्डिङं प्रखुपेक्षणीयम् ॥ ५५०८॥

एमेव सेसियासु वि, तुर्मतुमा कल्ह मेद मरणं वा। जं पावंति सुविहिया, गणाहिबो पाविहित तं तु॥ ५५०९॥

वधा द्वितीयायां तृतीयायां च दोषा उक्का एवमेव 'रोपाखारे' चतुर्ध्यादिषु यत् तुमन्तु-माकरणं कल्हं गणभेदं मरणं वा सुविहिताः मासुविन्ति तद् गणाधिषः सर्वमपि प्राप्सति । अथ मयमायां व्यापातस्त्रतो द्वितीयायामपि प्रस्पुपेदणीयम् । तस्यां च स एव भक्त-पानस्यास्यक्रस्या । ज्ञाप्तिम्यायामपि प्रस्पुपेदणते विषमानायां कृतीयायां प्रस्पुपेद्यन्ते ततः स एव प्रापुक्ते दोषः, प्वमध्याद्यक्ति-30 स्त्रानियसां प्रस्पुपेदणीयम्, तस्यां च स एव गुणो भवति । एवसुकरोपरदिश्वपि भावनीयम् ॥ ५५०९॥ गतं दिख्हास्य । अष प्रत्यक्तिस्याः

वित्थारा-८८यामेणं, जं वत्थं लब्मती समतिरेगं।

चोक्स सुतिगं च सेतं, उनकमट्टा घरेतन्त्रं ॥ ५५१० ॥ विद्यारेणायामेन च यद् वैक्षप्रमाणमर्द्धतृतीयहत्तादिकं तृतीयोदेशके मणितं ततो यद् 2० वक्षं समितिरेकं रुम्यते । कथम्पृतम् १ ''चोक्सं'' धवितं 'शुचिकं नाम' सुगन्धि 'क्षेतं' पाण्करम् । प्रवंविषं जीवितोषक्रमार्थं गच्छे धारयितस्यम् ॥ ५५१० ॥

गणनाममाणेन तु तानि त्रीणि भवन्ति, तद्यथा-

अत्युरणहा एगं, बिह्यं छोतुमुवरि घणं बंधे । उक्तोसयरं उवरिं, बंधादीछादणहाए ॥ ५५११ ॥

एकं तस्य सतकस्याभ आस्तरणार्थे द्वितीयं पुनः मिक्षप्योपरि वनं बधीयात् । कियुक्तं मवति !—द्वितीयेन तद् सुतकं प्रावृत्योपरि दवरकेण वनं बच्यते । तृतीयम् 'उत्क्रष्टतस्य'

१ वलस्य प्रमाणं यथाकममर्भवृतीयहस्तचतुष्ट्यस्थाणं वृतीयोहे° कां • ॥

ष्रतीबोजनलं बन्धादिच्छादनार्थं तदुपरि स्थापनीयम् । एवं जधन्यतक्षीणि वक्षाणि महीत-व्यानि । उत्कर्यतस्तु गच्छं ज्ञास्त्रा बहुन्यपि गृक्षन्ते ॥ ५५११ ॥

एतेसि अगाहेणे, चउगुरु दिवसम्मि विष्णिया दोसा । रचि च पडिच्छेते. गुरुगा उद्गाणमादीया ॥ ५५१२ ॥

७ 'एतेषाम्' एवंविधानां त्रयाणां वसाणाममहँगे चतुर्गुरु मायश्चित्तम् । मिलनबस्नागृहते च तस्मित् दिवसतो नीयमाने 'दोषाः' अवर्णवादादयो वर्णिताः । अधेतहोषमयाद् 'रात्री परिष्ठापिषच्यामि' इति बुद्धा सृतकं प्रतीक्षापयित ततश्चतुर्गुरुका उत्थानादयश्च दोषाः ॥ ५५१२ ॥ कथं पुनरवर्णवादादयो दोषाः हत्त्वाह—

उज्झाइए अवण्णो, दुविह णियत्ती य महरुवसणाणं ।

10 तम्हा तु अहत कसिणं, घरेंति पन्खस्स पडिलेहा ॥ ५५१३ ॥

''उज्ज्ञाह्रप्'' मिलनकुचेले तसिन् नीयमानेऽवर्णी भवति — अहो ! असी वराका सृता अपि शोभां न रूपने । मिलनवस्त्राणां च दर्शने द्विविधा निवृधिर्भवति, सम्यस्त्रं प्रवत्या च प्रहित्तुकामाः प्रतिनिवर्तन्ते । ग्रुचि-श्चेतवस्त्रदर्शने तु लोकः प्रशंसति — अहो ! शोभनो धर्म इति । यत एवं तस्माद् 'अहतम्' अपरिभुक्तं 'क्रत्सं' प्रमाणतः प्रतिपृणै वस्त्रिकं धार-15 णीवम् । पक्षस्य चान्ते तस्य प्रत्युक्षणा कर्तव्या, दिवसे दिवसे प्रत्युपेक्षयाणां हि मिलनी-मवेत् ॥ ५५१३ ॥ गतं णत्तकद्वारम् । अय ''दिवा रात्रो वा कालगतः'' इति द्वारामाह—

आसुकार गिलाणे, पचक्खाए व आणुपुर्वीए ।

दिवसस्स व रत्तीइ व, एगतरे होअऽवकमणं ॥ ५५१४ ॥

आशु-श्रीप्रं सजीवस्य निर्जीवीकरणमाशुकारः, तरकारणत्याट् आहि-विय-विश्विकादयोऽ-20 प्याशुकारा उच्यन्ते, तैः 'अपकमणं' मरणं कस्यापि भनेत् । 'स्वानत्वेन वा' मान्येन कोऽपि क्रियेत । 'आनुपूर्व्यो वा' शरीरपरिकर्मणाकमेणं भक्ते प्रत्यास्थाते सति कश्चित् कारुपर्यं गच्छेत् । एवं दिवस-रजन्योरेकतरस्मिन् काले जीवितादपक्रमणं भवेत् ॥ ५५१४ ॥

> एव य कालगयम्मि, मुणिणा सुत्त-ऽत्थगहितसारेणं । न विसातो गंतव्यो, कातव्य विधीय वोसिरणं ॥ ५५१५ ॥

(य्वम्' एतेन प्रकारेण काल्याते सित साथी सूत्रा-ऽर्थगृहीतसारेण झुनिना न विषादो गन्तव्यः, किन्तु कर्तव्यं तस्य काल्यातस्य विधिना ब्युत्सर्जनम्॥ ५५१५॥ कथम् ? इत्याह——

आयरिओ गीतो वा, जो व कडाई तहिं भवे साहू।

कायञ्चो अखिलविही, न तु सोग भया न सीतेजा ॥ ५५१६ ॥ यस्तत्राचार्योऽपरो ना गीतार्थो यो ना अगीतार्थोऽपि 'क्वतदिः' ईहरो कार्ये क्वतकरणः 20 आदिशब्दाद् धैर्यादिगुणेपेतः साधुर्भवति तेनाखिलोऽपि निधः कर्तन्यः, न पुनः शोकाद् भयाद्वा तत्र 'सीदेव्' यथोक्तनिधिनियाने मगादं कुर्यात् ॥ ५५१६ ॥

१ °हणे, गुरुगा दिव° ताभा•॥ २ °हणे उपलक्षणत्वाद् अधारणे च चतु° सं•॥ ३ °ण संलेखनापुरस्सरं भक्ते सं•॥

किमालम्ब्य शोक-भये न कर्चव्ये ! इत्याह----

सब्बे वि मरणधम्मा, संसारी तेण कासि मा सोगं।

जं चडप्पणो वि होहिति, किं तत्थ सयं परमयम्मि ॥ ५५१७ ॥ सर्वेडिप संसारिणो जीवा सरणधर्माण इत्यालम्ब्य शोकं मा कार्षीः । यच मरणमासमतोऽपि कालक्रमेण भविष्यति तत्र 'परगते' परत्य सङ्गाते किं नाम भयं विधीयते ? न किंचिदित्यर्थः ठ ॥ ५५१७ ॥ गतं ''दिवा रात्रो वा" इति द्वारम् । अध जागरण-वन्धन-च्छेदनद्वारमाह—

जं वेलं कालगतो, निकारण कारणे भवें निरोधो।

जरगण बंधण छेदण, एतं तु विहिं तहिं कुजा ॥ ५५१८ ॥ दिवा रजन्यां वी यसां वेळायां काळगतस्तस्यामेव वेळायां निष्काशनीयः । एवं निष्कारणे उक्तम् । कारणे तु निरोषोऽपि भवेत् । निरोषो नाम-कियन्तमपि काळं प्रतीक्षाप्यते । तत्र 10 च जागरणं बन्धनं छेदनं 'एतम्' एवमादिकं विधिं वक्ष्यमाणनीत्या कुर्योत् ॥ ५५१८ ॥

कैः पुनः कारणैः स प्रतीक्षाप्यते ! इत्याह-

हिम-तेण-सावयभया, पिहिता दारा मैहाणिणादी वा ।

ठवणा नियमा व तर्हि, आयरिय महातवस्सी वा ॥ ५५१९ ॥
रात्री दुरिषसहं हिमं पतित, स्तेमभयात् धापदभयाद्वा न निर्मन्तुं शक्यते । नगरद्वाराणि 16
वा तदानी पिहितानि । 'महानिनादो वा' महाजनज्ञातः स तत्र प्रामे नगरे वा । 'स्वापना वा'
तत्र प्रामादौ ईहशी व्यवस्था, यथा — रात्री मृतकं न निर्काशनीयः । ज्ञावा वा तत्र प्रामति ते भणन्ति — अस्थाकमनापुण्ड्या न निष्काशनीयः । ज्ञावार्ये वा स तत्र
नगरेऽतीव कोकविस्थातः । 'महातपस्थी वा' प्रयुत्कारुपारिलानशनो मासादेक्षपको वा ।
एतैः कारणे रजन्यां प्रतीक्षाप्यते ॥ ५५१९॥ दिवा पुनरेभिः कारणेः प्रतीक्षापयेत् — 20

णंतक असती राया, वऽतीति संतेषुरी पुरवती तु ।

णीति व जणणिवहेणं, दार निरुद्धाणे णिसि तेणं ।। ५५२० ॥
'णन्तकानां' छुनि-धेतवस्राणामभावे दिवा न निष्काश्यते । राजा वा सान्तःपुरः पुरयतिवी नगरम् 'अतियाति' प्रविदाति 'जनिवहेन वा' महता भट-भोजिकादिकृन्देन नगराद्
निर्गेच्छति ततो द्वाराणि निरुद्धानि, तेन निशि निष्काश्यते । एवं दिवाऽपि प्रतीक्षापणं 25
भवेत् ॥ ५५२० ॥ अत्र चांयं विधिः—

वातेण अणकंते, अभिणवसुकस्त हत्थ-पादे उ । कुन्वंतऽहापणिहिते, सुह-णयणाणं च संपुडणं ॥ ५५२१ ॥

बातेन यावद् अधापि शरीरकम् आकारतं-स्वकं न भवति तावद् अभिनवजीवितमुक्तस्य इस्त-पादान् 'यथाप्रणिहितान्' प्रगुणतया रुम्बमानान् कुर्वन्ति, मुख-नयनानां च 'सम्युटनं' ३० सम्मीरुनं कुर्वन्ति ॥ ५५२१ ॥ जागरणादिविधिमाहः—

१ वा "जं बेरूं" ति बिभक्तिव्यत्ययाद् यसां कं । । २ महाणणातो वा तामा । "महाणि-णादो व ति महायणणादो वा तो" इति सूर्णी विद्योषचुर्णी च ॥

15

जितणिहुवायकुसला, ओरस्सवली य सत्तजुत्ता य । कतकरण अप्पमादी, अमीरुगा जागरंति तर्हि ॥ ५५२२ ॥

जितनिद्रा उपायकुशर्लाः 'औरसब्लिनः' महापराकमाः 'सत्त्वयुक्ताः' धैर्यसम्पन्नाः कृत-करणा अममादिनोऽमीरुकाश्च ये साधवस्ते तत्र तदानीं जामति ॥ ५५२२ ॥

जागरणद्वाएँ तर्हि, अभेसि वा वि तत्थ धम्मकहा ।
मुत्तं घम्मकहं वा, मधुरिगिरो उच्चसहेणं ॥ ५५२३ ॥
जागरणार्थं तत्र तैरत्योत्यं 'अत्येषां वा' आद्वादीनां धर्मकथा कर्तव्यो । सयं वा स्वं
'धर्मकथां वा' धर्मप्रतिबद्धामास्थायिकां मधुरिगर उच्चशब्देन गुणयन्ति ॥ ५५२३ ॥
अथ बन्धन-च्छेदनपदे व्यास्थाति—

कर-पायंगुडे दोरेण बंधिउं पुत्तीए स्रृहं छाए । अक्तयदेहे खणणं, अंगुलिविचे ण बाहिरतो ॥ ५५२४ ॥

'कर-मावाङ्ग्रहान' कराङ्ग्रह्वयं पादाङ्ग्रह्वयं च दवरकेण बद्धा ग्रुल्पोतिकया ग्रुलं छाद-येत्, एतद् बन्धनसुच्यते । तथा अक्षतदेहे तस्मिन् "अंगुकीनिश्चे" अङ्गुरुनीमध्ये नीरैंके 'स्वननम्' ईवरकालनं क्रियते न बाह्यतः, एतत् छेदनं मन्तस्थम् ॥ ५५२४ ॥

अण्णाइद्वसरीरे, पंता वा देवतऽत्थ उद्वेखा । परिणामि डब्बहरथेण बुज्झ मा गुज्झगा ! सुज्झ ॥ ५५२५ ॥

एवमिष क्रियमाणे यदि 'अन्याविष्टशरीरः' सामान्येन व्यन्तराधिष्ठितदेहः 'प्रान्ता वा' प्रत्यनीका काचिद् देवता 'अत्र' अवसरे तत्कलेवरमनुमविश्योतिष्ठेत् ततः 'परिणामिनीं' कायिकी "डब्बहरवेणं" ति वागहसेन गृहीत्वा तत् कडेवरं सेचनीयस् । इदं च वक्तव्यस्— 20 व्रष्यस् व्रष्यस्व गुषकः 'प्मा सुख' मा भगादीः, संसारकाद मा उतिष्ठेति भावः ॥ ५५२५॥

वित्तासेज रसेज व, भीमं वा अद्वहास मुंचेजा ।

अभिएण सुविहिएणं, कायन्व विहीय वोसिरणं ॥ ५५२६ ॥

अन्याधिष्ठतं तत् कडेवरं 'विजासयेत्' विकरारुरूपं दर्शयित्वा भाषयेद् 'रसेद्वा' आराटिं मुखेद् 'भीमं वा' रोमहर्षजनकं अहहासं मुखेत् तथापि तत्रामीतेन मुजिहितेन 'विधिना' 26 पूर्वोक्तेन वश्यमाणेन च व्यस्पर्जनं कर्तव्यम् ॥ ५५२६ ॥

गतं जागरणादिद्वारम् । अथ कुशप्रतिमाद्वारमाह---

दोण्णि य दिवड्डुखेत्ते, दब्भमया पुर्त्तमऽत्थ कायव्वा ।

समस्वेत्तिम्म य एको, अबहु अभिए ण कायच्वो ॥ ५५२७ ॥ काल्याते सति संयते नक्षत्रं विलोक्यते । यदि न विलोकयति ततश्चतुर्युरः । ततो तक्षत्रे 30 विलोकिते यदि सार्द्धक्षेत्रं तदानीं नक्षत्रम् , सार्द्धक्षेत्रं नाम-पश्चचलारिकान्यहर्तमोम्यं सार्द्ध-दिनभोग्यमिति यावतः , तदा दर्भमयौ द्वौ पुत्रको कर्तव्यो । यदि न करोति तवाऽपरं साध-

१ °ला इति झयमपि प्रकटार्थम्, 'औं कां०॥ २ एतदकन्तरे कां० प्रन्थाप्रम्—४००० इति वर्तते ॥ ३ °रकप्रदेशे 'ख" कां०॥ ४ °सल्डरस्य तामा०॥

द्वसगकर्षति । तानि च साद्धेक्षेत्राणि नक्षत्राणि बड् भवन्ति, तद्यथा—उत्तराफ्रस्तुन्य उत्तरा-वादा उत्तराभद्रपदाः पुनर्वस् रोहिणी विशासा चेति । अथ समक्षेत्रं-त्रिंशन्मुहृतंभीग्यं यदा नक्षत्रं तत एकः पुत्रज्ञकः कर्तन्यः 'एप ते द्वितीयः' इति च वक्तव्यम् । अकरणेऽपरमेक-माकर्षति । समक्षेत्राणि चामृनि पद्मदश्य—अधिनी क्विचिका प्रगिक्षरः पुत्रयो मधाः पूर्वा-फास्युन्यो हस्तक्षित्रा अनुताथा मुकं पूर्वाचादाः अवणो धनिष्ठाः पूर्वमद्भवद रेवती चेति । ५ अथापदिक्षेत्रयोणि चामृनि वह—स्तिभित्रम् भरणी आर्द्रो अक्षेया स्वातिज्येष्ठा चेति ॥ ५५२०॥ अथ निवर्तनद्वानमाद्व-—

> थंडिलवाघाएणं, अहवा वि अतिच्छिए अणाभोगा । भमिऊण उवागच्छे, तेणेव पहेण न नियत्ते ॥ ५५२८ ॥

तत्र नीयमाने स्विण्डिकस्पोदक-हरितादिभिर्व्याधातो भवेत्, अनामोगेन वा स्विण्डिकमित-क्रान्तं भवेत्, ततः 'अमित्ता' प्रदक्षिणामकुर्बाणा उपागच्छेयुः, तेनैव पथा न निवर्तेत्त् ॥ ५५२८॥ जइ तेणेव मग्गेण नियर्जति तो असमायारी, कयाइ उद्देजा, सो य जओ चेव उद्दह्र तओ चेव पहाबह्र, तत्य जओ गामो ततो धाविजा (आव० पारि० निर्यु० गा० १७ हारि० टीका पत्र ६३५–२) तत एवं कर्जटयम्—

वाघायस्मि ठवेउं, पुन्वं व अपेहियस्मि थंडिल्ले ।

तह णेति जहां सें कमा, ण होंति गामस्स पिडहुत्ता ॥ ५५२९ ॥ संण्डिरुस ज्याघाते पूर्व वा सण्डिरुं न प्रसुपेक्षितं ततस्त्रद् मृतकमेकान्ते स्वापीयत्वा स्वण्डिरुं च प्रसुपेक्ष्य तथा अमयिस्ता नयति यथा तस्य 'कमी' पादौ मामं प्रति अभिमुसौ न भवतः ॥ ५५२९ ॥ अथ मात्रकद्वारमाह—

> सुत्त-ऽत्थतदुभयविक, पुरती घेचूण पाणन इसे य । गच्छति जइ सागरियं, परिदृवेकण आयमणं ॥ ५५३० ॥

सूत्रा-ऽर्थ-तदुनयवेदी मात्रकेऽसंसृष्टधान्कं 'कुशांक्ष' दर्भान् 'समच्छेदान्' परस्परमसम्बद्धान् हस्त्वदुरङ्गुळभगाणान् गृहीत्वा पृष्ठतोऽनेपक्षमाणः 'पुरतः' अमतः स्वण्डिळामिमुलो गच्छति । दर्भाणामभावे पूर्णानि केवराणि वा गृह्यते । यदि सागारिकं ततः स्व परिष्ठाप्य 25 'आचमनं हस्त-पादशैचादिकं कर्तव्यम् । आचमनमहरणेनेदं ज्ञागयति —यथा यथा मवचनो-क्वाहो न मचति तथा तथा अपरमपि विषेयम् ॥ ५५३० ॥ अथ शीर्षद्वारमाड—

> जत्तो दिसाएँ गामो, तत्तो सीसं तु होइ कायव्त्रं । उर्देतरक्खणद्वा, अमंगर्ल लोगगरिहा य ॥ ५५३१ ॥

थस्यां दिशि प्रामस्ततः शीर्षं श्वस्य प्रतिश्रयाद् नीयमानस्य परिष्ठाप्यमानस्य च कर्त-३० व्यम् । किमर्थम् ? इत्याह— उत्तिष्ठतो रक्षणार्थम् , यदि नाम कमश्चिद्विष्ठते तथापि प्रति-

१ पूर्वभत्युपेक्षितस्य स्विण्डलस्य व्यावातेऽथवा पूर्वस्विष्ठलं न प्रत्युपेक्षितं विस्सृ-तमित्वर्षः ततस्तव् सृत्र<sup>०</sup> का॰ ॥ २ °ऽनवलोकमानः 'पु<sup>०</sup> का॰ ॥

अवाभिमुलं नामच्छतीति भावः । अपि च—यत्मां दिशि प्रामस्तदिभिमुलं पादयोः कियमा-णयोरमञ्जलं भवति, लोकस गर्हो कुर्यात्—अहो ! अमी श्रमणका एतदिष न जानन्ति सद् प्रामाभिमुलं शबं न कियते ॥ ५५३१ ॥ अथ नुणादिद्वारमाह—

> कुसमुद्विएण एकेणं, अन्वोच्छिण्णाऍ तत्थ घाराए । संथार संथरिजा. सन्वत्थ समो य कायन्वो ॥ ५५३२ ॥

सथार सथारञ्जा, सब्बत्य समा य कायन्त्रा । १५२५ ।।
 यदा स्वित्व प्रमार्जितं भवति तदा कुशनुष्टिनैकेनाव्यविक्वलया धारया संस्तारकं
 संस्तरेत, स च सर्वत्र समः कर्तव्यः ॥ ५५३२ ॥ विषमे एते दोषाः—

विसमा जित होज तणा, उनीर मज्झे तहेन हेट्टा य । मरणं गेलकं वा. तिण्हं पि उ णिहिसे तत्थ ॥ ५५३३ ॥

10 'निषमाणि' तृणानि यदि तसिन् संतारके उपिर वा मध्ये वाऽधस्ताहा भवेयुः तदा त्रयाणामि मरणं म्हानस्तं वा निर्दिशेत् ॥ ५.५३३ ॥ केषां त्रयाणान् १ इत्याह—

उवरि आयरियाणं, मज्झे वसभाण हेहि भिक्खुणं ।

तिण्हं पि रक्खणहा, सञ्वत्थ समा य कायव्वा ॥ ५५२४ ॥ उपरि विषमेषु तृणेषु आचार्याणां मध्ये वृषमाणामध्ताद् मिश्चूगां मरणं ग्लानस्वं वा १६मवेत्, जतस्रयाणामपि रक्षणार्थं सर्वत्र समानि तृणानि कर्तव्यानि ॥ ५५३४ ॥

जत्थ य नित्थ तिणाई, चुण्णेहिं तत्थ केसरेहिं वा । कायव्वीऽत्थ ककारी. हेड तकारं च बंधेजा ॥ ५५३५ ॥

यत्र तृणानि न सन्ति तत्र चूर्णैर्वा नागरकेशरैबीऽव्यवच्छित्रया धारया ककारः कर्तव्यः सर्साधसात् तकारं च बंधीयात् , क इत्यर्थः । चूर्णानां केशराणां वामावे प्रतेयकादिभिरिष २०क्रियते ॥ ५५३५ ॥ अथोपकरणदारमाहः—

चिधद्वा उवगरणं, दोसा तु भवे अचिधकरणम्मि।

्मिच्छत्त् सी व राया, कुणति गामाण वहकरणं ॥ ५५३६ ॥

परिद्याप्यमाने निहार्थं यथाजातसुपकरणं पार्थं स्वापनीयम् । तयथा—राजोहरणं सुलपो-तिका चोल्पट्रकः । यदि एतद् न स्वापयन्ति ततश्रतुर्गुरुः । आज्ञात्यश्च दोषाः चिह्नस्याकाणे 25 भवन्ति । 'स ना' काल्यातो मिथ्यात्वं गच्छेत् । राजा वा जनवरप्यस्या तं ज्ञात्वा 'कश्चिद् मनुष्योऽमीमिरपद्रावितः' इति बुच्या कृषितः प्रत्यासकवर्तिनां द्विज्यादीनां आमाणां वैधं कुर्यात् ॥ ५५२६ ॥ अथैतदेव भावयति—

उवगरणमहाजाते, अकरणें उज्जेणिभिक्खुदिट्टंतो । लिंगं अपेच्छमाणो, काले वहरं तु पाडेति ॥ ५५३७ ॥

उच्चाजातमुषकरणं यदि तस्य पार्श्वे न कुर्वन्ति ततोऽसौ देवलोकगतः मयुक्तावधिः 'बहम-नेन गृहलिन्नेन परिलन्नेन वा देवो जातः' इति मिध्यालं गच्छेत् । उन्नियिनीभिष्कुण्डान्त-श्चात्र भवति, स चावत्रयक्रटीकातो मन्तव्यः (शाव० हारि० टीका पत्र ८१३-१) । यस्य १ भीभिरेतद्वामवास्तव्यैरप' कां•॥ २ वधकरणं कुर्यात्, विनाहामित्यर्थः ॥ कां•॥ वा प्रामस्य पार्थे परिष्ठापितः तत्र तत्पार्थे लिङ्गमपद्मन् लोको राजानं विज्ञपयेत्। स च 'केनाप्यपद्मावितोऽयम्' इति सत्वा कालेन प्रतिवैदं पातयति, बैदं निर्यातयतीति भावः ॥ ५५३७ ॥ कायोस्सर्गद्वारमाह—

उद्दाणाई दोसा, इवंति तस्येव काउसग्गम्मि । आगम्ब्रुवस्तयं गुरुसमीव अविद्याय उस्सग्गो ॥ ५५३८ ॥ 5 'तत्रेव' परिष्ठापनमूमिकायां काबोस्सर्गे क्रियमाणे उत्थानादयो दोषा भवन्ति, अत उपा-अवमागम्य गुरुसमीपेऽविषिपरिष्ठापनिकायाः काबोस्सर्गः कर्तव्यः ॥ ५५३८ ॥

**प्राद्**शिण्यद्वारमाह----

जो जहियं सो तत्तो, णियत्तह पयाहिणं न कायव्वं । उद्दाणादी दोसा, विराहणा वाल-बुद्दाणं ॥ ५५३९ ॥ 10 शबं परिश्रप्य यो अत्र भवति स ततो निवर्तते, शादक्षिण्यं न कर्तव्यम् । यदि कुर्वन्ति तत उत्थानादयो दोषा वाल-बुद्धानां च विराधना भवति॥ ५५३९ ॥ अधाश्युत्थानहारमाह—

जह पुण अणीणिओ वा, णीणिअंतो विविचित्रो वा वि । उद्देश समादद्वी, तत्थ इमा मम्पणा होति ॥ ५५४० ॥ यदि पुनः स कारुगतोऽनिष्काशितो वा निष्कास्यमानो वा 'विविक्तो वा' परिष्ठापितो १६ व्यन्तरसमाविष्ट उत्तिक्षेत् ततस्त्रत्रेयं मार्गणा भवति ॥ ५५४० ॥

वसिंह निवेसण साही, गाममज्झे य गामदारे य । अंतर उजाणंतर, णिसीहिया उद्विते वोच्छं ॥ ५५४१ ॥

बसती वा स उचिष्ठेत् , 'निवेशने वैं।' पाटके 'साहिकायां वा' गृहपिक्करपायां माममध्ये वा प्रामद्वारे वा प्रामोधानयोरन्तरा वा उचाने वा उचान-नैपेषिक्योरन्तरा वा 'नैपेषिक्यां वा' 20 श्रवपरिग्रापनमृत्याम् , एतेषु उद्यिते यो विषित्तं वक्ष्यामि ॥ ५५४२ ॥

प्रतिज्ञातमेव करोति---

उवस्सय निवेसण साही, गामद्धे दारें गामो मोत्तव्वो । मंडल कंड देसे, णिसीहियाए य रखं तु ॥ ५५४२ ॥

तन् कडेबरं नीयमानं यदि वसतावुणिष्ठति तत उपाश्रयो मोक्तव्यः । अथ निवेदानं उचि-25 ष्ठति ततो निवेदानं मोक्तव्यम् । साहिकायापुरिश्वते साहिका मोक्तव्या । माममध्ये उरिश्वते मामाद्धं मोक्तव्या । माममध्ये उरिश्वते मामाद्धं मोक्तव्यन् । मामयाद्धं द्वित्यते प्रामाद्धं मोक्तव्यन् । मामयाद्धं द्वित्यते प्रामाद्धं मोक्तव्यन् । मामयाद्धं द्वित्यत्याद्धं विद्याद्धं स्वत्यन्यत्यम् । उद्यानस्य मेक्तव्यन् । उद्यानस्य नेषेप्रवयाध्यानत्याते उचिष्ठति देवः परिहर्तव्यः । मेषेप्रवयाध्याद्धिते राज्यं परिहर्णायम् ॥ ५५४२ ॥ एवं तावत्रीयमानत्योत्यानं विश्वदक्तः । परिष्ठापिते च तस्मिन् ३० गाताश्यो प्रकस्मिन् पार्धं ग्रहृतं प्रतीक्षनते, कदाचित् परिष्ठापितोऽप्युचिष्ठेत् तत्र चायं विश्वः

वशंते जो उ कमो, कलेवरपवेसणस्मि वोचत्थो।

१ काले कियत्यपि गतेऽवसरं सक्त्वा वैरं पा° कं ।॥ २ वा' उपाभयवस्वाट° सं • ॥ इ॰ १८५

#### णवरं पुण जाजत्तं, गामदारम्मि बोद्धव्वं ॥ ५५४३ ॥

'क्रवतां' निर्मच्छतां कडेबरस्योत्याने यः कमी भणितः स एव विपर्यस्तः कडेबरस्य परि-ष्ठापितस्य भूषः प्रवेशने विज्ञेषः । नवरं पुनरत्र नानात्वं प्रामद्वरि बोद्धन्त्रप्, तत्र वैपरीत्यं न भवति किन्त तक्यतैविति भावः । तथा चात्र ष्रद्धसम्प्रदायः—

ठ निसीहियाए परिट्ठिनओ जह उद्देचा तस्थेन पडिज्ञा ताहे उनस्सओ मोचबो । निसीहियाए उज्ज्ञाणस्स य अंतरा पडह निर्नेसणं मोचबं । उज्जाणे पडह साही मोचबा । उज्जाणस्स य गामस्स य अंतरा पडह गामद्धं मोचबं । गाममञ्जे पडह मामी मोचबो । गाममञ्जे पडह मंडळं मोचबं । साहीए पडह देसलंडं मोचबं । निनेसणे पडह देसो मोचबो । नसहीए पडह रहे मोचबो । वसहीए

10 अत्र निर्गमने प्रवेशने च मामद्वारात्थाने मामत्याग एवोक्त इति मामद्वारे तुरुयतैव न वैपरीत्यम् ॥ ५५४३ ॥ अथ परिष्ठापितो व्यादिवारान् वसति प्रविशति ततोऽयं विधिः—

#### विद्यं वसहिमतिते, तगं च अण्णं च मुचते रजं। तिप्यभिति तिसेव उ. मुयंति रजाइँ पविसंते ॥ ५५४४ ॥

निर्युदो यदि द्वितीयं बारं वसर्ति प्रविद्यति तदा तचान्यच राज्यं मुच्यते, राज्यद्वय-15 मित्यर्थः । अथ 'त्रिप्रमृतीन्' त्रीन् चतुरो बहुशो वा वारान् वसर्ति प्रविद्यति तदा श्रीण्येव राज्यानि मुखेति ॥ ५५४४ ॥

अप्तिवाई बहिया कारणेहिं, तत्थेव वसंति जस्स जो उ तवो । अभिगहिया-ऽणभिगहितो, मा तस्स उ जोगपरिवृही ॥ ५५४५ ॥

यदि बहिरशिवादिभिः कारणैने निर्मेच्छन्ति ततस्त्रेव वसतां यस्य यत् सपेऽभिगृद्धीत-२० मनभिगृद्धीतं वा तेन तस्य दृद्धिः कर्तत्र्या, सा च योगपरिवृद्धिरभिधीयते । क्रिमुक्तं भवति !—ये नमस्कारमत्यास्यायिनस्ते गैरुणी कुर्वन्ति, गैरुणीक्रत्यास्यायिनः पूर्वार्द्धं कृत्वा शक्तो सत्यामाचाम्छं पारयन्ति, शक्तेरभावे निर्विकृतिकमेकासनकं यायद् द्यासनकमपि । यदाद चर्णिकृत—

सह सामस्ये आयंबिकं पारिंति, असह निज्वीयं एकासणयं, असमस्या सर्वाइयं पि ति । एवं पूर्वार्द्धमत्यास्त्यानिनश्चतुर्थम्, चतुर्थमत्यास्यातारः षष्टम्, षष्टपत्यास्यायिनोऽष्टमम्, एवं विस्तरेण विभाषा कर्तव्या ॥ ५५६५ ॥

एवं योगपरिद्विंद्धं कुर्वतामपि यदि कदाचिदुत्थाय आगच्छेत् तदाऽयं विधिः— अण्णाइहसरीरे, पंता वा देवतऽत्थ उडिजा।

काईय डब्बहत्येण, भणेज मा गुज्झर्या ! मुज्झा ॥ ५५४६ ॥ ३० गैतार्था (गा० ५५२५ )॥ ५५४६ ॥ अय व्यहरणद्वारमाह—

गिण्हइ णामं एगस्स दोण्ड अहवा वि होज सन्वेसि ।

१ °ञ्चति नाधिकानीति ॥ ५५४४ ॥ अधाशिवादिकारणं भिणत्वा बहिर्न निर्गच्छन्ति ततोऽयं विधिः—असि° कां० ॥ २ व्यास्थातार्धा कां० ॥

खिप्पं तु लोयकरणं, परिण्ण गणभेद बारसमं ॥ ५५४७ ॥
एकस्य द्वयोः सर्वेषां वा साध्नामसी नाम गृह्वाति 'मनेत्' कदान्विदप्येवं तदा तेषां
लोवः कर्तव्याः । ''परिष्ण'' ति प्रत्याख्यानं—तपः, तच 'द्वादलप्र' उपनासपञ्चकरूपं ते
कारापणीयाः । अथ द्वादशं कर्तुं कश्चिदराहिष्णुर्न शक्तोति ततो दशममष्टमं षष्ठं चतुर्थं वा
काराप्यते । गणमेदश्च क्रियते, गच्छाक्रिगत्य ते प्रथम् भवन्तीति भावः ॥ ५५५७ ॥
अथ कार्योसमीवानमाह—

चेइषरुवस्सए वा, हायंतीती धृतीओं तो विंति । सारवर्ण वसहीए, करेति सन्वं वसहिषाली ॥ ५५४८ ॥ अविधिषरिहुवणाए, काउस्सम्मो य गुरुसमीवस्मि ।

मंगल-संतिनिमिनं, यओ तओ अजित्सतीणं ॥ ५५४९ ॥

चैत्यगृहे उपाश्रये वा परिहीयमानाः स्तुतीस्ततः 'ज्ञुवते' भणन्ति । यावच तेऽवापि
नागच्छन्ति तावद् वसतिपाछो वसतेः 'सारवणं' प्रमार्जनं तदादिकं सर्वमपि कृत्यं करोति ।
श्रविधिपरिष्ठापनानिमिनं च गुरुसमीपे कायोत्सर्गः कर्तव्यः । वतो मङ्गळार्थं शान्तिनिमिनं
चाऽजिनग्रान्तिस्त्वो भणनीयः ।

अत्र चूर्णि:—ते साहुणो चेह्यवरे वा उबस्सए बा ठिया होजा । जह चेहयवरे तो 15 परिहायंतीहिं धुईहिं चेह्याइं वंदिता आयरियसगासे हरियावहियं पडिक्रमिउं अविहिपरि- हाविणयाए काउस्समां करिंति। ताहे मंगरू-संतिनिमित्तं अजियसंतिथओं। तओ अने वि दो थर हायंते कहूंति। उनस्सए वि एवं चेव चेहयवंदणवर्जा।

विशेषचूणिः पुनिरत्यम्—तञो आगम्म चेह्यघरं गच्छति । चेह्याणि बंदिचा संति-निमित्तं अजितसंतिथञो परियष्टिज्जइ तिन्नि वा थुईओ परिहायंतीओ किष्कुज्जति । तञो 20 आगंतुं आयरियसगासे अविहिपरिहावणियाए काउस्सगो कीरह ॥ ५५४८ ॥ ५५४९ ॥ (अन्यामम्—४००० । सर्वेमं० ३७८२५)

अथ क्षपण-स्वाध्यायमार्गणाद्वारमाह---

समणे य असज्झाप, रातिणिय महाणिणाय णितए वा ।
सेसेसु णरिव खमणं, णेव असज्झाह्यं होइ ॥ ५५५० ॥
यदि 'राक्रिकः' आचार्थादिः अपरो वा 'महानिनादः' ठोकविश्वतः काल्यानो मवति, 'निजका
वा' संज्ञातकास्त्रत्र त्यांच्याः सन्ति ते महतीमधृर्ति कुर्वन्ति, तत एतेषु क्षपणमस्राध्यायिकं च
कर्तन्य । 'रोषेषु' साञ्चषु काल्यातेषु क्षपणमस्राध्यायिकं च न मवति ॥ ५५५० ॥
व्यक्तर्यनेतामग्रह----

उचार-पासवण-खेलमत्तमा य अत्यरण क्रस-पलालादी ।

१ प्रन्थाप्रम्—४००० ॥ छ ॥ कन्यवृत्तितृतीयसंडं समाप्तम् ॥ छ ॥ प्रन्थाप्रं एवं समप्र १२५४० ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ शुभं भवतु कल्यावामस्तु ॥ लेखकपाठकयोः । लिपितं ॥ छ ॥ ॥ श्री ॥ छ ॥ श्री ॥ ॥ ॥ ॥ छ ॥ श्री ॥ ओ० ॥

संयारया बहुविधा, उज्झंति अणण्णगेलको ॥ ५५५१ ॥

यानि तस्योचार-प्रश्नवप-सेळमात्रकाणि ये चात्तरणार्थं कुरा-पठाठादिमया बहुविधाः संस्तारकास्वान् सर्वानपि उच्छान्ति "जणक्रगोठल" चि यदान्यस्य गठानस्यं नास्ति, अधापरोऽपि म्हानः कश्चिदस्ति ततस्तदर्भं तानि मात्रकादीनि व्रियन्त इति मावः॥ ५५५१॥

> अहिगरणं मा होहिति, करेड संबारगं विकरणं तु । सन्ववहि विगिचंती, जो छेवहतस्स छित्तो वि ॥ ५५५२ ॥

''छेबइजो'' अधिबग्रहीतः स यदि मृतः तदा येन संसारकेण स नीतः तं विकरणं कुर्बन्ति, सण्डसः इत्वा परिष्ठापयन्तीत्यर्थः। कुतः! इत्याह—अधिकरणं ग्रहस्थेन ग्रहीते प्रान्तदेवतया वा पुनरप्यानीते भवेत् तद् मा भूदिति इत्वा विकरणीकियते। यथा तदीय 10 उपधिरयरो वा तेन स्वयुषा छुससं सर्वेमि परिष्ठापयन्ति॥ ५/५५२॥

असिवरिम णिरिथ खमणं, जोगविवद्वी य णेव उस्सम्मी । उबयोगऊं तलितं, णेव अहाजायकरणं त ॥ ५५५३ ॥

अवरज्जुगस्स य ततो, सुत्त-ऽत्थविसारएहिँ थेरेहिं । अवलोयण कायन्त्रा, समा-ऽसभगती-निमित्तद्रा ॥ ५५५४ ॥

 ततोऽस्य काळगतस्य 'अपरेखुः' द्वितीये दिवसे सूत्रा-ऽर्धनिशारदेः स्यविरेः शुभा-ऽशुभ-गति-निमित्तज्ञानार्थमवलोकनं कर्तव्यम् ॥ ५५५४ ॥ क्षेत्रम् ! इत्याह—

जं दिसि विगेष्ठितो खलु, देहेणं अक्सुएम धीनक्से । तं दिसि मिनं वर्दती, उन्हरूपनिकारण धीरा ॥ ५५५५ ॥

यसां दिश्चि स शिवादिभिराकर्षितोऽक्षतेन देहेन सन्तिष्ठेत् तस्यां दिश्चि सूत्रा-ऽर्शविद्यास्दा २० पीराः ''शिवं' सुमिक्षं सुस्रविद्यारं च बदन्ति ॥ ५५५५ ॥

जति दिवसे संचिक्खति, तित वरिसे धातगं च खेमं च। विवरीए विवरीतं, अकड्डिए सन्वहिं उदितं ॥ ५५५६ ॥

'यति' यावतो दिवसान् यस्यां दिशि अक्षतदेहस्तिष्ठति 'तति' तावन्ति वर्षाणि सस्यां दिशि प्रातं च क्षेमं च भवति । < प्रातं नाम—धुमिश्रम् , क्षेमं तु—परचकाञ्चपष्ठवाभावः । ▷ ३० अथ क्षतदेहः सङ्गातः ततः 'विपरीते' क्षतदेहे विपरीतं मन्तव्यम् , यस्यां दिशि क्षतदेहो

१ तत्र गतिः ग्रुभा-ऽशुभसस्या पश्चार्याभधास्यते, निमित्तं शुभा-ऽशुभं ताबदाह दल-वतरणं कं • ॥ २ °गहियं सत्यु, सरीरमं अक्खतं तु सं° तामा• ॥ ३ हिावं वदन्ति । क्षियं नाम—सुमिक्षं सुखविद्यारं चेति ॥ ५५५५॥ कं • ॥ ४ ৺ ▷ एतदस्तरीतः पाठः कं • एव दनेते ॥

नीतस्तत्वां दुभिक्षादिकं भवतीति भावः । अव नात्यत्राहृष्टः किन्तु तन्नैवाश्वतस्तिष्ठति ततः सर्वत्र 'इदितं' दुभिक्षं सुत्वविद्यारं च द्रष्टव्यम् ॥ ५५५६॥ एतद् निमृषं कस्य सुश्यते । हस्यादः—

स्तमगस्साऽऽयरियस्सा, दीहपरिण्णस्स वा निमित्तं तू । सेसे तघऽण्णधा वा. ववहारवसा इमा य गती ॥ ५५५७ ॥

> थलकरणे वेमाणितों, <mark>जोतिसिजो बाणमंतर सबन्मि ।</mark> गङ्गाएँ मवणवासी, एस गती से समासेणं ॥ ५५५८ ॥

यदि तस्य शरीरकं खले कृतं—शिवादिभिरारोषितं तदा वैवानिकः सञ्जात इसि अन्तन्यम् । 10 समय्भागे नीतस्य ज्योतिण्केषु व्यन्तरेषु वा डपपातो होयः । गर्तायां नीते अवनवासिषु यत इति अर्वेमन्तव्यम् । एवा गतिः समासेन तस्याभिष्टिता ॥ ५५५८ ॥

व्यारुयातास्त्रिसोऽपि द्वारगाथाः । अथात्रैव प्रायश्चित्तमाह---

एकेकम्मि उ ठाणे, हुंति विवसासकारणे गुरुगा ।

आणाहणी य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽयार ॥ ५५५९ ॥ एवाँ प्रत्युवेक्षणादीनामेकै रुसिन, स्थाने विषयीसं कुर्वता चत्यारो शुरूकाः, व्यक्षण्यक्र दोषाः, संयमा-ऽऽस्मविराधना च द्रष्टच्या ॥ ५५५९ ॥

एतेण सुत्त न गतं, सुत्तनिवातो तु दन्त सामारे । उद्गवणिम नि रुहुगा, छहुने रुहुगा अतियने व ॥ ५५६० ॥

यद् एतद् ह्यास्करम्भक्तनन्तरं व्यास्थातम् एतेन स्त्रं न गतं किन्तु सासम्भारिकापनार्षं अध्
सर्वमैतत्त्त्त्तम् । किं पुनसार्षत्र स्त्रे पक्ततम् ! इत्याह—स्त्रनिपातः पुनः सामारिकअस्तेः
वहनकाष्ठव्यणे द्रव्ये भवेति । रात्रौ कारुगते यदि बहनकाष्ठानुकापनाव सामारिकअस्वावक्षित
तदा चतुर्वेषु अरहष्ट्रयोजनादयस्य दोषाः तसाकोत्यापनीयः किन्तु सदि एकोऽपि कश्चिद्
वैयान्नुत्यकरः समर्थसाद् बोर्जु ततः काष्ठं न गुष्ठते । अधासमर्थस्ततो यावन्तः शक्तुनित
ताबन्तः तन काष्ठेन वहनित । अध्य बहनकाष्ठं तत्रैव परिष्ठाप्यागच्छन्ति तदाक्षि चतुर्केषु, अप- ३४
रेण च गृष्टितिऽधिकरणम्, सागारिको स तत् अपदम्य, 'यतेः शक्यस्त्रम्यं सीस्य तमेव सदित्यक्तम्' इति मस्या मिद्वष्टः व्यवच्छेद-करकमदीदिकं कुषीत् , तस्मादानेवश्मस् । सदि
प्रानानीय तेन गृष्टीतेवैव अतिगमनं—मवेशं कुषीत्त तदाऽपि बद्धकेषु क्ष ५५६० ॥
पते च वोषाः—

मिन्छचऽदिश्वदाणं, समलावन्यो दगंछितं चैव ।

रे गतिः ग्रुमा-प्रशुप्तसकत्पा प्रति' कं ।॥ २ 'बगन्त' मै० के ॥ ३ 'बगं महास्यण्डिल-प्रत्युचेक्रणा-विभ्यागमह-णन्तकजारणादीनां द्वाविद्यतेः स्वानामामेकै स्व ॥ ॥ ॥ वित । कथम् १ हत्याह—"उट्टबन्नस्य वि" हत्याहि, रात्री सं० ॥

दिय रातों आसितावण, बोच्छेओ होति बसहीए ॥ ५५६१ ॥

सागारिकस्तत् काष्ठं प्रवेश्यमानं दृष्ट्य मिथ्यात्वं गच्छेत्, एते भणन्ति — अस्माकमदत्त-स्वादानं न कहपते; यवैतदलीकं तथा अन्यद्रप्रशीकमेव । अथवा ब्रूयात् — समला अमी, अस्विसरजस्कानामप्पुपरिवर्तितः; एवनवर्णो भूयात् । 'जुपुप्सतं वा' जुपुप्सां स क्रुयात् — ३ म्हतकमूद्वा मम गृहमानयन्ति । ततो दिवा रात्रो वा साधूनां ''आसियावणं'' निष्काञ्चनं क्रुयात्, सतसेश्च व्यवच्छेदं 'नातः परं ददाभि' हत्येकस्यानेकेषां वा क्रुयात् ॥ ५/५६१ ॥ यत एते दोषा अतोऽयं विधिः—

### अइगमणं एगेणं, अण्णाएँ पतिह्रवेंति तत्थेव ।

णाए अणुळोमण तस्स वयण बितियं उद्घाण असिवे वा ॥ ५५६२ ॥

एकेन साधुना मबमम् 'अतिगमने' भवेशनं कार्यम्, यदि सागारिको नावाप्युचिष्ठते तत

एवमज्ञाते काष्ठमानीय यतो गृहीतं तंत्रेव मतिष्ठापयन्ति । अथ सागारिक उत्थितस्ततस्तामो

निवेषते—यूयं मसुमा इति कृत्वा नास्मामिरस्थापिताः, रात्री साधुः कारुगतः युग्नदीयकाष्ठेन निष्काशितः, साम्मतं तदानीयतां उत परिष्ठाप्यताम् । एवमुके यद् असी भणित तत् ममाणम् । अथ तैः पूर्वमज्ञायमानैः स्थापिनं सागारिकेण च पश्चात् कथमि ज्ञातं ततः

10 कुपितस्तानुकोमनं विवेषम् । अथ मज्ञाप्यमानस्यापि तस्य वस्त्रमाणं वयनं भवित नत्रा गुरुषः,

स साधुनिष्काशनीय इति रोषः । द्वितीययेदै उत्थितोऽसी मामः अशिवगृहीतो बाऽसी ततस्त्रीव परिष्ठापयेत्, न सागारिकस्य मत्यपेयेत्॥ ५५६ ॥ अथ सागारिकवचनं दर्शयित—

जइ नीयमणापुच्छा, आणिजति किं पुणो घरं मज्झ । दुगुणो एसऽवराघो, ण एस पाणाळओ भगवं ! ॥ ५५६३ ॥

20 यदि अस्ताकमनाष्ट्रच्या नीतं ततः किमध्यितानी पुनरित मदीयगृहमानीयते ? एप द्विगु-णोऽपराधः, न चैप भगवन् ! मदीय आवासः पाणानी-मातक्कानामाव्यो यदेवं मृतकोपकरण-मजानीवन् ॥ ५५६ ॥ एवमके गृहगिर्वकत्यम्----

> किमियं सिट्टिम्म गुरू, पुरतो तस्सेव णिच्छुमति तं तू। अविजाणंताण कयं, अम्ह वि अण्णे वि णं बेंति ॥ ५५६४ ॥

किमिदं इचान्तजातमसूत् ! । ततः शेषसाधुभिः शस्यातरेण वा गुरूणां शिष्टम् अधुकेन साधुना अनाष्ट्रच्छया कार्ध नीतम् । ततो गुरवः 'तत्वेव' शस्यातरस्य पुरतः 'तं' साधुं 'किम-नाष्ट्रच्छया नयसि !' इति निर्मर्त्य कैतवेन निष्काशयन्ति । अन्येऽपि साथवः ''ण'मिति तं शस्यातरं शुवते —असाकमप्यविज्ञानतामेवमसुना कृतम्, अन्यया ज्ञानन्तो वयमपि कर्तुं न द्या इति ॥ ५५६ ।।

वारेति अणिच्छुमर्णं, इहरा अण्णाऍ ठाति वसहीए । सम णीतो णिच्छुमर्हं, कहतव कलहेण वा वितिओ ॥ ५५६५ ॥ यदि सागारिकः 'वारयति' 'मा निष्काशयत, नैवं मूयः करिप्यति' इति ततः 'अनिष्का-

१ °पदमत्र भवति, कथम् ? इति अत आह-"उट्राण" सि उत्थि कां ।।

15

शनं' न निष्काश्यते । 'इतरथा' अवारयति सागारिकेऽन्यस्यं वसतौ तिष्ठति । द्वितीयश्च साथुः 'कैतवेन' मातृक्षानेन भणति—मम निजको यदि निष्काश्यते ततोऽहमपि गच्छामि । सागारिकेण वा समं कोऽपि कळ्हयति ततः सोऽपि निष्काश्यते, स च तस्य द्वितीयो भवति ॥५९६५॥

## ॥ विष्वरभवनप्रकृतं समाप्तम् ॥

#### अ धिकरण प्रकृत म

सूत्रम्---

भिक्स् य अहिकरणं कहु तं अहिगरणं अविओसविचा नो से कप्पइ गाहावइकुळं भत्ताए वा पाणए
वा निक्खमित्तए वा पविस्तित्तए वा, बिह्या वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तिए वा, गामाणुगामं वा दृइजित्तए, गणातो वा
गणं संकमित्तए, वासावासं वा वरथए। जरथेव
अप्पणो आयरिय-उवज्झायं पासेज्ञा बहुस्पुयं बब्भागमं तस्संतिए आलोइज्ञा पिककिमिज्ञा निंदिज्ञा
गरिहज्ञा विउद्देज्ञा विसोहेज्ञा अकरणयाए अब्भुदुज्ञा आहारिहं तवोकम्मं पायच्छितं पिडवज्जेज्ञा।
से य सुएण पद्विष् आईअव्वे सिया, से य
सुएणं पट्टविष् नो आदिइतव्वे सिया, से य
सुएणं पट्टविष् नो आदिइतव्वे सिया, से य
सुएणं पट्टविष् नो आइयइ से निज्हिस्यव्वे
सिया ३०॥

अस्य सम्बन्धमाह----

केण कयं कीस कयं, णिच्छुन्भऊ एस किं इहाणेती ।
एमादि गिहीतुदितो, करेज कलहं असहमाणो ॥ ५५६६ ॥
केनेदं बहनकाष्ठानयनं कृतम् ? कसाद्वा कृतम् ? निष्कास्यतामेषः, किमथेमिहानयति ?;
एबमादिभिवेचीभिर्गृहिणा तुदितः-च्यियतः कश्चिदसहमानः कलहं कुर्यात् । अत इदमिद-26
करणस्वतमारस्यते ॥ ५५६६ ॥

१ °के उपकरणं स्वकीयं गृहीत्वाऽन्य° कां॰॥

**क्रमेन सम्बन्धेनाबातस्यास्य व्या**ख्या---'मिश्चः' प्रागुक्तः, चशब्दाद् उपाध्यायादिपरिमहः, 'अधिकरण' कक्ट करवा नो करपते तस्य तदधिकरणमञ्यवशमय्य गृहपतिकुलं भक्ताम वा शानाम वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, ⊲ वैहिविचारमूमी वा विहारमूमी वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्ट्रं वा, ⊳ ग्रामानुग्रामं वा 'द्रोत्रं' विहर्तुम् , गणाद्वा गणं सङ्कमित्रम् , वर्षावासं वा ь बस्तम । किन्त यत्रैवात्मन आचार्योपाध्यायं परमेत : कथम्भूतम् ? 'बह्रश्रतं' छेदमन्यादिकश्रलं 'बहागमम्' अर्थतः प्रभुतागमम् : तत्र तस्यान्तिके 'आक्रोचयेत्' खापराघं वचसा प्रकटयेत् , 'मतिकामेव' मिध्यादच्कृतं तद्विषये दचात्, 'निन्चाद' आत्मसाक्षिकं जुगुप्सेत, 'गहेंत' गुरु-साक्षिकं निन्धात । इह च निन्दनं गर्हणं वा तात्त्विकं तदा भवति यदा तत्करणतः प्रति-निवर्तते तत आह—'व्यावर्तेत' तस्मादपराधपदाद् निवर्तेत । व्याश्चावपि कृतात् पापात् 10तदा मुच्यते बहाऽऽत्मनो विशोधिर्भवति तत आह-आत्मानं 'विशोधयेत' पापमलस्फेटनतो निर्महीकर्यातः । विश्वद्धिः पुनरपुनः करणतामासुषपद्यते ततस्तामेवाह- अकरणता-अकरणीयता तया अभ्यतिहेत । पनरकरणतया अभ्यत्थानेऽपि विशोधिः प्रायश्चित्तपतिपत्त्या भवति तत आह--- 'यथाई' यथायोग्यं तपःकर्म प्रायश्चित्तं प्रतिपद्येत । 'तच्च' प्रायश्चित्तमाचार्येण 'श्रुतेन' श्रुतानुसारेण यदि 'प्रस्थापितं' प्रदत्तं तदा 'आदातव्यं' प्राह्मं 'स्याद' भवेत् , अथ 15 श्रुतेन न प्रसापितं तदा नादातव्यं स्यात्, 'स च' आलोचको यदि श्रुतेन प्रशाप्यमानमप तत पायश्चित्तं 'नाबदाति' न प्रतिपचते ततः सः 'निर्यहितव्यः' 'अन्यत्र शोधिं करुप्य' इति निषेधनीयः स्यादिति सन्नार्थः ॥ अथ भाष्यविस्तरः---

## अचियत्तकुरुपवेसे, अतिभूमि अणेसणिजपिरतेहे । अवहारऽमंगलुत्तर, सभावअचियत्त मिच्छते ॥ ५५६७ ॥

कथमधिकरणमुख्यम् ! इत्यस्यां जिज्ञासायामिभीयते— कांसिश्चित् कुले साथवः प्रवि-शन्तोऽमीतिकराः तत्राजानतामनामोगाद्वा प्रवेशे स गृहपतिराकोशोद्धा हन्याद्वा, साधुरप्यसह-मानः प्रत्याकोशेत् ततोऽधिकरणमुख्यते । एवमतिसूमि प्रविष्टे, अनेषणीयभिक्षाया वा प्रति-षेषे, शैक्षस्य वा संज्ञातकस्यापहारे, यात्राप्रस्थितस्य वा गृहिणः साधुं दृष्ट्वाऽमक्रकमिति प्रतिपत्ते, समयविचारेण वा प्रस्तुतरं दातुमसमर्थे गृहस्थे, स्वमावेन वा काऽपि साधी 'अचियते' अनिष्टे 26 दष्टे, अभिम्रहमिथ्याहष्टर्वा सामान्यतः साधी अवलोकिते अधिकरणमुख्यते ॥ ५५६० ॥ ।

## पिंडसेधे पिंडसेधो, भिक्ख वियारे विहार गामे वा । दोसा मा होज बहु, तम्हा आलोयणा सोधी ॥ ५५६८ ॥

भगवद्भिः प्रतिपिद्धम्—न वर्तते साधूनामधिकरणं कर्तुष् । एवंविधे प्रतिभेषे भृयः प्रति-पेषः कियते—कदाचित् तद् अधिकरणं गृहिणा समं कृतं भवेत् , कृत्या च तस्मित् अनुप-४० शमिते भिक्षायां न हिण्डनीयम् , विचारम्मी विहारम्मी वा न गन्तव्यम् , शामानुभामं वा न विहर्तव्यम् । कुतः ! इत्याह्—मा 'बहुनः' बन्धन-कटकमर्दादयो दोषा भवेयुः । तस्मात् तं

१ < २० एतिश्वहान्तर्गतः पाठः मा० एव वर्तते ॥ २ एवमेभिः प्रकारैः गृहिणा सममधिकरणे उत्पन्ने सति विधिमाह श्ववतरणं कां०॥

मृहसमुपसम्ब्य गुरूणामन्तिके आकोषमा दातव्या । ततः शोषिः वृतीच्छनीया ॥ ५५६८॥ इदमेव भाववति—

> अहिनरण गिहत्थेहिं, ओसार विकडुणा य आवम्लं । -आछोपण पत्थवनं, अपेसणे होति चडलहना ॥ ५५६९ ॥

गृहस्थैः सममिषकरणे उत्पन्ने द्वितीयेन साधुना तत्य सामोपसारणं कर्तव्यम् । अथ नाप- इ सरति ततः "विक्षमुणा य" वि बाही गृष्टीत्वाऽऽकर्षणीयः, दृदं च वक्तव्यम् — न वर्तते मम स्वया साधिकरणेन समं निक्षामिटितुम् अतः मतिश्रयोपिर निवर्तावहे । एवद्यक्तवा मतिश्रयमा-गम्य गुरूणामाठोवनीयम् । ततो गुरुभिरुपशमनार्थं वृषभास्तस्य गृहसस्य मूले प्रेषणीयाः । बिद् न प्रेषयन्ति तदा चतुर्वसु ॥ ५५६९ ॥

> आणादिणो य दोसा, बंधण णिच्छुमण कडगमहो य । बुग्गाहण सत्थेण न, अगणुवगरणं विसं नारे ॥ ५५७० ॥

आज्ञात्यश्च बोषाः । स च गृहस्यो येन साधुना सहाधिकरणं जातं तस्य व्यनेकेषां वा साधुनां वन्धनं निष्काशनं वा कुर्यात् । 'कटकमर्यो नाम' सर्वानिष साधुन् कोऽपि व्यपरोपयेष् । स्युद्धाहणं वा कोकस्य कुर्यात्—नास्त्यमीषां दचे परकोकफलस्, यद्वा श्रमी संज्ञां व्युत्यस्य विकिरन्ति न च निर्केपयन्ति । सहादिना वा शक्केण साधुनाहन्यात्, अमिकायेन वा प्रतिश्चयं 15 दहेत्, उपकरणं वा अपहरेत्, विष-गरादिकं या दद्यात्, भिक्षां वा वारयेत् ॥ ५५००॥

तच वारणमेतेषु स्थानेषु कारयेत्-

रक्षे देसे गामे, णिवेसण गिहें णिवारणं कुणति ।

जा तेण दिणा हाणी, कुरु गण संघे य परवारो ॥ ५५७१ ॥ राज्ये सक्लेडपि निवारणं कारयेत्—परोषां भक्तपुर्धि वसति वा मा दवात् । एवं देसे 20 मामे निवेशने गुढे वा निवारणं करोति । ततो या 'तेन' भक्तादिना विना परिहाणि: तां हुए-भान् अभिययन् गुरु: प्रामोति । अथवा यः प्रभवति स कुरुस गणस्य सङ्क्षस्य वा 'प्रस्तारं' विद्योग विनाशं कुर्यात ॥ ५५७१ ॥

> ध्यस्य णित्थ दोसो, अपरिक्लियदिक्लगस्य अह दोसो । पश्च कुजा पत्थारं, अपभू वा कारवे पश्चणा ॥ ५५७२ ॥

मृहस्यक्षिन्त्वति—'पतस्य साथोर्नास्ति बोषः किन्तु व एतमपरीक्ष्य दीक्षितवान् तस्यायं बोषः, अतस्यनेव बासवासि' इति विश्वन्त्य प्रशुः स्वयनेव मस्तारं कुर्यात् । अपशुरिष द्रव्य राजकुले दस्या प्रभुषा कारापयेत् ॥ ५५७२ ॥ यत एते वोषाः—

तम्हा खलु पहुन्नर्ण, पुन्नं नसमा समं च नसमेहिं । अपुकोमण पेच्छायो, णेति अणिच्छं पि तं नसमा ॥ ५५७३ ॥

अणुक्तीमण पेच्छायो, पाँति अपिच्छा पि तं बसमा ॥ ५५७३ ॥ तस्तात् वृदनाणां तत्र प्रसापनं कर्तव्यम् ॥ "पुन्नं" ति येन साधुनाऽधिकरणं इतं तं साववृ ने पेपयन्ति साववृ बुम्माः पूर्वं प्रजापयन्ति । किं कारणप् १ उच्यते—सः गृहस्थतं इम्न क्वाविवाहन्याय् । स्था ज्ञायते 'नावृनिच्यति' ततो वृप्यैः समं तमपि भेपयन्ति । तत्र १०१८

गतासानुरूख्यचोभिः 'अनुलोमनं' प्रगुणीकरणं तस्य कुर्वन्ति । अवासौ गृहस्यो मृयात्— धानवत तावत् तं कल्हकारिणं येनैकवारं पश्यामः पश्चात् समिष्ये न वा । ततो इत्यसासद-भिमार्य ज्ञास्ता तं साधुं गृहिणः समीपमानयन्ति । ध्यासौ साधुर्नेच्छति ततो बळादपि इष-भास्तं तत्र नयन्ति ॥ ५५०३ ॥ ते च वृषमा हृदयागृयुक्ताः प्रसाप्यन्ते—

> तस्संबंधि सुही वा, पगता ओयस्सिणो गहियवका। तस्सेव सुहीसहिया, गर्मेति वसभा तगं पुट्यं ॥ ५५७४ ॥

तस्य—पृष्टिणः संयतस्य वा सम्बन्धिनः सुद्धदो वा ते भवेषुः, 'पगताः' लोकपसिद्धाः 'ओजस्विनः' वलीयांसः 'गृहीतवाक्याः' आदेयवचसः, ईदशा वृष्याः 'तसीव' गृहिणः सुद्धद्विः सहिताः 'तकं' गृहरू पूर्व 'गमयन्ति' मज्ञापयन्ति ॥ ५५७८ ॥ कथम् ! इत्याह——

गो निज्यस्मिति साहः आग्रागित ने च जन्मसि ग्रामितं ।

सो निच्छुन्मति साहू, आगरिए तं च जुज्जिस गमेतुं । नाऊण वत्युभावं, तस्स जती णिति गिहिसहिया ॥ ५५७५ ॥

येन साधुना त्वया सह करुहितं स साधुपाचार्यैः साम्प्रतं निष्कावयते, अस्परीयं च वचो गुरवो न सुष्ठु शृष्वन्ति, अत आचार्यान् गमियतुं स्वं 'युज्यसे' युक्तो भवसि । एवयुक्ते यद्याचार्यं गमयति क्षामयति च ततो रुष्टम् । अथ मृते—पदयामस्तावत् तं करुहकारिणम् ; 
16 ततो ज्ञात्वा वस्तुनः—गृहस्यस्य भावं—'किमयं हन्तुकामस्तमानाययति ! उत क्षामियतुकामः !' 
एवमभिमायं ज्ञात्वा तस्य ये सुहदस्तैगृहिभिः सहिता यत्वयस्तं साधुं तत्र नयन्ति ॥ ५५०५॥ अष्वासौ गृही तीत्रकषायत्या नोपशाम्यति ततस्तस्य साधोगेच्छस्य च रक्षणार्थमयं विधिः—

वीसुं उवस्सए वा, ठवेंति पेसंति फड्डपतिणो वा । देंति सहाते सन्वे. व णेंति गिहिते अणवसंते ॥ ५५७६ ॥

अ 'विष्वग्' अन्यसिष्वपाश्रये तं साधुं स्थापयन्ति, अन्यमामे वा यः स्पर्वक्रपतिस्तालान्तिके प्रेषयन्ति । निर्गेच्छतम्र तत्य सहायान् ददति । अथ मासकल्यः पूर्णस्ततः सर्वेऽपि 'निर्मन्ति' निर्गेच्छन्ति ॥ ५५७६ ॥ एष गृहस्थेऽनुपन्नान्ते विभिः । अथ गृहस्थ उपन्नाम्यति न साधु-सदा तसेदं प्रायधिवम्—

अविओसियम्मि लहुगा, भिक्ख वियारे य वसहि गामे य । गणसंक्रमणे भण्णति, इहं पि तत्थेव बचाहि ॥ ५५७७ ॥

श्विकरणेऽव्यवशिमते यदि भिन्नां हिण्डते, विचारमूर्मि निहारमूर्मि वा गच्छति, वसतेर्निर्गत्यापरसाधुनसर्ति गच्छति, प्रामानुपामं विहरति; एतेषु सर्वेषु चतुर्वेषु । अधापरं गणं सङ्कामति तत्तत्वेरन्यगणसाधुभिभंण्यते—इहापि गृहिणः क्रोधनाः सन्ति तत्तत्त्वेत अज्ञ ॥ ५५५७०॥ इदमेव गुज्यक्ताह—

ं इह वि गिही अविसहणा, ण य नोच्छिण्णा इहं तुह कसाया । अमेसि पाऽऽयासं, जणहस्सति वच तत्थेव ॥ ५५७८ ॥

'इहापि' ग्रामे गृहिणः 'अविषहणाः' क्रोधनाः सन्ति, न चेह समागतस्य तब कवाया ध्यबच्छिकाः, अतः 'अन्येषामपि' अस्मदादीनामायासं जनयिष्यसि तस्मात् तत्रैव त्रजः॥४५७८॥ सिट्टम्मि न संगिष्हति, संकंतम्मि उ अपेसणे रुघुगा । गुरुगा अजयणकहणे, एगतरपतोसतो जं च ॥ ५५७९ ॥

अनुषवान्ते साथै गणान्तरं सङ्कान्ते मृद्धाचार्येण साधुसङ्घाटकस्तत्र प्रेषणीयः । तेन च सङ्घाटकन् 'शिष्टे' कथिते सित द्वितीयाचार्यो न सङ्गुद्धीयात् । अय मृद्धाचार्यः सङ्घाटकं न प्रेषयति तदा चतुर्वेषु । सङ्घाटको यद्ययतनया कथयति ततस्तुर्वेषु । अयतनाकषनं नाम- । बहुजनमध्ये गत्वा भणति — एष निर्धर्मा गृहिभिः सममिषकरणं कृत्वा समायातः, सकले- नापि गच्छेन मणितो नोपशान्तः । एवमयतनया कथिते स साधुरेकतरस्य—गृहिणः साधु-सङ्घाटकस्य मृद्धाचारस्य वा प्रदेषतो यत् करिष्यति तिष्ठण्यकं प्रायक्षित्तम् ॥ ५५७९ ॥

तसादयं विधिः---

उनसामितो गिहत्थो, तुमं पि लामेहि एहि नवाहि ।

दोसा हु अणुनसंते, ण य सुन्वति तुन्व सामहगं ॥ ५५८० ॥

पूर्व गुरूणोमेकान्ते कमिल्ला ततः लयमेकान्ते स भण्यते—उपशामितः स गृहत्वः,

एहि नजामः, लमि तं गृहत्वं क्षामय, अनुपशान्तत्येह परत्र च बहनो दोषाः, सममानः

सामायिकं तवैर्वं सक्षायत्य मनतः 'न गुज्यति' न गुद्धं मनति । एवमेकान्ते भणितो बदि

नोपशान्यति ततो गणमप्येऽवमेन भणनीयः॥ ५५८०॥ ततोऽपि कन्निकान्ते भणितो मित्रभेताः

प्रायत खनेति जिन्तयेत 'तस्य गृहिणो निसिनेनेहाय्यकान्नं न कमे' ततः—

तमतिमिरपडलभूतो, पावं चितेइ दीहसंसारी । पावं ववसिजकामे, पच्छिते मग्गणा होति ॥ ५५८१ ॥

कृष्णचतुर्दशीरजन्यां भासरह्रव्याभावस्तम उच्यते, तस्वामेव च रात्री यदा रजो-धूम-धूमिका भवति तदा तमस्तिमिरं भण्यते, यदा पुनस्तस्यामेव रजन्यां रजःप्रमृतयो मेयदुर्दिनं च 20 भवति तदा तमस्तिमिरपरक्सिभिषीयते । यथा तत्रैवासकारे पुल्यः किस्तिष्ठित न पद्यति एवं यस्तीव-तीव्रतर-तीव्रतर्यन कथायोवयेनान्यीपूर्तः स तमस्तिमिरपरक्रम्तो भण्यते, यूत्रस्वस्तर्यन्ते रोपमार्थवाचकस्ता । एवन्युत्तसे-एपर्कोकिट्सपरस्यत् वीचेसंसारी तस्य गृहस्तस्योपरि 'पापय्' 'ऐस्वर्याद् जीविताह्य अंदायिष्यामि' इति रूपं चिन्तयति । एवं च पापं कर्त्वं व्यवसिते तस्य-नियं प्राथियोदं मार्गणा मवति ॥ ५५८९ ॥

नवामि ववमाणे, चउरो रुहुगा य होंति गुरुगा य ।
उमिग्जाम्मि य छेदो, पहरणें मूर्लं च जं जत्य ॥ ५५८२ ॥
'प्रजामि, तं गृहसं रुपरोपयामि' इति सङ्करो चतुर्वेषयः । पदमेदावारस्य पवि वजतअतुर्गुरवः । यहि-कोष्टादिकं महरणं मार्गयति पद्छपयः । महरणे रूक्ये गृहीते च पहुरदः ।
उद्गीणें महारे छेदः । महारे पतिते यदि न प्रियते नरिक्ष्य एव । जय स्वत्यस्य । ७०
यव यत्र यदितापगदिकं सम्यवित तत्र तत्र बक्क्यम् ॥ ५५८२ ॥ एते चापरे कोषाः—

१ 'ति तस्य साम' तामा- विना ॥ २ 'तः सन् कुत्यमकस्यं वा न किमपि पदयति स तम' कं । ॥ ३ पापं 'ब्यवसित्यकामे' कर्तमनसि तक्षि' कं ।॥

तं केव जिद्रवेती. बंधण णिल्ल्मण कटनमही य । आयरिए गुच्छम्मि य, इस गण संघे य परधारी ॥ ५५८३ ॥

स गृहस्यः 'सं' संयतं वधार्थमागतं रष्टा कदाचित् तत्रैव 'निष्ठापयति' व्यापादमति, d पेकिस क्रमापस्ति. > ग्राम-नगरादेश निर्द्धाटयति, कटकमदेन वा मुद्राति, अवना 5 'कटकमर्दः' एकस्य रुष्टः सर्वेमपि गच्छं व्यापादयति, यथा पालकः स्कन्दकाचार्यगच्छन्।' अध्या बन्धन-निक्काशनादिकमाचार्थस्यापरगच्छस्य वा करोति । तथा कुलसम्बायं कृत्वा **इकस्य बन्धमादिकं** कुर्यात , एवं गणस्य वा सङ्ख्य वा । एव प्रस्तारः ॥ ५५८३ ॥

व्यमेकाकिनो अजत आरोपणा दोषाश्च मणिताः । अथ सहायसहितस्यारोपणामाह-

संजतगणे गिहिगणे. गामे नगरे व देस रखे य।

अहिबंति रार्यक्रलम्मि यः जा जहिं आरोबणा भणिया ॥ ५५८४ ॥ 10 बडवः संबताः संयतगणः तं सहायं गृह्वाति । एवं गृहिगणं वा सहायं गृहाति । स च गृहिगणो मामं वा नगरं वा देशो वा राज्यं वा मवेत . मामादिवास्तव्यजनसमुदाय इत्यर्थः । एतेषां वा संबतादीनां येऽधिपतयस्तान् वा सहायत्वेन गृह्याति, अध्यद्वा राजकुरुं गृहीत्वा गच्छति, यथा कालकाचार्येण श्वकराजवृत्दम् । अत्र नैकाकिनो या 'यत्र' सहस्पादावारोपणा 25 मणिता सेवेहापि द्रष्टच्या ॥ ५५८४ ॥ एतदेव व्याच हे-

> संजयगणी तदिवा. गिही त गाम पर देस रक्ते वा । एतेसिं चिय अहिवा, एगतरज्जती उभयती वा ॥ ५५८५ ॥

'संयतगणः' प्रतीतः । तेषां-संयतानामिषपः तद्धिपः, आचार्य इत्यर्थः । ये तु गृहिणसी शाम-पूर-देश-राज्यवास्तव्याः एतेषामधिपतयो वा मवेदाः। तत्र श्रामाधिपतिः-मोगिकादिकः, 20 पुराधिपति:-श्रेष्ठी कोष्ट्रपाली ना, देशाथिपति:-देशारिक्षको देशस्याष्ट्रतको ना. राज्याधिपति:-महामबी राजा था। एतेपामेकतरेणोभयेन वा यक्तो अजति ॥ ५५८५ ॥

लोबं प्राथश्चिममार्गणा----

तहि वर्षते गुरुगा, दीस त छछहग गहणे छग्ग्रहगा । उनिगणि षहरणें छेदो, मूर्ल जं जत्य वा पंथे ॥ ५५८६ ॥

26 'संयतगणेन तद्धिपेन वा उमयेन वा सहाहं बजामि' इति सङ्करपे चतुर्रुष्ट्रं । पदमेदमादी कृत्वा तत्र जनतश्चतुर्ग्रह । प्रहरणस्य मार्गणे दर्शने च द्वयोरपि चढळा । प्रहरणस्य प्रहणे मक्ररु । उद्गीर्णे महरणे छेदः । प्रहारे दत्ते मूलम् । 'यद् वा' परितापनादिकं प्रथिव्यादिविनाशनं 'यन' पि मामे वा करोति तनिष्पन्नमपि मन्तव्यम् । तथा गृहस्थवर्गेऽपि 'मामेण वा मामाभिवतिना बाक्द राज्येन दा राज्याभिपतिना वा उभयेन वा सह मजामि' इति सङ्ख्ये ao चलर्रीर । पवि गच्छतः प्रहरणं च ग्रहतः वढल्च । गृहीते बहरू । डोवं प्राग्वत । एवं मिस्रोः प्रावश्चित्तक्षम् ॥ ५५८६ ॥

१ व्य > एतवनार्नतः पाठः भा • वर्ग • एव वर्तते ॥ २ धु, एतवार्थाव् व्याक्यातम् । पव<sup>°</sup> को॰ ॥

एसेव गमी णियमा, गणि आयरिए य होति जायन्त्रो । नवरं पुण नाणचं, अणवहूच्यो य पारंची ॥ ५५८७ ॥

एव एव गमो नियमाद 'गणिनः' उपाध्यायस्य आचार्थस्य चशुक्दाद् गणाक्च्छेदिकस्य बा मन्तस्यः । नवरं युनरत्र नानात्वम् अवस्तादेकैकपदहासेन यत्र भिक्षोर्मूछं तत्रोपाष्यास्यानव-स्थाप्यम् . आचार्यस्य पाराश्चिकम् ॥ ५५८७ ॥ तपोई च प्रायश्चित्तरिकं विदोवयित्वयम्--

मिनलुस्स दोहि लहुना, गणवुष्छ गुरुन एनमेनेणं।

उज्ज्ञाए आयरिए, दोहि वि गढगं च णाणतं ॥ ५५८८ ॥ भिक्षोरेतानि प्रायश्चितानि 'द्वाभ्यामपि' तपः-काळाभ्यां लब्नुकानि, गणावच्छेंदिकस्पैक-तरेण तपसा कालेन वा गुरुकाणि, उपाध्यायस्याचार्यस्य च 'द्वाम्यामपि' तपः-कालाम्यां गुरु-काणि । एतद 'नानात्वं' विशेषः ॥ ५५८८ ॥ 10

> काऊण अकाऊण व. उवसंत उवड्रियस्स परिश्रन्तं । सुत्रेण उ पहुन्णा, असुत्रें रागी व दोसी वा ॥ ५५८९ ॥

गृहस्थस्य महारादिकमपकारं कृत्वाऽकृत्वा वा यदि उपशान्तः-निवृतः प्रायश्चित्तपस्यवै धाळो चनाविधानपर्वकमपुनः करणेनोपस्थितसादा प्रायश्चितं दातव्यम् । कथम् ! इस्याह--सूत्रेण प्रायश्चितं प्रस्थापनीयम् । असूत्रीपदेशेन तु प्रस्थापवतो रागो वा द्वेषो वा मवति, 18 प्रमृतमापन्नस्य सल्पदाने रागः स्तोकमापनस्य प्रमृतदाने हेषः ॥ ५५८९ ॥

एवं राग-देवाभ्यां प्रायश्चित्तदाने दोवमाह---

थोवं जति आवण्ये, अतिरेगं देति तस्स तं होति । स्रतेण उ प्रवणा, स्तमणिन्छंते निज्ञहणा ॥ ५५९० ॥

स्तोकं प्रायश्वित्तमापन्नस्य यदि अतिरिक्तं ददाति ततो यावताऽधिकं सावत् 'सस्य' प्राय-20 श्चित्तदातः प्रायश्चित्तम् आज्ञादयश्च दोषाः, अधीनं ददाति ततो यावता न पूर्यते तावद् आत्मना प्रामोति, अतः सत्रेणे प्रस्थापना कर्तन्या । यस्त्र सत्रोक्तं प्रायध्यसं नेच्छति स वक्तव्यः - अन्यत्र शोधि कुरूव । एषा निर्मृहणा मण्यते ॥ ५५९० ॥

अस्या एव पुर्वार्द्ध व्याच्छे---

जेणऽधियं क्लं बा. ददाति तावतिअमध्यमा पावे । अहवा सत्तादेसा, पावति चत्ररो अणुग्वाता ॥ ५५९१ ॥

'येन' यावता अधिकं ऊनं वा ददाति तावद आत्मना प्रामोति । अथवा सुत्रादेशावना-ऽतिरिक्तं वदानश्रद्धरोऽनुद्धातान् मासान् मामोति । तचेवं निशीश्रवशमोदेशकान्तर्गतं सूत्रम्-

जे उग्बाह्य अणुग्वाह्यं देह जे अणुग्वाह्य उग्वाह्यं देह से आवजाह चारुमासियं परि-हारहाणं अणुग्याइयं (स० १७-१८)। ॥ ५५९१ ॥ अथ द्वितीयपदमाह— ३०

बितियं उप्पाएउं. सासणपंते असज्झे पंच वि पयाई।

१ नेयब्बो तामा : ॥ २ °ण. तहाब्दोऽवधारणे. संत्रेणैय प्रायश्चित्तका प्रकारना कर्चक्या. शासत्रेण। यस्त कां॰॥

15

20

25

आगार्ढे कारणम्मि, रायसंसारिए जतमा ॥ ५५९२ ॥

द्वितीयपर्वं नाम-अधिकरणग्रुत्याद्वेदिष् । सः 'शासनमान्तः' भवननमत्यनीकः 'असा-ष्य्ययं' न यथा तथा शासितुं शक्यते ततस्तेन सममधिकरणग्रुत्याय शिक्षणं कर्तव्यय् । तत्र च स्वयमसमयेः संवत-माम-नार-देश-राज्यकक्षणानि पद्यापि पदानि सहायतया ग्रुह्मीयात् । 5 भागादे कारणे राजसंसारिका-राजान्तरस्थापना तापि यतनया कुर्योत् । तथाहि—यदि राजाऽतीव भवचनमान्तः अनुशिष्णादिभिरनुकूकोपायेनीपशास्यति ततस्तं राजानं स्फेटयिखा तार्द्वशजनस्यवश्चनं वा भद्रकं राजानं स्थापनेत् ॥ ५५९९ ॥

यश्च तं स्फेटयति स ईदशगुणयुक्तो भवति-

विजा-ओरस्सवली, तेयसलद्धी सहायलद्धी वा । उप्पादेउं सासति, अतिपंतं कालकजो वा ॥ ५५९३ ॥

यो विद्याबलेन युक्तो यथा आर्याखपुटः, औरसेन वा बलेन युक्तो यथा बाहुबली, तेजो-रुक्थ्या वा सल्विधको यथा श्रह्मदृत्तः सम्भूतमवे, सहायल्विधयुक्तो वा यथा हरिकेञ्चबलः। ईह्ह्योऽभिकरणग्रुत्याय 'अतिपान्तम्' अतीवपनचनपरयनीकं श्रास्ति, 'कालिकाचार्य इव' यथा कालकाचार्यो ब्रदीसिष्ठराजानं शासितवान्। कथानकं सुप्ततीतलात्र लिख्यते॥ ५५९३॥

॥ अधिकरणप्रकृतं समाप्तम् ॥

### प रि हा रि क प्र कृत म्

सूत्रम्—

परिहारकप्पट्टियस्स णं भिक्खुस्स कप्पट्ट आयरियउवज्झाएणं तिहवसं एगगिहंसि पिंडवायं द्वावितप्, तेण परं णो से कप्पट्ट असणं वा पाणं वा
स्वाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा ।
कप्पट्ट से अन्नयरं वेयाविडयं करिचए, तं जहा—
उट्टावणं वा निसिआवणं वा तुयदावणं वा उच्चारपासवण-खेल-सिंघाणविगिंचणं वा विसोहणं वा
करिचए । अह पुण एवं जाणिजा—छिन्नावाएसु
पंथेसु आउरे झिंसिए पिवासिए, तवस्सी दुब्बले
किलंते मुच्छिज वा पवडिज वा एवं से कप्पट्ट
असणं वा ४ दाउं वा अणुप्पदाउं वा ३१॥

अस्त सम्बन्धमाह—

पन्छित्रमेव पगतं, सहुस्स परिहार एव न उ सुद्धो । तं बहतो का मेरा, परिहारियसुत्तसंबंधो ॥ ५५९४ ॥

प्रावधियमेवानन्तरस्त्रे महत्त्व्, तच 'सहिष्णोः' समर्थस्य मथमसंहननादिगुणपुष्कस्य परिहारतगोरूपमेव दातव्यम्, न पुनः शुद्धतगोरूपम्, अतः 'तत्' परिहारतगो वहतः 'ऋ मर्थादा' का सामाचारी हित । अस्यो जिज्ञासायामिदं परिहारिकद्वत्रमारम्यते । एच सम्बन्धः ॥ ५५९१ ॥

वीसंगणसुचे वा, गीतो वलवं च तं परिद्वप्या।

चियण करुहिम्म कते, तस्स उ नियमेण परिहारी ॥ ५५९५ ॥ अथवा 'विष्यग्मवनसूत्रे' मरणदात्रे गीतार्थः 'वरुवंश्च' प्रथमसंहननयुक्तः 'तद्' सृतकं 10 परिहाप्य काष्ठमानयन् गृहस्मेन नोदितो यदि करूहं करोति तदा तस्य नियमेन परिहारो बृतव्यः, तस्य च विधिरनेनाभिचीयते ॥ ५५९५ ॥

अनेन सम्बन्धनायातस्थास्य व्याख्या—परिहारकर्र्यास्यातस्य भिक्षोः करूपते आचार्योपाध्यायेन 'तिह्वसम्' इन्द्रमहाषुत्सविदेने एकस्मिन् गृहे 'पिण्डपातं' विपुक्रमबगाहिमादिमकटामं दापियदुत् । ततः परं ''से'' तत्य नो करूपते अशनं वा पानं वा सादिमं वा वादामुगुपदादुं वा । तत्र दादुं एकशः, अनुभदादुं पुनः पुनः । किन्दु करूपते ''सि'' तत्य
परिहारिकस्यान्यतरद् वैयावत्यं कर्द्धम् । तद्यथा—उत्थापनं वा निषादनं वा त्यम्यतिपरवापात्मभवण-सेल-सिक्कानादीनां च विवेचनं वा—परिष्ठापनं 'विशोधनं वा' उच्चारादिसरिपटतोपकरणादेः प्रशालनं कर्द्धम् । अथ पुनरेवं जानीयात्—'श्रिक्यापतेषु' व्यविष्ठक्रमामा-ऽऽगमेषु पथिषु 'आतुरः' स्वानः 'क्षिन्धितः' दुभुश्चार्चः 'पिपासितः' तृषितो न शक्तोति विविक्षतं 30
प्रामं मासुम्, अथवा प्रामादावि तिष्ठता सः 'तपसी' वषा-ऽष्ठमादिपरिहारतपःकमं कुर्वेन्
प्रवेज भवेत्, ततो भिक्षाचर्यया क्षान्यः सन् मूर्ल्डेद्वा प्रपतेद्वा, एवं ''से'' तत्य करूपते
अशनादिकं दासुमनुपदादुं वा । एष सुत्राधः ॥ अथ निर्धुक्तिसरः—

कंटगमादीसु जहा, आदिकडिल्ले तहा जयंतस्स । अवसं ललणाऽऽलोयण, ठवणा जुत्ते य वोसग्गो ॥ ५५९६ ॥

नतु स अगवान् 'प्रमादो न कर्तव्यः' इस्युपदेशेन संयमाध्यति गच्छन् क्षं परिहास्त्रक्तं भाष्ठः ! इति उच्यते—यथा कण्टकाकीणें गाण्ठः ! इति उच्यते—यथा कण्टकाकीणें गाण्ठं उपयुक्तस्यापि कण्टको लगति, आदिशक्दाद् विक्षे वा वयोषपुक्कोऽप्यागच्छन् प्रपति, कृतप्रको वा यथा नरीवेगेन हियते, सृशिक्षि-तोऽपि यथा सन्नेन कारुख्यते; एवं कण्टकादिक्षानीयमादिकडिक्षम्—आध्याद्वनं यद् उद्गमी-त्यादनैकणारूपं ज्ञानादिक्यं वा तत्र यतमानस्यान्यवस्यं कत्यापि च्छल्ना भवति, छल्दिनः ध्रण्यावनैकणारूपं ज्ञानादिक्यं वा तत्र यतमानस्यान्यवस्यं कत्यापि च्छल्ना भवति, छल्दिनः ध्रण्यानिक्याच्याकोच्या दावव्या । ततो यः संहनना-ऽऽगमादिक्गिणेर्युक्तः—सहितस्त्रस्य 'स्थापना' परिहारतपः भायक्षित्रस्यम् । तत्र चायं विविः—प्रशसेषु द्रव्य-क्षेत्र-कारु-मावेषु

१ 'स्वी' चतुर्थ-पष्टा-ऽष्टम-दशम-द्वादशलक्षणं परि' को • ॥

तस्य साधोनिर्वित्रतपःकर्मसमापये शेषसाधूनां च भयजननार्थं सक्तलेनापि गच्छेन 'खुस्सीः' कायोत्सर्गः कर्तस्यः । तमाचार्यो मणति—"यतस्य साधुस्य निक्वसम्यानिमित्तं ठामि काउ-स्तमं जाव वोसिग्रमि" तत्तबद्धार्मद्यतिकावमञ्जीक्य "ननो कारिहंताणं" इति भणित्वा चलुर्विकारिकायं सुखेनोबार्यं मणति ॥ ५५९६ ॥

#### यस तनं पडिवजति, ण किंचि आलवति मा ण आलवहा । अचहचितगस्याः वाषातो से ण कायव्यो ॥ ५५९७ ॥

'एपः' आत्मिनशुद्धिकारकः परिहारतयः मतिपचते अतो न किश्चित् युप्मानाह्यति, श्रन्न "सत्सामीप्ये सद्धद्वा" (सि॰ है॰ ५-४-४-१) इति सुचेण भविष्यदर्षे वर्तमाना, ततो नाह्यस्त्रेतीस्त्र्यः; यूयमपि "गं" एनं माऽऽख्यत। एव युष्मान् सूत्रा-ऽर्थे इतीरोवन्तं वा न 10 ष्टच्छति, यूयमप्येनं ना ष्टच्छत। एवमन्येप्वपि परिवर्तनादिपदेषु भावनीयम्। इस्बमास्यार्थ-

भिन्तकस्थास ध्यानस्य परिहारतपस्य व्याघातः "ने" भवद्भिनै कर्तव्यः ॥ ५५९७ ॥ अत्र यानि पदानि तेन साधिभश्च परस्थरं परिहर्तव्यानि तानि दर्शवति—

पदानि तन साधामध्य परसर परहरतच्यान तान दशकात— आलावण पिंडपुच्छण, परिषष्ट्रहाण वंदणग मने । पिंडलेहण संघाडग, भन्तदाण संधंजणा चैव ॥ ५५९८ ॥

५ 'आल्लमं' सम्भाषणमनेन युष्मार्क न कर्तव्यं युष्माभिरप्यस्य न विधेयम् । एवं सूत्रा-ऽर्धयोः झरीरवार्ताया वा प्रतिमच्छनम्, पूर्वायीतस्य शुतस्य परिवर्तनम्, कालमहणनिमित्तं ''उद्दाणं'' ति उत्थापनम्, रात्रौ सुप्तोत्यित्वैन्दनककरणम्, खेल-कायिका-संज्ञामात्रकाणां समर्पणम्, उप-करणस्य प्रस्युपेक्षणं भिक्षा-विचारादौ गच्छतां सङ्घाटकेन भवनम्, भक्तस्य वा पानकस्य वा दानम्, एकमण्डस्यां वा सम्-एकीभृय भोत्रैनं न कर्तव्यम् ॥ ५५९८ ॥

अथ कुर्वन्ति तत इदं मायश्चित्तम्---

संघाडगाओ जाव उ, लहुओ मासो दसण्ह उ पयाणं। लहुगा य भर्चदाणे, संग्रंजण होंतऽणुग्घाता॥ ५५९९॥

एतेपामारूपनादीनां दशानां पदानां मध्यादारूपनादारम्य यावत् सङ्घाटकपदं ताबद् अष्टानां पदानां करणे गच्छसाधूनां प्रत्येकं मासरुषु । अय भक्तेदानं कुवैन्ति ततश्यवुर्रुषु । एकमण्डस्यां ४८ सम्युक्षते ततस्त्रेषामेव चत्वारोऽनुद्धाता मासाः ॥ ५५९९ ॥ परिहारकस्य इदं पायश्चित्तम्—

अद्रुण्हं तु पदाणं, गुरुओ परिहारियस्स मासो उ । भत्तपदाणे संग्रंजणे य चउरो अणुग्वाया ॥ ५६०० ॥

पारिहारिकस्थाद्यानां पदानां सङ्घाटकान्तानां करणे मासगुरु । भक्तपदानं सम्भोजनं वा कर्वसम्बद्धारो मासा अनुद्धाताः ॥ ५६००॥ इमे च दोषाः—

१ 'तिस्वम' के ॥ २ 'तिस्वं मु' के ॥ ३ 'जनं-सन्भोजनं अवद्विरमेन खार्धं न सर्खेकालि, एनोऽपि अवद्विर सार्थं न करिष्यतीति ॥ ५५९८ ॥ अय कं ॥ ५ 'ख-पाणे कं ताका किना । एतस्यत्वस्यार्थे मा ३ हिना । १ एतस्यत्वस्यार्थे के ताका किना ॥ ५ 'क-पाणं कु के ।॥ ५ 'क-पाणं कु के ।॥ ५ 'क-पाणं कु के ।॥

कुष्वंताजेमाणि उ, आणादि विराहणा दुवेण्हं पि । देवय पमच छल्णा, अधिगरणादी य उदितम्मि ॥ ५६०१ ॥

'पतालि' आलपनावीनि कुर्वतामाजात्य रोषाः, विराधना च 'द्वबोरिषे' पारिहारिक-गच्छमाञ्चवर्गयोर्भवति । प्रमरस्य च देवतया छङ्ग्य । अन्तेन चा साधुना मणितः— 'किमित्याल्यनावीनि करोषि !' एवं 'उदिते' मणिते सति अधिकरणादयो दोषा अवन्ति ५ ॥ '५६०१ ॥ अध ''कृष्यइ० पगगिहिस'' इत्यादि सुत्र ब्याख्यानयति—

विउलं व भत्त-पाणं, दहुणं साहुवजाणं चैव ।

नाऊण तस्स भानं, संघोडं देंति आयरिया ॥ ५६०२ ॥ सङ्ख्रुट्यामुस्सवे वा विपुर्क भक्त-पानं साधुभिरानीतं रष्ट्रा तिव्वय ईपदभिकाचो भनेत्, 'साधुवर्जनां च' 'साधुभिः लहुम्बरितैः परित्यकोऽइन्?' हत्येनं मगिति चिन्तयेत् । एवं झाला 10 तदीयं गावमाचार्याः सङ्घाटकं दर्तते ॥ ५६०२ ॥ अयेदमैवं भावपदं व्याचष्टे—

भावो देहावत्था, तप्पडिवद्धो व ईसि भावो से ।

अप्पातित हयतण्हो, बहति सहं सेसपछित्तं ॥ ५६०३ ॥ भावो नाम 'देहावस्या' देहस्य दुर्नेकता 'तत्प्रतिबद्धो वा' विपुक्रमकःपानविषय ईषद् 'भावः' अभिरुपः तस्य सञ्जातः, ततथ्य यथामिरुपिताहारेणाप्यायितो हततृष्णश्य सन् सुस्तेनैव 10 होषं प्रायक्षित्तं बहतीति मत्वा सङ्घाटको दीयते ॥ ५६०३ ॥

अमुमेवार्थमन्याचार्यपरिपाट्या किश्चिद् विशेषयुक्तमाह—

देहस्स तु दोबछं, माबो ईसिं व तप्पडीबंबी।

अगिलार्षे सोहिकरणेण ना नि पानं पद्दीणं से ॥ ५६०४ ॥ देहस्य दौनेन्यम् ईपद्धा मनोजाहारिनिषयमितिनन्धः, एप भान उच्यते । यद्धा नास्त्रस्य २० शोधिकरणेन पापं तस्य मक्षीणमायम् एवंनिषं मानमानार्यो जानीयुः ॥ ५६०४ ॥

कथं पुनरेतद् जानन्ति ! इति उच्यते--

आगंतु एयरी वा, भावं अतिसेसिओ सें जाणिजा।

हेर्क्सह व से भाव, जाणिचा अणतिसेसी वि ॥ ५६०५ ॥ भागन्त्रकः 'इतरो वा' वास्तत्यः 'अतिशयी' नवपूर्वपरादिरविश्वानादियुक्तो वा स थ् एवंविषं मावं "से" तस्य जानीयात् । अथवा अनतिशयज्ञान्यपि वाक्षेराकारादिभिद्वेतुभिक्तस्य भावं जानीयात् ॥ ५६०५ ॥ ततः----

सक्तमहादी दिवसो, पणीयभूषा व संखडी वियुक्त ।
धुवर्लभग एगघरं, तं सागङ्कलं असागं वा ॥ ५६०६ ॥
धृवर्लभग एगघरं, तं सागङ्कलं असागं वा ॥ ५६०६ ॥
धृक्तमहादेविवसो यवा सञ्जातस्तदा तं कापि ब्राह्मगृहे नयन्ति, प्रणीतमक्ता वा काचिद् ३० वियुक्त सङ्खारिक्षक वा विसर्वयन्ति । सन्ध 'धुवक्रिमकम्' अवस्यसम्मावनीयकाममेकमेव गृहं विवते । हवं च आवक्तगृहमश्रातकागृहं वा मवेत उभयत्रापि गृतवः सर्व प्रथमतो गच्छन्ति,

१ एतदनन्तरं प्रस्थाप्रम्—४५०० कां ।। २ °व निर्युक्तिगाथागतं भा° श्र- ॥ ४० १८७

तं च परिहारिकं हुवते—आर्थं ! समागन्तव्यमग्रुकगृहे पात्रकगुद्धाव लवेति । ततस्तत्र पासस्य विपुष्ठमवणाहिमारिकं मेकं दापयन्ति । अवासी तत्र गन्तुं न शकोति ततो माजनानि गृहीत्वा सम्यानीय गरवो दवति ॥ ५६०६ ॥

पतावता ''कप्पइ आयरि-वरज्ञाएणं तद्दिवसं एगगिइंसि पिंडवायं दवाविचए'' इति उस्त्रं व्याख्यातं मन्तव्यम् । अध ''तेण परं नो से कप्पइ'' इत्यादि सुत्रं व्याख्याति—

भत्तं वा पाणं वा, ण दिंति परिहारियस्स ण करेंति । कारणें उद्ववणदी, चोयग गोणीय दिइंतो ॥ ५६०७ ॥

भक्तं वा पानकं वां ततः परे परिहारिकस्य निष्कारणे न प्रयच्छन्ति, न वा किनण्याङ-धनार्दिकं कुर्वन्ति । 'कारणे तु' यदा उत्थानादिकं कर्त्तुं क्षीणदेहतया न शकीति तत उत्थाप-10 नार्दिकं कारयन्ति । श्रेत्र नोदकः माह—किं प्रायक्षितं राजदण्ड इवावरोन वोड्यं येनेह-श्रीमबस्यां प्राप्तयापि भक्त-पानमानीय न दीयते !। सुरिराह—गोदद्यान्तोऽत्र कियते —यया नवपाष्ट्रिय योक्तस्थातुं न शकोति तां गोप उत्थापयित अटवीं च चारिवरणार्थं नवति, या तु गन्तुं न शकोति तस्या गृहे आनीय प्रयच्छति । एवं पारिहारिकोऽपि यत् कर्तुं शकोति तत्त् कार्यते, यत् पुनरुत्यानादिकं कर्तुं न शकोति तद् अनुपारिहारिकः करोति ॥ ५६०७ ॥

> उद्वेज निसीएजा, भिक्खं हिंढेज भंडगं पेहे । कविषपियर्वधवस्स व. करेड इयरो वि तसिणीओ ॥ ५६०८ ॥

स परिहारिकस्पपा क्लान्तो ब्रनीति— उचिहेयं निषीदेयं भिक्षां हिण्डेयं भाण्डकं प्रस्पुपेक्षे-ययः, एवयुक्तेऽनुपारिहारिक जल्पापनादिकं सर्वमणि करोति । कथवः ! हत्याहः—यथा प्रिय-४० वान्यवस्य कृपितः कथित् वन्धुर्यत् करणीयं तत् तृष्णीकः करोति, एवषः 'हतरोऽपि' अनुपा-रिहारिकः सर्वमणि तृष्णीकमावेन करोति ॥ ५६०८ ॥ अथ मिक्षाहिण्डनादौ विधिमाहः—

णीणेति पवेसेति न, भिक्सगए उग्गहं तउग्गहियं । रक्खति य रीयमार्णः उक्तिवह करे य पेहाए ॥ ५६०९ ॥

भिक्षां गतस्य पारिहारिकस्य 'अवग्रदं' प्रतिग्रह् तेन-पारिहारिकेण गृहीतमनुपारिहारिकः ३० पात्रबन्धाद् निष्काशयति तत्र वा प्रवेशयति, 'रीयमाणं च' पर्यटन्तं श्वान-गवायुपद्रशाद् प्रपतनादेवी रक्षति, भाण्डमञ्जूपेक्षणायामशक्तस्य 'करी' हस्तावनुपरिहारिक उत्सिवति येन स्वयमेव मञ्जूपेकते ॥ '५६०९ ॥

बाह--यदि नामाशक्तसार्दि कसादसी मिशाहिण्डनादिकं विधाप्यते ! इत्याह--एवं त असढमा वी, विरियायारी य होति अणुविष्णो ।

१ अस्यं दा॰ मो॰ ले॰ ॥ २ ''बोरमो समात्रे—भीव उट्टानेबादि ! बहुबरी वे निकार होहिति । एरबाऽऽयरिओ गोमिदिहुंतं करेति—नमा गोणी पचुनिहा वृदि च उट्टानेबादि मरति बुभाए, तथा सो वि वार्युद्धिकांतो मरेवा । रोजम्बानितं व कमनुस्वाद्वार विर्ते हान्विकारि, व्यवस्थानवाच्या मार्ग ॥'' इति

चुर्जी विशेषचुर्जी न ॥

संयक्षणणं सेसाण य, ततो य सप्युरिसचरियं च ॥ ५६१० ॥ 'यवं' यबाझिक कुर्वतत्त्रसाग्ठठमावो सवति, तीर्याचारबानुवीणों सवति, 'शेषाणामिं' साधूनां सयकानं कृतं अवति, तपः सन्यगनुपाठितं सवति, सत्युरुत्वरितं च कृतं यवति ॥ ५६१० ॥ वयं "छिन्नावाएतु पंयेषु" इत्यादि सुत्रं व्यावष्टे—

छिण्णावात किलंते, ठवणा खेत्तस्स पालणा दोण्हं। असहस्स मत्तदाणं, कारणें पंथे व पत्ते वा॥ ५६११॥

िक्षापतिऽष्यित गण्छन् परिहारिको यदि बुजुक्ष्या तुवा च क्षान्तो प्रामं प्राप्तं न शकोति ततोऽनुपारिहारिको भक्त-पानं गृहीत्वा तत्यान्तरप्रामे ददाति । अथवा स भगवान् अनिगृहि-तवरूपीयाँ बहिर्मामें सिक्षां पर्येटति, तत्र हिण्डत्वा तथाक्षान्त्यो यदा न शकोत्यागन्त्यं तत्र व्याप्तम्यसम्बे तिक्षन्त्र क्षेत्रस्य स्थापना कर्तव्या, गृङ्क्यात्यस्य पर स हिण्डते न बहिर्मिक्षाच्यां 10 गण्डन्तीत्यस्यः। पंपाकणा दोष्ट्रं ति द्वयोरिष्टं पारिहारिका-जुपारिहारिका-सम्मोन्देरि हिण्डित्यं न शकोति ततीऽजुपारिहारिको हिण्डित्यं तस्य मयच्छित् अनुपारिहारिका-सम्मोन्देरि हिण्डित्यं न शकोति ततीऽजुपारिहारिको हिण्डित्यं तस्य मयच्छिते अनुपारिहारिका-त्य प्रवृद्धितः समु-हिश्चित्रं । प्यं विद्यात्वात्यस्य मण्डिती मवतः । प्यं 15 स्थानिकाना यत्रना भाषवः। मयच्छितः, प्यं द्वाविष्टं पालिती-च्युक्तियते मततः । प्यं 15 स्थानिकाना यत्रना भाषतः। । प्यं 15 स्थानिकाना यत्रना भाषता। । स्पाति पूर्णं मासे वर्षाते स्थाना सामानानुपानं विहरता 'पंषे व व ये ति पिष्टं वा आमे प्राप्ताना वा यत्राऽभाषिते। । ५६११ ॥

उनयंति डहरगामं, पत्ता परिहारिए अपानंते । तस्तऽद्वी तं गामं, ठविंति अनेसु हिंडति ॥ ५६१२ ॥

पथि बजन्तो डहर्र-रुधुतरं प्रामं प्राप्ताः च पैरिहारिकश्चाचापि न प्रामोति ततस्तस्यार्थं 20 तं श्रामं स्थापयन्ति । स्वयं तु गच्छसाधबोऽन्येषु ग्रामेषु भिक्षां हिण्डन्ते ॥ ५६१२ ॥

वेलहवाते दुरम्मि य गामे तस्स ठाविउमद् ।

अर्द्ध अर्द्धति सो वि य, अद्धमहे तेहिं अिंदे वा ॥ ५६१३ ॥ अम्यानत् ते गच्छित्ति तावदन्यमामेषु वेलाया अतिपातो भवति दूरे वा स मामस्ततः 'तस्वमं मुक्यामस्याद्धं रू परिदारिकस्यायीय स्यापियता द्वितीयमद्धं स्वयम्टित । एवं तावत् १६ पवि वर्तमाने पारिहारिकं भणितम् । यत्र तु साथवः पारिहारिकं समक्ष्मेव मासासत्राप्यद्धं मामे साथवो हिण्डन्तेऽद्धं पारिहारिकः । अश्व साधृतामद्धं पर्यटतां न पूर्वते तत्रतीः सर्वेक्षिन् मामे पर्यटिते पारिहारिकः । अश्व साधृतामद्धं पर्यटतां न पूर्वते तत्रतीः सर्वेक्षिन् मामे पर्यटिते पारिहारिकः एक्षात् पर्यटति ॥ ५६१३ ॥

अथ पारिहारिको यथा कारणे गच्छसाधूनां वैमावृत्यं करोति तथाऽभिवीयते-

बिहयपय कारणिंस, गुच्छे वाऽऽगार्डे सी तु जयणाए । ३० अणुपरिहारिजों कप्पद्वितो व आगाढ संविग्गो ॥ ५६१४ ॥ द्वितीयपदे 'कारणे' कुछादिकार्ये पारिहारिकोऽपि साधूनां वैवावृत्यं करोति, यथा पाराधिकः

१ °ट्टा णं गा° तात्रा॰ ॥ २ ৺ २० एतविकान्तर्वर्ती पाठः सा॰ पुस्तक एव वर्तते, नान्येष्वादर्शेष्विति ॥

20

"बच्छत महाणुभागो, जहामुद्धं गुणसयागरो सेषो ।" (गा० ५०२५ ) हत्यादि भणित्वा वैयावृत्यं कृतवान् । तथा गच्छे वा लागादं कारणं समजनि ततः सोऽपि 'यतनया' वस्य-मालया भक्क-पानाहरणादिकं वैयावृत्यं करोति । "छणुपरिहारिय" हत्यादि पश्चादेष् — अव गच्छसायवः प्रकृतिमहाशुनादीनामन्यतरमागादयोगं मतिपन्ना उपाच्यायश्च कानः कालगनो । व सतोऽनुपरिहारिकः कल्पसितो वा वाचनां गच्छत्य दवाति । छव तावच्यायते ततः पारिहारिकोऽपि वाचनां वदाति । स च तां ददानोऽपि संविद्य एव मन्दन्यः । इह मा भृत् कृत्यापि मतिः—पूर्वपृत्येण प्रतिपिद्धं सुत्रार्थदानादिकमनेनानुज्ञातम्, एवं पूर्वपरिविरुद्ध-माचरन् स्वतिकोऽसाविति तन्मतिव्यपोहार्थं संविद्यमहणम् ॥ ५६१८ ॥

मयण च्छेन विसोमे, देति गणे सो तिरो न अतिरो ना । तन्माणेसु सएसु न, तस्त नि जोगं जणो देति ॥ ५६१५ ॥

मदनकोद्रवक्र्रण मुक्ति गण्डः सर्वोऽपि म्हानः जातः, हेवक्रम्-अशिवं तेन वा गृहीतः, भत्यनीकेन वा विषं दत्तप्, अवमीदपें वा न संखारतिः, तत एवमागाढे कारणे 'सः' पारिहारिको मक्त-पानमैवभानि वा 'तद्राजनेषु' गण्डमकेषु पात्रकेषु तेवाममावे स्वमाजनेषु वा 10 गृहीता तिरोहितं ताम-स आनीपानु-पारिहारिकस्य ददाति सोऽपि गण्डम्पार्थयति, अथानुपारिहारिकोऽपि म्हानस्य कर्मास्रतस्य ददाति सोऽपि गण्डम्पार्थयति । कर्म्यस्यतस्य म्हानस्य स्वानस्य मेव गण्डम्पार्यति । कर्म्यस्यतस्य म्हानस्य स्वानस्य सेव गण्डम्य ददाति । यथ तथे योग्यं जनो ददाति तत् तेवामर्थाय गृहाति, यत् तु तस्य योग्यं तद् आसमो गृहाति ॥ ५६९५ ॥

एवं ता पंथिम्म, जत्थ वि य ठिया तिह पि एमेव।

बाहिं अडती डहरे, इयरे अद्भद्ध अडिते वा ॥ ५६१६ ॥

एवं तावत् पथि गच्छतामभिहितम् । यत्रापि च मामादौ खितासत्राप्येवमेव मन्तव्यम् । मार्गे च यत्र गच्छो न मासस्तत्र डहरे मामे पारिहारिकः मारो बहिर्मामे पर्वटति । "इतरे" ति अस वैकातिकमो दूरे वा स मामः ततस्त्रत्रेव मुरुमामेऽद्धे पारिहारिकः पर्वटति अर्द्धे गच्छ-20 साधवः, तेन वा स्नाटिते गच्छः पर्वटति ॥ ५६१६॥

किं बहुना १ पक्षद्वयस्याप्ययं परमार्थ उच्यते —

कप्पद्विय परिहारी, अणुपरिहारी व भत्त-पाणेणं 1

पंथे खेचे व दुवे, सो वि य गच्छस्स एमेव ॥ ५६१७ ॥

पथि वा क्षेत्रे वा द्वयोरिष वर्तमानी ग्रशनलादी कारणे करपिसतोऽनुपारिहारिको वा ३० पारिहारिकस्य भक्त-पानेनोपम्रहं करोति । तोऽपि च पारिहारिको गच्छस्येवमेवोपम्रहं करोति ॥ पदर्शा

॥ परिहारिकप्रकृतं समाप्तम् ॥ -

20

#### म हा न दी प्र कुत स्

सूत्रम्---

नो कप्पड़ निगंधाण वा निगंधीण वा इसाओ पंच महण्णवाओ महानदीओ उहिट्ठाओ गणियाओ वंजियाओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तप् वा मंतरित्तप् वा । तं जहा—गंगा जउणा सरऊ कोसिया मही ३२॥

अस्य सम्बन्धमाह----

अद्भाणमेव पगतं, तत्थ थले पुन्ववण्णिया मेरा । जित होज तत्थ तोयं, तत्थ उ सुत्तं इमं होति ॥ ५६१८ ॥

अनन्तरसूत्रे "छिन्नाबाएसु पंथेसु" इति वचनाव् 'अध्या' मार्ग एव तानत् प्रकृतेः । तत्र च सक्ते गच्छतां 'पूर्ववार्णता' प्रथमोद्देशके अध्वसूत्रे भणिता मर्यादा अवभारणीया । यत्र तु मार्गे तोयं भवति तद्विषयविभिन्नतिपादकिमदं सूत्रं भवति ॥ ५६१८ ॥

अनेन सम्बन्धनायातस्यास्य व्याख्या—'नो कस्यन्ते' न युज्यन्ते, सूत्रे एकवचनिर्देशः प्राकृतत्वात्, निर्मन्धानां वा निर्मन्यीनां वा 'इमा.' प्रत्यक्षासन्ताः पद्य 'महाणवाः' बहुदकतया 15 महाणवक्तकस्य महासमुद्रगामिन्यो वा 'महानवः' गुरुनिम्नगाः 'उद्दिष्टाः' सामान्येनाभिहिता यथा महानव इति, गणिता यथा पश्चेति, 'व्यक्तितः' व्यक्तिकृता यथा मञ्जूत्यादि, 'अन्तर' मस्ये मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीद्वं वा बाहु-जङ्कादिना सन्तरीद्वं वा नावादिना । त्यथा—मङ्गा १ यसुन्त र सर्युः ३ कोशिका ४ मही ५ । एव सुत्रार्थः ॥

अथ भाष्यकारः कानिचिद् विषमपदानि विदृणोति---

इमाउ ति सुनउत्ता, उदिद्व नदीउ गणिय पंचेव । गंगादि वंजिताओ, बहुओद्ग महण्णवातो तू ॥ ५६१९ ॥

भगापि वाजवाजा, बहुआदंग सहस्यावादा तू ॥ २५८५ ॥ इमा इति प्रत्यक्षवाचिना सर्वनामा एत्रोका उच्यन्ते । उदिद्या नय इति । गणिताः पचेति । व्यक्तिता मङ्गादिभिः परैर्व्यकोङ्कता. । यास्तु बहुदकास्ता महार्गेवा उच्यन्ते ॥ ५६१९ ॥ इता विषयपद्ययास्या भाष्यकृता । अय नियक्तिविस्तरः—

पंचण्हं गहणेणं, सेसा वि उ छह्या महासलिला।

तस्य पुरा बिहरिंसु य, ण य तार्तो कयाइ सुक्खंति ॥ ५६२० ॥ 'पश्चानां' गङ्कादीनां प्रहणेन होषा अपि यौः 'महासलिकाः' बहूदका अविच्छेदबाहिन्यस्ताः \_ स्विता नन्तम्याः । स्वाद् बुद्धिः—किनयै गङ्कादीनां प्रहणम् ! हत्याह—"'तस्य'' इत्यादि,

र °वः, गाथायो नर्पुसकत्वनिर्देशः प्राष्ट्रतत्वात् । तत्र कं॰ ॥ २ याः सिन्धुप्रभृतयः 'महा° क॰ ॥

15

20

येषु विषयेषु शङ्कादयः पञ्च महायधो वहन्ति तेषु पुरा साधवो विहतवन्तो न च ताः कदा-चनापि राज्यन्ति अतस्तासां महणयः॥ ५६२०॥

> पंच परूबेत्र्णं णावासंतारिमे उ जं जत्य । उत्तरणम्मि वि छहगा. तत्थ वि आणाहणो दोसा ॥ ५६२१ ॥

पश्चापि महानदीः प्ररूप्त या याहशी यत्र विषये तां तथा वर्णियला प्रस्तुवनभिषातन्यम् । तथ्यद्य-नौसत्तारिगं यत्रोदकं तत्र यत् षट्कायविराधनामात्मविराधनां वा पामोति तिषण्यकं प्रायक्षिणम् । यत्रापि जङ्गादिनोत्तरणं सवति तत्रापि चतुर्वशुकाः, अपिशब्दात् सन्तरणेऽपि चतुर्वशु । 'तत्रापि' उत्तरणे आज्ञादयो दोषाः, किं पुनः सन्तरणे ? इत्यपिशब्दार्थः ॥ ५६२१ ॥

तत्र सन्तरणे ताबहोषानाह---

अणुकंपा पिंडणीया, व होज बहवो उ पश्ववादा ऊ । एतेसिं णाणत्तं, वोच्छामि अहाणुपुर्वीए ॥ ५६२२ ॥

अमुकस्पादोषाः प्रत्यनीकदोषा बहुवो वा प्रत्यगया नावमारूढानां भवन्ति । प्रतेषां च 'नानात्वं' विभागं यथाऽऽनुपूर्वा वक्ष्यामि ॥ ५६२२॥ तदेवाह—

> छुमणं जले थलातो, अण्णे नोयारिता छुमति साहू। ठवणं न पत्थिताए, दहुं णावं न आणेती ॥ ५६२३ ॥

साधुं तरणार्थिनं ज्ञात्वा नौवाणिजी नाविको वा अनुकायया नावं साळाद् जले प्रक्षिपेत्, ये वा पूर्वे नावमारोपितास्तानुदके तटे वा अवतार्थ साधून् पश्चिपेद् नावमारोपयेदित्वर्थः, सम्प-स्थितां वा नावं 'साधव उचरिष्यन्ति' इति इत्वा स्थापयेत्, साधून् वा दृष्टा परकूळाद् नावमा-नयेत ॥ ५६२३ ॥ अत्र चामी दोषाः—

नावित-साधुपदोसो, णियचणऽच्छंतगा य हरियादी । जं तेण-सावष्टि च. पवहण अण्णाऍ किणणं वा ॥ ५६२४ ॥

ये बेडिकाया अवतारितास्ते नाविकस्य वा साधूनां वा उपरि प्रदेषं गच्छेयुः, यहा ते निवर्तमानाः तटे वा तिष्ठन्तो हरितादीनां विराधनामन्यद्वाऽधिकरणं यत् कुर्वन्ति, यहा स्तेन-श्वापदेश्य उपद्रवं प्राप्नुवन्ति, अवहन्तीं वा नावं यत् प्रवाहयिष्यन्ति, अन्यस्या वा नावः क्रयणं 25 करिष्यन्ति तक्षिण्यकं प्रायश्चित्तम् ॥ ५६२८ ॥ परकुखद् नावानयने दृष्टान्तमाह—

मजणगतो ग्रुरुंडो, णावं दहूण अप्पणा पेति । कहिगा जति अक्खेवा, तति लहुगा मग्मणा पच्छा ॥ ५६२५ ॥

'मजनगतः' सानं कुर्वन् प्रकुरुढो राजा साधून दृष्टा नावमास्थना नयति, ततो नावारुढः साधुः किमकाः कथियुं कराः, यावन्तवः तत्रावहकक्षेपातावनि चतुर्कपृति, पश्चाच साधूनां 30 मार्गणा तेनान्तःपुरे धर्मकथनार्थं कृता इत्यक्षरार्थः । भावार्थस्वयम्—

**पाडलिपुत्ते धुरुंडो** रामा गंगाप नावारुदो उदगे प्हायंती अभिरमइ । साहुणी परकूले पासिचा सबमेव नावं नेउं साहुणी विरुग्गाविचा अणइ—कहं कहेह जाव न उचरामी । अक्खे- बणह्कहाळिद्वेञ्चचो साहू कहैउमारदो । तेण कर्ष्टितेण श्रवित्वची नावियं सलेह—सणियं कह्वेहि जेण एस साहू चिरं कहेह । साहण कारणे सणियं गच्छताणं जिपमा आवास्त्रसेवा तिचया चडक्हें । उत्तिष्णेण रत्ना अंतेउरे कहियं, जहा—सुंदराओ कहाओ तरङ्गदर्याचाः कषयन्ति साववः । अंतेउरियाणं कोउगं जायं । रायाणं विण्णवेति—जह ते साहुणो इह-माणिजिज्ज तो अपने वि सुणेजामो । रत्ना गवेसिचा पवेसिया साहुणो अंतेउरे ॥ ५६२५॥ ६

तत्र च प्रविद्यानामेते दोषाः---

सुच-ऽत्थे पलिमंथो, णेगा दोसा य णिवचरपवेसे । सङ्करण कोउएण व, सुचा-ऽभ्रुचाण गमणादी ॥ ५६२६ ॥ स्वा-ऽर्थयोः परिमन्यः, स्वृतिकरणेन कीतुकेन च सुका-ऽभुकानां मतिगमनादयोऽनेके वोषा उपग्रहमुबेठो भवन्ति ॥ ५६२६ ॥

एते अनुकम्पायां दोषा उक्ताः । अथ प्रत्यनीकतायां दोषानाह--

बुब्मण सिंचण बोलण, कंबल-सबला य घाडितिनिमित्तं। अणुसद्गा कालगता, णागकुमारेसु उववण्णा ॥ ५६२७ ॥

बाहनं सेचनं बोलनं वा मरतनीकेन साधूनां कियते तत्र सामान्येन दृष्टान्तोऽबम् — मथुराषां मण्डीरयस्यात्रायां कृष्यल-श्ववली वृषयो घाटिकेन — मित्रेण जिनदासस्यानाष्ट्रच्छया बाहितो, 16 तिन्निमेत्तं सञ्जातवैराग्यो श्रावकेणानुशिष्टी मफं प्रत्यास्याय कालगती नागकुमारेष्ट्रपणती ॥ ५६२० ॥ ततस्ताभ्यां किं कृतम् ! इत्याह—

वीरवरस्स भगवतो, नावारूदस्स कासि उवसर्गा । मिच्छदिद्वि परद्धो, कंवल-सबलेहिं तारिओ भगवं ॥ ५६२८ ॥

वीरवरस्य भगवतो नावारुदस्य सुदाहो नागकुमार उपसर्गमकार्षीत् । तेन मिथ्यादृष्टिना 20 प्रारम्भो जले बोलयितुं कम्बल-श्रवलाभ्यां मोचितो भगवान् । कथानकमावृत्रयकाद्वथार-णीयम् (आव० निर्यु० गा० ४६९-७१ हारि० टीका पत्र १९९-१)। एवं नावारुदस्य साधोबीलनादिकं सम्भवतीति ॥ ५६२८ ॥ अथ वाहनादिषदानि व्याचष्टे-

सीसगता वि ण दुक्लं, करेह मज्यं ति एवमवि वीतुं । जा छुक्मंतु सम्रुरे, मुंचति णावं विलग्गेसु ॥ ५६२९ ॥ 'सिद्धार्थका इव शिरिस गता अपि मम दुःसं न कुरुय' एवमप्युक्ता कश्चित् प्रत्यनीको । माववो नावं विल्लामत्ता नावं नतीमत्वेष सम्रुति येन समृदे प्रक्रियन्ते तम् प्रतिवाः

यदा साघवो नावं निरुद्धासददा नावं नदीम्रस्येषु सुम्राति येन समुद्रे प्रक्षिप्यन्ते, तत्र पतिताः क्षित्रयन्तां भियन्तां चेति कृत्वा ॥ ५६२९ ॥ गतं बाहन्न । जय सेचन्यं मोहन्

सिंचति ते उबिंध वा, ते चैव जले छुमेज उविध वा।

मरणोबधिनिष्पक्षं, अणेसिय तणादि तरपण्णं ॥ ५६३० ॥

गाविकोऽन्यो वा प्रव्यतीकस्तान् साधुनुपर्धि वा सिंचति, तानेव साधुनुपर्धि वा जले प्रक्षिपैत, बोळ्येदित्वर्थः। तत्र चास्पविराधनायां मरणनिष्पन्नय्, उपधिनाशे उपधिनिष्यन्य ।

१ °द्वया । उत्ति दे ।।

ю

80

यवानेषणीयभुपधि प्रद्वीप्यन्ति तृषानि वा सेविष्यन्ते तत्तिष्पत्नं सर्वमपि ग्रामोति । तरपप्यं वा स मार्गयेत्, अदीयमाने चिरं निरूच्वात्, दीयमानेऽभिकरणम् ॥ ५६१० ॥

गताः मत्मनीकदोषाः । अश्व 'बहवः प्रत्यपायाः' इति न्याचष्टे---

संघड्डणाऽऽयसिंचण, उवगरणे पडण संजमे दोसा ।

सावत तेणे तिण्हेगतर, विराहणा संजमा-ऽऽयाए ॥ ५६३१ ॥

जसादीनां सङ्कद्दना, जलेन वा सेचनसुपकाणसात्मनो वा, पतनं वा, पते संयमे दोषाः । ध्वापदक्रता स्तेनकृता वा भारमविराधना । "तिष्टेगयर" वि अनुकाया-मत्मनीकता-तदुमया-दिरूपाणां अयाणामेकतरस्थित् संयमविराधनाऽऽत्मविराधना च भवति । एम सङ्ग्रहगाथास-मासार्थः ॥ ५६३१ ॥ अञ्चेनामेव विवृणोति—

तस-उदग-वर्णे घट्टण, सिंचण लोगे अ णावि सिंचणता । बुरुभण उवधाऽऽतुभये, मगरादि सम्रद्तेणा य ॥ ५६३२ ॥

जरुोद्भवानां त्रसानाम् उदकस्य वा सेवारुादिरूपस्य वनस्पतेर्वा सङ्घटनं भवेत् । र्ह्णोकेन नाविकेन वा साधोरुपकरणस्य वा सेवनं क्रियेत । अतिसम्बाधे वा उपधेरास्मनसाद्भयस्य वा स्ताधेऽस्तावे वा जरुं "वुक्मणं" बोरुनं भवति । मकरादयः श्वापदाः समुद्रस्तेनाश्च तत्र 15 मवेतुः ॥ ५६३२ ॥ इदमेव व्याचष्टे—

> ओहार-मगरादीया, घोरा तस्य उ सावया । सरीरोविहमादीया, णावातेणा य कत्थई ॥ ५६३३ ॥

ओहात-मकरादयः 'तत्र' नचां घोराः श्वापदा भवन्ति । ओहारः-मत्स्वविद्रोवः, स किळ नावमधस्तके जनस्य नयति । शरीरहरा उपधिहरा वा आदिशञ्दादुभयहरा वा नौसेनाः कुत्रापि २० भवेषः, पतिरासम् उपधेर्वा विनाशे सक्तिष्यकं प्रायक्षितवः॥ %६३३॥

अथ "तिण्हेगयर" ति पदं व्याख्याति-

सावय तेणे उभयं, अणुकंपादी विराहणा तिण्णि । संजम आउमयं वा, उत्तर-णावत्तरंते वा ॥ ५६३४ ॥

श्चापदाः १ खेनाः २ श्वापदा अपि खेना अपि ३ एतत् त्रयम् । अथवा अनुकृष्यया १ वि मह्यनीकृतया २ अनुकृष्या-परयनीकृत्रया वा ३ । अथवा तिलो विराधनाः, तद्या— संयमविराधना १ आत्मविराधना २ उनयविराधना वा ३ । यदि वा उदकमवतरतः १ नावारूडस्य २ नाव उत्तरतंथित ३ । एतेषां त्रयाणामेकतरस्मिन् वहवः प्रत्यापा भवन्ति ॥ ५६३० ॥ उक्तं सन्तरणम् । अथोत्तरणमाह—

उत्तरणम्मि परुविते, उत्तरमाणस्स चउलह होति । आणाहणी य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽताए ॥ ५६३५ ॥

उत्तरणं नाम-यद् नावं विना वस्त्रमाणैः सङ्घादिमिः मक्तरेरुवीर्थते, तस्तिज्ञुवरणे मरू-यिते सति इदममिधीयते—यदि जङ्कादिनाऽप्युत्तरति तदा चतुर्वेषु, आञ्चादयश्च दोषाः, संयमा-ऽऽत्मविराधना च भवति ॥ ५६१५ ॥ तस्य चोत्तरणस्येते भेदाः—-

30

जंघद्वा संबद्दी, संबद्धवर्षि तु लेवीं जा णामी । तेण परं लेवीवरि, तुंबोद्धव णाववजेतु ॥ ५६३६ ॥

यसिन् जले उत्तरतां पादतलादारभ्य जङ्घाया धर्द्ध ब्रुडति स सङ्घटः । तस्वैव सङ्घटस्यो-परि यावद् नाभिरेतावद् यत्र मविश्वति स लेपः । 'ततः परं' नामेशरम्योपरि सर्वमिष लेपो-परि मण्यते । तच द्विया-स्तायमस्तायं च । यत्र नासिका न मुद्धति तत् स्तायम्, यत्र तु व नासिका बुडित तद् अस्तापम् । तच तुम्बोडुपादिभिनौंविजितैर्यद् उत्तीर्यते तद् उत्तरणं मन्त-व्यम् । तत्रोत्तरणे एते संयमा-ऽऽत्मविराधनादोषाः ॥ ५६३६ ॥

> संबद्धणा य सिंचण, उत्रगरणे पडण संजमे दोसा । चिक्खल खाण कंटग. सावत भय प्रव्मणे आया ॥ ५६३७ ॥

लोकेन साथोः सङ्घटनं भवेत् , साधुर्वा जलं सङ्घटयेत् , सङ्घटनमहणात् परितापनमपदावणं 10 च सचितम . एतेष कायनिष्पन्नं पायश्चित्तम् । प्रत्यनीकः साधुमुपिषं वा सिम्नति, सैयं वा साधरात्मानं सिश्चेत , साधीरुपकरणस्य जले पतनम् , एते संयमे दोषाः । तथा चिनसक्ते यद निमज्जति, जलमध्ये वा चक्षरविषयतया स्थाणना कण्टकेन वा यद विध्यते, मकरादिश्वापद-भयं वा भवति, नदीवाहेन वा वाहनस्, एषा सर्वाऽप्यात्मविराधना ॥ ५६३७ ॥

सत्रम-

अह पुण एवं जाणिजा—एरवइ कुणालाए जत्थ चिक्रया एगं पायं जले किचा एगं पायं थले किचा एवण्हं कप्पइ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा; एवं नो चिक्कया एवण्हं नो कप्पइ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा ३३॥

अथ पुनरेवं जानीयात-एरावती नाम नदी क्रणालाया नगर्याः समीपे जङ्कार्द्धप्रमाणे-नोद्वेघेन वहति तस्यामन्यस्यां वा यत्रैवं "चिक्कया" शक्तयात् उत्तरीतुमिति शेषः । कथम् ? इत्याह—एकं पादं जले कत्या एकं पादं 'स्थले' आकाशे कत्या, "एवण्ड"मिति वाक्याल-क्कारे, यत्रोत्तरीतं शक्तयात् तत्र करुपते अन्तर्मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा 'उत्तरीतं' स्क्वयितं 2b 'सन्तरीतुं वा' मृयः प्रत्यागन्तुम् । यत्र पुनरेवमुत्तरीतुं न शक्तुयात् तत्र नो कल्पते अन्तर्मा-सस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीतं वा सन्तरीतं वा इति सुत्रार्थः ॥

अथ भाष्यकृद विषमपदानि न्याचष्टे---

एरवह जिन्ह चिक्रिय, जल-थलकरणे इमं तु णाणत्तं। एमो जलिम एमो, थलिम इहइं बलाड्डमासं ॥ ५६३८ ॥

१ गाथायां संघट्टणाऽऽयसिचण इलाकारप्रकेषेऽयसर्थः ॥

Б

10

25

ऐरावती नाम नदी, यस्यां जरू-सरुव्याः पादकरणेनोचरीतुं शक्यम् । इदमेव चात्र नाना-त्वम्— यत् पृर्वसृत्रोचासु महानदीषु भासान्तर्ह्हीं त्रीन् वा वारान् उत्तरीतुं न करपते, अस्यां तु करपते । यत्तात्र 'एको जल्ले एकक्ष पादः स्यले' इत्युक्तं तद् इह स्यलमाकाशमुरुयते॥५६३८॥

एरवइ कुणालाए, वित्थिण्णा अद्भजोअणं वहति ।

कप्पति तत्थ अपुण्णे, गंतुं जा वेरिसी अण्णा ॥ ५६३९

ऐरावती नदी कुणालानगर्या अद्रेडद्वेशोजनं विस्तीर्णा वहति, सा चोद्वेशेन जङ्घार्द्धमाणा, तत्र ऋतुबद्धे काले मासकस्ये अपूर्णे विकृत्वो भिक्षाग्रहण-लेपानयनादी कार्ये यतनया गन्तुं करुपते । या वा ईटशी अन्याऽपि नदी तस्यामपि विकृत्वो गन्तुं करुपते ॥ ५६३९ ॥

कृता विषमपदव्याख्या भाष्यकृता । सम्प्रति निर्युक्तिविस्तरः-

'संकम थले य णोथल, पासाणजले य वालुगजले य । सुद्धदग पंकमीसे, परिचऽणंते तसा चेव ॥ ५६४० ॥

नदीसुचरतस्वयः पन्थानः, तद्यथा—सङ्कमः १ स्थर्ठ २ नोस्थर्ठ ३ च । तत्र यद् एकाङि-कादिना सङ्क्षमेण गम्यते से सङ्कमः । स्थर्ठ नाम—नद्याः कूपेरेण वरणेन वा यद् नदीजरुठ परिहृत्य गम्यते । नोस्थर्ठ चतुर्विथम्—पापाणजरुठ शङ्काजरुठ शुद्धोदकं पङ्कमिश्रजरुम् । एतेपु 15 चतुर्ष्विष गम्थरुतां यथासम्भवं परीचा-ऽनन्तकायास्त्रसाक्ष्य विराधनां माप्रवन्ति ॥५६४०॥ तथा—

> उदए चिक्खळ परित्त-ऽणंतकाइग तसे त मीसे त। अकंतमणकंते, संजोए होति अप्पवहुं॥ ५६४१॥

उदके चिक्सल्लादिकः प्रथिबीकायः बनस्पतयश्च परीतकायिका अनन्तकायिका वा त्रसाध्य द्वीन्द्रयादयो भवेषुः । एते च सर्वेऽपि यथासम्भवं मिश्रा सचिचा वा आकान्ता अना-२० कान्ता वा स्थिरा अस्पिरा वा समत्यपाया निष्पत्यपाया वा भवेषुः । एतेषु च बहुवः संयोगा उपयुज्य वक्तन्याः । तेषु यत्रारुपबहुत्वं भवति, अरुपतराः संवमा-ऽऽस्मविराधनादोपा बहुवश्च सुणा भवन्तीत्यर्थः, तत्र कारणे समुस्के गन्तन्यम् ॥ ५६ ११ ॥

यत्र च सङ्क्रमो भवति तत्रामी भङ्गविकल्पा भवेयः---

एगंगिय चल थिर पारिसाडि सालंब बिजाए सभए । पडिपक्खेस त गमणं, तज्ञातियरे व संडेवा ॥ ५६४२ ॥

सङ्कम एकाङ्गिको वा स्पादनेकाङ्गिको वा । एकाङ्गिकः स्य एकेन फलकादिना कृतः, अनेकाङ्गिकः स्थानेकफलकादिनिर्मितः । अत्रैकाङ्गिकेन गन्तस्यं नानेकाङ्गिकेन, एवं स्थिरेण न च चलेन, अपरिशादिना न परिशादिना, साल्यन्त्र गन्तस्यं न 'वर्षितेत' निरालस्वेने- त्यर्षः । साल्यन्योऽपि द्विभा साल्यन्त्र । साल्यन्ये। पूर्व द्विभा साल्यन्त्र । साल्यन्त्य । साल्यन्त्र । साल्यन्त्र । साल्यन्त्र । साल्यन्त्र । साल्यन्त्र । साल्यन्त्र । साल्यन्त्यन्त्यन्त्र । साल्यन्त्र । साल्यन्त्र

१ "संकम यहे य॰ पुरातनं गायाद्वयम्" इति विदेशस्त्रूणों ॥ २ स पम्था अप्युपचारात् सक्कु॰ को॰ ॥ ३ °श्रा उपलक्षणत्वात् सन्ति॰ को॰ ॥

कादयः प्रतिपक्षास्तेषु गमनं कर्तन्यम् । अत्र पञ्चभिः पर्तेद्वर्गिशय् मङ्गाः—एकाङ्गिकः स्थिरोऽपरिशादी सारूम्बो निर्मय इत्यादि । एषु प्रथमो भङ्गः श्रुद्धः शेषा अश्रुद्धाः, तेष्विष बहुगुणतरेषु गमनं यतना च कर्तन्या । सण्डेवका अपि सङ्गममेद एव, अत आह्—तज्जातकाः 'इतरे वा' अतज्जातकाः सण्डेवका भवेषुः । तत्रैव जाताख्तज्ञाताः शिलादयः, अन्यतः स्थानादानीय स्थापिता अतज्जाताः इष्टालकादयः । तेष्विष चला-ऽचला-ऽऽकान्ता-ऽना-ठ कान्तादयो भेदाः कर्तन्याः ॥ ५६४२ ॥ उक्तः सङ्गमः । अथ स्थल्माह्—

नदिकोप्पर वरणेण व, थलप्रुदयं णोथलं तु तं चउहा । उवलजल वालगजलं, सद्धमही पंकप्रदगं च ॥ ५६४३ ॥

नद्या आकुण्टितकूरीराकारं वलनं नदीकूपैरमुच्यते । जलेपिर कपाटानि मुक्तवा पालिबन्धः कियते स वरण उच्यते । एताभ्यां यदुदकं परिहृत्य गम्यते तत् सांकं द्रष्टव्यम् । अथ नीसकं 10 तत् चतुर्विभम्—'उपलजलश्' अधः पाषाणा उपिर जलं १ 'बालुकाजल्य' अधे बालुका उपिर पानीयं २ 'गुद्धोदकं' अधः मुद्रा मही उपिर जलं ३ 'पङ्कोदकं' अधः कर्दम उपिर जलम् १ ॥ ५६२३ ॥ पङ्कोदकस्य चामूनि विधानानि—

लत्तगपहे य खुलए, तहऽद्धजंघाऍ जाणुउविर च । लेवे य लेवउविर, अकंतादी उ संजोगा ॥ ५६४४ ॥

यावन्मात्रमञ्ज्ञकेन पादो रायते तावन्मात्रो यत्र पथि कर्दमः स उत्तक्तपः । खुँठक-गात्रः—पादपुण्टकप्रमाणः । अर्द्धजङ्कामात्रः—जङ्काद्धं यावद् भवति । 'जानुपरि' जानुमात्रं यावद् भवति । 'ठेपः' नाभिषनाणः । तत ऊर्द्धं सर्वोऽपि केगेपरि । एते सर्वेऽपि कर्दम-प्रकाराः । चतुर्वि रोमाञ्च कर्दमे चाकान्ता-जाकान्त-सभय-निर्भयाद्यः संयोगा यथासम्भवं चक्तस्याः । असुना दोषेण युक्तः पन्धाः परिहर्तस्यः ॥ ५६९४ ॥ 20 जो वि य होत्रप्रकृतोः हरियादि-तसिष्टि चेव परिहर्णि ।

नेपा वि तु न गंतर्व, शर्मा अर्था अर्था इसे होंति ॥ ५६४५ ॥ तेण वि तु न गंतर्व, जत्य अवाया इसे होंति ॥ ५६४५ ॥ योऽपि च पत्थाः 'आकान्यः' दरमिलेतो हरितादिभिक्षतेश्च परिहीणो भवति तेनापि न गनत्यम् । यत्र जसी अपाया भवति ॥ ५६४५ ॥ ।

गिरिनदि पुण्णा वाला-ऽहि-कंटगा दूरपारमावत्ता । 25

चिक्खल्ल कल्लुगाणि य, गारा सेवाल उवला य ॥ ५६४६ ॥ यत्र पिथ गिरिनदी 'पूणी' तीववेगा वहित, मकरादयो व्याला लहयो वा यत्र जलमध्ये भवत्ति, कण्टका वा पूरेणानीताः, दूरपारम् आवर्तबल्लुलं वा जलं भवेत्, चिक्खल्लो वा नदीषु ताहलो यत्र पादो निमज्जति, 'कल्लुकाः' गाथायां नपुंसकत्वं प्राकृतत्वात् पाषाणेषु द्वीन्द्रिय-जातिविशेषा भवन्ति ते पादौ छेदयन्ति, 'गाराः' पाषाणशृक्षिकाः, 'सेवालः' प्रसिद्धः, 50

१ "थडे णाम परिएएंगं गम्मइ, जहा कोप्परावीणं । णोषलं पाणियं, तं चडन्विहं" इति विशेषचूर्णों ॥ २ सालुपर मो॰ के॰ । खुलुपर मा॰ । एवमप्रेडिए सर्वत्र ॥ ३ सालुकः मो॰ के॰ । खुलुकः मा॰ । एवमप्रेडिए सर्वत्र ॥ ४ तामचाह इसवतरणं को॰ ॥

'अपसार' किमानागाः । एँभिरपायेवेजितेन पूर्व साठेन गन्तव्यम् , तदभावे सङ्गमेण, तद-मावे नोस्तरेनापि ॥ ५६४६ ॥ तत्र चतुर्विचे नोस्यठे पूर्वभयुना गन्तव्यम्—

डबरुजलेण तु पुन्नं, अकंत-निरचएण गंतन्नं । तस्सऽस्ति अपकंते, णिग्चएणं तु गंतन्नं ॥ ५६४७ ॥

 उपस्कलके कर्दमो न अवति, स्थिरसंहमनं च तद् मवति, अतः पूर्वं तेन 'आकान्त-निरस्यवेन' शुष्पा-निष्यत्यपायेन गन्तव्यम् । तस्याभावे अनाकान्त-निरस्ययेनापि गन्तव्यम् ॥ ५६४७ ॥

एमेव सेसएसु वि, सिगतजलादीहिँ होति संजोगा । पंक महुसित्थ लत्तग, खुलऽद्धजंघा य जंघा य ॥ ५६४८ ॥

उषकात् वालुका अरूपसंहनना, तत उपक्रवकाभावे वालुकाजलेन गन्तव्यम् । वालुकायाः 10 शुद्धपृथियो स्वरूपतरसंहनना, ततो वालुकाजलानन्तरं शुद्धोदकेन गैम्यते । तेष्वपि सिकता-जलादिषु शेषपरेषु 'प्यमेव' माम्बद् आकान्ता-ऽनाकान्त्वादमः संयोगा भवन्ति । पद्धनकं बहु-मख्यायम्, अतः सर्वेषागुष्ठजलादीनातभावे तेन गम्यते । त च यः 'मधुसिक्षाकृतिः' कमत-रुयोरेव केवलं रुगति यो वा अलक्तकमात्रस्तेन पूर्वं गम्यते, पश्चात् खुलकमात्रण, पश्चादर्द-जङ्गामोत्रण, ततो जङ्गामोत्रण जानुमाणेनीत्यर्थः ॥ ५६९८ ॥

गरत जानुप्रमाणादुपरि पद्मस्तेन न गन्तव्यम्, यत आह—

अङ्गोरुविमत्तातो, जो खुछ उविर तु कहमो होति । कंटादिजरो वि य सो. अत्थाहजलं व सावायं ॥ ५६४९ ॥

'अर्द्धोरुकमात्राद्' जानुममाणादुपरि यः कर्दमो भवति स कण्टकाद्यपायवर्जितोऽप्यस्ताय-जलमिव गन्तुमशक्यस्तात् सापायो मन्तव्यः ॥ ५६४९ ॥

एष विभिः सर्वोऽपि सिच्चचपृथिन्यामुक्तः । अथानिचपृथिन्यां तमेवाह—

जत्थ अचित्ता पुढवी, तहियं आउ-तरुजीवसंजीगा।

जोणिपरित्त-थिरेहि य, अकंत-णिरचएहिं च ॥ ५६५० ॥

यत्र पृथिवी अचित्ता तत्राप्कायजीवानां तहजीवानां च संयोगाः कर्तव्याः। तथया—
पृथिवी सर्वेत्राप्यचित्ता किमप्कायेन गच्छतु ! किंवा वनस्पतिना ! उच्यते— अप्काये नियमाद्
28 वनस्पतिरित्ति तस्मात् तेन मा गात्, वनस्पतिना गच्छतु, तत्रापि परीत्तयोनिकेन श्विरसंहननेन
आक्रान्तेन निरस्ययेन च-निष्प्रत्यपायेन । अत्र पोडश्च भक्काः, तथ्यया—मधेक्कयोनिकः
स्थिर आक्रान्तो तिःश्ययायः, एप प्रथमो भक्कः, सप्तर्यपयेन द्वितीयः, अनाकान्तेऽप्येवमेव
द्वी विकल्पी, एवं स्थिरै चरवारो विकल्पाः डल्याः, अस्परेऽप्येवं चरवारः, एते प्रयोक्तयोतिकेनाधी भक्काः कव्याः, अनत्ययोनिकेऽप्येवमेवाधी कथ्यत्ते, एवं सर्वेदसङ्कया वनस्पतिकाये
30 परीचादिभिः पत्तैः षोडश्च भक्का भवन्ति ॥ ५६५० ॥ अयादाकायस्य त्रसानां च संयोगानाह—

एमेव य संजीमा, उदमस्स चउव्विहेहिं तु तसेहिं। अकंत-यिरसरीरे-णिरचएहिं तु गंतव्वं ॥ ५६५१ ॥

१ पतेर° भा• ॥ २ गन्तव्यम् , तेष्व° भा• ॥

चतुर्विधास्त्रसाः--द्रीन्द्रयास्त्रीन्द्रयाश्चतुरिन्द्रयाः पञ्चन्द्रयाश्चेत । एतेश्चतुर्विधैरपि त्रसै-राकान्तादिभिः पदैरेवसेव उदकेन सह संयोगाः कार्याः, तद्यथा-आकान्ताः स्थिरा निःपत्य-पाया: १ आकान्ताः स्थिराः सप्रत्यपायाः २ एवं त्रिभिः पढेरष्टी सङ्गा भवन्ति, एते च टीन्टियाटिष चतुर्विप प्रत्येकमष्टावष्टी कभ्यन्ते, जाता मक्तकानां द्वात्रिशत् । अब सान्तर-निरन्तरविकल्पविवक्षा कियते ततश्चतः षष्टिः संयोगा उत्तिष्ठन्ते । अत्र चाकान्त-स्थिरशरीर-६ निरत्ययै: सान्तरेस्नसैर्यन्तव्यं नाष्कायेन ॥ ५६५१ ॥

तेऊ-वाउविहणा, एवं सेसा वि सब्वसंजीया ।

उदगस्स उ कायव्या, जेणऽहिगारी इहं उदए ॥ ५६५२ ॥ 'तेजो-बायकाययोर्गमनं न सम्भवति' इति कत्वा तेजो-बायविद्यीना एवं द्रोषा अपि संयोगाः सर्वेडपि कर्तत्याः । तत्राप्कायस्य वनस्पतिना श्रमेश्च सह भक्तका उत्ताः, अथ वनस्पति-त्रसानां 10 द्विकसंयोगेन भक्का उच्यन्ते-कि वनस्पती गम्यताम् ! उत त्रसेषु ! उच्यते-त्रसेषु सान्त-रेषु गन्तव्यम् , न पुनर्वनस्पती, तत्र हि नियमेन त्रसा भवेयुः । आह च निशीयचर्षिकत-

पुढं तसेसु थिराइसु गंतवं, जतो वणे वि नियमा तसा अत्थि ।

प्रशिव्यप्काय-वनस्पतित्रयसम्भवे कतमेन गम्यताम ! उच्यते - पूर्व प्रशिवीकायेन. ततो वनस्पतिना, ततोऽष्कायेनापि । पृथिव्यदक-वनस्पति-त्रसरुक्षणचतुष्कसंयोगसम्भवे कृतमेन 15 गन्तव्यम् ? उच्यते---पूर्वमचित्तपृथिव्यां प्रविरत्नत्रसेषु, ततः सचित्तपृथिव्याम् , ततो वनस्प-तिना, ततोऽप्कायेनापि गम्यन् । एवमिह बहुभक्कविस्तरे बीजमात्रमिद्मुक्तम् । इह च उदकपदममुख्यता ये भन्नाः प्राप्यन्ते ते कर्तव्याः, येनेह सुत्रे उदकस्याधिकारः । शेषास्त विनेय-व्युत्पादनार्थमभिहिताः ॥ ५६५२ ॥ "अंतो मासस्स दुक्खुचो वा" इत्यादि सूत्रं व्याख्याति-

एरवड जत्थ चिक्कव, तारिसए न उवहम्मती खेत्तं।

पहिसिद्धं उत्तरणं, पण्णासति खेत्तऽणुण्णायं ॥ ५६५३ ॥ या ऐरावती नदी कृणालाजनपदे योजनार्द्धविस्तीर्णा जङ्गार्द्धमानमुदकं वहति तस्याः के चित प्रदेशाः शुष्का न तत्रोदकमस्ति, तामुचीर्य यदि भिक्षाचर्यो गम्यते तदा ऋतबदे त्रय उदकसङ्घडाः. ते च गता-ऽऽगतेन घड भवन्तिः वर्षास सप्त दकसङ्घद्याः, ते च गता-ऽऽगतेन चतुर्दश भवन्ति । एवमीदशे सङ्गद्रभमाणे क्षेत्रं नीपहन्यते, इत एकेनाप्यधिके सङ्गद्रे 25 उपहुन्यते । अन्यत्रापि यत्राधिकतराः सङ्घद्वास्तत्रीचरणं प्रतिषिद्धम् । पूर्णे मासकस्पे वर्षावासे वा बद्यन्तीर्णानामपरं मासकल्पपायोग्यं क्षेत्रमस्ति ततो नोत्तरणीयम् । अथान्तीर्षानामन्यतः क्षेत्रं नास्ति ततोऽसति क्षेत्रे उत्तरणमनुज्ञातम् ॥ ५६५३ ॥ इदमेव व्याचष्टे-

सत्त उ बासास भवे. दगघडा तिकि होति उदबढे ।

जे त ण हणंति खेचं, भिक्खायरियं व न हणंति ॥ ५६५४ ॥ सप्तीदकसङ्ख्या वर्षास त्रयः सङ्ख्या ऋतवादे भवन्ति एतावन्तः क्षेत्रं नीयप्रन्ति. न वा भिक्षाचर्यासपन्नति ॥ ५६५२ ॥

जह कारणस्मि पुण्णे, अंतो तह कारणस्मि अस्वितादी।

उवहिस्स गहण लिंपण, णाबीयम तं पि जतणाए ॥ ५६५५ ॥

यथा कारणे पूर्णे मासकरूपे वर्षावासे वाऽपरक्षेत्रामाने दृष्टमुतरणं तथा मासस्यान्तरप्यक्षि-बादिभिः कारणैरुरपेनी महणार्थे लेपस्यानयनार्थं वा उत्तरणीयम् । कारणे यत्र नावाऽप्युदकं तीर्थते तत्रापि यतनया सन्तरणीयम् ॥ ५६५५ ॥ तत्र चायं विधिः—

नाव थल लेवहेडा, लेवो वा उवरि एव लेवस्स । दोण्णी दिवष्ट्रमेकं, अद्धं णावाऍ परिहाती ॥ ५६५६ ॥

अत्र पूर्वाद्धं-पश्चादंदानां यथासक्ष्येन योजना—नावुत्तरणस्थानाद् यदि द्वे योजने वक्तं स्थलन गम्यते तेन गम्तव्यं न च नीरारोड्ट्या, ''लेबहिट्ट') चि लेपस्थाप्तात् दकसङ्कहेन यदि सार्द्धयोजनपरिरयेण गम्यते ततस्तत्र गम्यतां न च नावमधिरोहेत्, एवं योजनपर्याद्दारेण लेपन १० गच्छतु मा च नावमधिरहेत्, अर्द्धयोजनपर्यवद्दारेण लेपोपरिणा गच्छेत् न च नावमधिरोहेत्, एवं योजनपर्यादात् स्थलिद्धयोजनपरिवारेण स्थलेन, स्वत्यं योजनद्वयादिकं परिद्धायते। एवमेच लेपोपरिस्थानात् सार्द्धयोजनपरिहारेण स्थलेन, एक्त्योजनपरिहारेण सार्द्धयोजनपरिहारेण स्थलेन, एक्त्योजनपरिहारेण सार्द्धयोजनपरिहारेण स्थलेन, अर्द्धयोजनपरिहारेण वा सह्वेन गन्तस्त्रं न लेपोपरिशा । लेपोचरणस्थानादंक्तयोजनपर्यवहारेण स्थलेन, अर्द्धयोजनपरिहारेण वा सह्वेन गन्तस्त्रं न नेपे। सङ्घटोचरणस्थानादंक्तयोजनपर्यवहारेण स्थलेन गम्यतां न च सङ्घहेन। एतेषां परिहारपरिमाणानामावे नावा लेपोपरिशा लेपेन सङ्घटेन वा गम्यते न कथिहोषः॥ ५६५६॥ अत्र 'भाव थळ' वि पदं व्याच्छे—

दो जोयणाइँ गंतुं, जहियं गम्मति थलेण तेण वए । मा य दरूहे नावं, तत्थावाया वह बत्ता ॥ ५६५७ ॥

हे बोजने गत्वा बन स्थलेन गम्बते तेन पथा बजेद् मा च नावमारोहत् । यतस्तत्र बह-२० बोडपायाः पूर्वमेबोक्ताः । कारणे तु तत्रापि गम्बते ॥ ५६५७ ॥

तत्र सङ्घट्टे गच्छतां तावद् यतनामाह-

थलसंकमणे जयणा, पलोयणा पुन्छिऊण उत्तरणं । परिपुन्छिऊण गमणं, जति पंथो तेण जतणाए ॥ ५६५८ ॥

स्थलसङ्कमणे यतना कार्या, एकं पारं जले एकं च पारं स्थले कुर्यादित्यर्थः । प्रलोकना 25 नाम-लोकमुत्तरन्तं प्रलोकयति, यस्मिन् पार्थे जङ्कार्द्वमात्रमुद्धकं तत्र गच्छति । अयोत्तरतो न पर्चित ततः प्रातिपश्चिकमन्यं वा प्रच्छिति, ततो यत्र नीचतरमुद्धकं तत्रोत्तरणं विषेयम् । "परिपुच्छिङ्कण" इत्यादि, यदि तस्योदकस्य परिहारेण पन्धा विद्यते तदा तं परित्यस्य यतनया तेन गन्तस्यम् ॥ ५६५८ ॥ अत्र स्थलपथेऽमी दोषा भवेगुः—

> समुदाणं पंथो वा, वसही वा थलपथेण जित नित्थ । सावत-तेणमयं वा, संघड्टेणं ततो गच्छे ॥ ५६५९ ॥

'समुदानं' भिक्षा तत्र नास्ति, खलपव पद वा नास्ति, वसतिवां खलपवे बदि न समस्ति, श्चापदमयं स्तेनभयं वा तत्र विद्यते ततः खलपवं मुक्त्वा सङ्ग्रहेन प्रथमतो गच्छेत्, तद्भावे स्रोपदामयं स्तेनभयं वा तत्रेयं यतना—

15

30

णिभये गारत्थीणं, तु मग्गतो चोलपट्टमुस्सारे । सभए अत्थग्धे वा, उत्तिष्णेसुं घणं पट्टं ॥ ५६६० ॥

यदि स साधुर्गृहिसार्थसहायस्ततं उदकसमीपं गलोक्षंकायं मुखबक्षिकयाऽधःकायं रजोहर-णेन प्रमाव्योपकरणमेकतः इत्वा यदि निर्भयं-चीरमयं नास्ति ततो गृहस्वानां 'मार्गतः' सर्व-पश्चादुत्वकमवरातं । यथा यथा चोण्डपुण्डतरं जरुमवगाहते तथा तथोपर्युपरि चोल्पट्टकसु- ६ स्तारयेद् येन न तीन्यते । अथा तत्र समयम् अस्ताधं वा जलं ततो यदा कियन्तोऽपि गृहस्वा अम्रतोऽवर्ताणीसादा मध्ये साधुनाऽवतरणीयय् चोलपट्टकं च 'धनं' दढं बन्नशीयात् ॥ '५६० ॥ एतेन विधिनोर्डीणीस्य यदि चोलपट्टकोऽन्यद्वा किश्चिद्धपकरणजातं तीमितं तदाऽयं विधि:—

दगतीरे ता चिट्ठे, णिप्पगलो जाव चोलपट्टो तु । सभए पलंबमाणं, गच्छति काएण अफ़संतो ॥ ५६६१ ॥

'दक्तीरे' स्नियपृथिव्यामप्कायरक्षणार्थं तावत् तिष्ठेत् यावत् चोरुपट्टकोऽन्यद्वोषकरणं निष्प-गर्लं भवति । अथ तत्र तिष्ठतः सभयं ततः प्रगरून्तमेव तं चोरुपट्टकं कायेनास्पृशत् बाहायां प्ररूचमानं नयन् गच्छति ॥ ५६६१ ॥ यत्र सार्थविरहित एकाकी समुत्तरित तत्रायं विधिः—

असइ गिहि णालियाए, आणक्खेउं पुणो वि पडियरणं । एगाभोगं च करे, उनकरणं लेव उनिरं वा ॥ ५६६२ ॥

गृहिणामभावं सर्वोपकरणमवताणतीरं मुक्तवा नालिकां—आसममाणातं चतुरङ्गुळातिरिकां वृष्टिं गृहीत्वा तथा "आणक्खेडं" अस्त्राधतामनुमीय परतीरान् पुनरिष जले प्रतिचरणं करोति, प्रत्यागच्छतीत्यर्थः; आगत्य च तदुषकरणमेकाभोगं करोति, एकत्र नियम्रयतीत्यर्थः; तत-स्तद् गृहीत्वा तेन परीक्षिनजरूपयेनोचरित । एव लेपे लेपोपरी वा विधिरुक्तः ॥ ५६६२ ॥ अथ नावं थेः कारणेरारोहेत् तानि दर्शयति—

बिह्यपय तेण सात्रय, भिक्खे वा कारणे व आगाढे । कज्जविह मगर छुन्भण, नाबोदग तं पि जतणाए ॥ ५६६३ ॥

द्वितीयपदमत्रोच्यते — सारू-सङ्कृद्वादिपथेषु शारीरोपिश्लेनाः सिंहादयो वा श्वापदा भवेयुः, भैशं वा न लभ्यते, आगादं वा कारणम्-अहिद्दष्ट-विष-विस्तृचिकादिकं भवेत् तत्र त्वरितमी-प्रधानगेतव्यानि, कुलादिकार्ये वा अक्षेरण करणीयमुपक्षित्तम्, उपपेरुत्यादनार्ये वा गत्रव्यम्, 25 छेपे लेपोपरी वा मकरमयं ततो नावमारीहित्। तत्र यभयमेनोपकरणमेकाभोगं कुर्यात् । कुतः ! इत्याह— "कुक्मण" चि कदाचित् मत्यमीकेन उदके प्रक्षिप्यति, तत एकामोगकृतेषु भाजनेषु विक्रसदारति। "पावीदा सं पि जयणाए" वि यदि बळाभियोगेन नावुदकस्यो-स्तेचापनं कार्यते तदा तदिष यतनया कर्तव्यम् ॥ ५६६३॥

कथं पुनरेकाभोगमुपकरणं करोति ? इत्याह-

पुरतो दुरुहणमेगतों, पडिलेहा पुञ्च पच्छ समगं वा । सीसे मग्गतों मज्झे, बितियं उदकरण जयणाए ॥ ५६६४ ॥ गृहिणां पुरत उपकरणं न प्रजुपेक्षते, न वा पुकामोगं करीति । "दुरुहण" ति नावमारे-

॥ महानदीपकृतं समाप्तम् ॥

#### उपा श्रय प्रकृत स्

सूत्रम्--

15

20

25

से तणेसु वा तणपुंजेसु वा पलालेसु वा पलाल-पुंजेसु वा अप्पंडेसु अप्पराणेसु अप्पत्नीएसु अप्पह-रिपसु अप्पुस्तेसु अप्पुत्तिंग-पणग-दगमिट्टय-मकड-गसंताणपसु अहेसवणमायाए नो कप्पइ निग्गं-थाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए हेमंत-गिम्हासु वस्थए ३४॥ से तणेसु वा जाव संताणपसु उप्पंसवणमायाए कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उव-स्सए हेमंत-गिम्हासु वस्थए ३५॥ से तणेसु वा जाव संताणपसु अहेरयणीमुक्कम-उडेसु नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तह-प्यगारे उवस्सए वासावासं वस्थए ३६॥ से तणेस वा जाव संताणएस उप्पिरयणीमकम-उदेस कप्पड निग्गंथाण य निग्गंथीण य तहप्पगारे उवस्सए वासावासं वत्थए ३७॥

अस्य सम्बद्धयस्य सम्बन्धमाह----

अद्धाणातो निलयं, उविंति तहियं तु दो इसे सुचा। तत्थ वि उड्डिम्म पदमं, उड्डिम्म दहजाणा जेणं ॥ ५६६५ ॥ पर्वसन्त्रे 'अध्वा' जलपथलक्षणः मकृतस्त्रत उत्तीर्णाः 'निलयम्' उपाश्रयमुपागच्छन्ति ।

तबिषये च ऋतबद्ध-वर्षावासयोः प्रत्येकमिमे हे सूत्रे आरम्येते । तत्रापि प्रथमं सूत्रद्वयमृतु-बद्धविषयं द्वितीयं वर्षावासविषयम् । कृतः ! इत्याह--ऋतुबद्धे येन कारणेन "दडज्जणा" विहारी भवति न वर्षावासे, पूर्वसूत्रे च विहारोऽधिकृतः, अतः सम्बन्धानुकोम्येन पूर्वमृतवद्ध-10 सत्रद्वयं ततो वर्षावाससत्रद्वयमिति ॥ ५६६५ ॥

अहवा अद्धाणविही, बत्तो वसहीविहिं इसं भणई। सा वी पुरुषं बुत्ता, इह उ पमाणं दविह काले ॥ ५६६६ ॥

अथवाऽध्विन विधिः पूर्वसूत्रे उक्तः, इमं तु प्रस्तुतसूत्रे वसतिविधि भणति । साऽपि च वसतिः 'पूर्व' प्रथमोद्देशकादिष्वनेकशः प्रोक्ता, इह तु 'द्विविधेऽपि' ऋत्वद्ध-वर्षावासरुक्षणे 15 काले तस्याः प्रमाणमुच्यते ॥ ५६६६ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या-अथ तृणेषु वा तृणपुञ्जेषु वा पठालेषु वा पलाल-पुजेष या अल्पाण्डेप अल्पप्राणेषु अल्पबीजेषु अल्पहरितेषु अल्पावश्यायेषु अल्पोत्तिक्र-पनक-दकम्पत्तिका-मर्कटसन्तानकेष । इह अण्डकानि पिपीलिकादीनाम्, प्राणाः-द्वीन्द्रियादयः, बीजम्-अनङ्करितम् , तदेवाङ्करितोद्भिनं हरितम् , अवश्यायः-खेहः, उत्तिन्नः-कीटिकानगरम् , 20 पनकः-पश्चवर्णः साङ्करोऽनङ्करो वाऽनन्तवनस्पतिविशोषः, दकमृत्तिका-सचित्रो मिश्रो वा कर्दमः. मर्कटकः-कोलिकसास्य सन्तानकं-जालकम् । अल्पशब्दश्चेह सर्वत्राभाववचनः, ततोऽण्डरहितेषु प्राणरहितेषु हत्यादि मन्तव्यम् । "अहेसवणमायाए" ति 'अधःश्रवणमात्रया" श्रवणयोरधसाद यत्र छादनतृणादीनि भवन्ति तथाप्रकारे उपाश्रये नो करपते निर्प्रन्थानां वा निर्मन्यीनां वा हेमन्त-प्रीप्मेषु वस्तुम्, अष्टावृतुबद्धमासानित्वर्थः ॥

एवं प्रतिषेधसूत्रमभिषाय प्रपश्चितज्ञविनेयानुग्रहार्थं विधिसूत्रमाह---

अथ तृणेषु वा यावदरप० सन्तानकेषु उपरिश्रवणमात्रया युक्तेषु तथाविधोपाश्रये करूपते हेमन्त-श्रीष्मेषु बस्तुम् ॥ एवमृतुबद्धसूत्रद्वयं व्याख्यातम् । अथ वर्षावाससूत्रद्वयं व्याख्यायते---

अब तृणेषु वा तृणपुञ्जेषु वा यावदस्प० सन्तानकेषु "अधेरयणीमुक्कमउढेसु" चि अञ्ज-लिमुकुलितं बाह्द्वयमुच्छितं मुकुट उच्यते स च इस्तद्वयममाणः । यदाह बृहुद्भाष्यकृत् — ३०

मउड़ो पुण दो रयणी, पनाणतो होह ह सुणेयब्यो । रिकम्यां-हस्ताभ्यां सकाभ्यां-उच्छिताभ्यां यो निर्मितो सकटः स रिक्रिकसंकटः । एता-T. 165

बस्पनाणमध्का**रुपरि च यशक्तरा**छं न घाट्यते तेष्ट्योरिबयुक्तमुकुटेषु तृष्यादिषु न कस्पते वर्षावासे वस्तुम् ॥

अथ तृणेषु वा वावरस्य सन्तानकेषु उपरिरक्षिमुक्तमुक्टेषु यश्रोक्तममाणेषु सुकुटोपरि-वर्तिषु संसारके निविष्टस्य साधोर्षमृतीबहस्ताधपान्तराळयुक्तेष्वित्यर्थः । ईहस्यां वसती करूपते वर्षावासे वस्तमिति सत्रचतष्टयार्थः ॥ अथ भाष्यकारः प्रथमसूत्रं विवरीषराह—

तजगहजाऽऽरण्णतजा, सामगमादी उ मृह्या सन्वे ।

तणगहणाऽऽरण्णतणा, सामगमादा उ सृह्या सन्त्र । सालीमाति पलाला, पुंजा पूण मंडवेसु कता ॥ ५६६७ ॥

तृणब्दणाब् आरप्यकानि स्थामाकादीनि सर्वाण्यपि तृणानि सृचितानि । पळाकप्ररोन शास्त्रादीनि षकाकानि गृहीतानि । पुझाः पुनस्तृणानां पळाळानां वा उपरिमण्डपेषु कृता १० भवन्ति । येषु हि देशेषु सल्यानि तृणानि तेषु पुझक्तप्रवा तानि मण्डपेषु सङ्गुबन्ते, अपन्ता-द्वारी स्थापितानि मा विनस्येयरिति कृत्वा ॥ ५६६७ ॥

> पुंजा उ जिंह देसे, अप्पप्पाणा य होंति एमादी । अप्प तिग पंच सत्त य. एतेण ण वसती सत्तं ॥ ५६६८ ॥

प्तं यत्र देशे मण्डपेषु पुझाः कृता भवन्ति तत्र विवक्षितायां वसती ते पुझा अल्पपाणा 15 अल्पणीजा प्रवमादिविशेषणयुक्ता भवेषुः, अत्र कृत्यात्येवं बुद्धिः स्यात्—अल्पाः प्राणाखयः पञ्च सत्त वा मन्तर्याः, अत आह——न 'एतेन' परोक्तेनाभिमायेण सूत्रं व्रजति, किं तर्हिः अल्प-शब्दोऽत्राभाववाचको द्रष्टयः, प्राणादयस्तेषु न सन्तीति भावः ॥ ५६६८ ॥ अत्र परः प्राह—

बचच्चा उ अपाणा, बंधणुलोमेणिमं कवं सुत्तं । पाणादिमादिएसं, ठंते सद्राणपन्छितं ॥ ५६६९ ॥

20 यदि अभावार्थोऽस्पराञ्चतत एवं सुत्राकाणका वक्तवाः—"अवाणेषु अवीएषु अहरिएसु" इत्यादि । गुरुगह—वन्धानुकोग्वेतंत्वं सूत्रं इतम् "अव्यवणेषु" इत्यादि, एवंविघो हि पाठः सुकलितः सुलेगेवाचरितुं शक्यते । यदि पुनर्ही त्रयः पञ्च वा द्वीन्द्रियादमः माणिन आदिशब्दारण्डादीनि वा यत्र भवन्ति तत्र तिष्ठन्ति तत्रसीयां विराधनायां स्वसानमायिश्च चं द्वष्टस्यम् ॥ ५६६९ ॥ कर्ष पुनरस्वयुक्तरेऽभावे वर्तते ! तत्र आह—

25 थोबिम्म अभाविम्म य, विणिओगो होति अप्पसद्स्स । थोवे उ अप्पमाणो, अप्पासी अप्पनिदो य ॥ ५६७० ॥ निस्सवस्स उ स्रोप, अभिद्दाणं होद्द अप्पसची चि । स्रोडचरे विसेसो. अप्पाहारो तअक्टिका ॥ ५६७१ ॥

क्षोकेऽमाचे च अस्पक्षकदस्य 'विनियोगः' व्यापारी भवति । तत्र क्षोकार्यवाचको यथा---३० सङ्ग्याची अस्पाञी अस्पतिद्रोऽयम् ॥ ५६७० ॥ अमाववाचको दथा---

यः किङ निःसच्यः पुरुषक्यत्व कोकेऽस्पतस्यीऽयमित्यभिषानं भवति । कोकोचरेऽप्ययं विशेषः समस्ति, यथा—अस्पाष्टारो भवेद् अस्यं च त्यवर्तयेत् । अभावेऽति स्टयते, यथा— "व्यावर्षके" गीरोग स्वर्थः ॥ ५६७१ ॥ अस्य बोजादियुकेषु सिह्नां मावस्विकसह—

ैबिय-सहिषामु लहुगा, हरिए लहुगा व होति गुरुमा वा।
पाणुर्विधा-रूपुर्गं, लहुगा पण्य गुरू चत्रो ॥ ५६७२ ॥
भीज-प्रक्तिमुक्तेषु र्तृणादिषु तिहार्व चतुर्वेषुकाः । हरितेषु सल्वेकेषु चतुर्वेषु, अनन्तेषु
चतुर्गुरं । प्राणेषु-द्वीदियादिषु उतिक्षोरकसोक्षतुर्वेषु । पनके चतुर्गुरनः ॥ ५६७२ ॥
उक्तः समार्थः । अस मिर्युक्तिविक्तरः—

सवणपमाणा वसही, अधिठंते चउलहुं च आजादी ।

मिच्छच अवाउड पंढिलेह वाय साथ य वाले य ।। ५६७३ ।। अवणप्रमाणा वसतिः कणेगोरभस्तात् तृणादियुक्ता या भवति तस्वामधः अवणप्रमाणा वसतिः कणेगोरभस्तात् तृणादियुक्ता या भवति तस्वामधः अवणप्रमाणां तिष्ठतश्चतुर्लेषु, आज्ञादयश्च दोषा सिप्यासं च भवति । कथप् ! इति चेत् इत्याह —येषां साधूनां सागारिकमपावृतं वैक्रियं वा तात् प्रविक्षतो हृष्टा लोको मृषात् — जहो ! द्वीपच्छाद ।० गमि तीर्षकरेण नातुज्ञातम्, लक्ष्माण्यश्च पुरुष-बियोरल्ह्यारः, तद् तृतमसर्वज्ञ एवासीः एवं सिप्यास्तमानं भवत् । 'पढिलेह'' च उपर्यसत्युपेक्षिते तीर्षनास्मिदति तत्र प्राणविराधना-निष्यस्य ; अवनतानां च पविष्ठातं निर्यच्छतां च कदी पृष्टं वा वातेन पृष्यते । अवनतस्य च प्रविश्वतः सागारिकं सम्यमानं प्रष्टतः श्वानो मार्जीरो वा त्रोटयेत् । ''वाले य'' चि उपरि द्वीषे आस्मितिते सर्वो दृश्चिको वा दशेत् । यत एते दोषा अतीऽषः अवगमावायां वसती न 15 स्वातव्यम् । द्वितीयपदे तिष्ठेयुरिष ॥ ५६०३ ॥

सवणपमाणा वसही, खेत्ते ठायंतें बाहि वीसग्गी । पाणादिमादिएसुं, वित्थिष्णाऽऽगाढ जतणाए ॥ ५६७४ ॥

परेषु क्षेत्रेण्यशिवादीनि भवेषुः ततः क्षेत्राभावेऽधःश्रवणमात्रायामप्यक्ष्माणादिषुकायां तिष्ठतामियं यतना—वसतेवेहिरावश्यकं कुर्वन्ति । अन्योऽपि यः 'स्युत्सर्गः' कायोत्सर्गः स 20 बिहः क्षित्रते । द्वितीयपदे समाणेषु आदिशक्वाद् भौनादिष्विष वसती विषयानेषु तिष्ठेषुः तत्र यतनया विस्तिकां तिष्ठन्ति । सा येण्ववकाशेषु संसक्ता ताव् क्षारेण कश्चयन्ति, कुटयु-क्षेत्र व हिरितादिकं स्थावन्ति, इक्ष्मृतिका-वीजादीन्येकान्ते वृष्यमः स्थापवन्ति । एवमागाढे कारणे स्थितानां यत्रात्र विदेशा ॥ ५६०६ ॥

वेउध्य-ऽवाउडार्ण, युत्ता जयणा णिसिज कप्यो वा । उवजोग जितर्जनेते. ह छिंदमा णामणा वा वि ॥ ५६७५ ॥

ये विकुर्विता-ऽपावृतसागारिकासोषां प्रथमोदेशकोका यतनाऽप्रधारणीया । प्रविक्वनो विर्ध-च्छन्तश्च प्रष्ठतो निषयां कर्त्यं वा कुर्विन्तें । श्वानादीमञ्जूपयोगं वदाषा नित्यं निर्मच्छन्ति प्रवि-शन्ति च । बान्युपरि तृष्णान्यवस्त्रन्तते तेषां प्रमार्क्य च्छेदमं वामणं वा कुर्वन्ति ॥ ५६७५॥ व्यास्त्र्यातं ऋतुबद्धसुद्धस्य । अथ वर्षावाससुद्रवं विवृणोति—

> अंजलिमउलिकयाओ, दोण्णि वि बाहा सम्सिया मउडो । हेट्टा उवरिंच भवे, मुकंतु तओ रमाणाओ ॥ ५६७६ ॥

र अत्रान्तरे प्रत्याप्रयः—५००० को॰ ॥ २ त्र्योषु को॰ विना ॥ २ वको आव्यकृता सुत्रा॰ को॰ ॥ ४ °त्वि वेण शहरवाः सामारिकं न वदवेषुरिक्ति । आवाण को॰ ॥

अञ्चलिमुकुलीकृतो द्वावि बाह्न समुच्छितो मुकुट उच्यते । मुक्युकुटं पुनः 'ततः ममा-णात्' तावतमागममञ्जीकृत्य संस्तारकतिविष्टसाध उपरि च बत्रान्तरालं प्राप्यते ईदस्यामुपरि-रिसमुक्कमुकुटामां बसती वर्षाकाले स्वातव्यन् ॥ ५६७६ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते—

इत्थो लंबइ हत्थं, भूमीओ सप्पों हत्यमुद्वेति ।

सप्पस्त य हत्यस्स य, जह हत्यो अंतरा होइ ॥ ५६७७ ॥ फलकादी संतारक ग्रुपस 'हत्तः' हत्तमेकं अयो लग्नते, मुमितश्च सेर्पो हत्तगुणिष्ठति, ततः सर्पस्य च हत्तस्य च यया हत्तो अन्तरा अवति तथा कर्तव्यम् ॥ ५६७७ ॥ तथा—

माला लंबति इत्थं, सप्पो संथारए निविद्वस्स ।

सप्पस्स य सीसस्स य, जह हत्थो अंतरा होइ ॥ ५६७८ ॥ 10 संस्तारके निविष्टस मालत् सर्पो इस्तं रुम्बते, ततः सर्पस च शीर्षस च यथा हस्तो अन्तरा भवति तथा विषेषम् . ईहकप्रमाण उपाश्रयो महीतन्त्र इत्यर्थः ॥ ५६७८ ॥

काउस्सम्मं तु ठिए, मालो जह हवह दोसु रयणीसु । कप्पह वासावासी, इय तणपुंजेस सब्वेस ॥ ५६७९ ॥

कायोत्सर्ग स्थितस्य माठो यदि हथो रव्यक्तिस्य तथ्यतु । १२०२ । ॥ कायोत्सर्ग स्थितस्य माठो यदि हथो रव्यक्तिस्य भवति तदा करूपते तस्यां वसती वर्षावासः 16 कर्त्वस् । "इय" एवं सर्वेश्वपि तृणपुरक्षेत्र विधिदृष्टव्यः ॥ ५६७९ ॥

उप्प तु मुक्तमउडे, अहि ठंते चउलहुं च आणाई। मिच्छत्ते वालाई, बीयं आगाढ संविग्गो ॥ ५६८० ॥

सत उपरिद्वक्तमुक्तरे पतिश्रये स्थातस्यम् । अथाभोष्ठकमुक्तरे तिष्ठति ततश्रवुरुंखु भाज्ञादयो मिथ्यालं स्थालादयश्च दोषाः पूर्वसूत्रोका भवन्ति । द्वितीयपदमप्यागाढे कारणे २०तथैव मन्तव्यम् । तत्र च तिष्ठत् संवित्र एव भवति ॥ ५६८० ॥ अत्रेयं यतना—

दीहाइमाईसु उ विञ्जबंधं, कुन्वंति उल्लोय कडं च पोत्ति ।

कप्पाठसईए खल्ज सेसमाणं, धुसुं जहणोण गुरुस्स कुजा ॥ ५६८१ ॥ दीर्घजातीयादिषुं वसतौ विद्यमानेषु तेषां विद्यया बन्धं कुर्वन्ति । विद्याया अभावे उपरि-ष्टादुक्षोचं कुर्वन्ति । उद्घोचाभावे कैटम् । कटाभावे ''पोर्ति'' ति चिलिमिलिकां सर्वसाधूना-25 युपरि कुर्वन्ति । अथ तावन्तः करुपा न विद्यन्ते ततः शेषाणां मुक्तवा जवन्येन गुरोरुपरिष्टा-दुक्षोचं कुर्योत् ॥ ५६८१ ॥

॥ उपाश्रयविधिप्रकृतं समाप्तम् ॥ ॥ इति कल्पटीकायां चतुर्थोदेशकः समासः ॥ श्रीचृर्णिकारवदनाकवचोमरन्दित्यन्पारणकपीवरवेशस्त्रीः । उद्देशके मम मैतिभगरी तुरीवे, टीकामिषेण ग्रस्तत्वमिदं वितेने ॥

१ सर्प ऊर्ड्राभवन् हस्तमेकमुत्ति° कां ॥ २ 'सु अधोमुक्तमुकुटायां वसती कां ॥ ३ 'कटं' बंशादिमयमुपरिधाद् ददति । कटा' कां ॥ ४ मतिसंपुषी तुरीये मा ॥॥



॥ श्रीमद्विजयानन्दस्तरिवरेभ्यो नमः॥

## पूज्यश्रीभद्रबाद्रसामिविनिर्मितस्वोपज्ञनिर्यु<del>च</del>युपेतं

# बृहत् कल्पसूत्रम् ।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन लघुभाष्येण भूषितम् । तपाश्रीक्षेमकीर्त्याचार्यविहितया वृत्त्या समलङ्कृतम् ।

## पञ्चम उद्देशकः ।

— ⇒ब्रह्मापाय प्रकृत म् ⇔

व्याल्यातश्वर्थोहेशकः । सम्प्रति पद्यम आरम्यते । तस नेदमादिवृत्रनवुष्टयम्—
देवे य इस्थिरूवं विउन्वित्ता निग्गंथं पिडगाहिजा,
तं च निग्गंथं साइजेजा, मेहुणपिडसेवणप्पत्ते आवज्ञइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं अणुग्धाइयं १ ॥
देवी य इस्थिरूवं विउन्वित्ता निग्गंथं पिडगाहिजा,
तं च निग्गंथं साइजेजा, मेहुणपिडसेवणप्पत्ते आवज्ञइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं अणुग्धाइयं २ ॥
देवी य पुरिसरूवं विउन्वित्ता निग्गंथं पिडेगाहिजा,
तं च निग्गंथी साइजेजा, मेहुणपिडसेवणपत्ता
आवज्जइ चाउम्मासियं अणुग्धाइयं ३ ॥
देवे य पुरिसरूवं विउन्नित्ता निग्गंथिं पिडेगाहिजा,
तं च निग्गंथी साइजिजा, निग्गंथिं पिडेगाहिजा,
तं च निग्गंथी साइजिजा, मेहुणपिडसेवणपत्ता
आवज्जइ चाउम्मासियं अणुग्धाइयं २ ॥

अश्रास सूत्रचतुष्टयस कः सम्बन्धः ! इत्याह— पाएण होति विजणा, गुज्झगसंसेविया य तणपुंजा । होज मिह संपयोगी, तेस य जह पंचमे जोगी ॥ ५६८२ ॥ 10

15

मायेण तृणपुत्राः 'विजनाः' जनसम्पातरहिताः गुष्ककैथ-व्यन्तरैः सेविताः-अधिष्ठिता मवन्ति, ततसेषु तिष्ठतां तैः सह मिथः सम्यरोगोऽषि भवेत्, अत इदं सूत्रमारम्यते । 'अथ' युष पष्कमोहेसके आधर्मप्रवत्तृष्टयस्य सम्बन्धः ॥ ५६८२ ॥'

#### अवि य तिरिओवसग्गा, तत्थुदिया आधवेयणिका य । इमिगा उ होति दिव्वा, ते पडिलोमा हमे हबरे ॥ ५६८३ ॥

'आप च' इति सम्बन्धस्य प्रकारान्तराभ्युचये । 'तत्र' इति अनन्तरस्त्रे 'तिर्यगुपसर्गाः' व्यालादिकृताः 'आत्मसंवेदनीयाध्य' वातेन कटीम्हणादयः 'उदिताः' भाणताः, एतेषु प्रस्तु-तस्त्रेषु दिव्या उपसर्गा उच्यन्ते । उपसर्गाध्य द्विधा—'मित्रकोमाः' प्रतिकृत्रः 'इतरे च' अनुकृतः । तत्र प्रतिकृताः पृषेसुँत्रोकाः, इहानुकृत्रः भण्यन्ते ॥ ५६८६ ॥'

अहवा आयावाओ, चउत्थचरिमस्मि पवयणे चेव । इमओ बंभावाओ, तस्स उ भंगस्मि कि सेसं ॥ ५६८४ ॥

अथवा चतुओंईशकचरमस्त्रे आत्मापायः प्रवचनापायक्षोकः, अयं पुनः प्रस्तुतसूत्रेषु ब्रष्ट-व्रतापाय उच्यते । तस्य हि भक्के किं नाम शेषमभन्नम् ! अतस्तद्वक्को मा सृदिति प्रकृतसूत्रा-रम्भः ॥ ५६८४ ॥ अथवा चतुर्थेन प्रकारेण सम्बन्धः, तमेवाह—

#### सरिसाहिकारियं वा, इमं चउत्थस्य पटमसुत्तेणं । अमहिगारिम्म वि वत्थुतिम्म अमं पि इच्छंति ॥ ५६८५ ॥

अथवा इदं सूत्रं चतुर्षोहेशकस्य 'प्रश्नमस्त्रेण' ''तश्रो अणुग्याहया पण्णता' इत्यादिरूपेण संगं सदशाधिकारिकप्, तत्राप्यनुद्धातिकाधिकार उक्त इहापि स प्वाभिषीयत इति भावः । आह— चतुर्थमथमस्त्रानन्तरमपराणि भूयांसि स्त्राणि गतानि तेषु चापरापरेऽधिकारास्त्रनः 20 कथमयं सम्बन्धो घटते : इत्याह—अन्यसिकाधिकारे मस्तुतेऽपि अन्यमधिकारमिच्छन्ति स्त्यः ॥ ५६८५ ॥ तथा सात्र इद्यानः—

#### जह जाहरूवधार्त, खणमाणों स्रभिज उत्तमं वयरं । तं गिण्हह न य दोसं, वयंति तहियं इमं पेवं ॥ ५६८६ ॥

यथा जातरूपं-सुवर्णं तस्प धाद्धं स्वनमानो बिट्ट छत्तमं वज्रं छमेत ततस्त गृह्वेति न 20 च तस्य वज्रं गृहतः कमपि दोषं वदन्ति । एवम् 'इदमपि' प्रस्तुतमपराधिकारे प्रस्तुतेऽपराधि-कारमहर्णं मं निरुष्यते ॥ ५६८६ ॥

१ द्वितीयम्बारेण सम्बन्धमाह इत्तर्वत्यं कां ।। २ °ताः, इमे तु पतेषु पुनः मस्तु ' कां ।। ३ °सूत्रे मोकाः, इह पुनरपु 'कं । ४ तृतीचेनाचि प्रकारेण सम्बन्धः समस्तानि (१) द्रोयति इत्त्यत्यं कां ।। ५ सूत्रे नीचतरायां चस्ती अवनतानां मिश्चत आत्मा' कां ।। ६ °यु चतुर्धं म्न कां ।। ७ 'स्वत्यपुष्टयार' कां ।। ८ समम् 'दर्वं सुत्रचतुष्टयं सहसाधिकासिक मन्तव्यम्, तर्वा' कां ।। १ °द्वाति, इदं काका व्यास्पेयम्, ततः किं न सक्वति ! अवि जु सुक्वायेष्, तर्वा' सन्य कां ॥

जन पर: सह—सनु पानेन शुपर्ण-वज्रश्वानोनेदशायवय्—मध्यस्त्रत्वे स्थे प्रवस्ता-दिस्वं प्रपानतरम् । सुरिराह—वैवयः, प्राधाम्यलीभयोरप्यावेक्षिकतया शुक्रस्तात् । तमहि—

कलएम विया बहरं, न भीवए नेव संगहसुबेह ।

न य तेण विणा कणवं, तेण र अशोध शहलं ॥ ५६८७ ॥

कनकेन चिना बज्जं 'न बाति' न बोमते न च 'सङ्क्टं' सम्बन्धरीति, बाश्रयामावात् ; 5 न च 'तेल' बज्जेण विता कनकं बोमते, तेन कारणेन '१' हति निषातः पानपूरणे उभयोर-प्रश्मकोत्र्यं प्राधान्यस् । एवसध्यतनस्त्राणां कनकतुरुयानां पश्चमोहेशकादिस्त्रैत्स च धज्जकुरूयस्य पापप्रतिवेशकस्त्रात् तुरुयमेव प्राधान्यस् ॥ ५६८७ ॥

भनेन सम्बन्धमनुष्टयेनापतितसास्यं व्याख्या—देवध स्रीरूपं विकृत्यं वित्रीय्वी-यात्, तच निर्धन्यो मैधुनमतिसेवनप्राप्तो यदि 'लादचेद्' अनुगोदवेत् तत आपचते 10 चादामीसिकं परिहारस्थानमनुद्धातिकस् ॥

एवं द्वितीयसूत्रं देवी सीरूपं विकुत्वे निर्फ्रेन्धं प्रतिगृहीबादिखाबाप मन्तन्यत् ॥ तृतीयसूत्रम्—देवी पुरुषस्य रूपं विकुत्वे निर्फ्रन्धं प्रतिगृहीबात्, तत्र निर्फ्रन्धं सादयेत्, मैधुनमतिसेवनपाता आपवते चातुर्मासिकमनद्वातिकं स्वानम् ॥

एवं देवः पुरुषरूपं विकुर्व्य निर्भन्धां मतिगृहीयादित्याधापे चतुर्थस्त्रं वक्तव्यम् । एव 15 सृत्रचाष्ट्रयार्थः ॥ अधाधसृत्रद्वयं तावद् विवरीषुराह—

देवे य इत्थिरूवं, काउं गिण्हे तहेव देवी य।

दोसु वि य परिणयाणं, चाउम्मासा भवे गुरुगा ॥ ५६८८ ॥
देवो देवी वा स्रीरूपं इत्वा निर्मत्यं गृद्धीयात् । ततः किम् १ इत्वाह—'द्वयोरिष' देवदेवी क्रियोः मितसेवने परिणतानां चत्वारो मासा गुरुकाः मायश्चित्तं भवेत् ॥ ५६८८ ॥ २०
अभैतयोः सत्रयोविषयसभवगाह—

गच्छगय निग्गए बा, होज तर्ग तत्थ निग्गमो तुबिहो । उवएस अणुवरुसे, सच्छंदेणं इमं तत्थ ॥ ५६८९ ॥

गच्छातस्य गच्छिनिर्गतस्य वा 'तद्' अनन्तरोक्तं बृचान्तजातं भवेत्।तत्र गच्छाद् निर्गये द्विविध:—उपदेशेन अनुषदेशेन च । जनुषदेशः खच्छन्द इति वैकोऽर्थः।तत्र खच्छन्देन ४० इदं गच्छाद् निर्गमनमभिषीयते ॥ ५६८९ ॥

> सुत्तं अत्थो य बहु, गहिपाई नवरि में झरेयर्थ । गच्छिम य वाघायं, नाऊण इमेहिं ठाणेहिं ॥ ५६९० ॥

१ °भ्यः सुवर्णकार्यभ्यः पञ्चनस्याविस्त्रचनुद्वयं वज्जकारं त्रभा° शंः ॥ २ आहती ज इय संग' तामाः ॥ ३ °त्रचतुष्वयस्य कांः ॥ ४ °स्य सुवचतुष्वयस्य व्याक्ताः—देवः वदायो वाक्योपन्यासे स्रीकर्ष कांः ॥ ५ °द्र् । हृह निर्मन्थीस्त्रवदेयं यत् परिहारस्थानः मिति पदवजुद्धातिकविशेषणतया मोक्तं तत् निर्मन्थीमा परिहारतयो न भवति हिःनु स्वस्तर वदेति हापनार्थस् । एव मांः ॥

कब्बिट् गृष्टीतसूत्रार्थबिन्तयति—सूत्रगर्थब्य गया 'बहु' प्रभृती गृष्टीती, नवरमिदानीं मया पूर्वेगृष्टीतं ''क्षरेयव्वं'' ति 'सर्तव्वं' रिश्तितं कर्तव्यम्, गच्छे च सरणस्यामीभिः 'स्वानैः' कारणैव्यापातं ज्ञात्वा निर्गमने मतिं करोति॥ ५६९०॥ कानि पुनस्तानि स्वानानि ! इत्याद—

धम्मकह महिद्रीए, आवास निसीहिया य आलोए।

पहित्रच्छ बादि पाइण, महाण गिलाणे दलमभिक्खं ॥ ५६९१ ॥ ħ स धर्मकथालविधसम्पनस्ततो भयान् जनः श्रोतुमागच्छतीति धर्मकथया व्याघातः । 'महद्भिका' राजादिर्धर्मश्रवणाय समायाति तस्य विशेषतः कथनीयम् . तदावर्जने भयसामा-वर्जनात। तथा महति गच्छे बहवो निर्गच्छन्त आवश्यिकों कुर्वन्ति प्रविशन्तो नैषेथिकों कुर्वन्ति ते सम्यग् निरीक्षणीयाः । चशब्दाद् असङ्घडव्यवशमनादौ वा भूयसी वेला लगेत् । "आलोए" 10 चि भिक्षामदित्वा समागतानामन्यसाधनामारुोचयतां यदि परावर्त्यते तत आरुोचनाव्याघातः । तथा गच्छे वसतो बहवः प्रतिप्रच्छानिमत्तमागच्छन्ति तेषां प्रत्युत्तरदाने व्याघातः । तं च बहश्रतं तत्र स्थितं श्रत्वा वादिनः समागच्छन्ति ततस्तेऽपि निमहीतव्याः. अन्यथा भवचनो-पघातः । तथा "महाणि" चि 'महाजने' महति गणे बहवः प्राधुर्णकाः समागच्छन्ति तेषां विश्रामणया पर्यपासनया च व्याघातः । तथा बहवो महति गणे ग्ठानासादर्थमौपधादिकमाने-15 तब्यम् । दुर्रुमं वा तत्र क्षेत्रे मेक्षं तदर्थं चिरमटनीयम् । एवंविधो ब्याघातो गच्छे भवतीति सङ्ख्याशासमासार्थः ॥ ५६९१ ॥ साम्प्रतं विस्तरार्थमभिधित्वर्धर्मकथादारं सगमित्यनाहत्य महर्द्धिकदारं व्याख्याति—तत्र यो राजा राजामात्योऽपरो वा महर्द्धिको धर्मश्रवणायागच्छति तस्यावस्यं विशेषेण च धर्मः कथनीयः । परः प्राह-कि कारणं महद्धिकस्य विशेषतो धर्म-कथा कियते ? नन भगवद्भिरित्थमुक्तम् — "जहा पुत्रस्य कत्थई तहा तच्छस्य कत्थई" 20 (आचा० श्रु० १ अ०२ उ०६) अत्रोच्यते---

कामं जहेव कत्थति, पुत्रे तह चेव कत्थई तुच्छे ।

वाउलणाय न गिण्हइ, तम्मि य रुद्वे बहु दोसा ॥ ५६९२ ॥

'कामम्' अनुमतिमदं यथैव 'पूर्णस्य' महिद्धिकस्य पर्मः कथ्यते तथैव 'पुच्छस्य' अरुपिद्धं-कस्यापि कथ्यते, परं स महिद्धको ज्याकुरुनातो यथातथा धर्म कथ्यमानं सम्यम् 'न ग्रह्माति' 20 न मित्रवाते रोषं च गच्छिति, 'तिसिंख्य' राजेश्वर-तळवरादिके रुष्टे 'वहवः' निर्विषयाज्ञापना-दयो दोषाः, अतोऽवश्यं विशेषेण वा तस्य धर्मः कथनीयः; एवं सुत्रार्थस्मरणव्याघातः । अथवा गुरवो महिद्धकाय धर्म कथयन्ति ततानीमिष तृष्णीकैमैवितव्यम्, मा भृत् कोखाहरू-तत्तस्य सम्यम्भगमितिपतिति कृतवा ॥ ५६९२ ॥

आवश्यिकी-नैवेधिकीपदे चशब्दस्चितं चार्थं व्याचष्टे-

आवासिगा-ऽऽसञ्ज-दुपेहियादी, विसीयते चेव सवीरिओ वि ।

विजोसणे वा वि असंस्वडाणं, आलोपणं वा वि चिरण देती ॥ ५६९३ ॥ जावस्यकीकरणे उपल्क्षणत्वाद् नैपेधिकीकरणे जासज्जकरणे दुःमत्त्रुचेक्षित-दुःममार्जनादि-करणे च 'सवीयोंऽपि' समयोंऽपि वः ममारबहुडतया विधीदति स सम्यग् निरीक्ष्य क्षिक् णीकः। असमुकानि व साध्नाप्रत्येरन् तेषां खुषशमने नृवसी वेका कमकि । मतिकमणे वा मनुतसाचुसमूहः कमेणाकोचवन् चिरेणाकोचनां दवाति ॥ ५६९३ ॥

मेरं ठवंति थेरा, सीदंते आवि साहति पक्ती । थिरकरण सङ्गहेर्ज, तवीकिलंते य पुच्छंति ॥ ५६९४ ॥

'स्वितराः' श्राचार्या यावत् 'मर्यादा' सामाचारी स्थापयन्ति तावत् चिरीयवित । यो वा व कोऽपि सामाचार्या सीदित तस्य प्रवृत्तियावद् आचार्याणां निवेषते तावत् स्वाच्यायपरिमन्यः । अभिनवश्राद्धस्य वा स्थिरीकरणार्थं धर्मः कथनीयः । ये च तपस्विनो विकृष्टतपसा क्रान्तास्ते 'स्रस्ततपः समस्ति भवताम् !' इति भूयोभूयः प्रष्टन्याः ॥ ५६९८ ॥

> आवासिगा निसीहिगमकरॅतें असारणे तमावजे । परलोहगं च न कयं. सहायगत्तं उवेहाए ॥ ५६९५ ॥

परहोइसं च न कयं, सहायगत्तं उवेहाए ॥ ५६९५ ॥ भ्रम्भ अत्राविश्वकी-नैषेषिक्यादिसामाचारीमकुर्वतामाचार्यः सारणां न करोति ततो यत् तद-करणे प्रायक्षितं तद् उपेक्षमाण आचार्य आपवते । उपेक्षायां च पारकौकिकं सहायतं तेषा-माचार्येण कृतं न भवति । तदकरणाच नासौ तत्त्वतद्येषां गुरुः । तथा चोक्तय्—

> अज्ञासितारं च गुरुं, मन्दसेहं च बान्धवम् । अदातारं च भतीरं, जनस्थाने निवेशयेत् ॥

11 4894 11 15

30

"आरुोए" ति पदं व्याख्याति—

सम्बोहो मा दोण्ह वि, वियडिजांतस्मि तेण न पहंति । पडिपुच्छे पलिमंथो, असंखडं नेव वच्छक्षं ॥ ५६९६ ॥

ये भिक्षाचर्यां गतासे आगत्य यावद् आलोचयनित तावत् पूर्वागतानां परिवर्तनस्वाचातः । अथालोचयतामपि परिवर्तपन्ति तत आचार्या आलोच्यमानं नावचारयन्ति । आलोचकोऽसि 20 सम्यग् हस्तं मात्रकं स्यापारं वा तेन स्यावेषण न स्मरति । एवं 'द्वरेषामपि सम्मोहो मा भृत्' इति इस्ता 'विकस्वमाने' आलोच्यमाने यत्न पठन्ति एव स्वाचातः । ''प्रश्चेपुच्छ'' ति द्वारं व्यास्थायते—तस्यान्तिकं वे सूत्रार्थमतिषुच्छां कृते तेषां मध्युपं दक्ता स्वाच्यपरिमन्त्रः । अप मध्युपं त्वदाति तत्रसे रूप्येपुः—'स्त्रव्यस्तम् , कलवान्तिकं मश्यिष्याति ?' इस्वादि च चस्पनिः, सतोऽसङ्क्षं भविति । न च मतिवचनामयच्छता सार्थामिकवास्तस्यं इतं भविति 25 ॥ ५६९६ ॥ अथ वादि-माधुणक-महाजन-स्वान-स्वान-दुर्हभभैक्षद्वाराणि स्वाच्छे—

चितेह बादसत्थे, बार्दि पिडयरति देति पिडवार्ष ।
महर गणे पाहुषपा, बीतासम् पञ्जवातागया ॥ ५६९७ ॥
आलोपमा सुषिकाति, जाव च दिक्क गिलाण-बालाणं ।
हिंडति चिर्र असे, पाजोगुमयस्त वा अहा ॥ ५६९८ ॥
पाउग्मोसह-उन्यक्तवादि अतरंति लं च वेकस्त ।
किमहिजउ संस्त्रिमस्ते, केतवितो भिक्क हिंडीहिं ॥ ५६९८ ॥

बादिनसागच्छन्तं श्रुता वादशास्त्राणि चिन्तयति । तं च बादिनं यावत् पतिचरति प्रति-वादं च यावत् तस्य प्रचच्छति तावद् ध्याघातः । तथा सहति गणे प्राचुणका स्वागच्छेयुः तेषां विश्रामणा पर्युपासना च कर्तव्या ॥ ५६९७ ॥

आलोचना च गावत् तेषां श्रूयते, यावच ग्लान-मालानां दीयते, तथा प्राप्तुणकादीनां 5 प्रायोग्यस्य उभयस्य-भक्तस्य पानकस्य चार्थाय चिरमेके पर्यटन्ति, 'अन्ये च' निष्ट्रा अपि तानागच्छतो यानत् मतीक्षन्ते ॥ ५६९८ ॥

'अतरतः' स्टानस्य प्रायोग्योषधादिकं यावद् ञानयन्ति, उद्वर्तनादिकं वा तस्य कुर्वन्ति, वैद्यस्य वा 'यद्' मञ्जनादिकं परिकर्म कुर्वन्ति तावद् व्यापातः । संबुक्षेत्रे वा सस्पया भिक्षया बाह्यया च हिष्ण्या चिरं क्रेन्नितः सन् किमधीताम् १ न किम्निदित्यर्थः ॥ ५६९९ ॥

> ते गंतुमणा बाहिं , आपुच्छंती तहिं तु आयरियं । मणिया मणित मंते !, ण ताव पजताग तुन्मे ॥ ५७०० ॥

पतैः कारणैः तत्र' गच्छे ज्याघातं मत्वा 'ते' गृष्ठीतसूत्रायोः साधवो बहिगेन्तुमनस आवार्षमाष्ट्रच्छन्ति । तत आवार्येण वारिता दिज्य-मानुष्य-तरश्चोपसर्गसहने विहारे च न तावद् अधापि युर्व पर्योसाः । एवं भणितासे भणन्ति—भयन्त ! युष्माचरणमसादेनेहञा १५ भिष्णामः ॥ ५७०० ॥

> उप्पण्णे उवसग्गे, दिन्वे माणुस्सए तिरिक्खे य । इंदि ! असारं नाउं, माणुस्सं जीवलोगं च ॥ ५७०१ ॥

दिन्य-मानुष्य-तैरश्चान् उपसर्गान् उत्पन्नान् सम्यगधिसहिष्याम इत्युपस्कारः । कुतः ! इत्याह—'इन्ति' इति हेत्पृदर्शने, वयं मानुष्यं जीवकोकं चासारमेव जानीमस्ततस्तद् ज्ञात्वा २० कथनुपसर्गान् न सहिष्यामः ! ॥ ५७०१ ॥

ते निग्गया गुरुकुला, असं गामं कमेण संपत्ता ।

काऊण विद्दिसणं, इत्थीरूवेणवस्तग्गो ॥ ५७०२ ॥

एवशुक्तवा 'ते' साधवः सच्छन्देन गुरुकुळाद् निर्मताः क्रमेणान्यं प्रामं सम्प्रासाः, तत्र वैकस्यां देवकुलिकायां स्थिताः । तेषां मध्ये यो शुस्यः स प्रतिश्रयपालः स्थितः, रोषा भिक्षार्थे २० प्रविद्याः । ततः कयाचिद् देवतया 'विदर्शनं' विरोषेण दर्शनीयं रूपं कृत्वा स्रीहरेणोपसर्गः इतः ॥ ५७०२ ॥ इदमेव सुज्यकमाह—

पंता व णं छिलिजा, नाणादिगुणा व होतु सिं गच्छे ।

न नियसिहिंतऽक्षित्रा, भदेयर भीग वीमंसा ॥ ५७०३ ॥

सम्यग्रहष्टिरेका देवता विन्तयति—एते वावद् अनुपदेशेन प्रस्तिताः अतो माऽमृत् प्रान्ता 30 देवता छरुयेद् , ज्ञानादयो वा गुणाः "सिं" अमीषां गच्छे वसतां भवन्तु इति क्रत्या केना-प्रयुपसर्गेणाच्छलिताः सन्तो न निवर्षिण्यन्ते इतिबुच्या भद्रिका समागच्छति । इतरा तु प्रान्ता भोगार्थिनी 'विमर्श्यं वा' परीक्षां कर्त्युकामा छरुयेत् ॥ ५७०३ ॥

20

कथं पुनः स्नीरूपेणोपसर्गयेत् ! इत्याह---

मिक्स गय सत्य चेढी, गुज्यक्तिण अम्ह साविषा कहणं। विहवारुवविजनमा, किइकम्माऽऽलोयणा रूपमो ॥ ५७०४ ॥

सा देवता भिक्षां गतेषु साधुर्षु सार्थ विकुर्व्यं तां देवकुलिकां परिश्चिप्यावासिता । ततक्षेटि-कारूपं विकुर्व्यं प्रतिश्वयमागल साधुं बन्दित्वा भणति — 'गोजसविस्तणी' सामिनी मदीया । श्राविका, सा न जानाति अत्र साधुर्द् सितान्, ततोऽद्धं सामिन्याः कथ्यामि येन सा युज्यान् विन्तुसायाति । ततः सा निगेल विभवान्त्रं विकुर्वः वेटिकाचकवाल्यरिषुता प्रतिश्रयमागल्य 'कृतिकमी' वन्दनं कृत्वा पर्युपाते । ततः साधुना भणिता—कृतः श्राविका समायाता ! । ततः सा इमामालोचनां ददाति ॥ ५७००॥ ॥

पाडलिपुत्ते जम्मं, साप्तगसिद्विपुत्तमञ्जतं । पद्दमरण चेद्वंदणकोम्मेण गुरू विसञ्जणया ॥ ५७०५ ॥ पव्यजाएँ असत्ता, उज्जेणि भोगकंखिया जामि । तत्य किर बहु साथू, अवि होज परीसहजिय त्या ॥ ५७०६ ॥

पाँटिल्पुने नगरे मन जन्म समजिन, साकेतवास्तव्यस श्रेष्टिपुनस्य च भार्यासम्, पित्तरणे च सङ्गाते नैत्यवन्दनच्छप्रना 'गुरुन्यः' श्रगुरादिन्य श्रात्मनो विसर्जनं कृत्वा सम्प्रति 15 प्रमुज्यायामशक्ता सती उज्जयिन्यां भोगानां काङ्किका गच्छामि । 'तत्र' उज्जयिन्यां किरु इति श्र्यते—बहुवः साधवः परीषह्पराजिताः सन्ति, 'ध' इति निपातः पादपूरणे, अमुनाऽभिमायेण निर्गताऽहम्, साम्प्रतं तु युष्माष्ठ हृष्टेषु मदीयं मनो नामतो गन्तुं वदाति ॥ ५७०५ ॥ ५७०६ ॥ ततः—

दूरे मज्झ परिजणो, जोन्वणकंड चऽतिच्छए एवं । पेच्छद्द विमवं में इमं, न दाणि रूवं सलाहामि ॥ ५७०७ ॥ पडिरूवचरत्याया, किणा वि मज्झं मणिच्छयाँ तुन्मे । भुंजाम्रु ताव भोए, दीहो कालो तब-गुणाणं ॥ ५७०८ ॥

दूरे ताबद् मदीयः परिजनः, 'यौवनकाण्डं च' तारुण्योवसर आवयोरेवमितकामद् वर्तते, पद्यत मदीयम् 'पनम्' पतावत्परिस्पन्दरूपं विमवन्, रूपं पुनरात्मीयं नेदानीमहं काचे 25 प्रत्यक्षोपरुम्यमानत्वाल तद् वर्णयिद्यप्रचितिस्त्यर्थः, यूयं च मम प्रतिरूपवयसायाः केनापि कारणेनात्वन्तं मनस ईप्सितास्ततो सुझीवहि ताबद् भोगान्, तपो-गुणानां तु पाकने दीवैः पद्मादिष काको वर्तते ॥ ५७०७ ॥ ५७०८ ॥

मणिजो जालिद्धी या, जंघा संफासणाय ऊरूयं । जवयासिजो विसको, छट्टी पुण निप्पकंषो उ ॥ ५७०९ ॥ एवं तया भॅणितमात्रे एव प्रथमः 'विषणः' पराममः, प्रतिसेविद्धं परिणत इत्यर्थः ।

१ 'चु प्रभूतं बळीबदीविसार्ये सं ।। २ श्रुच्यन्तु पुज्याः ! मदीयं बृत्तान्तम्—पाट° को ।। ३ 'था उन्मे तामा ।। ४ 'मणितमात्र एव' मिसक्रितमात्र एव प्रथ' को ।।

हितीयो भणितोऽपि यदा नेच्छति तदा सुकुमारहस्तैशिक्ष्टस्त्रतो विषण्णः । सृतीय व्यक्षिष्टा-ऽत्यनिच्छन् व्यक्क्षम्यां संस्पृष्टो विषणः । एवं चतुर्थं उक्तभ्यां संस्पृष्टो विषण्णः । पश्चमः 'अवतासितः' क्यमोटिकया आलिक्षितो विषणः । षष्टः पुनः सर्वेतकारैः क्षोभ्यमानोऽपि निष्पकस्त्रमः ॥ ५७०९ ॥ अय एष प्रायक्षित्रमाह——

बदमस्स होइ मूलं, बितिए छेओ य छग्गुरुगमेव।

छह्नदुगा चउगुरुगा, पंचमए छट्ट सुद्धो उ ॥ ५७१० ॥

· अत्र प्रथमस्य यूरुम् , द्वितीयस्य च्छेदः , तृतीयस्य पङ्कः, चतुर्थस्य पङ्कःषु, पश्चमस्य चतुर्गुकः, अत्र च सूत्रनिपातः । पष्ठस्तु शुद्धः ॥ ५७१० ॥

सन्वेहिं पगारेहिं, छंदणमाईहिं छहुओ सुद्धी ।

तस्स वि न होइ गमणं, असमत्तसुए अदिने य ॥ ५७११ ॥

सर्वेरिप प्रकारैः छन्दनीदिभिनिष्यकम्पत्सत् षष्ठो यद्यपि गुद्धलयापि तस्याप्यसमाप्तश्चतस्य गुरुभिः 'अद्रते' अननुजाते गणाद् निर्गमनं 'न सन्ति' न करवते ॥ ५७११ ॥

यै: प्रथमादिभि: पश्चमानैर्नाधिसोढं ते भद्रिकया देवतया भणिताः— अहो ! भवद्रि: प्रतिज्ञा निर्वाहिता, गर्जित्वा निर्गतानां दृष्टा भवदीयाऽवस्था !, मयैतद् युष्पाकमनुज्ञासनाय कृतम् 10 भा मान्ता देवता छळ्यिच्यति' इति कृत्वा, ततो नाथापि किमपि बिनष्टम्, गच्छत भूयोऽपि गच्छम् । ष्वनुष्पना सा मतिगतेति ॥

> एए अण्णे य बहु, दोसा अविदिण्णनिग्गमे भणिया । सुचह गणमसुपंती, तेहिं रूपते गुणा चेमे ॥ ५७१२ ॥

एते अन्ये च बहुवो दोषाः अवितीर्णस्य-अननुज्ञातस्य गणाद् निर्गमे भणिताः । यस्तु 20 गणं न सुद्धति से तैर्देषिर्धन्यते, गुणांश्चामून रुमते ॥ ५७१२ ॥

> नाणस्स होइ भागी, थिरवरओ दंसणे चरित्ते य । धना गरुकलवासं. आवकहाए न मंचंति ॥ ५७१३ ॥

'ज्ञानस्य' अपूर्वश्चतस्य आसागी भवति, दर्शने च सम्भात्यादिशाखावगाहैनादिना चरणे च सारणादिना खिरतरो भवति, जत एव 'धन्याः' धर्मधन रुव्धारः शिष्या गुरुकुरुवासं 25 'यावस्कथ्या' यावज्ञीवं न गुखन्ति ॥ ५७१३ ॥ किश्च—

मीतावासो रई धम्मे, अणाययणवञ्जणा ।

निगाही य कसायाणं, एयं धीराण सासणं ॥ ५७१४ ॥

गच्छे 'भीतावासो मवति' आचार्थादिमबमीतैः सदैवाऽऽसितव्यम् , न किमप्यकृत्वं प्रति-सेवितुं रुप्यत इति भावः । 'धर्मे च' वैयादृत्य-साध्यायादिरूपे १तिभवति, 'अनायतनस्य च' 30 सीसंसर्गमभूतिकस्य वर्जनं मवति, कवायाणां चोदीर्णानां आचार्यादीनामनुशिक्या 'निम्नहः'

१ 'ना-निमन्नणा तदादिभिः, आदिराज्याद् आस्त्रेपणादिभिनिष्य' कां॰ ॥ २ स गणप्र-प्रश्चन त्रैवर्षेन्ध्रेच्यते, गुणांक 'रमान' वश्यमाणलक्षणान् स्त्रमे ॥ ५७१२ ॥ तानेवाद— नाण' कां॰ ॥ ३ 'दन-प्रवचनप्रभायनादर्भन्यदिना बार' कां॰ ॥

विष्यापनं मवति । 'बीराणा' तीर्थंकृतामेतदेव 'शासनम्' आज्ञो, बया—गुरुकुरुवासी न मोक्कव्यः ॥ ५७१२ ॥ केपि च---

> जद्दमं साहुसंसर्ग्या, न विमोक्स्तिस मोक्स्तिस । उंजतो व तवे निष्टं, न होहिसि न होहिसि ॥ ५७१५ ॥

यदि एनां सासुरांसार्थि 'न विमोश्यिस' न परित्यक्ष्मसि ततः 'मोश्यिस' मुक्ते भविष्यसि । व यदि च 'तपसि' भनशनादौ मुललन्यटतया नोधतो भविष्यसि ततोऽज्यावाधमुखी न मविष्यसि ॥ ५७१५॥

> सच्छंदबत्तिया जेहिं, सग्गुणेहिं जढा जढा । अप्पणी ते परेसिं च, निर्व सुविद्विया हिया ॥ ५७१६ ॥

वैः साधुनिः सच्छन्दवर्तिता 'जता' परिलक्ता । कथम्पूता ! सद्धि-कोभवेक्कांनादिमिर्जुणैः १० 'जदा' रहिता, आत्मनः 'परेषां च' पण्णां जीवनिकायानां नित्यं ते सुविहिता हित्त हति मकटार्थम् ॥ ५७१६ ॥

जेमि चाऽयं गणे वासो, सजजणाणुमओ मओ । दुहाऽवाऽऽराहियं तेहिं, निन्विकप्पसुहं सुहं ॥ ५७१७ ॥

'वेषां च' साष्ट्राम् 'अयम्' इत्यासनाऽनुन्यमानो गणे वासः 'मतः' अमिरुचितः । 13 कथम्भूतः ! सज्जनाः—तीर्थकरादयखेषागनुमतः सज्जनानुमतः । 'तैः' साधुभिः 'निर्विकरप-छुलं' निरुपमसीरूवं 'सुलप्' इति सुलेनैव द्विभाऽप्याराभितम् , तद्यथा—अवष्यसुलं निर्वाण-सुल च । अत्र अमणसुलं निरुपमिरुखं मन्तस्यम्—

नैवास्ति राजराजस्य तत् छुलं नैव देवराजस्य । यत् छुत्तमिहैव साथोर्लोकव्यापाररहितत्व ॥ ( पत्रम० आ० १२८ ) 2 -रै मिर्वाणसुनं तु निरुपर्ग प्रतीतमेवेति ৮ ॥ ५७१७ ॥

> नवधम्मस्स हि पाएण, धम्मे न रमती मती। वहए सो वि संजुचो, मोरिवाविधुरं धुरं॥ ५७१८॥

र्मवर्षमं हि प्रावेण 'धर्मे' श्रुत-चारित्ररूपे न रमते मतिः, परं गच्छे वस्तरस्वकाधि धर्मे रतिभवति । तथा बाह—'सोऽपि' नवधर्मा साधुमिः संयुक्तः संयमपुरामविषुरां वहंति । १३० गौरिव द्वितीयेन गवा संयुक्तः 'अविषुरां' अविषमा 'धुरं' शकटमारं बहति, एकस्तु वोढुं न शैकोति ॥ ५७१८ ॥

#### एगागिस्स हि चित्ताई, विचित्ताई खणे खणे।

१ गुरुकुळवासस्यैव गुणकदम्बकं दर्शयति स्वकारणं को० ॥ २ जह उज्जतो तचे के० ॥ ३ थि॰ एतरम्बनंतः पाठः को० एव वर्तते ॥ ४ 'नवधर्मणः' अभिनवश्रवज्ञितस्य साओः 'हि:' क्लुटं प्रायेण को० ॥ ५ 'इति । क इव १ 'गीरिव' वृष्ण इव, यद्याऽस्ये द्विती' का० ॥ ६ शकोति, यवं साधुरिय एकाकी व संपमधुराधीरेयतामसुप्रक्षितुमदंतीक्ष ॥ ५७१८॥ यत्तरिष कतः १ इताह - व्यापिस्स को० ॥

उप्पजंति वियंते य, वसेवं सज्जवे जवे ॥ ५७१९ ॥

एकाकिनो हि 'निचानि' मनांसि 'निचित्राणि' शुमा-रशुमाध्यवसायपरिणतानि क्षणे क्षणे उराधन्ते व्ययन्ते न, यत एवमतः 'सज्जने' सुसायुजनसमूहरूपे जने बसेदिति । एते गुणा गच्छे वसतासुक्ताः ॥ ५७१९ ॥

एवं गच्छनिर्गतस्य मस्तुतस्त्रसम्भव उक्तैः । सम्प्रति गच्छान्तर्गतस्य तमाह—

अहवा अणिग्गयस्सा, भिक्ख विवारे य वसिंह गामे य ।

जहिँ ठाणे साइजति, चउगुरु वितियम्मि एरिसगी ॥ ५७२० ॥

'अथवा' इति न केवलं गच्छाद् निर्गतस्य प्रायश्चित्तं किन्तु गच्छादनिर्गतस्यापि भिक्षाचर्यां विचारसूर्मि वा गतस्य वसतौ वा तिष्ठतो ग्रामविद्वां यत्र स्थाने देवः स्नीरूपेण निर्मन्त्रं गृह्णाति 10 तत्र यथसौ स्वादयति तदा तस्यापि चर्जुर्गुरु । एतावता प्रथमसूत्रं व्याल्यातस् । द्वितीयसूत्रेऽपि यत्र देवी स्नीरूपं विकुर्व्य निर्मन्यं गृहीयादिस्तुकं तत्राऽपीदृश एव गमः ॥ ५७२० ॥

अध निर्प्रन्थीसूत्रद्वयं व्याख्याति-

एसेन गमी नियमा, निग्गंथीणं पि होइ नायन्तो । ननरं पुण णाणत्तं, पुन्नं हत्थी तती पुरिसो ॥ ५७२१ ॥

प्रव एव गमो निर्मन्यानामैपि ज्ञातन्यः । नवरमत्र नानारवम्—पूर्वे ''देवी य पुरिसरूवं विडिविचा निर्मार्थि पिंडेगाहेच्या'' इति झीस्ट्रत्रम्, ततः ''देवे य पुरिसरूवं'' इत्यादिकं द्वितीयं पुरुषस्त्रत्रम् । अनयोरिप सम्भवो धर्मकथादिभिन्धांवातैर्गणाद् निर्ममने तथैव मन्तन्यो यावत् ता अप्यार्थिका देवकुलिकायां स्थिताः ॥ ५७२१ ॥ ततः—

विगुरुन्विऊण रूवं, आगमणं डंबरेण मेहयाए ।

20 जिण-अज-साहुभत्ती, अजपरिच्छा वि य तहेव ॥ ५७२२ ॥

सम्बन्धष्टिदेवतायाः पुरुषरूपं विकुर्वयं आगमनस् । ततो महता आडमनरेण देवकुलिकायाः
यार्थे सार्थमावास्य मायया श्राद्धवेषं विधाय वन्दनकं विखरेण कृत्वा भणति—युष्माभिः
काचित् पुराणिका संगती वा विषयपराजिता दृष्टा ! युष्माकं वा यद्यर्थस्ततो भोगान् सुङ्गीमहि, सुङ्गानास्य जिनवैत्यानामार्थिकाणां साधूनां च भक्तिं करिष्यामस्ततो निस्तरिष्यामः ।
25 एवमार्योपरीक्षाऽपि तथैव मन्तव्या यथा निर्मन्यानाङ्कते ॥ ५७२२ ॥

अब किमर्थ निर्भन्थेषु प्रथमं देवसूत्रं निर्भन्योषु च प्रथमं देवीसूत्रम् ? इत्याह—

वीसत्थवा सरिसए, सारुष्यं तेण होइ पढमं तु । पुरिद्युत्तरिओ धम्मो, निग्मंथो तेण पढमं तु ॥ ५७२३ ॥

'सहसे' खपक्षजाती 'विश्वस्तात' विश्वासो भवति तेन प्रवमग्रुनवोरिष पक्षयोः सारूप्य-२० सूत्रमभिद्दितम् । 'पुरुषोचरो धर्मः' इति ऋत्वा च प्रथमं निर्मन्यानां सूत्रद्वयग्रुकम् , ततो

१ °कः। अथ गच्छा को ।। २ 'मिप स्त्रद्वये बातव्यो भवति। नवरं पुनरत्र ना । को ।। ३ सम्बन्धो धर्म को ।। ४ महएण तामा ।। ५ °का । क्षुभितानां च तासां प्रायक्षिक्तमिप तथैव प्रचयम् ॥ ५७२२ ॥ को ।।।

20

निर्धन्यीनाम् ॥ ५७२३ ॥ एतेषु विशेषतो विराधनामाह---

खिचाइ मारणं वा, घम्माओ मंसणं करे पंता । महाए पढिबंघो. पढिगमणादी व नितीए ॥ ५७२४ ॥

या प्रान्सदेबता सा तं साधुं प्रतिसेवनापरिणतं क्षिष्ठाचिचादिकं कुर्वात्, मारणं धर्माद् प्रशनं वा कुर्वातः । या भद्रा तस्यामसौ प्रतिबन्धं कुर्यात्, निर्गच्छन्त्यां वा तस्यां प्रतिगमनादीनि स<sup>5</sup> विदर्शात ॥ ५७२२ ॥ अत्रेदं द्वितीयणदयः—

> बितियं अञ्छित्तिकरो, बहुवक्खेवे गणम्मि पुच्छिता । सुत्त-ऽत्यक्षरणहेतुं, गीतेहिं समं स निग्गच्छे ॥ ५७२५ ॥

योऽज्यविच्छितिकरो भविष्यति स सृतार्थी गृहीत्वा बहुव्याक्षेप 'भणे' गच्छे गुहूनाष्ट्रच्छ्य तेषामुपदेहोन गीतार्थैः साधुभिः समं स्चृत्रा-ऽर्धसरणहेतोर्भणाद् निर्मच्छेत् । पुतद् द्वितीयपद-10 मत्र मन्तव्यम् ॥ ५७२५ ॥

# ॥ ब्रह्मापायमकृतं समाप्तम् ॥

### अ धिकरण प्रकृत म्

सूत्रम्--

भिक्त् य अहिगरणं कहु तं अहिगरणं अविओस-वित्ता इच्छिजा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तप्, कप्पइ तस्स पंचराइंदियं छेयं कहु, परिनिठ्वविय परिनिठ्वविय दोचं पि तमेव गणं पडिनिज्जाएअठवे सिया, जहा वा तस्स गणस्स पत्तियं सिया ५॥

अस्य सम्बन्धमाह-

एगागी मी गच्छसु, चोइअंते असंखर्ड होजा । ऊणाहिगमारुवणे, अहिगरणं कुज संबंधो ॥ ५७२६ ॥

एकाकी मा गच्छ हत्येवं नोषमानो यदा न प्रतिपचते तदाऽसङ्क्काढं मवेत् । अथवा स निर्मत्यो सूयो गच्छं प्रविद्यान् उन्नायामधिकायां वाऽऽरोपणायां दीयमानायामधिकरणं कुर्यात् । एष सम्बन्धः ॥ ५७२६ ॥

कनेनायातस्यास्य व्यास्या—भिक्षुः चशस्याद् आचार्य उपाध्यायो बाऽविकरणं इत्या तद-विकरणमध्यवशमस्य इच्छेत् अन्यं गणशुपसम्पव विद्युम्, ततः करुपते 'तस्य' अन्यगण-सङ्कान्तस्य पद्मात्रिन्दिवं छेदं कर्तुम्, ततः 'परिनिर्वोप्य परिनिर्वोप्य' कोमळवचःसिळळसेकेन

१ मा पुच्छतु तामा ।। २ °स्य स्नगणसन्केष्वेवापरेषु स्पर्धकेषु प्रविष्टस्य पश्च° कां ।।।

10

15

20

25

30

कषायाग्रिसन्तर्ध सर्वतः श्रीतठीकृत्य द्वितीयमधि वारं तमेव गणं सः 'मितिनर्यातस्यः' गैतस्यः स्यात् । यमा वा तस्य गणस्य मीतिकं स्यात् तभा कर्तव्यस् । एक सूत्रार्थः ॥ अत्र माज्यविस्तः ----

सचित्तऽचित्त मीसे, वजीगत परिहारिए य देसकहा। सम्ममणाउडंते. अधिकरण ततो सम्रप्पन्ने ॥ ५७२७ ॥ आभव्यमदेमाणे. गिण्हंतें तमेव मग्गमाणे वा । सिचतेयरमीसे, वितहापडिवित्ततो कलहो ॥ ५७२८ ॥ विचामेलण सुने, देसीभासा पर्वचणे चेव। अण्णाम्म य बत्तव्वे. हीणाहिय अक्खरे चेव ॥ ५७२९ ॥ परिहारियमठविते. ठिवते अणहाइ णिव्विसंते वा । कच्छितकले व पविसति, चोदितऽणाउद्रणे कलही ॥ ५७३० ॥ देसकहापरिकहणे. एके एके व देसरागम्मि । मा कर देसकहं वा, को सि तुमं मम ति अधिकरणं ॥ ५७३१ ॥ अह-तिरिय-उद्रकरणे, बंधण णिव्यत्तणा य णिक्खिवणं । उवसम-खएण उद्धं, उदएण भवे अहेकरणं ॥ ५७३२ ॥ जो जस्स उ उवसमती, विज्यवर्ण तस्म तेण कायव्वं । ( ग्रन्थाग्रम-५००० । सर्वेत्रन्थाग्रम-३८८२५ ) जो उ उनेहं कुजा, आवजति मासियं लहुगं ॥ ५७३३ ॥ लहुओ उ उवेहाए, गुरुओ सो चेव उवहसंतस्स । उत्तयमाणे लहुगा, सहायगत्ते सरिसदोसो ॥ ५७३४ ॥ एसो वि ताब दमयतु, इसति व तस्सोमताइ ओइसणा । उत्तरदाणं मा ओसराहि जह होइ उत्तयणा ॥ ५७३५ ॥ वायाए हत्थेहि व. पाएहि व दंत-लउडमादीहिं। जो कणति सहायत्तं, समाणदोसं तर्ग बेंति ॥ ५७३६ ॥ परपत्तिया ण किरिया, मोतु परद्रं च जयस आवद्रे । अवि य उवेहा बचा, गुणो वि दोसायते एवं ॥ ५७३७ ॥ जति परी पिडसेविजाः पावियं पिडसेवणं। मज्य मोणं करेंतस्स. के अडे परिहायई ॥ ५७३८ ॥ णागा ! जलवासीया !. सपेड तस-थावरा ! । सरदा जत्य भंडंति, अभावी परियत्तई ॥ ५७३९ ॥ वणसंड सरे जल-थल-खहचर वीसमण देवता कहणं। बारेह सरहुवेक्खण, घाडण गयणास मुरणता ॥ ५७४० ॥ तानी मेदी अपसी, हाणी दंसण-चरित्त-नामाणं ।

15

साहपदोसी संसारवज्रणी साहिकरणस्य ॥ ५७४१ ॥ अतिमणित अभिषते वा, तावी मेदी य जीव चरणे वा। रूवसरिसं ण सीलं. जिम्हं व मणे अयसों एवं ॥ ५७४२ ॥ अकट्ट तालिए वा, पक्लापिक्ल कलहम्मि गणमेदो । एगतर स्वएहिं व, रायादीसिट्ठें गहणादी ॥ ५७४३ ॥ वत्तकलहो उ ण पढति. अवच्छलत्ते य दंसणे हाणी । जह कोहादिविवही, तह हाणी होह चरणे वि ॥ ५७४४ ॥ आगाढे अहिगरणे, उबसम अवकडूणा य गुरुवयणं । उवसमह क्रणह झायं. छङ्गणया सागपत्तेहिं ॥ ५७४५ ॥ जं अजियं समीखळएहिं तव-नियम-बंभमहएहिं। तं दाइँ पञ्छ नाहिसि, छड्डेंतो सागपत्तेहिं ॥ ५७४६ ॥ जं अजियं चरित्तं, देखणाए वि पुन्तकोडीए। तं पि कसाइयमेत्तो, णासेइ णरी मुहत्तेणं ॥ ५७४७ ॥ आयरिओं एग न भणे, अह एग णिवारें मासियं लहुगं। राग-होसविग्रको, सीतघरसमी उ आयरिओ ॥ ५७४८ ॥ बारेति एस एतं. ममं न बारेति पक्खराएणं । बाहिरमार्व गाढतरमं च मं पेक्खसी एकं ॥ ५७४९ ॥

पताः सर्वो व्यपि गाथा यथा प्रथमोद्देशेके (गाथाः २६९३–९७, २६८२, २६९८–९९, २७०॥-५, २७०१–२, २७०६–११, २७१३–१७) व्यास्थातासावैव इष्ट्याः ॥ ५७२७–५०१९ ॥

प्वमधिकरणं कृत्वा यः प्रज्ञापितोऽपि नोपशाम्यति स किं करोति ! इत्याह-

खर-फरुस-निद्धुराई, अध सो भणिउं अभाणियन्त्राई । निग्गमण कछसहियए, सगणे अद्वा परगणे वा ॥ ५७५० ॥

अशासी सर-परम-निष्ठुराणि अमणितन्यानि वचर्नानि मणित्वा कन्नुषितहृदयः स्वगच्छाद् निर्गमनं करोति ततो निर्गतस्य तस्य स्वगणे परगणे च प्रत्येकमष्टौ स्पर्द्वकानि वक्ष्यमाणानि 25 भवन्ति ॥ ५७५० ॥ सर-यरुप-निष्ठरपदानि व्याख्याति—

> उचं सरोस भणियं, हिंसग-मन्मवयणं खरं तं तू । अकोस णिरुवचारिं, तमसब्मं णिट्टरं होती ॥ ५७५१ ॥

'उख' महता सरोण सरोषं यद् भणितं हिंसकं मेमेषदृनवचनं वा तत् तु सरं मन्तव्यम् । जकारादिकं यद् आक्रोधवचनं यख 'निरुपचारि' विनयोपचाररहिसं तत् परुवम् । यद् ३० 'असम्ये' समाया अयोग्यं 'कोलिकस्त्वम्' इत्यादिकं वचनं तद् निहुरं भण्यते ॥ ५७५१ ॥

इंदशानि भणित्वा गच्छाद निर्गतस्थाचार्यः प्रायश्चित्तविभागं दर्शयतुकाम इदमाह-

१ °शके अधिकरणसूत्रे व्याख्यातास्तर्थवात्रापि द्र° कां• ॥ ॥• १९१

#### अबुऽहु अद्भासा, मासा होंतऽहु अबुसु पयारो । बासास असंबर्ण, ज बेब इयरे वि पेसंति ॥ ५७५२ ॥

स्थाणे यान्याचार्यसकानि आहीं स्पर्यकानि तेषु पक्षे जयरापरस्मिन स्पर्यके संचरतो-ऽष्टाबर्द्धमासा भवन्ति, परमणसर्केष्यप्यष्टद्ध स्पर्दकेषु पक्षे पक्षे संचरतोऽष्ठावर्द्धमासाः, पवयु-६ भयेऽपि मीलिता अही मासा भवन्ति । अष्टतु च ऋतुवद्धमासेषु साष्त्रां 'पचारः' विहारो भवतीति कृत्वा अष्टमहणं कृतस् । वर्षापु चतुरो मासान् तस्याधिकरणकारिणः साधोः संचरणं नास्ति, वर्षाकास्य इति कृत्वा । 'इतरेऽपि' येषां प्रकेष सङ्गान्तवाऽपि तं मजाप्य वर्षायास इति कृत्वा यतो गणावागतस्यत्र न प्रेषयन्ति । तत्र यानि खगणेऽष्टी स्पर्यक्तानि तेषु सङ्गा-नतस्य तैः साध्याय-विक्षा-भोजन-भतिकमणवेखाद्य प्रत्येक सार्ग्या कर्तस्या — आर्थे ! उपग्रमं 10कुरु । यदि एवं न सारयन्ति ततो मासगुरुकम् ॥ ५७५२ ॥

तस्य पुनरनुपशान्यत इदं प्रायश्चित्तम्---

सगणिम पंचराहंदियाहँ दस परत्ते मणुण्णेस् । अण्णेस होइ पणरस. वीसा त गयस्स ओसण्णे ॥ ५७५३ ॥

स्वगणस्पर्दकेषु सङ्कान्तस्यानुपशाय्यतो दिवसे दिवसे पश्चरात्रिन्दवच्छेदः । परगणे 'मनो-15 ज्ञेषु' साम्योगिकेषु सङ्कान्तस्य दशरात्रिन्दिवः, अन्यसाम्भोगिकेषु पश्चदशरात्रिन्दिवः । अवसक्षेषु गतस्य विश्वतिरात्रिन्दिवच्छेदः ॥ ५७५३॥

एवं भिक्षोरुक्तम् । अथोपाध्याया-ऽऽचार्ययोरुच्यते---

एमेव य होइ गणी, दसदिवसादी उ भिष्णमासंतो । पष्णरसादी तु गुरू, चतुसु वि ठाणेसु मासंतो ॥ ५७५४ ॥

20 एवमेव 'गणिनः' उपाध्यायस्यापि श्रषिकरणं क्रत्वा पराणं सङ्कातस्य मन्तव्यम् । नवरम्— दशरात्रिन्दिवमादौ क्रस्वा भिक्रमासान्तस्तस्य 'ब्हेदः । एवमेव 'गुरोरपि' आचार्थस्य 'बहुर्पु' स्वगण-परगणसाम्भोगिका-ऽन्यसाम्भोगिका-ऽवसक्षेषु पश्चदशरात्रिन्दिवादिको मासिकान्तरूछेदः ॥ ५७५१ ॥ एतत् पुरुषाणं स्वगणादिस्यानवित्रागेन गायश्चिषम्रकम् । अथैतेन्त्रेव स्वानेषु प्रक्रविभागेन मायश्चिषमारः—

सगणिम पंचराइंदियाँहँ मिक्खुस्त तदिवस छेदी । दस होति अहोरचा, गणि आयरिए य पष्णरस ॥ ५७५५ ॥ सगणे सङ्गानस्य भिन्नोसहिबदासम्य हिने हिने प्रमाणिसिबदाकेतः । 'गणिका' उपान

१ च्छेदः। तचया—सं(स)गणस्पर्धते सङ्गान्तयोपाध्यायस्य दशराविन्दियः, साम्भो-वित्रेषु सङ्गान्तस्य पञ्च[दशराविन्दियः, अन्यसाम्भोगितेषु सङ्गान्तस्य विश्वति]-रात्रिनिवनः, अवस्त्रेषु सङ्गान्तस्य भिक्तासिकच्छेदः। पवनेयः 'ग्रुरोपि' आचार्यस्य 'सनुर्धुं स्वाणस्पर्धकः[पराणसाम्भोगिका-प्रय] नाम्भोगिका-प्रसस्यक्रस्येषु सानेषु वञ्जदशरात्रिनिव्यविको सासान्तम्बेद्योऽव्यानस्वयः॥ ५७५५॥ एततः संश्

ध्यायस्य वैज्ञराविन्दिवः । जावार्यस्य पण्डरतात्रिन्दिवः ॥ ५७५५ ॥ अण्यायोवे भिक्तसुरसा, दसेव राहेदिया अवे छेदी । पण्यासः जहोरसा, राणि जायरिष्ट अवे वीसा ॥ ५७५६ ॥

अन्यगणे साम्मोगिकेषु सङ्कालस्य भिक्षोदेशातिन्तिव्यक्षेत्रः, उपान्यायस्य पश्चदशराति-न्दिवः, आवार्थस्य विश्वतिगिनित्तः । एवनन्यसाम्मोगिकेषु व्यवस्तेषु व प्राणुकानुसारेण व नेयम् ॥ ५७५६ ॥ अपैवं मितिदिनं छिषमाने पर्योपे पृष्ठेण कियन्तो मासा अभीवा क्षियन्ते ! इति विज्ञासायां छेदसङ्कामाङ—

अद्वाहजा मासा, पन्खे अद्विह मासा हवंति वीसं तू ।

पंच उ मासा पन्छे, अद्विह चत्ता उ मिन्स्युरस ॥ ५७५७ ॥

स्वगणे सङ्कान्तस्य निकोः भतिदिनं पद्यकच्छेदेन च्छियमानस्य पर्योयसं पद्येण अर्द्धतृतीया १०

मासाभ्छियन्ते । तथाहि—पक्षे पष्टद्य दिनानि भवन्ति, तैः पद्य गुण्यन्ते जाता पष्टपतिः,

तस्या मासानयनाय विज्ञता भागे हतेऽद्वीत्तीयसासा क्रम्यन्ते । सगणे ष्यद्ये स्वाहिन्ति, तेषु

पद्ये पक्षे सन्धरतः पष्टकच्छेदेन विश्वतिमीतारिष्टक्यन्ते । तथाहि—पद्यद्ववाहिन्तिणता आतं

विश्वं शतस्य , तद्यि पष्टभिर्मुणितं जातानि वह शतानि, तेषां विश्वता भागे हते विश्वतिमीत्रा

क्रम्यन्ते । पश्चतिशापि गुणकार-भागाहारपयोगेण सनुद्वा उपयुज्य मासा आनेतन्याः । १३

परगणे सङ्कान्तस्य निकोर्दणकेन च्छेदेन च्छियमानस्य पर्योयस्य पक्षेण पद्य मासारिष्टवर्यने,

वशक्तिय च्छेदेनाद्यभः प्रकेशस्यारिशः मासाशिष्ठयन्ते ॥ ५७५७ ॥

एवं भिक्षोरुक्तम् । उपाध्यायस्य पुनरिदम्-

पंच उ मासा पक्ते, अहिं मासा हवंति चत्ता उ । अद्धरहु मास पक्ते, अहिं सिंह मने गणिणो ॥ ५७५८ ॥ २० उपाध्यायस्यापि स्वरणे दशकेत च्छेदेन पश्चेण पद्म मासाः, लष्टभिः पद्मेश्वलास्त्रित् मासा-विक्रक्ते । तस्त्रि परगणे पश्चदक्षकेन च्छेदेनार्द्वाष्ट्रमगासाः पक्षेण च्छिबन्ते । परगण प्वाष्टभिः पक्षैः पष्टिर्मासा गणिनविक्षकत्ते ॥ ५७५८ ॥

अबहु मास पक्खें, अहुहिँ मासा हवंति सिंहुं तु । इस मासा पक्खेणं, अहुहऽसीती उ आयरिए ॥ ५७५९ ॥ १३ भाचार्यस्य स्वरोणे सङ्कान्तस्य पख्यदशकेन च्छेदेन च्छिण्याने पर्याये पक्षेणाद्धीष्टमासाः, अष्टभिः पत्रैः बहिर्मासाश्चित्यन्ते । तस्यैद पराणे सङ्कान्तस्य विंशेन च्छेदेन पश्चेण दश्च मासाः, अष्टभिः पश्चेरश्चीतिर्मासाण्डिप्यन्ते ॥ ५७५९ ॥

१ व्हा अद्वीपाणाणि अवस्ति । किनुकं अवति ?—द्वापातिन्विवसमाणो विने दिने अवति च्छेवः । प्रवसावार्यस्य दिने दिने पञ्च कंग । २ व्हा पंपक्के" वि विभक्तिः अस्ति पञ्च कंग । ३ व्हो । तथाऽद्वीमः पहीविंग्रतिसासा अवन्ति, छेदनीया इस्ति वस्त्यात् वस्त्यात् सम्बन्धः स्वाप्ति स्वापति स्वापति स्वाप्ति स्वापति स्वाप्ति स्वापति स

एवं स्वगणे परगणे च सान्मोगिकेषु सङ्कान्तस्य च्छेदसङ्कलाऽभिहिता । अन्यसान्मोगिकेषु अवसमेषु च सङ्कान्तस्य भिक्षोरुपाध्यायसाचार्यस्य चानयैव दिला छेदसङ्कला कर्तव्या—

## एसा विही उ निग्गऍ, सगणे चत्तारि मास उक्कोसा । चत्तारि परगणमिंग, तेण परं मूल निच्छमणं ॥ ५७६० ॥

ण्य विधिगंच्छात् निर्गतस्योक्तः । अत्र च समणेऽष्टयु स्पर्दकेषु पक्षे पक्षे सम्बरतश्रस्यारो मासा उक्तकंतो मवन्ति, परगणेऽप्येवं चस्तारो मासाः, अवसन्नेष्यपि चस्तारो मासाः । ततः परं यदि उपशान्तत्ततो मूल्लम् । अथ नोपशान्तस्तदा निष्काशनं कर्तव्यम् , लिङ्कमपहरणीय-निलयंः ॥ ५७६० ॥

चोएइ राग-दोसे, सगण परगणे इमं तु नाणत्तं ।

वंतावण निच्छभणं, पर-कुरुघर घाडिए ण गया ॥ ५७६१ ॥

शिष्यः भैरयति—राग-द्वेषिणो यूयम्, यत् स्वगणे स्तोकं छेदशयधियं उत्त परगणे तु प्रमृत्तम्, एवं हि स्वगणे भवतां रागः परगणे द्वेषः । गुरुराह—इदं छेदनानात्वं कुर्वन्तो वयं न राग-देषिणः । तथा चात्र दृष्टान्तः—

प्रास्त गिहिणो चउरो भजाओ । तातो य तेण सरिसे अवराहे पंताविचा 'मम गिहा-15 ओ नीह' चि निच्छूदा । तस्येगा करिंद्द परधरिम गया । विद्या कुरुवरं । तर्दया 'मखुणो प्रासरीरो वयंसो' चि तस्स घरं गया । चउर्खी निच्छुमंती बारमीहाए रुम्मा हम्ममाणी वि न गच्छह, मण्डे य—कतो बचामि ! नस्थि मे अतो गद्दविसओ, जह वि मारेसि तहावि तुमं चैव गई सरणं ति तस्येव टिया ॥

इदमेबाह —''पंतावण'' हत्यादि । केनाणि गृहिणा चतराणां भार्याणां 'भान्तापनं' कुट्नं २० कृत्वा गृहाद् निष्काशनं कृतम् । तत्रेका परगृहं द्वितीया कुरुगृहं तृतीया 'धाटिकः' मित्रं तद्वहं गता, चतुर्थी तु न कापि गता ॥

तओ तुट्टेण चउत्थी परसामिणी कया । तहयाए पाडियघरं जंतीए तो चेव अणुवित्ततो, विगतरोसेण सरंटिता आणिता य । विहयाए कुरुघरं जंतीए पिउगिहवर्ळ गहियं, गाढतरं रहेण अनेहि भणिए विगतरोसेण सरंटिता दंडिया य । पढमा 'दृरे नह ति न ताए किंचि 25 पओषणं' महंतेण वा पच्छित्तदंडेण दंडिउं आणिज्जह । एवं परहाणीया ओसण्णा, कुरुधरटाणीया अन्नसंभोह्या, घाडियसमा सभोह्या, अनिग्गमे सघरसमो सगच्छो । जाव दूरतरं ताव महंततरो दंडो भवह ॥ ॥ ५७६१ ॥ अँथ गच्छादनिगंतसा विधिमाह—

गच्छा अणिग्गयस्सा, अणुवसमंतस्सिमो विही होइ।

सज्झाप भिक्त भत्तद्व वासए चउर एकेके ॥ ५७६२ ॥ उ० गच्छादिनगैतस्यानुपशाम्यतोऽयं विधिभैवति —सूर्योदयकाले यः स्वाध्यायः क्रियते तद-वसरे प्रथमसी नोधते, द्वितीयं भिक्षावतरणवेख्याम्, तृतीयं भक्तार्थनाकाले, चतुर्ये प्रादी-

१ °कः। गाथायां सीलिङ्गनिर्देशः प्राइतत्वात्। अत्र च बं०॥ २ 'साद्दोपलग्गा ३०॥ ३ पर्यं गच्छानिर्गतस्य विधिरुक्तः। अथ गच्छा' वा०॥

पिकावस्यकनेकायाम् । एवं चतुरो नारानेकैकसित् दिने नोघते ॥ ५७६२ ॥ तचापिकरणं प्रसाते प्रतिकान्तानां साध्यायेऽप्रसापिते एनमादौ कारणे उसयेत—

रण प्रभात मातकान्ताना साध्यायऽपस्थापत प्रमादा कारण उत्पथत— दुप्पडिलेहियमादिसु, चोदिएँ सम्मं तु अपडिवज्जंते । न वि पद्रवेंति उवसम्, कार्को ण सुद्धो जियं वा सिं ॥ ५७६३ ॥

न । व पट्टनार उपसम्म, काला ज सुद्धा । जय वा । त । १०५२ ।। द्रीयस्युपेक्षतं कुर्वेन् आदिशब्दाद् वमस्युपेक्षताणोऽसामाचार्य वा मस्युपेक्षताणो नोदितः । सम्यग् यदि न प्रतिपयते ततोऽभिकरणं भवेत् । उत्यक्षे नाभिकरणे यदि साध्योयेऽमसापिते स्वयमेवोषशान्तस्ततो ल्रष्टम् । अय नोपसान्तस्ततो यः प्रस्थान्तार्थद्वप्रति से वारणीयः, यया—तिष्ठतु तावत् यावत् सर्वेऽपि मिलिताः । तत आगतेषु सर्वेषु स्रत्यो बुत्रते—आर्य ! उपसान्य, इमे साधवः साध्यायं न मस्यापयन्ति । स वष्टीत्तरं मयच्छति—अवस्यं कालो न शुद्धः परिजितं वा एषां साधृनां स्वश्चर्यं ततो न प्रस्थापयन्ति । एवं मणतो मासगुरु । साधवश्च 10 सर्वेऽपि प्रस्थापयन्ति साध्यायं च कुर्वन्ति ॥ ५०६३ ॥

काले पतिकान्ते भिक्षावेलायां जातायामिदमाचार्या भणन्ति-

णोतरणें अमत्तद्दी, ण व वेला अश्चंज्रणे ण जिण्णं सिं। ण पडिकमंति उवसम, णिरतीयारा ण पचाह ॥ ५७६४ ॥

आर्थ ! साधवस्त्वदीयेनानुषशमनेन भिक्षां नावतरित्त । स माह—नृत्तममकार्थिनो न वा 15 भिक्षावेका । एवमुक्ते सर्वेऽध्ववतरित्त । तस्यानुषशान्तस्य द्वितीयं मासगुरु । भिक्षानिषृचेषु साधुषु गुरवो भणन्ति—आर्थ ! साधवो न मुक्कते । स माह— नृतं साधूनां न जीणम् । एव-मुक्ते सर्वेऽपि सनुद्दिशन्ति । तस्य पुनस्तृतीयं मासगुरु । भूगोऽपि मतिक्रमणवेकायां भणन्ति— आर्थ ! साधवो न मतिकामित्त, उपशमं कुरु । स बद्दोष्ठरं मत्याह—'नुः' इति विवर्षे, सम्भावयाम्बद्दम्—निरतीचाराः श्रमणास्तेन न मतिकामित्त । एवमुक्ते सर्वेऽपि मतिकामन्ति । १२० तस्य पुनश्चदुर्गुरुकम् । एवं मभातकाले अधिकरणे उत्पन्ने विधिरुक्तः ॥ ५७६४ ॥

अश्वम्मि वि कालम्मि, पर्दत हिंदत मंदली वासे ।

तिकि व दोकि व साता, होति पडिकंतें गुरुमा उ ॥ ५७६५ ॥ अधान्यसित् कालेऽधिकरणगुरावच । कदा ! इत्याह—५७तो ' होना-ऽधिकादिपठने भिक्तां हिण्डमानानां मण्डस्यां वा सप्रदिशतामावश्यके वो । तत्र यदि द्वितायवेळायामधिकर- 25 णमुरुक्तं तदा बर्धुभैवेळायामगुरुक्तान्तस्य त्रयो गुरुमासाः, तृतीयवेळायामुसकेऽनुपशान्तस्य हो गुरुमासो, एवं विभाषा कर्तंत्र्या । अथ 'प्रतिकान्ते' प्रतिकमणे कृतेऽपि नोपशान्त- स्वतस्वर्त्तुक्तः॥ । ५७६५ ॥

पर्व दिवसे दिवसे, चाउकारुं तु सारणा तस्स । जति वारें ण सारेती, गुरुगो गुरुगो तती वारे ॥ ५७६६ ॥ अ एवमनुषशान्तस्य दिवसे दिवसे 'चतुष्कारुं' साध्यायप्रसापनादिसमयरूपं तस्य सारणा

१ प्राभातिकप्रतिकमणानन्तरं प्रतिलेखनाकाले तुष्यत्यु' कं ।। २ वा तदा त्रयो वा द्वौ वा मासा भवन्ति, गुरुमासा इत्यर्थः । तत्र यदि कं ।।।

कर्तन्य। 'यति' सक्तो वारान् जाचार्यो न सारयति 'तति' तावतो वारान्, मासगुरुकायि सवन्ति॥ ५७६६॥

> एवं तु अगीतत्वे, गीतत्वे सारिए गुरू सुद्धो । जति तं गुरू व सारे. आवसी होड तोग्हं पि ॥ ५७६७ ॥

प्रवं दिने दिने सारणाविधिरातीतार्थस्य कर्तव्यः । यस्तु गीतार्थः स वधेकं दिनं साच्याय-मिक्षा-मकार्थना-ऽऽवश्यकव्यकेणु चतुर्ध् स्वानेषु सारितः तदा परतत्वमसारयलपि गुढः गुद्धः । यदि पुनः 'तप' अगीतार्थं गीतार्थं वा गुरुनं सारयति ततः 'द्वयोरि' आचार्यस्यानुप्यान्यतस्य प्राथिक्यस्यापिः । अन्ये मुवते—अगीतार्थस्यानुपद्मान्यतोऽपि नास्ति प्राथिक्यम्, बस्तु गुरुरगीतार्थं न नोदयति तस्य प्राथिक्यम् ॥ ५७६७ ॥

गच्छी य दोनि मासे, पक्खे पक्खे इमं परिहवेति ।

भत्तद्वण सज्झायं, वंदण लावं ततों परेणं ॥ ५७६८ ॥

एवमनुपशास्यन्तं तं गच्छो हो मासी सारयति, इदं पुनः पक्षे पक्षे परिदारयति । तषभा— अनुपशान्तस्य पक्षे गते गच्छत्वेन सार्दै भक्तार्थनं न करोति, न गृह्णति वा न वा किमपि तस्य ददातीत्यर्थः । द्वितीये पक्षे गते स्वाध्यायं तेन समं न करोति । तृतीये पक्षे गते वन्दैनं न १० करोति न वा मतीच्छति । चतुर्थोऽपि पक्षे यदा गतो भवति ततः परमाळापमपि तेन सार्दै वर्षयन्ति ॥ ५७६८ ॥

> आयरिय चउरों मासे, संश्वंजित चउरों देह सज्ज्ञायं । वंदण लावं चचरो. तेण परं मल निच्छहणा ॥ ५७६९ ॥

आचार्यः पुनश्चतुरो मासान् सर्वेरपि प्रकारेस्तेन समं सम्बन्धे ततः परं चतुरो मासान् २० भक्तार्थनं वर्जयति साध्यायं तु ददाति । ततश्चतुरो मासान् साध्यायं परिहृत्य बन्दना-ऽऽलापो ददाँति । ततः परं वर्षे पूर्णे सांवरलिके प्रतिकान्ते उपशान्तस्य मृजय्, अनुप्रशान्तस्य तु गणाद् निष्काशनं कर्तव्यम् ॥ ५०६९ ॥

> एवं बारस मासे, दोसु तवी सेसए मने छेदी । परिहायमाण तहिवस तवी मूर्ल पडिकंते ॥ ५७७० ॥

प्रवं द्वादशमास्यामय्यनुप्रशास्यतः 'द्वयोः' आदिममासयोयीवत् गच्छेन विसान्नितः साबत् तयः प्राथिधयमेव, 'दोषेषु' दशमु मासेषु पद्यरात्रिन्दिवच्छेदः यावत् सांवस्सरिकं पर्व प्राप्ते भवति । पर्युवणारात्री प्रतिकान्तानामिकरणे उरश्चे प्रप विधिन्नकः । ''परिद्वायमाण तिष्ट्विस'' ति पर्युवणापारणकदिनादेकैकदिवसेन परिद्वायमानेन तावत् नेयं यावत् 'तिष्ट्विस' पर्युवन् णादिवस प्रविकरणप्रस्कां तत्र च तयो मूळं वा अवति' न च्छेदः । ''पिडिक्क्ते'' ति अध्य अधितकमणं कुष्वताहुर्यम् ततः च तयो मूळं वा अवति' न च्छेदः । ''परिक्क्ते' ति अध्य अधितकमणं कुष्वताहुर्यम् ततः सांवस्सरिकं कायोस्तर्गं कृते मूळ्येव क्षकं अवति ॥ ५७०० ॥

१ 'न् गुरुको गुरुको मास्तो भवति ॥ ५७६६ डां ।॥ २ 'न्वर्न तस्य न प्रयच्छति न या प्रती' डां ॥ १ 'दाति । ''तेण परं'' ति बिभक्तिव्यस्यपात् ततः डां ॥ ७ एतदनसास् प्रन्याप्रमु---५५०० डां ॥

एतदेव सुव्यक्तमाह-

एवं एकेकदिणे, हवेलु ठवणादिणे वि एमेव !

चेइयबंदण सारे, तम्मि वि काले तिमासगुरू ॥ ५७७१ ॥

भोद्रपद्युद्धपन्नाच्यां अजुदित व्यक्तिय यचिकरणग्रुत्याते ततः पर्वकणायामय्युपशान्ते संवस्तरो मयति, ब्राष्ट्रामुक्तके एकदिवसीनः संवस्तरः, ससम्यां दिवसद्वयोगः, प्रवमेकैकं दिनं व हापबित्या ताववु नेवं यावत् स्थापनादिनं -पर्वेपणादिवसः । तत्र चानुदिते रची कव्वदे उराजे एवनेव नोदना कर्तव्या — मयमं साच्यायमस्थापनं कर्तुकामैः सारणीयः, तत्रक्षेयवन्द्रवार्चे गन्द्रकामाः सारयेयुः, तत्राप्यनुवशान्ते पतिकमणवेकायां सारयन्ति । एवं त्रस्तिकाणि पर्ववणाकाव्यदिते त्रिष्ठ साध्यायमस्थापनादिषु स्थानेषु नोदितसानुपशान्तस्य त्रीणि सासगुवकाणि भवति ॥ । । ।

पडिकंते पुण मूलं, पडिकमंते व होज अधिकरणं । संवच्छरद्वस्सर्गे, कपस्मि मूलं न सेसाई ॥ ५७७२ ॥

स्वण्डस्युस्तरण, कथान्म मूल न ससाह ॥ १००० र ॥ पर्युवणादिन सर्वेषामधिकरणानां व्यवस्थितिकः कर्तंत्रयेति कर्ता 'मतिकान्ते' समासे आवश्यके यदि नोपक्षान्तरातो मूल्य्। '''विक्रमते व'' वि जय मतिकरणे मारक्ये यावत् सांवसारिको महाकायोसर्सर्यसावर्दुं अधिकरणे कृते मुक्सेव केवल्य्य, न रोषाणे मायक्षिपानि ॥ ५७७२ ॥ 15

संवच्छरं च रुद्दं, आयरिओ रक्खए पयत्तेण ।

जित णाम उनसमेजा, पन्नयसतीसरिसरीसी ॥ ५७७३ ॥
एवमानार्यसं रुष्टं संबस्तरं प्रयक्षेत रक्षति । किमर्थम् : हत्याह—'बदि नाम' कथखिद्पशाम्येत । अत्र संनस्तरेणापि नोपशाम्यति ततः पन्नतराजीसदृशरीयः स मन्तन्यः ॥५७७३॥
तस्य च वर्षादुर्वं को विषिः ! इत्याह—

अण्णे दो आयरिया, एकेकं वरिसमेत्रमेअस्स ।

तेण परं गिहि एसी, बितियपदं रायपन्वहर ॥ ५७७४ ॥

तं वर्षाहर्द्धं मूलावार्यसमीपाद् निर्गतमन्त्री हाबावार्वी क्रमेणेकैकं वर्षमेतीनैव विधिना प्रयत्नेन संस्वतः, तन्मच्याद् येनोपशमितसस्याची शिष्यः । 'ततः परं' वर्षत्रयाद्धंभेष गृही कियते, सङ्घर्यायं लिक्समहरतीत्यर्थः । द्वितीयपरं राज्यम्बलात्यः लिक्स महारवीषभवाक द्वियते । 25 वर्ष भिक्षोरुक्त ॥ ५७०९ ॥

एमेन गणा-ऽऽवरिए, गच्छम्मि तनो उ तिथि पक्खाई । दो पक्खा आयरिए, पुच्छा य कुमारिहदंतो ॥ ५७७५ ॥

एक्सेच गणित व्यापारेल, प्रतिप्रत्य मुन्तरास्य व्याप्यायसानुस्थान्यता गच्छे बसत-भाग, पक्षान् तपः प्राथिश्वरस् च मन्तव्यस् । नवरस्—उपाध्यायसानुस्थान्यता गच्छे बसत-क्षीन् पक्षान् तपः प्राथिश्वरस् , परतस्त्रेदः , आचार्यस्यानुस्थान्यतो ही पक्षी सपः, सरसङ्केदः । ३७

१ पेर्युगीनचतुर्धीदिनसाविष्युंपणापर्धापेक्षया पारणकदिने साहपद<sup>०</sup> कां॰॥ २ 'द् अत्रान्तरेऽधिकरणं 'अवेत्' जल्पेत ततो यदि तत्स्वादेव नोपशान्तत्तद् सांवत्सिरेके कायोत्सर्वे कृते सृत<sup>0</sup> कां॰ ॥ ३ 'अपुत्रमन्न' आ॰ ॥

क्षिच्यः प्रच्छति—किं सहज्ञापराघे विषयं प्रायश्चितं प्रयच्छथ राग-द्वेषिणो यूयम् !। क्षाचार्यः प्राह—कुमारहष्टान्तोऽत्र भवति, स चोत्तरत्रामिषास्यते ॥ ५००५ ॥

ये ते उपाध्यायस्य त्रयः पक्षास्ते दिवसीकृताः पश्चन्दतारिंशदिवसा भवन्ति, ततः—

पणयाल दिणा गणिणो, चउहा काऊण साहिएकारा। भत्तद्रण सज्झाए. वंदण लावे य हावेति ॥ ५७७६ ॥

गणिनः सम्बन्धिनः पश्चन्तवारिशद् दिवसाश्चतुर्घ क्रियन्ते, चतुर्मागे च साधिकाः-सपादा एकादश दिवसा भवन्ति । तत्र गच्छ उपाध्यायेन सममेकादश दिनानि भक्तार्थनं करोति, एवं स्वाध्याय-वन्दना-ऽऽहापानि मत्येक्तमेकादश दिनानि यथाकमं करोति, परतस्तु परिहाप-यति । पश्चन्तवारिशदिवसानन्तरं चोपाध्यायस्य दशकप्छेदः । आचार्यस्ययेवोपाध्यायमपि 10 चतुर्भिश्चतुर्भिमोरीर्मकार्यनादीनि परिहापयन् संवस्तरं सारयति ॥ ५७७६ ॥

आचार्यस्य द्वी पक्षी दिवसीकृती त्रिंशद् दिवसा भवन्ति, ततः— तीस दिणे आयरिए, अद्भद्व दिणे य हावणा तत्थ ।

तास दिण आयारए, अद्धह दिण य हावणा तत्थ । गच्छेण चउपदेहि तु, णिच्छ्टे लग्गती छेदो ॥ ५७७७ ॥

विञ्चहित्याश्चनुर्भागेन विभक्ता अद्धीष्टमा दिवसा भवन्ति । तत्र गच्छ आचार्येण सहा-13 द्वीष्टमानि दिनानि भक्तार्थनं करोति, एवं स्याध्याय-वन्दना-ऽऽरुशपानिप यथाकममद्धीष्टमे-विवेदौः प्रत्येकं हापयति । ततः परं गच्छेन चतुर्भिरपि-भक्तार्थनादिभिः पदौर्निष्काशित आचार्यः पञ्चदशके च्छेदे लगति ॥ ५७७७ ॥ ततः —

संकंतो अण्णगणं, सगणेण य विज्ञतो चतुपदेहिं।

आयरिओ प्रण नवरिं, वंदण-लावेहि णं सारे ॥ ५७७८ ॥

समणेन भक्तार्थनादिभिश्चतुर्भिः पर्वेर्थता वर्जितस्तदा अन्यगणं सङ्कानः । स पुनरन्यगण-स्थानार्थः 'नवरं कवलं वन्दना-ऽऽलपाभ्यां द्वाभ्यां पदाभ्यां सम्पुजानः सारयित यावद् वर्षम् ॥ ५५०८ ॥

> सज्झायमाइएहिं, दिणे दिणे सारणा परगणे वि । नवरं प्रण णाणत्तं, तवो गुरुस्सेतरे छेदो ॥ ५७७९ ॥

यरगणेऽपि सङ्गान्तस्याचार्यस्य साध्यायादिभिः पदैर्दिने दिने सारणा क्रियते । नवरं परगणे सङ्गान्तस्य 'नानात्वं' विशेषः—अन्यगणसरकस्य गुरोरसारयतस्यः मायश्चित्तम्, 'इतरस्य पुनः' अधिकरणकारिण आचार्यस्यानुपश्चान्यत्रश्चेदः ॥ ५७७९ ॥

अत्र परः प्राह्—रागद्वेषिणो यूगस्, आचार्यं सीत्रं छेदं प्रापयथ, उपाध्यायं बहुतरेण कालेन, भिक्षुं ततोऽपि चिरतरेण, एवं हि भिक्ष्यूपाध्याययोर्भवतां रागः आचार्ये द्वेषः । अत्र ४० पुरिः प्रापुद्धिं कुमारदृष्टान्तमाह—

सरिसावरार्षे दंडी, जुवरण्णो भोगहरण-बंबादी । मज्ज्ञिम वंध-वहादी, अविष कन्नादि खिंसा वा ॥ ५७८० ॥ एगस्स रत्नो तित्रि प्रवा—जेहो मज्ज्ञिमो कणिहो य। तेहि व तिहि वि साम<del>ञ्</del>छियं—

पितरं मारिचा रुज्जं तिहा विमजामी। तं च रज्ञा नार्य। तत्व जेह्नो 'जुबराया तुर्य पमाण-मूजी कीस एवं करेसि !' चि तस्स भोगहरण-यंघण-ताडणादिया सबे दंडप्यगारा क्या। मिडकमो 'प्य प्यहाणो' चि काउं तस्स ओगहरणं न कयं वंघ-वह-विसाईया कया। कणी-यसो 'एएहिं वियारिउ' चि काउं तस्स कण्णविवोडदंडो विसार्वडो य कञी न ओगहरणाईजो॥

अक्षरगमनिका—सङ्गोऽप्यपराधे युवराजस्य योगहरण-वन्त्रवादिको महान् रण्डः कृतः, व मध्यमस्य वन्त्र-वणादिको न योगहरणम्, अव्यक्तः—किष्ठस्य कर्णामीटिकादिकः लिसा च कृता । अयमर्थोपनयः—यथा छोके तथा छोकोत्तरेऽप्युक्तृष्ट-मध्यम-जपन्येषु पुरुषवस्तुषु वृहत्तमो छष्ठुर्कपुतरस्य यथाकमं दण्डः क्रियते ॥ ५७८० ॥

प्रमाणमूते च पुरुषेऽकियास वर्तमाने एते दोषाः--

अप्यचय वीसत्थत्तणं च लोगगरहा दुरहिगम्मी । आणाए य परिभवो, णेव भयं तो तिहा दंहो ॥ ५७८१ ॥

्र छोकै: सक्तायमावार्य इष्ट्रा ब्यात्— > एत एवाचार्या भणन्ति—अकवार्य चारित्रं भवति, स्वयं पुनिरसं रूप्यन्ति। एवं सर्वेषुप्रदेशेच्याप्रस्यो भवति। होपसाघुनामि कपायकरणे विश्वस्ता भवति। छोको वा गर्हा कुर्योत्त—मधान प्यामीषां कर्स्ट करोतीति । रोषणध्य पुतः छिप्याणां प्रतीच्छकानां च दुरिधामो भवति। रोषणस्य चाञ्चा छिष्याः परिभवन्ति, न ¹ व सर्वे तेषां भवति। स्रतो वस्तुविहोषकारणात् त्रिया दण्डः कृतः॥ ५७८१॥

गच्छिम्म उ पद्वविष, जिम्म पर्दे स निग्गतो ततो बितियं। भिक्खु-गणा-ऽऽयरियाणं, मूठं अणबद्व पारंची ॥ ५७८२ ॥

गच्छे यसिन् पर प्रसापिते निर्गतस्त्रते द्वितीयं पर्व परंगणे सङ्कान्तः माम्रोति । तपया—
तपित प्रसापिते यदि निर्गतस्त्रत्रद्धेदं प्रामोति, छेदे प्रसापिते निर्गतस्त्रते मूळम् । एवं 20
मिश्लोक्तम् । गणावच्छेदिकस्तानरस्याप्ये आवार्यस्य पाराधिके पर्यवस्ति । अथवा येन
मकार्थनादिना पर्वन गच्छाद् निर्गतस्त्रते द्वितीयपदमन्याणे गतस्य मारम्यते । यथा—
गच्छाद् भक्तार्थनपर्वेन निर्गतस्त्रतेऽन्यं गणं गतस्य स गणस्तेन समं न मुक्के स्वाच्यायं पुनः
करोति, पर्व स्वाच्यायपदेन निर्गतस्त्र वस्तुनकं करोति, ज्वन्तनदेन निर्गतस्त्रस्याभं करोति,
आञापपदेन निर्गतस्य पराच्छाब्रद्वाभिरित पदैः परिहारं करोति । "भिक्चुनणा-ऽऽयरियाणं" 25
इत्यादिना तु त्रयाणामपि अन्त्यायश्चित्तानि गृष्टीतानि ॥ ५७८२ ॥ द्वितीयपदमाह—

कारणें अपले दिक्खा, समर्चे अणुसहि तेण करही वा। कारणें सर्हें ठिताणं, करुही अण्णोण्ण तेणं वा॥ ५७८३॥

कारणे 'अनल्स्य' अयोग्यस्य दीशा दचा । समाप्ते च तस्मिन् कारणे तस्यानुशिष्टिः कियते । तथाऽप्यनिर्गच्छता तेन समं कल्होऽपि कर्तव्यः । कारणे चा शब्दमतिबद्धायां वसती स्थिता-४० स्रतोऽन्योग्यं 'तेन बा' मैथुनशब्दकारिणा समं कल्हः क्रियते येन शब्दो न श्रुयेत ॥५७८३॥

## ॥ अधिकरणप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ ४ ⊳ एतविद्यान्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥

10

15

20

## संस्तत निर्विचिकित्स प्रकृत म्

सूत्रम्---

भिवस्तु य उग्गयवित्तीए अणस्थमियसंकप्वे संथ-डिए निवितिगिंछे असर्ण वा ४ पडिग्गाहिता आहारं आहारेमाणे अह पच्छा जाणिजा-अणुगगए सुरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे जं च पाणिंसि जं च पडिग्गहए तं विगिचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइकसइ, तं अप्पणा भुंजमाणे अण्णेसिं वा दलमाणे राईभोयणपिडसेवणप्पत्ते आवजड चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुग्घाइयं १-६॥ भिक्लु य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे संथडिए वितिगिंछासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहिचा आहारं आहारेमाणे जाव अन्नेसिं वा दलमाणे राई-भोयणपिडसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परि-हारट्टाणं अणुग्घाइयं २–७ ॥ भिक्तें य उग्गयवित्तीए अणस्थमियसंकप्पे असंथ-डिए निव्वितिगिंच्छे असणं वा ४ पडिगाहिता आहारं आहारेमाणे जाव अन्नेसिं वा दलमाणे राईभोयण-पडिसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारटाणं अणुग्घाइयं ३-८॥

भिवस् य उगगयित्तीए अणात्थिमियसंकष्पे असंथ-डिए वितिगिच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिगाहित्ता आहारमाहारेमाणे जाव अन्नेसिं वा दलमाणे राई-

१ संघडिए तास्॰ मा॰ कां॰ मो॰ ठे॰ ॥ २ संघडिए तास्॰ मा॰ कां॰ ॥ ३ भिक्स् य उमाय॰ नवरम्— असंधटिए निव्यितिर्मा॰ ३-८ ॥ भिक्स् य उगाय॰ नवरम्—असं-धिर वितिर्माश्यसमाय॰ ४-९ ॥ चतुर्वस्त्रमिदम् । अस्य स्त्रचतुर्गे मो॰ ठे॰ ३० ॥ ५ संघडिए मा॰ डो॰ ॥

## भोयणपडिसेवणप्पत्ते आवजङ् चाउम्मासियं परि-हारट्टाणं अणुग्घाइयं ४–९ ॥

अस्य सूत्रचतुष्टयस्य सम्बन्धमाह---

अंष्णगणं वर्षतो, परिणिव्यवितो व तं गणं एंतो । विद्य संघरेतरे वा. गेण्डे सामाएं जोगोऽयं ॥ ५७८४ ॥

अधिकरणं कृत्वाऽनुपशान्तोऽन्यगणं त्रवन् परिनिर्वाषितो वा स्वस्तमेव गणं आगच्छन् 'विहे' अध्वनि संस्तरणे इतरस्निन् वा—असंस्तरणे 'श्यामायां' रजन्यामाहारं गृह्वीयात् । एप 'योगः' सम्बन्धः ॥ ५७८४ ॥

अनेनायातस्यास्य व्याख्या—'भिक्षुः' पूर्ववर्णितः, चशक्दाद् आचार्य उपाध्यायश्च परिगृह्यते, उद्गते आदित्ये इचिः—जीवनोपायो यस्य स उद्गतक्षिकः; पाठान्तरं वा —''उगग्य-10
ग्रुकीए'' दि, मूर्तिः—शरीरम्, उद्गते रवी मृतिश्र्यावश्रद्धाद् बहिः प्रचारवती मूर्तिस्य इति
उद्गतमूर्तिकः, मध्यपदलोपी समासः । अनस्विमिते सूर्ये सङ्गर्वः—भोजनाभिकाषो यस्य सीऽनस्विमितसङ्गरः । संस्तृतो नाम—समर्थसद्विद्यं पर्योग्तभोजी वा । ''निवितिर्गिक्षे'' दि
विचिक्तिसा—चित्रविद्वांत सन्देह इत्येकोऽर्थः, सा निर्गता सस्यात् स निर्विचिक्तिः,
उदितोऽनस्विमतो वा रिविरित्यंवं निश्चयत्वातित्यर्थः । प्रविविधविश्रोपणयुक्तोऽर्थनं वा पानं वा 15
स्वादिमं वा स्वादिगं वा प्रतिरुखं निश्चयत्वातित्यर्थः । प्रविविधविश्रोपणयुक्तोऽर्थनं वा वापनं वा 15
स्वादिमं वा स्वादिगं वा प्रतिगुख आहारम् 'आइरन्' भुज्ञानोऽद्य पश्चादं वा वापानं वा 15
स्वादिमं वा स्वादिनते वा; एवं विज्ञाय "स्थ" तस्य यच मुखे प्रक्षिसं यच पाणावुत्पादितं
यच मित्रमर्थे स्वितं तद् 'विविधन् वा' परिष्ठाययन् (विशोधयन् वा' नित्वयवं कुर्वेन् 'नो'
नैव सगवतामाञ्चामतिकामति । 'तद्' अश्वनादिकं आत्मन भुक्षानोऽन्येषां वा ददानो
रात्रिभोजनमितसेवनगास आपद्यते चाद्वगीरितकं परिहारस्थानमनुद्धातिकम् ॥

एवमपरमपि सुत्रत्रयं मन्तन्यम् । नवरं द्वितीयसुत्रे-संस्तृतो विचिकित्सासमापन्नश्च यो

१ "अम्मानणं वर्षतील" इतितत् ५७८८ मायात आरभ्य "एवं मितिविक्षं तील" इति ५८१५ मावापर्यन्ता गावाः चूर्णी विद्रोषचूर्णी चाणि कमनेदेन व्याह्माता विकोश्यन्ते । तसाहि तहतः कमः—
कण्णागां० ५७८४ उत्पावित्तील ५७८८ संपिक्षेणे ५८०० शिस्पंतमणु० ५८०५ एमेव य विद्रेश ५८०५
समिवित्तिल ५८९७ अम्बिन्सिल ५८९१ अस्वस्त छङ्गान० ५८९१ मातिकस्ताल ५८९४ संप्रकासंबर्गेल
५७८५ स्ते अनुसायन ५७८९ अर्थत्तमण ५७५० ल्याहितमण ५७५१ तहात् हो ५०५५२ उत्पान्य
समाण ५७५१ ततिवक्ताए० ५७५४ अर्थायन० ५७५५ ततिवा गर्वे० ५७५६ अम्बर्यम्य
समाण ५७५१ ततिवक्ताए० ५७५४ अर्थायन० ५७५५ ततिवा गर्वे० ५७५६ अम्बर्यमम् ५७५५ सम्बर्यम् ५५५५ एकं प्रतिवास्त्रम् ५७५६ अर्थायम् ५५५५ ५५० एकं एकं प्रतिवास्त्रम् ५७६६ सम्बर्यम् ५५०५ ५०५६ स्वर्थम् ५५०५ ५०५५ एकं प्रतिवास्त्रम् ५५०५ एकं प्रतिवास्त्रम् ५५०५ एकं प्रतिवास्त्रम् ५५०५ एकं एकं प्रतिवास्त्रम् स्त्रमण्यात्रम् स्तर्यम् उत्पर्वस्त । १५०५८ ॥ अतेन सम्बन्धनायातस्त्रस्त स्त्रमनुष्यस्त्रम् स्वास्त्रमुष्टयस्त्रम् स्तर्यम् ५५०५ । ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०५ ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५०० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५०० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५० ॥ ३०५०

मुक्के । निविक्तसासमापको नाम-'किम्रुदिजोऽनुदिजो वा रिकः !' अववा—'क्वामिलोऽनस्त-भितो वा !' इति सन्देहदोकायमानमानसः । एवं मुक्तनस्यान्येषां वा ददानस्य चर्चुगुरुकम् ॥ तृतीयमुत्रे—''अंस्वाडए'' ति 'असंस्तृतः' अध्यमतिपत्नः झपको कानो वा भण्यते, सः 'निविचिकित्सः' 'नियमादनुद्रतोऽस्तमितो वा रिवः' इत्येवं निःसन्देहं जानानो यदि मुक्के इत्यापि चर्जुगुरुकस्य । शेवं प्रथमस्वयत् ॥

चतुर्धसूत्रे-असंस्तृतो विचिकित्सासमापत्रश्च यो भुक्के स आपवते चातुर्मासिकं परिहार-

सानमनुद्रातिकम् । एव स्त्रचतुष्टयार्थः ॥ अथ निर्युक्तिविस्तरः--

'संथडमसंथडे पा, निन्तितिगिच्छे तहेन वितिगिच्छे। काले दन्ते भावे. पच्छित्ते मन्गणा होह ॥ ५७८५ ॥

10 प्रथमं सूत्रं संस्तुते निर्विचिकित्से, द्वितीयं संस्तुते विचिकत्सासमापने, तृतीयमसंस्तुते निर्विचिकत्से, चतुर्थमसंस्तुते विचिकित्सासमापने मन्तन्यम् । तत्र प्रथमस्तुत्रे तावत् त्रिधा प्राथिक्षैत्तमार्गणा भवति—कारुतो द्वन्यतो भावतश्च ॥ ५७८५ ॥ तत्र कारुतत्तावदाहः—

अणुग्गय मणसंकप्पे, गवेसणे गहण श्रुंजणे गुरुमा ।

अइ संकियिम्म श्रृंजति, दोहि वि लहु उग्गते सुद्रो ॥ ५७८६ ॥

अनुद्रत:-नाबाण्युद्रतो रिविरित्येवं निःशह्नित मनःसङ्कर्णन यो मक्त-पानस्य गवेषणं
प्रहणं भोगनं च करोति तस्य चतुर्गुरचः 'द्वाभ्यामपि' तपः-काळाच्यां गुरुकाः । अध वृंह्वितेन मनःसङ्कर्णन भुक्के ततस्य प्रचुर्गुरका द्वाभ्यामपि रूपवः । उद्गतः सूर्य इति निःसन्तिधे मनःसङ्करणे भुक्कानः शद्धः ॥ ५७८६ ॥

अत्थंगयसंकप्पे, गवेसणे गहर्णे श्रुंजणे गुरुमा ।

अह संक्रियमिम श्रुंजह, दोहि वि लहुऽणत्यिमिए सुद्धो ॥ ५७८७ ॥ 'अस्तक्रतो रिवः' इत्येषंविधेन सक्कपेन गवेषणे प्रहणे मोजने च चतुर्गुरुकाः तपसा कालेन च गुरवः । अथ 'अस्तक्रतोऽनस्तक्रतो वा' इति शक्किते अक्के स्तब्धतुर्गुरुकाः 'द्वाभ्या-मिए' तपः-कालभ्यां लघनः । यः पुनरनस्तिमितो रिविरित्यं निःसन्दिग्येन चेतसा अक्के स गुद्धः ॥ ५७८७ ॥ अथ ''उमयिविती' इत्यादिपदन्यास्यानमाह—

उग्गयिन ग्रुची, मणसंकप्पे य होंति आएसा ।

एमेव अणत्यमिए, धाए पुण संखडी पुरतो ॥ ५७८८ ॥

उद्भते रवी इचि:—वर्तनं यस्य स उद्भतद्विः। पाठान्तरेषा 'उद्भतम्भिः' हति वा, उद्भते सूर्ये मूर्तिः—शरीरं इचिनिमित्तं बहिः समचारं यस्य स उद्भतमृतिः। ⊸ मनःस**द्वस्य चानी** आदेशा भवन्ति— अनुदितमप्यादिस्यं यो ⊳ मनःस**द्वस्यन उद्भितं मन्यति स सुकानोऽपि** न

१ ''असंबद्धिय' मा॰ का॰॥ २ संग्रहमसंग्रहे मा॰॥ ३ 'क्षिपे मार्गणा अवति, तपया—काले प्रथा भावे च, कालतो द्रव्यतो मावतक्षेत्यर्थः॥ ५७८५ का॰॥ ४ 'शक्किते' सिक्तुहतोऽद्रकृतो वा रविः!' इति रहासकार्यक्षे मनःसङ्कर्षे क्षु° कां०॥ ५ < > एतः विद्वाततोऽपाठः मा॰ कां० एव वति ।

वोषमाग् मवति, यः पुनरुदितेऽपि रवी 'नाधाप्युदितः' इति बेतसा मन्यमानो सुद्धे स स्वदोषः। एक्येबानस्वमितेऽपि मन्तव्यम् । किसुक्तं भवति !— अस्वमितेऽपि रवी 'नाधाप्य-सङ्गतः' इतिबुख्या सुक्रानोऽपि न मायधियति, अननस्वमितेऽपि व 'ब्रह्मिमायेष्य सुक्रानः स्वोषः। अर्धवा—''मणसंकप्ये अ होति आदेस'' वि अनुदितमनःसङ्गरा-उक्तमितमःसङ्गरपाः कतरे। गुरुत्तरी ब्रह्मुतो विति चिन्तायां द्वाबादेशो भवतः, तो बोचर्त्रामि- अध्यास्येते (गा० ५८०१)। अनुदितेऽस्वमिते वा कथं प्रहणं सम्भवति ! हत्याह—''धाते पुण संस्व हो प्रता'' वि प्रातं सुनिक्षमिति वैकोऽर्थाः, तत्र सङ्गद्धी सम्भवति। सा च द्विषा —पुरःसङ्गवी प्रधारसङ्गवी व । तत्र पूर्वोढे या कियते सा पुरःसङ्गवी, अपराढे तु किवमाणा प्रधारसङ्गवी । इह पुगरसुदिते रवी पुरःसङ्गवी, पुनःसङ्गवीत प्रधारसङ्गवीत ॥ ५०८८॥

सरे अजुरगतिम, अजुदित उदिओ व होति संकप्पो । एवं अत्यमियम्मि वि, एगतरे होति निस्तंको ॥ ५७८९ ॥

स्वेंऽनुद्रतेऽनुदितसङ्क्ष्ण व वित्तसङ्क्ष्णो वा भवेत् , उपक्षणं वेतत्, उदितेऽप्यनुदित उदित इति वा सङ्क्ष्णो भवेत् । एवमेवाऽद्यमितेऽपि (पक्तरः) अनक्षमितोऽद्यमितो वा निःशक्षो मनःसङ्क्ष्णो भवेत् । एवमेवाऽद्यमितेऽपि (पक्तरः) अनक्षमितोऽद्यमितो वा निःशक्षो मनःसङ्क्ष्णो भवित , उपक्षणत्वाद् अनस्तिमितंऽप्यस्मितसङ्क्ष्णोऽनतिमितसङ्क्ष्णो वा भवेत् । इशुनुदितोदितविवयाऽनव्यमिता-ऽद्यमितयया च मलेकं गोडस्वमङ्की भवित । 15 त्याया— अनुदितमनःसङ्कष्णो अनुदितमोवी अनुदितमीत् । अनुदितमे स्वद्र्यमे प्रव्यपदे वित्तयाद्यमे । इत्यतिषु च भक्षेत्र यत्र द्वर्यमेभ्ययद्यो परस्पर्त विरोधो हश्यते मध्यपदेषु वा ह्योरेक्षमत् वा अदितो हष्टे अन्त्यपदेषु पुनत्नुदितवे भङ्का विरुध्यमानत्वेन वर्वनीयाः शेषा आखाः । तथा अनक्तमितसङ्कर्योऽन्यसितयोपी अनक्तमितमादी अनक्तमितमो । द्वराते पविद्यपदेषु द्वरात्वर्यस्य । स्वर्या प्रवस्य प्रवस्य । स्वर्या प्रवस्य । स्वर्या मङ्का कर्तयाः । अत्रापि विरोधो हर्यते यत्र वा मध्यमपदेषु द्वर्योक्तिस्त । अत्रापि हर्यन्त स्वर्याः । स्वर्या प्रवस्य । स्वर्यमपदेषु द्वर्योक्तिस्त वा अव्यवित्त । इर्यन्त स्वर्याः । स्वर्याः । १ ५०९९ ॥ अनुदितौदिता-उत्वित्तिः । उत्त्यानिके वा व्यविद्या सानेष्य । साम् । स्वर्या स्वर्याः । सिक्ति । अव्यवित्ते सानेष्य सावन्तो भक्षा प्रयानकास्तर्यनीयोगाइ ।

अणुदियमणसंकप्पे, ग्रहण गवेसी य खंजणे चेव । उग्गयऽणस्यमिए या, जत्यंपने वि चत्ताित ॥ ५७९० ॥ अनुदितमनःसहस्ये ग्रवेषण-महण-भोजास्येक्तिः प्वेर्येडडी भक्तातेषु 'चत्वारः' प्रथम-क्रितीय-चत्र्यां-डहममक्ता परन्ते, शेषाखासारेऽपरमानकाः । उद्गतमनःसहस्येऽप्पेत एव स्वारो घटन्ते न शेषाः । अनत्यामितसहस्ये अस्ताप्तसहस्येऽपि वेत एव चत्वारो आधाः, शेषात्त ततीय-पद्मम-बह्नस्यामा असम्यित्यात् वर्जनीयाः ॥ ५७९० ॥

न्त्र पुरायनम्बनम्बन्दरमा चरानावस्यात् वयनायाः ॥ ५०५ अयैतेषामेव घटमानकभक्तानां जिमागतः प्ररूपणामाह---

अणुदिवमणर्सकप्पे, गवेस-गह-मोयणम्मि पदमलता । वितियाएँ तिसु असुद्धो, उग्गयमोई उ अंतिमञ्जो ॥ ५७९१ ॥ अनुदितमनःसक्ररोऽनुदितगवेषी अनुदितमादी अनुदितमोती १, एषा प्रथम कता, प्रथमो

भक्त इत्ययः । द्वितीयसां तु ख्तायां साधुश्चिषु परेषु श्रविद्युद्धाः, तथया—श्रवृदितसङ्खरो-उनुदितमावेषी श्रनृदितमादी उद्गतमोजी, इयं हि ख्ता सङ्कर्य-गवेषण-महणपदेश्विमिरशुद्धाः उद्गतमोजिलक्तरेणानस्परेन तु शदा ॥ ५७९१ ॥

तहपाएँ दो असुद्धा, गहणे भोती य दोण्णि उ विसुद्धा । संकप्पम्मि असुद्धा, तिसु सुद्धा अंतिमलया उ ॥ ५७९२ ॥ तृतीयस्यां कतायां 'श्रे' सहस्य-गवेषणपरे असुद्धे महण-गोकनपरे हु ह्वे विसुद्धे । तथाया—अनुदितसहस्योऽद्युदितगवीची उदितमाही उदितगोजी चेति । पंजन्यकता नाम' काबुदितसहस्यस्य वरमा कता चर्जांत्यथैः, या सहस्यपदेऽविद्युद्धा होषेः श्रितेः पदैः सुद्धा । तथाया—अनुदितसहस्यस्य उदितगोची उदितमाही उदितगोजी ॥ ५७९२ ॥ एवमनुदितसनः-

10 सहस्पस्य चतस्रो हता उत्ताः । अयोदितमनःसहस्पस्य चतस्रो हता आह— उग्गयमणसंकप्पे, अणुदितै गवेसी य गहण भौगी य । एमेव य बितियलता, सुद्धा आदिग्मि अंते य ॥ ५७९३ ॥ ततियलताऍ गवेसी, होह असुद्धो उ सेसगा सुद्धा । सन्वविसुद्धा उ भवे, चउत्थलतिया उदियचिचे ॥ ५७९४ ॥

15 श्रादित्य उद्गतोऽनुद्रतो वा भवत स नियमादुद्गतं मन्यत इत्युद्गतमनःसङ्कल्य उच्यते । तत्य प्रथमकता — उद्गतमनःसङ्कल्योऽनुदितगवेषी अनुदितमाही अनुदितमोजी १ । एवमेव च द्वितीय- लताऽपि इष्ट्रव्या, नवरमादिपदे अन्त्यपदे च सा शुद्धा मध्यमे पद्मवेऽगुद्धा २ ॥ ५७९३ ॥ तृतीयल्यायामेकं गवेषणापदमशुद्धम् 'शेषाणि' सङ्कल्य-महण-भोजनपदानि त्रीण्यपि शुद्धानि १ । चुर्था छ लता सर्वेषु पदेषु गुद्धा १ । एताध्यतोऽन्युदित्तचित्तविषयाँ लता भावस्य २० विश्वद्धता छ छा । एताध्यतिमत्त-ऽनक्तामिताङक्त्ययोरप्यष्टौ लता भवन्ति ॥ ५०९१ ॥ तासामेव विभागस्यदर्शयति —

अत्यंगपसंकर्षे, पदम धरेंतेसि ग्रहण मोगी य । दोसंतेसु असुद्धा, वितिया मन्झे मत्रे सुद्धा ॥ ५७९५ ॥ ततिया गवेसणाए, होति विसुद्धा उ तीसु अविसुद्धा । र्चनारि वि होति पदा, चउत्यञ्जतियाएँ अत्यमिते ॥ ५७९६ ॥

इहास्रामितमनस्तिर्म वा रिवें यो नियमादस्तिर्म मन्यते सोऽसाहतसहस्यः, तस्य मथमा रुता—अस्तिमतसहस्योऽनस्त्रितगवेषी अनस्त्रितमाही अनस्त्रितमोत्ती १; अत एबाह— मयमायां रुतायां ''धरेतेसिं'' वि श्रियमाणे सूर्ये भक्त-पानस्य एषणं प्रदर्णं भोजनं च 'अस्त्रह्नतो स्विः' इतिबुख्या करोति । द्वितीया दु रुता 'द्वयोः' आधन्तपद्योरशुद्धा 'मञ्जे' गवेषणा-४० महणपदयोः शुद्धा २ ॥ ५७९५ ॥

१ °द्धः, परं यत उद्गतभोगी अन्त्यपत्युक्तस्ततो निर्तेषः। तद्यया शंः॥ २ °त पसी य तामाः॥ ३ वर्षा उद्गतमनःसङ्गरुपगोचरा स्तता शंः॥ ४ चचारि पय समुद्धाः, चदरपः तामाः॥

तृतीया गवेषणायां विशुद्धा 'त्रिषु' शेषेषु सङ्करमादिव्यविशुद्धा ३। चतुर्यव्यायां चास-मितविषयत्वात् नत्वार्थपि पदान्यविशुद्धाति । 'अद्यामितमनःसङ्करः' इति ऋत्वा नतन्त्रोऽप्येता अविशुद्धाः २॥ ५७९६ ॥ अथ विशुद्धवता आङ्द—

अणरधंगयसंकर्प, पढमा एसी य महण भोगी य । मण एसि गहण सुदा, बितिया अंतिम्म अबिसुदा ॥ ५७९७ ॥ मण एसणाए सुदा, ततिया गह-भोयेणेसु अबिसुदा । संकर्षे नगरि सुदा, तिसु वि असुदा उ अंतिमिया ॥ ५७९८ ॥

अस्तिनित्तम्तितं वा सूर्यं यो नियमादनत्तितितं मन्यतं तस्य मथमा छता, अनत्तिमि-तसङ्क्योऽनस्तित्ववेषी अनस्तिनित्ताही अनस्तिनित्त्रोजी । अत एवाह—"पदमा एसी य गृहणे भोगी य'' ति प्रथमायामनस्तिमेती अनस्तिनितम्हण-भोजी चेति । द्वितीया तु स्ता 10 मनःसङ्कर्येषण-महणपदेषु त्रिषु विद्युद्धा अन्त्यपदे अविद्युद्धा ॥ ५७९७ ॥

तृतीयरुता मनःसङ्करे एपणे च गुद्धा श्रहणे भोजने चाविग्रुद्धा । 'अन्त्वा नाम' चतुर्धी रुता सा नवरं सङ्करपपरे विगुद्धा रोपेषु 'त्रिषु' गवेषण-श्रहण-मोजनवरेषु अगुद्धा ॥५७९८॥ अत्राष्ट्रासुप्यविग्रद्धरुतासु मायश्विचमाह—

पदमाए बितियाए, तितय चउत्थीऍ नवम दसमाए। 15 एकारस वारसीए, लताऍ चउते अचुग्घाता ॥ ५७९९ ॥ प्रथमायां द्वितीयलां तृतीयलां चतुर्यों नवस्यां दद्यम्यामेकादश्यां द्वादस्यां चेत्यष्टासु लतासं मावस्याविद्यद्वतया चलारोऽनद्वाता मासाः॥ ५७९९ ॥

प्रतिपत्तच्याः, सर्वत्रापि भावस्य विद्युद्धत्वात् ॥ ५८०० ॥ अत्र शिष्यः प्रच्छति— दोण्ह वि कतरो गुरुओ, अणुग्गतऽस्थमियश्चंजमाणाणं ।

दाण्हा व कतरा गुरुआ, अशुग्गतऽत्यामयश्चमाणाण । आदेस दोष्णि काउं, अशुग्गए रुहु गुरू इयरे ॥ ५८०१ ॥

अनुद्रता-उद्यमित्युक्तानयिद्वियोर्भय्ये कतते गुरुतर:-महादोषः !। स्रिराह —आदेशद्वयं 25 कर्तव्यस् । एके आचार्या क्षुवरे—अनुद्रतभोजिनोऽस्यमितभोजी गुरुतर: । कुतः ! इति चेव् उच्यते—स संक्षिष्टपरिणामः, दिवसतो सुत्तवा मूयो रजन्याः प्रमुख एव सुक्के, तदानीं चाविशुध्यमानः कालः; अनुदितभोजी पुनः सकला रजनीमिषसस्य क्षान्तो सुक्के, विशुध्यमानश्च तदानीं कालः, अतीऽसी स्पुतरः । अपरे भणन्ति—अस्तितभोजिनोऽनुदितभोजी गुरुतरः,

१ °वणम्मि मदि" ताना ॥ २ °सु ययाक्रममायासु चतच्छु अनुदितसङ्करपविषयासु अस्यास्त्र चतच्छु अस्तितसङ्करपोषयासु अस्यास्त्र चतच्छु अस्तितसङ्करपोषयासु आवस्यास्त्र चतच्छु अस्तितसङ्करपोषयास्त्र अध्यास्त्र चतच्छु उद्गतसङ्करप-गोचरतया अर्थेत्र अन्यास्त्र चतच्छु उद्गतसङ्करप-गोचरतया अर्थेत्र चन्यास्त्र प्रमानस्तितसङ्करप्रविषयतया सर्वेत्र १ छो ॥

बकाइसी सर्वा रात्रिमधिसक्क स्त्रोर्क कार्क न प्रतीक्षते ततः संक्रिष्टपरिणामः; इतरस्तु बिन्त-बति—मुबान् मया कार्ठः सोढव्य जतो सुक्के, एवमसी व्युत्तरः । एवमावेश्वद्वयं क्रस्या स्थितपक्ष उच्यते—अनुद्रते सूर्ये प्रतिसमयं विद्युष्यमानः कार्छो भवतीति क्रस्वाऽनुदितमौजी रुपुतरः, 'इतरः पुनः' अस्त्रभितभोजी स तदानीं प्रतिसमयमविद्युष्यमानः कार्छो भवतीति क्रस्वा ऽपुरुतरः ॥ ५८०१ ॥ उक्तं कार्जनियन्त्रं प्रायक्षित्तम्। अथ द्वव्य-मावनिष्यक्षनिभित्तुराह—

गेण्डण गहिए आलोयण, नमोकारे शुंजणे य संलेहे ।

सुद्धो विर्मिचमाणो, अविर्मिचण सोहि दच्च भावे य ॥ ५८०२ ॥ अनुदितो वाऽसमितो वा रविरेतेषु स्थानेषु ज्ञातो मनेत्—"गेण्हण" वि इते उपयोगे पदमेषे इते ज्ञातम्, यथा—नाधाप्युद्धतोऽस्तमितो वा; तवा तत एव निवर्तमानः ग्रुद्धः । १० अभ महणं—गयेषणं कुवैता ज्ञातं तदापि निवर्तमानः ग्रुद्धः । अथ गृहीते ज्ञातं ततो यद् गृहीतं तत् परिष्ठापयन् ग्रुद्धः । अथाओचयता ज्ञातं तदापि विविश्वन् ग्रुद्धः । अथाओचन नमस्कारं भणावा ज्ञातं ततोऽपि विविश्वन् ग्रुद्धः । ग्रुक्षानेन ज्ञातं रोपं परिस्वजन् ग्रुद्धः । अथा सर्वेस्मन् ग्रुक्ते संकेसनाकर्षं कुवैता ज्ञातं तथापि विविश्वन् ग्रुद्धः । माय-स्थितं । अथा न विविनक्ति ततो दृत्यतो भावतश्च 'शोधिः' मायश्चितं भवति ॥ ५८०२ ॥ विवनक्ति ततो दृत्यतो भावतश्च 'शोधिः' मायश्चितं भवति ॥ ५८०२ ॥

संलेह पण तिभाए, अवहु दोभाए पंच मोत्त भिक्खुस्स ।

मास चउ छ च लहु-गुज, अभिक्सवगृहणे तिख् मूल ।। ५८०२ ।। 
'संलेखः' कवलत्रयमणाणः तमवशेषममुद्रतेऽस्तिमिते वा ज्ञातेऽपि अक्के मासळ्छु ।
पद्म कवलत्रविष्यमाणान् सुक्के मासगुरु । 'त्रिभागः' दशक्वरलासान् शेषान् सुक्के चतुर्लेषु ।
व्याक्षान् अध्यान् कवलस्तानवशेषान् सुक्कानस्य चतुर्गुरु । ''दोभाग'' ति हो त्रिभागी
विशतिः कवलस्तान् सुक्कानस्य षड्लेषु । ''पंच मोतुं' ति त्रिशतो मध्यात् पश्च मुक्त्वा ये
शेषाः पश्चितिशतिः कवलस्तान् यदि पुक्के तदा पहुरु । एवं यथा यथा द्रव्यद्वद्विस्तया तथा
प्राथिश्वनाणि वर्षते । अभीक्ष्णमहणं पुनः पुनरासेवां प्रतीत्य हितीयं वारमेवंभुज्ञानस्य
मासगुरुकादारुकं छेदे तिष्ठति । तृतीयं वार चतुर्लेषुकाशरम्य मुलं यावद् नेतत्यम् । एवं
व्याक्षित्रवारकं छेदे तिष्ठति । तृतीयं वार चतुर्लेषुकाशरम्य मुलं यावद् नेतत्यम् । एवं
विश्व वार्षेषु सुलं यावद् प्राथिशतं >- भिक्षोरुक्तम् ॥ ५८०३ ॥

एमेव गणा-ऽऽयरिए, अणवहुष्पो य होति पारंची । तम्मि वि सो चेव गमो. भावे पडिलोम बोच्छामि ॥ ५८०४ ॥

प्रदमेव गणिन:--उपाध्यायसावार्यस्य च चारणिकागमः स एव कर्तव्यः । नवरम्-उपाध्यायस्य प्रथमवारं मासगुरुकादारुक्यं छेदे, द्वितीयवारं चतुर्केषुकादारुक्यं सूळे, तृतीयवारं ३० चतुर्गुरुकादारुक्यं अनवस्थाप्ये तिष्ठति । प्रवमाचार्यस्यापे प्रथमवारं चतुर्केषुकादारुक्यं सूळे, द्वितीयवारं चतुर्गुरुकादारुक्यमनवस्थाप्ये, तृतीयवारं पद्ळ्षुकादारुक्यं पाराश्चिके पर्यवस्थति । गतं द्वव्यनिष्पनम् । अयं भावे प्रतिकोमं प्राथियतं वक्ष्यामि—पूर्वे द्वव्यद्वतौ भावस्थितः

१ · एतदन्तर्गतः पाठः भा॰ नास्ति ॥

इद्धिरुक्ता, सम्प्रति यथा यथा इच्यपरिहाणिस्तया तथा परिणामसंक्केशबृद्धिमङ्गीकृत्य प्रायश्चि-चबृद्धिममिषास्य ॥ ५८०२ ॥ तामेबाह—

'पंचूण तिमागडद्धे, तिमाग सेसे य पंच मोतु संलेहं। तम्मि वि सो चेव गमो, णायं पूण पंचहि गतेहिं॥ ५८०५॥

'तत्रापि' भावेभायश्चित्रे यो द्रव्यनिय्यत्ते चारणागम उक्तः स एव द्रष्टव्यः । नवरम्— 5
''पंचूण'' ति पश्चमिः कवलैरुनायां त्रिशति होषाः पश्चित्रितिः कवळा भवन्ति, ततैः पश्चसु
कवलेषु गतेषु यदि ज्ञातम् 'अनुदितोऽस्तिमतो वा रिशः' एवं ज्ञात्वा होषान् पश्चित्रिशतिकवळान्
सुज्ञानस्य मासस्य । ''तिभाग'' ति त्रिशत् त्रिभागेन द्वीना विश्वतिकवळातान् सुज्ञानस्य
मासगुरु । ''अद्धि' ति 'अद्धै' पश्चद्वा कवळातान् सुज्ञानस्य चतुळेषु । 'त्रिमागः' दश्च
सम्यनातान् सुज्ञानस्य चतुर्गुरु । त्रित्रातः पश्च स्वन्तान् सुक्तः होषाः पश्चित्रिशतिरज्ञाते 10
सुक्ताः, ज्ञाते तु पश्च होषान् सुज्ञानस्य वद्वल्युकाः । सेलेस्तात्रोषं सुज्ञानस्य वहुत्वरः । इद्
प्रभृत-मृत्यत्यक्वलेषु अधिका-ऽधिकतरायामिषि तृती सज्ञातायां होषं स्तीकं स्तोकतरमिष ज्ञाते
सति सुक्षे तत्र परिणामः संक्षिष्टः संक्षिष्टतर इति इत्या बहु-बहुतरं प्रायक्षित्रत् ॥ ५८०५॥

एमेवऽभिक्खगहणे, भावे ततियम्मि भिक्खुणो मुलं । एमेव गणा-ऽऽयरिए, सपया सपदं हसति हक्षं ॥ ५८०६ ॥

एवमेवाभीश्याव्हणेऽपि भावनिष्यन्नं प्रायक्षिणं मिलोर्द्रष्टव्यम् । नवरम्—द्वितीयवारं मास-गुरुकादारुकं छेदे तिष्ठति, तृतीयवारं चतुरुंपुकादारुकं मूरुं यावद् नेयम् । एवमेव गणिन आचार्थस्य च द्रष्टव्यम् । नवरम्—स्वप्दात् स्वष्दमेनुक्रमुमगोरिष् हृतति । तत्रोपाष्यायस्य प्रथमवारं मासगुरुकादार्थकं वृतीयवार्यामनस्थापने आधार्थस्य प्रथमवारं चतुरुंपुकादारुकं वृतीयवारायां पाराक्षिकं तिष्ठति ॥ ५८०६ ॥ इह पूर्वेगुद्रतष्ट्विपद्यमनस्वामितसङ्गस्यपदं च 20 व्याष्ट्यातं न रोषाणि संस्तातातीन अतस्ताति व्याच्ये—

> संथडिओं संथरेंतो, संतयभोजी व होइ नायव्वो । पजर्न अरुमंतो, असंथडी छित्रमत्तो य ॥ ५८०७ ॥

संस्तृतो नाम पर्थासं भक्त-पानं रूममानः संस्तर्रति, अथवा यः 'सन्ततमोजी' दिने दिने पर्यासमपर्थासं वा भुक्के स संस्तृतो ज्ञातच्यः । यस्तु पर्यासं भक्त-पानं न रूमते चतुर्थादिना 25 छिन्नमको वा सोऽसंस्तृतः ॥ ५८०७ ॥ निर्विचिकिस्सपदं व्याख्याति—

> निस्संकमणुदिनोऽतिच्छितो व स्रो चि गेण्हती जो उ । उदित घरेते वि हु सो, लग्गति अविसुद्धपरिणामो ॥ ५८०८ ॥

१ पण्डीण ति' तामा॰ ॥ २ 'थनिरपन्ने प्राय' कां॰ ॥ ३ 'तः 'पंचिंहिं गएहिं' ति विभक्तिस्मयात् पञ्चसु कां॰ ॥ ४ 'एव्यं हेरे, द्वितीयवारं चतुलेषुकादारच्यं मूले, दतीयवारं चतुर्युकतादारच्यं अनवस्थाच्ये, स्वायांच्य प्रमायारं चतुलेषुकादारच्यं मूले, द्वितीयवारं चतुर्युककादारच्यमत्वरसाच्ये, द्वतीयवारं चहल्युकादारच्यं पारा' कां॰ ॥ ५ 'भोगी य हो' तामा॰ ॥ ६ 'रन् निषंहन आस्ते, अर्थ' कां॰ ॥ ४ - १९११

निर्विचिक्किस्तो नाम निःशङ्कमनुद्दितोऽतिकान्तो वा सूर्य इति मन्यते । एवं यो निःशङ्कि-तेन चेतसा गृह्णाति स थघपि उदिते 'भ्रियमाणे वा' अनत्तामिते रवी गृह्णाति तथाप्यविशुद्ध-परिणामतया प्रायक्षित्रे रूगति ॥ ५८०८ ॥

> एमेव य उदिउ ति व, धरह ति व सोद्रप्रवगतं जस्स । स विवजए विसद्धोः विसद्धपरिणामसंज्ञतो ॥ ५८०९ ॥

एवमेव यस्य 'सोढे' निःसन्दिग्यं चिते उपगतम् — यहुतादित्य उदितः 'भ्रियते वा' नाषाप्यस्त्रमेति स यद्यपि 'विपयेश' विपयोसज्ञाने वर्तते तथापि विद्युद्धपरिणान इति क्रस्वा 'विद्युद्धपरिणान इति क्रस्वा 'विद्युद्धः' न पायश्विती ॥ ५८०९॥ अत्र यहुक्तं सुत्रे— 'अह पुण एवं जाणेज्ञा— अणुमाए सुरिए अस्विपर्य " ति तत्रोद्धतमन्त्वमितं वा रिवं चेतिस क्रस्वा गृहीतं प्रधान् पुनर्ज्ञातं यथा— । असुद्धतोऽस्वमितो वा; क्रयं पुनर्ज्ञातं यथा स्व

सिं-चिंचिणिमादीणं, पचा पुष्फा य णलिणिमादीणं। उदय-प्रथमणं रिवेणो, किंहिति विमसंत-मउलिता॥ ५८१०॥ श्रमी-विश्विणकादीनां तरूणां पत्राणा भिलनीमग्रतीनां च पुष्पाणि विकसित सन्ति रवेरुदयं कथपन्ति। प्रतायेव सुकुलयन्ति सन्ति रवेरस्वमयनं कथपन्ति॥ ५८१०॥ कथं प्रतादित्य उदिवोऽस्तितो बान इश्यते ! इत्याह—

> अब्भ-हिम-वास-महिया-महागिरी-राहु-रेणु-रयछण्णो । मुढदिसस्स व बुद्धी, चंदे गेहे व तेमिरिए ॥ ५८११ ॥

अन्नसंस्तृत गगने, हिमितकरे वा पतित, वर्षेण वा महिकया वा पतस्या छादिते, महागिरिणा वा अन्तरिते, राहुणा वा सर्वेमहणेनोदया-उस्तमनयोगृहीते रैवी, रेणु:—करक्ममनापु20 त्साता पुलिः रजाः—औत्पादिकं ताभ्यां वा छन्न उदितोऽस्तगितो वा रिवर्न ज्ञायते। दिम्मूढो
वा कथिद अपरां दिशं पूर्वा मन्यते, स नीचमादित्यं विक्रोक्षय 'उद्गतमात्र आदित्यः' इतिबुद्धा भक्त-पानं गृहीस्या वसर्ति प्रविद्यो यावद् अक्तस्तावन्त्रभकारं जातय, तती जानाति—
अस्तिमित्रहे सुक्त हति। अथवा 'गेहे' गृहाभ्यन्तरे कारणजाते दिवा सुमः, मदोषे चन्द्रे उदिते
विद्युद्धो विवरेण ज्योत्यां महिष्टा दृष्टा चिन्त्यति—एप आदित्यात्वरः प्रविष्टः म च तैमिरिको
23 मन्दं मन्दं पत्रयति ततो गृहिणा निमन्नितो सुक्तः। एवमादिभिः कारणेरनुदितसृदितं मन्येत
उदितं वाऽनुदितम्, अस्तिमतम्यन्तविभवं अनस्तिमतम्बस्तितम् ॥ ५८११ ॥ ततः—

सुत्तं पड्ड गहिते, णातुं इहरा उ सो ण गेण्हंतो । जो पुर्ण गिण्हति णातुं, तस्सेगद्वाणगं बह्वे ॥ ५८१२ ॥

यबुद्रतोऽनहामितों वा इतिबुच्चा सुन्नं प्रतिक "उनाम्यवित्तीए कारविभियसंकृत्ये" इति उ० सूत्रमामाध्येन गृहीतं पश्चाच ज्ञातम् 'अनुद्रतोऽस्त्रमितो वा रिवः' ततो यब सुसे यच्च पाणी यच्च प्रतिमहे तत् सर्वमित ब्युत्युजेत् । 'इतरया' यद्यसौ प्वमेगानुदितमञ्जामेतं वा अज्ञास्कत् ततो नामहीष्यत् । यः पुत्रसुद्रतमस्त्रमितं वा ज्ञात्वा गृह्णति गृहीत्वा या ग्रुक्केऽन्येषां वा ददाति

१ रवी उदया-उस्तमने न क्रायेते। तथा रेणुः कं ा। २ °ण भुंजइ णा ताथा ।।।

तसैकं स्मानकं वर्द्धयेत्, तं प्रतीत्व ''तं मुंजमाणे अन्नेसिं वा दरुमाणे आवज्जह चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुम्बाइयं'' इत्युत्तरं सूत्रखण्डं वर्षयेदिति भावः ॥ ५८१२ ॥

अथ विवेचन-विशोधनपदे व्याचष्टे---

सव्वस्स छड्डण विगिचणा उ ग्रुह-हत्थ-पादछूहस्स ।

फुसण धुवणा विसोहण, सिक्तं व बहुसी व णाणतं ॥ ५८१३ ॥ ब्रिक्तिसस्त्रितं वा जात्वा यद् मुले प्रिक्षितं तस्य ज्ञाते सिति स्वेब्सक्षके यत् प्रक्षेपणम्, यच हत्ते—पाणौ तस्य प्रतिप्रहे, यत् पाने—प्रतिप्रहे तस्य स्वण्डिले, एवं सर्वस्याणि यत् परिष्ठापनं सा विवेचना ॥ यत् च "फुसणं" हस्तेनामशैनं 'भावनं करूपकरणं सा विशोधना ॥ अथवा 'सक्त्य' एकतः परिष्ठापन-सर्थान-भावनानां करणं विवेचना, एतेणमेव बहुशः करणं विशोधनम् ॥ एतद् विवेचन-विशोधनयोर्गानात्वमुक्तम् ॥ ५८१३ ॥

अथ "नो अइक्रमइ" ति पदं व्याख्याति--

नातिकमती आणं, धम्मं मेरं व रातिभत्तं वा । अत्तहेगागी वा, सय भ्रुंजे सेस देजा वी ॥ ५८१४ ॥

एवं विविधन् विशोधयन् या तीर्यकृतामाञ्चा नातिकामति । अथवा श्वत्यभै चारित-मर्यादा रात्रिभक्तमतं वा नातिकामति । ''नं मुंजमाणे अत्रेसि वा दरूमाणे'' चि पद्वस्य 15 व्याच्यायते— ''अच्छें' इत्यादि, 'आस्मार्थिकः' आस्मराभामिष्रद्दी कारणे वा य एकाकी स स्वयं मुक्के नान्येषां ददाति । 'शेषः पुनैः' अनात्मराभी अनेकाकी वा स अन्येषामि दद्यात् स्वयमि भुजीत ॥ ५८१४ ॥

गतं प्रथमं संस्कृतिनिर्विचिकित्सम्बन्नम् । अथ द्वितीयं संस्कृतिविचिकित्सम्बनं व्यास्थाति—

एवं वितिगिच्छो नी, दोहि लह् णविर ने तु तव-काले । 20

तस्स पण हवंति लता. अह असदा ण इतरातो ॥ ५८१५॥

विचिकत्सते— कि उदितो रिवः! उत अनुदितः!' इत्यादि संशयं करोतीति विचिक्तित्सं:, सोऽप्येवमेव वक्तव्यः । नवरम्— यानि तत्य तपोऽर्हाणि मायश्चित्तानि तानि तपसा कालेन च लघुकानि । 'तत्य च' विचिकित्सत्य पुनरशुद्धा एव केवला अष्टी लता भवन्ति न 'इतराः' शुद्धाः, सक्कल्पस्य शक्कितत्वेन प्रतिपक्षाभावात् ॥ ५८१५॥ 25

कथं पुनरसी शङ्कां करोति ? इत्याह-

अणुदिय उदिओ किं नु हु, संकप्पो उमयहा अदिहे उ । घरति ण व ति व छरो, सो पूण नियमा चउण्हेको ॥ ५८१६ ॥

'उभयथा' उदयकालेऽस्तमनकाले वा अभिहिमादिभिः कारणैरहष्टे शादिले सङ्करनो भवति, किमनुदित उदितो वा रिवः ! अस्तमनकालेऽपि—सूर्यो भ्रियते न वा ! इति शङ्का भवति । ३० स पुनः सर्यो नियमावनदित उदितोऽस्तमितोऽनस्तमितो वा ! इति चतुर्णो विकरुपानामे-

१ °नः' आत्म' कां॰ ॥ २-३ संस्कृत° मा॰ ॥ ४ °त्सः, "अच्" (सिद्धहे० ५-१-४९) इस्रजेन अच्चरत्ययः, सोऽप्ये कां॰॥ ५ °नामेकैकसिन् प्रकारे वर्त्तते न ग्रेषेषु। भङ्गाः कां॰॥

कतरस्मित् वर्तते । भक्षाः पुरारतेत्वमुक्षारणीयाः—उदयं मतीत्व विविकित्से मनःसक्करे सति विचिकित्सितगवेषी विचिकित्सितमाही विचिकित्सितभोजी, एवगष्टी भक्षाः; अस्तमनमपि मतीत्यैवमेवाष्टी भक्षाः । द्वयोरप्यष्टमक्रयोः प्रथमःद्वितीय-चतुर्वा-ऽष्टमा भक्षा घटमानकत्वाद् माखाः, शेषाश्चत्वारोऽप्राद्याः ॥ ५८१६ ॥ गतं द्वितीयं संस्तृतविचिकित्सस्रस्त्रम् । अथ ठ तृतीयमसंस्तृतनिर्विचिकित्सस्त्रमं व्याचिव्यासुराह—

#### तव-गेलन-उद्धाणे, तिविहो तु असंथडी विहे तिविहो । तवऽसंथड मीसस्सा. मासादारीवणा इणमो ॥ ५८१७ ॥

अंसंस्तृतो नाम पद्या-इप्टमादिना तपसा क्कान्तो १ ग्लान्तनेन बाउसमर्थो २ दीर्घाध्विन वा गच्छन् पर्याप्तं न रूभते ३, एव त्रिविधोऽसंस्तृतः । ''विहे तिबिहो'' जि 'विहे' अध्विन । विशेऽसंस्तृतः स त्रिविधः, तयथा—अध्यमवेहोऽध्यमध्येऽध्योत्तरे च । तत्र त्रपोऽसंस्तृतस्य निर्धिकितस्य मासादिक् इयमारोपणा भवति । ''मीसस्स'' जि मिश्रो नाम-विचिकित्सा-समापत्रस्तस्यापि मासादिरारोपणा कर्तत्या । सा चोत्तर्याभाष्टायते । दृहापि पूर्वकमेण पोड्स छताः कर्तत्याः, कालिप्यस्तं च मायश्चितं माम्वत् ॥ ५८१७ ॥ द्रव्य-मायायश्चित्ययोत्त्यं विहेषः—तर्पोऽसंस्तृतो विहृष्टतपःक्यानः पाएकोऽसुद्रतेऽस्तिते वा उत्तिः।-तस्तिनितृच्याः । १६ स्क-पानीये सुक्षानो यदाः जुद्धतमस्तितं वा जानाति ततः परं शुक्षानस्येदं मायश्चित्य्—

## एक-दुग-तिण्णि मासा, चडमासा पंचमास छम्मामा । सन्वे वि होति लहुगा, एगुचरबह्विया जेणं ॥ ५८१८ ॥

संलेखनारोपं यदि ज्ञाते अङ्के तत् एकंमासिकम् । पञ्च कवलान् समुद्दिशति द्विमासिकम् । दश लम्बनान् समुद्दिशति त्रैमासिकम् । पञ्चदश कवलान् भुजानस्य चतुर्मासिकम् । विद्याति 20 भुजानस्य पञ्चमासिकम् । अथ पञ्च कवला विद्युद्धमानेन समुद्दिष्टाः रोषान् पञ्चविद्यातिकव-लान् ज्ञाते अङ्के ततः वाण्णासिकम् । एजाति सर्वाण्यपि लमुकानि मायश्चितानि भवन्ति । कुतः । दृत्याह—येन कारणेनैकोचरङ्खा द्विष्यादिकस्या अमृति वर्द्वितानि ॥ ५८१८ ॥ इदमेव स्थानि—

## दुविहा य होइ बुद्धी, सङ्घाणे चेव होइ परठाणे । सङ्घाणीम्म उ गुरुगा, परठाणे लङ्गग गुरुगा वा ॥ ५८१९ ॥

द्विवया च भवति इद्धिः तथथा—स्वस्थानद्वद्धः परस्थानद्वद्धिश्च । स्वस्थानद्वद्धिनयमाद् गुरुका भवति, तथाहि—यदा मासञ्जुकाद् मासभेव स्वस्थानं सङ्कामति तदा नियमाद् मासगुरुकमेव, एवं द्विमासञ्चकाद् द्विमासगुरुकम्, यावत् पण्णासञ्जुकात् पण्णासगुरुकम् ।

△ परस्थानद्विस्तु विसद्दशस्त्रभाका द्विः, यथा—मासाद वो माथे वाष्ट्रमं स्वाप्ताद्वा वर्णे

पुरुक्तमः, एवं हिसासञ्जूकार् हिसासञ्जूकक्त् । यावत् पण्मासञ्जूकात् वण्मासगुरुक्त् । च पर्समानइदिस्तु विसहशशक्वाका इदिः, यथा—गासार् हो मासो, हाम्यां मासाभ्यां त्रयो ऽध्मासाः, एवं यावत् पश्चमासात् वण्मासाः । एषा ⊳ परस्थानइदिर्लञ्जका वा गुरुक्त वा सवेत् ।

१-२ संस्कृत° भा० ॥ ३ असंखडी ३० । असंघडी भा० ॥ ४ °संखड ३० । °संघड भा० ॥ ५ असंस्कृतो भा० ॥ ६ °संस्कृत° भा० ॥ ७ °संस्कृतो भा० ॥ ८ ०४ >० पुत्रीबहान्त-र्गतः पाठः भा० क्षं० एव वर्तते ॥

तत्र लघुकस्थानादारच्या लघुका गुरुकस्थानादारच्या गुरुका भवति । अत्र च मासलघुका-दारच्या अतः सर्वाण्यपि लघूनि द्रष्टय्यानि ॥ ५८१९ ॥

> मिक्तुस्स ततियगहणे, सद्वाणं होइ दव्वनिष्फन्नं। भावम्मि उ पडिलोमं, गणि-आयरिए वि एमेव ॥ ५८२० ॥

मिक्सोर्ह्रितीयबारं द्वेमासिकादारुषं छेदे तिष्ठति, तृतीयबारं महणे त्रैमासिकादारुषं व् 'ख्लार्तं' मूर्लं यावद् नेयम् । एदं द्रव्यनिष्पत्रं प्राथक्षितपुक्तम् । भावनिष्पत्रं पुनरेतदेव प्रतिलोगं मन्तव्यम्। गणिन जाचार्यस्यापि द्रव्य-भावयोहमयोरप्येवयेव प्रायक्षित्तम् । नवरम्— उपाच्यायस्य द्वेमासिकादारुकं त्रिभिवीरेत्वस्थाप्ये, आचार्यस्य त्रैमासिकादारुकं त्रिभिवीरेः पाराश्चिकं पर्ववस्यति ॥ ५८२० ॥ गतस्यपोऽसंस्तृतः । अत्र म्लानासंस्तृतमाह्—

एमेव य गेलको, पहुवणा णवरि तत्थ भिण्णेणं । चउहि गहणेहिं सपदं. कास अगीतत्थ सत्तं त ॥ ५८२१ ॥

10

म्ह्यनासंस्तृतस्याप्येवसेव प्रायश्चिषम् । नवरम् —तैत्र "भिन्नेणं" ति भिन्नमासात् मस्यापना कर्तव्या । प्रथमं वारं पञ्चनासरुषुके, द्वितीयं पण्मासरुषुके, तृतीयं छेदे, चतुर्थं वारं मूरुं तिद्यति । अत एवार्ट—'चतुर्भिमंद्रलेगः' अमीक्ष्णसेवारुपः 'स्वपरं' मूरुं भिक्षुः मामोति । उपाध्यायस रुषुमासादारुषं चतुर्भिवीरेगः। अत्याध्यायस रुषुमासादारुषं चतुर्भिवीरेगः। पाराश्चिक पर्यवस्यति । शिष्यः प्रच्छति — कस्सैतत् मायश्चित्तम् ! स्तिराह—यद् उक्तं यच वस्यमाणम् एतत् सर्वनगतितार्थस्य सूतं भवति, प्रस्तुतसूत्रोक्तं मायश्चित्तसित्यर्थः । स हि कार्यमकार्यं वा यतनामयतनां वा न जौनाति अनस्तस्य प्रायश्चित्तम् । ५८२१ ॥

गतो ग्लानासंस्तृतः । अथाध्वासंस्तृतमाह---

अद्धाणासंथिडिए, पवेस मज्झे तहेव उत्तिण्णे । मज्झिम्म दसगनुङ्की, पवेस उत्तिण्णि पणएणं ॥ ५८२२ ॥

20

'अध्विन' मार्गे योर्डेसंस्तृतः स त्रिविधः । तद्यथा — अध्वतः प्रवेशे मध्ये उत्तरे च । तत्र प्रयमं मध्ये भाव्यते — भिक्षोः संकेलनादिषु षद्यु स्थानेषु दशरात्रिन्दिनमादो क्वत्या प्रायश्चितः इद्धिः कर्तव्या, उपाध्यायसः पश्चदशरात्रिन्दिनादिकम्, आचार्यसः विश्वतिरात्रिन्दिनादिकं प्रायश्चित्तम् । अध्यते — भण्यते — "प्यते 25 उत्तिष्ण पण्एणं" ति प्रवेशे तथा उत्तरणपुरीणै तत्र च पश्चकेन स्थाना कियते, संकेल-नादिषु पद्यु पद्यु पश्चप्रतिन्दिनान्यादौ कृत्या मासकषुकं यानद् नेतन्यमिति भावः । तथा उम्मोरिष अधिनेत्रीस्तं मामोति, उपाध्यायसः दशरात्रिन्दिनाद्यानकस्थाप्यम्, उमयोरिष अधिनीर्देशं मामोति, उपाध्यायसः दशरात्रिन्दिनाद्यादैकमध्यनारामनकस्थाप्यम्,

र 'संस्कृत' भाग ॥ २ 'तत्र' ग्छानासंस्कृते 'भिष्नेषं'' ति विभक्तिव्यत्ययाद् भिष्न-मासात् प्रस्थापना कर्सव्या। ततस्य प्रथमं वारं भिष्नमासादारञ्जं पञ्चमासागुरुके, द्वितीयं वारं छच्चमासादारञ्जं पण्मासाछञ्जके, तृतीयं वारं द्वैमासिकादारञ्जं केदे, चतुर्थं वारं मैमासिकादारञ्जं मूछे तिद्यति। अत कांगा ३ जानीते अतं भाग ३०॥ ४ 'संस्कृत' भागा ५ 'इसंस्कृतः भाग॥

बाचार्यस्य पञ्चदशरात्रिन्दिवादिकं पाराञ्चिकान्तम् । भावे एतदेव प्रतिलोमं प्रायश्चित्तम् ।

शिष्यः पृच्छति — अध्वासंस्तृतो मध्ये क्षिप्रमेव स्वपदं प्राप्तिः प्रयेरो उत्तरणे च विरेण तदेतत् कथम् ! अत्रोच्यते — अध्वनः प्रयेरो भयधुत्यदते 'कथमध्यानं निस्तरिष्यामि !' उत्तरणे-उपि बुगुक्षा-तृषादिभिरत्यन्तं क्वान्तः, अत एतो विरेण स्वपदं प्रापितो, अध्वमध्ये पुनर्जितभयो ठमातिकान्त्रव अतः श्रीवं स्वपदं प्रापितः । अत्रेकैकसित् पदे आज्ञादयो रात्रिभोजनदोषाश्च । अमीतार्थस्य वैतन्मन्तव्यम् , न गीतार्थस्य ॥ ५८२२ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते —

उग्गयमणुग्गते वा, गीतत्थो कारणे णऽतिकमति ।

द्ताऽऽहिंड विहारी, ते वि य होती सपिडवस्या ॥ ५८२२ ॥
गीताथैः अध्वयवेशादी कारणे उत्पन्न उद्गतेऽजुद्गते वे। सूर्ये यतनयाऽरकोऽद्विद्यो अञ्जानो
10 भगवतामाञ्चां पर्मे या नातिकस्मति । ते चार्यपतिपद्माश्चिविशः—द्रवन्त आहिण्डका विहारिणश्च । तत्र द्रवन्तः-मामानुमामं गच्छन्तः, आहिण्डकाः-सततपरिअमणशीलाः, विहारिणः—
मासं मासेन विहरन्तः । तेऽपि मत्येकं समतिपक्षाः ॥ ५८२२ ॥ तद्यया—

दृइजंता दुविधा, णिकारणिगा तहेन कारणिगा । असिवादी कारणिता, चके धृमाईता इतरे ॥ ५८२४ ॥ उनदेस अणुबदेसा, दुविहा आहिंडगा मुणेयच्या ।

उवदंस अणुवद्सा, दुविहा आहडगा धुणपच्या । विहरंता वि य द्विधा, गच्छगता निग्गता चेय ॥ ५८२५ ॥

द्वनतो द्विविधाः—निष्कारणिकाः कारणिकाश्च । तत्राशिवाः उदमौदर्थ-राजद्विष्टादिभिः कारणैः, उपवेर्ष्ठपस्य वा निभित्तं, गच्छस्य वा बहुगुणतरमिति इत्वा, आवार्योदीनां वा आगादे कारणे ये द्रवन्ति ते कारणिकाः । ये पुनरुत्तरापये धर्मचकं मथुरायां देवनिर्मितस्त्य उधादिशब्दात् कोञ्चलायां जीवन्तस्त्वामियतिमा तीर्यकृतां वा जन्मादिस्सय एवमादिदर्शनार्थे दर्वन्ते निककारणिकाः ॥ ५८२२॥

आहिण्डका अपि द्विभा—उपदेशाहिण्डका अनुपदेशाहिण्डकाथ । तत्र ये सूत्रा-ऽभीं
गृहीत्वा भविष्यदाचार्या गुरूणादुपदेशेन विषया-ऽऽचार-भागोपरुम्भनिमिनगाहिण्डनते ते
उपदेशाहिण्डकाः, ये तु कोतुकेन देशदर्शनं कुर्वन्ति तेऽनुपदेशाहिण्डकाः । विहरन्तोऽपि
शिक्षविभाः—गच्छाता गच्छिनिर्गताथ । तत्र 'गच्छगताः' गच्छवानिनः ऋतुबद्धे मासं मासेन
विहरन्ति। गच्छनिर्गता द्विषयाः—धिनिर्गता अविधिनिर्गता अविधिनिर्गता । विधिनिर्गता अविधिनर्गताः । विधिनर्गताः सारणादिभिस्त्वाविता एकाकीमृताः ॥ ५८२५ ॥

एतेषां भेदानामिमेऽनुदिता-ऽस्तमितयोः प्रायश्चिते लगन्ति---

निकारणिगाऽणुवदेसिंगा य लग्गंतऽणुदिय अत्थमिते । गच्छा विणिग्गता वि हु, लग्गे जति ते करेक्षेवं ॥ ५८२६ ॥

१ °संस्कृतो मा॰ ॥ २ वा, उपलक्षणत्वाद् अस्तमितेऽनस्तमिते वा सूर्ये कां॰ ॥ ३ °बा समासेणं। बिह्व °तामा॰ ॥ ४ °वन्ति ते इतरे मन्तव्याः । इतरे नाम-निक्का॰ कां॰ ॥

25

निष्कारिषका द्रवन्तो अनुपदेशाहिण्डका अविधिनिर्गताश्चानुदितेऽस्तिमेते वा यदि गृहिन्त अञ्जते वा ततः पूर्वोक्तभायश्चिते रुगन्ति । ये तु कारिषका द्रवन्त उपदेशाहिण्डका गच्छगताश्च ते कारणे यतनया गृहाना अञ्जानाश्च गुद्धाः । ये तु गच्छनिर्गता जिनकल्पिकादसक्तेऽपि ययवमनुदितेऽस्तिमेते वा महणं कुर्युस्ततो रुगन्ति परं ते नियमात् तदानीं न गृहिन्त, त्रिकाछविषयज्ञानसम्पन्नस्वात् ॥ ५८२६ ॥

अहवा तेसिं तितर्यं, अप्पत्तो अणुदितो भवे छरो । पत्तो तु पच्छिमं पोरिसिं च अर्त्यगतो होति ॥ ५८२७ ॥ अथबाशब्द: मकारान्तवाची । 'तेषा' जिनकश्चिकारीनां कृतीयां पौरुषीमप्राप्तः सूर्योऽनु-दितो भण्यते, पश्चिमां च पौरुर्षा प्रप्तोऽन्तकत उच्यते । अत एव भक्तं पन्याश्च तेषां तृतीय-पौरुष्यागेव भवति नान्यथा ॥ ५८२७ ॥

गतमसंस्तृतनिर्विचिकित्सध्यम् । अथासंस्तृतविचिकित्सध्यं व्याँचये— वितिगिच्छ अञ्मॅसंथड, सत्यो उ पहावितो भवे तुरियं । अणकंपयाएँ कोई, भनेण निमंतणं कुजा ॥ ५८२८ ॥

अअसंस्तृत-हिमानीसम्पातादिभिरहश्यमाने सूर्ये विचिकित्सा भवति । ते च साधवः सार्थेन अध्वानं प्रतिपत्नाः, अन्तरा चाऽभिमुत्तोऽपरः सार्थ आगतः, द्वावप्येकस्थाने आवासितौ, 15 अभिमुत्तागन्तुकसाधिकश्य कोऽप्यनुकृष्यया साधूनां भक्तन निमन्नणं कुर्योत्, यस्त्रिश्च सार्थे साधवः स चलितः अतः सूर्योदयवेकायामुदितोऽनुदित इति शक्क्ष्या गृहीयुः । इहापि त्रिवि-धेऽस्तिन्तृते तथैवाष्टी लताः । नवरम्—असंस्तृते निर्विचिक्तसे तपःप्रायश्चिताःनुभयगुरुकाणि, असंस्तृते विचिकित्से तपःप्रायश्चितानुभयगुरुकाणि, असंस्तृते विचिकित्से पुनरुभयखुरुकाणि,

॥ संस्तृत-निर्विचिकित्सप्रकृतं समाप्तम् ॥

उद्गार प्रकृत म्

सूत्रम्---

इह खद्घ निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा रातो वा वियाले वा सपाणे सभोयणे उग्गाले आगच्छेजा, तं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ। तं उग्गिलित्ता पद्योगिलमाणे राईभोयणपडिसेव-णप्पत्ते आवजइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणु-ग्वाइयं १०॥

१-२ °संस्कृत° मा॰ ॥ ३ व्यास्याति कां॰ ॥ ४ °संसङ हे॰ । °संघड भा॰ ॥ ५ °संस्कृत° मा॰ ॥६-७ °संस्कृते मा॰ ॥ ८ असंविचि° कां॰ विना ॥

अस्य सम्बन्धमाह----

निसिमीयणं तु पगतं, असंधरंती बहुं च भीतृणं । उग्गालग्रुगिलिजा, कालपमाणा व दव्वं तु ॥ ५८२९ ॥

निश्चिमोजन पूर्वसूत्रे पक्कतम्, इहापि तदेवाभिषीयते । यद्वाऽसंखरत् 'बहु' पग्तं अकवा क रजन्याषुद्वारमागतमुद्रित्नेत् तत्रिवधार्थमिदं सूत्रम् । अथवा काळप्रमाणमनन्तरसूते उक्तम्, इह तु काळप्रमाणादनन्तरं द्रव्यप्रमाणमुच्यते ॥ ५८२९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—'इह' अस्मिन् मौनीन्द्रे प्रवचने मामादौ वा वर्तमा-नस्य 'स्रञ्छः' वावयालङ्कारे निर्म्रथस्य वा नर्मन्थ्या वा रात्रौ वा विकाले वा सह पानेन सपानः सह भोजनेन सभोजन उद्वार आगच्छेत् । किसुक्तं भवति ?—सिक्थविरहितमेकं 10 पानीययुद्वारेण सहागच्छिति, कृरसिक्थं वा केवलमागच्छिति, कदाचिद्वम्यं वा। 'तम्' उद्वारं 'विविक्षम् वा' सकृन् परित्यजन् 'विद्योधयन् वा' बहुशः परित्यजन् नो आजामतिकामति । तमुद्वार्थ 'प्रत्यवगिरुन्' स्योऽप्यासादयन् आपवो चातुभीसिकं परिहारस्थानं अनुद्धातिकम् । एष सुत्रार्थः ॥ सम्प्रति निर्विक्तिविस्तरः—

उद्दरे विमत्ता, आतिअणे पणगवृहि जा तीसा ।

> गणि आयरिए सपदं, एगग्गहणे वि गुरुग आणादी । मिच्छत्तऽमचबद्दए, विराहणा तस्स वऽण्णस्म ॥ ५८३१ ॥

गणी-उपाध्यायसम्य चतुर्गुरुकादारव्यं स्वयदमनक्ष्णाप्यं यावद् नेयम् । आचार्यस्य षद्25 रुषुकादारव्यं सपदं पाराधिकं यावद् द्रष्टव्यम् । एवं दिवसत उक्तम् । रात्रो तु ययेकमपि
सिक्यं 'गृह्वाति' प्रस्वादेतं ततश्चदुर्गुरु, आज्ञादयश्चदोषाः । मिर्प्यात्यं चासावन्येषां जनमति—
यथा वादिनस्त्रथा कारिणो न भरन्त्यमी हति । राजा चा तं ज्ञात्वा भिक्षादीनां प्रतिषेषं कुर्णाद्,
'मा वा कोऽप्यमीषां मध्ये प्रमाजीत्' इति वारयेत्, असारं च प्रवचनं मन्येत, अस्मिसरजक्ता अप्यमीपियोन्दमापियम्द्रिक्तिता इति । 'तस्य वा' वान्ताशिनः 'अन्यस्य वा' तं परस्यतो

30 विराषमा भवति । अन्नामात्यबदुक्षद्वप्तद्वाः—

एगो रंकवडुतो संखडीए मज्जियाकुरं अइप्पमाणं जिमितो । तिमायस्स य रायमग्गमो-गाडस्स हिययमुच्छक्षं । अमचपासायस्स हिट्टा विमिउमारद्धो, अमचेण य वायायणद्वि**एण दिहो** ।

१ एतदनन्तरं झन्धाझम्-६००० कां॰॥

15

25

30

सो य विभिन्ना तमाहारमविणहं पालिचा छोमेण झुंजिउमारहो । तं बहुण अमबस्स अंगाणि उद्धासियाहं, जड्ढं च जातं । अमबो दिणे दिणे जेमणवेखण समुद्धिसती संभरेचा जड्ढं करेह । एवं तस्स वग्गुली बाही जातो, तओ मओ । सो वि घिज्ञाईओ एवमेव विणहो । जन्हा एते दोसा तन्हा पमाणपर्च मोचन्वं ॥ ॥ ५८३९ ॥

एवं तात्र दिवसतो, रातो सित्थे वि चउगुरू होंति । उद्दरगहणा पुण, अववाते कप्पए ओमे ॥ ५८३२ ॥

प्वं तावत् कवरुपञ्चकमार्ते। इत्या पञ्चकृष्ट्या चतुर्रुशुकादिकं प्रायश्चितं दिवसत उक्तम् । रात्रावेकसिक्यस्यापि महणे चतुर्युरवो भवन्ति । यच निर्युक्तिगाधायागरुर्द्वदरमहणं कृतं तदेवं जापयति — अपवादपदे अवसे प्रत्यविकतमपि करूपते ॥ ५८३२ ॥ अत्र शिष्यः माह—

> रातो व दिवसतो वा, उग्गाले कत्थ संभवो होजा। गिरिजण्णसंखडीए, अद्वाहिय तोसलीए वा॥ ५८३३॥

राजो वा दिवसतो वा कुत्रोद्वारस सम्भवो भवेत ?। सूरिराह—गिरियझादिषु सङ्खडीषु तोस्रलिविषये वा अष्टाहिकादिमासु प्रमाणातिरिक्तं सुक्तातासुद्वारः सम्भवति ॥५८३॥ तत्र प्रायक्षित्रसमिषित्सः प्रसावतार्थं तावदिदमाह—

> अद्धाणे वत्थन्वा, पत्तमपत्ता य जीअण दुगे य । पत्ता य संखर्डि जे, जतणमजतणाऍ ते द्विहा ॥ ५८३४ ॥

त सङ्क्षडीभोजितः सापची द्विविधाः—अध्यतिपत्ता बाह्ययश्च । तत्र वे बाह्यवाह्ये द्विविधाः—सङ्क्ष्मद्वादे विधाः—अध्यतिपत्ता अपि द्विधाः—तत्रेव गन्द्वकामाः अन्यत्र वा गन्द्वकामाः । येऽन्यत्र गन्द्वकामाः अन्यत्र वा गन्द्वकामाः । येऽन्यत्र गन्द्वकामाः त्वे द्विधाः—प्राप्तर्भका अयासन्भिकाश्च । प्राप्तर्भका नाम-मे सङ्क्षडीमानस्य पार्थते गन्द्वकामाः सङ्क्षडीमित्यायं अर्थयोजनादागच्छित । अपास- 20 मृमिका नाम-ये योजनाद् योजनिद्वकाद्व उपस्थानस्य यावद् द्वादययोजनेन्यः सङ्क्षडी-निम्तिचागाताः । ये तत्रेव गन्द्वकामाः सङ्क्षडीमान्य पासात्वे 'द्विविधाः' द्विपकाराः—यतना-मान्ना अयानामान्ना । ये पत्नेव गन्द्वकामाः सङ्क्षडीमान्य प्राप्तात्वे (दिविधाः) दिपकाराः—यतना-मान्ना अयानामान्ना । ये पत्नेव पत्नेवर्वनः स्त्रार्थीमान्यत्वे । ये सङ्क्षडीमान्यत्वानामान्ना । ये पत्नेवर्वनः स्त्रार्थीमान्यत्वे । ये सङ्क्षडी ध्वस्य स्त्रार्थी द्वापयन्त उत्स्वत्वीन्त्र आगतान्नेव अयतनामान्नाः ॥ ५८२४॥ ।

बत्थव्य जतणपत्ता, एगगमा दो वि होति खेयव्या।

अजयण नत्यज्वा वि य, संखिडिपेही उ एकामा ॥ ५८३५ ॥
तत्र ये बास्तच्याः सङ्कृष्यपद्योकिनो ये च तत्रैव गन्तुकामा यतनाशाहाः एते द्वेयेऽपि
प्रायश्चित्तवारणिकायामेकामा भवन्ति ज्ञातच्याः । ये त्व तत्रैव गन्तुकामा अयतनाप्राप्ताः ये च
बास्तच्याः सङ्कृष्ठीमळोकिनः एते द्वयेऽपि चारणिकायामेकगमा मवन्ति ॥ ५८३५ ॥
"पद्या य सङ्कृष्ठि जे" (गा० ५८३४) इति परं व्याख्याति—

तत्थेव गंतुकामा, बोलेउमणा व तं उवरिएणं । पदमेद अजयणाए, पिडण्ड उन्यत्त सुतमंगे ॥ ५८३६ ॥ यत्र प्रामे सङ्काडिडानैव ये गन्तुकामाः ये वा तत्व प्रामत्योगीर बोळियितुमनसत्ते बिद इ॰ १९४ समावगतेः पदमेदं कुर्वन्ति, एकद्यादीनि वा दिनानि मतीक्षन्ते, अवेखायाद्धद्रतेन्ते वा, सूत्रार्वपीरुपीमक्केन वा प्राप्ता भवन्ति तदाऽयतनाशाक्षाः । इतरया यतनापाषाः ॥ ५८३६ ॥ भारमुमिकान अधाप्तभूमिकांक्ष व्याख्याति—

## संखडिमभिधारेता, दुगाउया पत्तभूमिगा होति ।

जीयणमाई अप्यत्तभूमिया बारस उ जात ॥ ५८३७ ॥

सङ्घाडिमामपार्धतो ये गन्तुकामास्ते यदि सङ्घाडीमभिषीर्थ गन्यूतद्वयादागच्छन्ति तदा प्राप्त-मृमिका भवन्ति । ये पुनर्योजनाद् योजनद्वयाद् यावद् द्वादशयोजनेभ्य आगच्छन्ति ते सैर्वेऽप्राप्तमृमिकाः॥ ५८२७॥ <sup>3</sup>

#### खेत्तंतों खेत्तवहिया, अप्यत्ता बाहि जीयण दुगे य ।

10 चत्तारि अट्ट बारसंडजम्म सुत्र विभिचणाऽऽद्यिणा ॥ ५८३८ ॥

## बत्थव्व जयणपत्ता, सुद्धा पणगं च भिष्णमासो य ।

तव-कालेहिँ विसिद्धा, अजतणमादी वि उ विसिद्धा ॥ ५८३९ ॥

सङ्क्रव्यप्रकोकिनी वास्तस्या यतन्या प्राप्ताध्यागन्तुकाः सङ्कृष्ट्यां यावद् द्रवं सुक्वा प्रादो20 पिकी पोरुषी न कुर्वन्ति 'मा न जरिप्यति' इति क्रत्या तत आचार्यानापुष्ट्य्य स्वपन्तः शुद्धाः ।
त एव यदि वैरात्रिकं साध्यायं न कुर्वन्ति तदा प्रचरात्रिन्दिवानि तपोळपृति काळगुरूलि ।
अथोद्गार आगतस्तं च यदि विविद्यन्ति ततो भित्रमासस्तपोगुरुः काळ्छषुः । अथ तस्रद्धारमाणिवन्ति ततो मासरुषु तपसा काळेन च गुरुकम् । येऽयतनामासा ये च वास्तस्याः सङ्कृष्टिप्रकोकिनः एते ह्रयेऽपि सङ्गुष्ट्यां सुक्तवा प्रादोपिकं साध्यायं न कुर्वन्ति मासरुषु ह्याभ्यामपि

25 रुषुकम् । वैरात्रिकं साध्यायं न कुर्वन्ति मासरुषु काळगुरुकम् । उद्वारमागतं परिस्वजन्ति मासरुषु
तपोगुरुकम् । उद्वारं प्रस्वविग्वन्ति मासरुषु तपसा काळेन च गुरुकम् ॥५८३९॥ अत एवाह—

# तिसु लहुओ गुरु एगो, तीसु य गुरुओ उ चउलहू अंते।

१ 'धार्य द्विराज्यूतादाग' मा॰ कां॰ ॥ २ सर्वेऽपि अमा' मा॰ ॥ ३ इत्मेव सविशोषमाह इखनतर्ण कां॰ ॥ ४ ॳ ो॰ एतिबहान्तर्गतः गाःः कां॰ एव वति ॥ ५ 'मू। एवं तपः-कालाभ्यां विशिष्टानि पञ्चकारीनि मायिक्षचानि यथाकमं मन्तव्यानि। "अजयणमाई वि उ' क्ति येऽपतः कां॰ ॥ ६ 'म् । अत एवाह्—"विनिद्ध" ति 'पते' मायलपु-मासगुरुलक्षणे प्राथिक्षेतं तपा-कालाभ्यां विशिष्टे कत्त्रंत्ये ॥ ५८३९ ॥ अनन्तरोक्तमेव प्राथिक्षत्तं समर्थ-यक्षमितयं क्ष मित्रिपरवाहाः—तिस्त कां॰ ॥ थ

तिसु चउलहुगा चउगुरु, तिसु चउगुरु छक्कहू अंते ॥ ५८४० ॥ तिसु छक्कहुगा छग्गुरु, तिसु छग्गुरुगा य अंतिमे छेदो । छेदादी पारंची, बारसगादीस त चउकं ॥ ५८४१ ॥

'त्रिषु स्थानेषु' प्रादोषिकसाध्याय-वैरात्रिकाकरणोद्वारिविवेचनरूपेषु लघुको मासः, 'एक-सिन्' चतुर्षे प्रत्यविगान्ते स्थाने मासगुरु । येऽन्यत्र गन्तुकामाः प्राप्तपूमिकाः सङ्काडि- विदेशीजनादागतास्त्रेषं प्रादोषिकसाध्यायाकरणादिषु त्रिषु स्थानेषु प्राप्तपुर, अन्त्यस्थाने चतुर्वषु । येऽप्राप्तपूमिकाः सङ्काडिनिमित्तं योजनादागतास्त्रेषां प्रादोषिकादिषु त्रिषु पदेषु चतुर्वषु अन्त्यपदे चतुर्वषु व तुर्वषु । येऽप्राप्तपूमिकाः सङ्काडिनिमित्तं योजनादागतास्त्रेषां प्रादोषिकादिषु त्रिषु व तुर्वषु । येऽप्राप्तपूमिका सङ्काडिनिमित्तं योजनाद्वयादायातास्त्रेषामादिषदेषु त्रिषु चतुर्वुक, अन्त्यपदे वहुकु ॥ ५८४० ॥

ये योजनचतुष्टयादागतासेषां त्रिष्वायपदेषु पद्रुषु, अन्त्यपदे पहुरु । ये योजनाष्टकादा-10 गतासेषां त्रिषु बहुरु, अन्त्यपदे च्छेदः । ये द्वादशयोजनादागतासे प्रादोषिकं स्वाध्यायं न कुर्वन्ति च्छेदः, आदिशब्दाद् वैरात्रिकमकुर्वतां मूळम्, उद्गारं विविद्यतामनवस्याप्यम्, प्रत्यापिवतां पाराधिकम् । ''बारसगादीस् य चउकं'' ति प्रतीपकमेण यानि द्वादशयोजन-प्रमृतीनि स्थानानि तेषु सर्वेज्यपे प्रत्येक प्रत्येकं प्रादोषिकादिचतुर्कं मन्तव्यम् । चतुर्विप प्रत्येकं प्रत्येकं प्रतिकादिचतुर्कं मन्तव्यम् । चतुर्विप पदेषु त्रपोर्हीणि प्रायक्षित्तानि प्राम्वत् तरा-कालविशेषितानि कर्तव्यानि ॥ ५८४१ ॥ 18

अस्यैवार्थस्य सुस्नावबोधार्थमिमां प्रस्ताररचनामाइ---

## खेत्तंतों खेत्तवहिया, अप्पत्ता बाहि जीयण दुगे य।

चतारि अट्ट बारसऽजग्ग सुव विशिचणाऽऽदियणा॥ ५८४२॥ हृशेक्ष्वां अभ्याष्ट्री प्रशासिक विश्व विश्व विश्व सार्वाचाति, तिर्वेक् पुत्रश्रवारि, एवं द्वात्रिंशद् ग्रहकाणि कर्तव्याति । प्रथमगुराष्ट्रकरक्वामाथीऽध एतेऽष्टी पुरुषविभागा लेखितव्याः—थे तत्रेव गन्तु-२२ कामा यतनाप्राप्ता ये च वास्त्रव्या यतनाकारिण एप दित्रीयः २ । ये तु तत्रेव गन्तुकामा एवायतनया प्राप्ता वास्त्रव्याख्यायताकारिण एप द्वितीयः २ । ये तु लम्बन गन्तु-कामासो क्षेत्रान्तः क्षेत्रबहिर्वा आगता भवेषुः । ये क्षेत्रान्तदे प्राप्तमृत्रिका उच्यन्ते एप तृतीयः ३ । ये तु क्षेत्रबहिर्वा आगता भवेषुः । ये क्षेत्रनत्वते प्राप्तमृतिका उच्यन्ते, ते च योजनादागताः स एप चतुर्थः पुरुषविभागः ४ । येजनद्वयादागताः पद्याः ५ । वच्योजनादागताः स एव चतुर्थः पुरुषविभागः ४ । योजनद्वयादागताः पद्याः ८ । उपरितनितिवर्गायात चुण्कपक्षा व्यविक्रवार्गा व्यवस्त्रविक्रवार्गा विक्रवार्गा विक्रवार्गा चित्रवर्गा विक्रवार्गा विक्रवर्गा व्यवस्त्रवर्गा विक्रवर्गा विक्रवर्य

आदिमचतुष्कपक्क्यां द्वितीयगृहादसूनि प्रायक्षिचानि क्रमेण खापथितव्यांनि— पणगं च मिण्णमासो, मासो लडुओ उ पदमतो सुद्धो । मासो तब-कालगुरू, दोहि वि लडुओ अ गुरुओ य ॥ ५८४२ ॥

१ येऽयतनामासास्तत्रैव गन्तुकामा ये च सङ्ख्रुडिमेक्षिणो वास्तव्यास्तेषां 'त्रिषु स्थानेषु' को॰ ॥ २ °व्यानि । कानि पुनस्तानि १ इस्यत साइ—पणगं को॰ ॥

लहुओ गुरुओ मासो, चउरो लहुगा य होति गुरुगा य । छम्मासा लहु-गुरुगा, छेदो मूर्ल तह दुगं च ॥ ५८४४ ॥

द्वितीयगृहे पश्चकम्, नृतीयगृहे भिन्नमासः, चतुर्थे मासल्यु । 'प्रथमगृहे शुद्धः, चतुर्थे तु पदे मासः तपसा कालेन च गुरुकः । यत्र चादिपदेऽपि प्रावश्चित्तं भवति तत्र द्वाभ्यामपि ८ ल्युकस्, मध्यपदयोर्द्वयोरिप यथासञ्चयं तपमा कालेन च गुरुकम् ॥ ५८१२ ॥

द्वितीयादिचर्तुर्षु गृहपङ्कयः सर्वो अमुना प्रायश्चित्तेन पूर्ययतव्याः--

द्वितीयस्यां पक्को त्रिषु गृहेषु रुषुमासः, चतुर्भे गुरुमासः। तृतीयस्यां त्रिषु गुरुमासः, चतुर्भे चतुर्रुषु । चतुर्थां त्रिषु चतुर्रुषु, चतुर्थे चतुर्गुरु । पश्चम्यां त्रिषु चतुर्गुरु, चतुर्थे पह्रुषु । षष्ट्यां त्रिषु पह्रुषु, चतुर्थे पहुरु । सप्तम्यां त्रिषु पहुरु, चतुर्थे छेदः । अष्टम्यां पक्को चतुर्षु १० गृहेषु च्छेद-स्रुल-इनवस्याप्य-पाराधिकानि ॥ ५८४४ ॥ तथा चाहः—

> जह भणिय चउत्थस्स य, तह इयरस्स पढमे मुणेयन्तं। पत्ताण होइ भतणा, जे जतणा जं त बत्यन्ते॥ ५८४५ ॥

यथा पूर्वस्यां पक्की चतुर्थे स्थाने भणितम् , गाथायां समन्यर्थे षष्ठी, तथा 'इतस्साः' अमे-तन्याः पक्केः प्रथमेषु त्रिषु स्थानेषु प्राथिश्वचं ज्ञातन्यम्ँ, अन्त्यपदे पुनस्ततोऽमेतनम् । यथा— 15 यतनापाता वेऽध्यपरता ये च बास्तव्या यतनाकारिणः तेषां चतुर्थे स्थाने मासरुषुरूपं 'बतुं' वत पुनः प्राथिश्वचसुकं तदेव तेषाभेवायतनायाथेषु त्रिष्ठ स्थानेषु भवति, अन्त्यपदे तु मासपुरूकमिति । एवं शासभूमिकादित्वपि 'भजना' पायश्चित्तचना विशेषा । नवरम्— अन्त्यपक्कां छेटः मुखः ज्ञन्वसाय्य-पाराधिकाति भवन्ति ॥ ५८९७ ॥

> एएण सुत्त न गतं, सुत्तनिवाते इमे तु आदेसा । लोही अ ओम पुण्णा, केइ पमाणं इमं बेंति ॥ ५८४६ ॥

एतन् सर्वमपि मतङ्कतो विनेशानुमहार्थमुक्तम्, नेतेन सूत्रं गतम्। यत्र च सूत्रस्य निपातौ मयति तत्रामी आदेशा मवन्ति—"लोही अ ओम पुष्ण" ति गुरुभणिति—गुणकारिसाद् अवमं भोक्तस्य मथोद्वारो नागच्छति । तथा चात्र लोही—कवाळी तद्दृष्टान्तः—

यथा कवश्यां यद्यवमं स्वधामाणादूनमाद्रखते ततोउन्तरन्तः उद्वर्तते, उपरिमुखं न निर्म-25 च्छति; अय 'पूर्णा' आकण्ठं भृता तत उद्वर्तिता सर्वमणि परित्यज्ञति, अग्निमणि विस्वापमति । प्रमेव यद्यवममाद्रियते ततो बातः शरीरान्तः सुखेनैव मविचरति, मविचरिते च तक्षिश्रुद्वारी नायाति; अथातिमात्रं ससुदिश्यते ततोऽन्तवीयुपूरपेरित उद्गार आगर्च्छति ॥

तसादवममेव भोक्तव्यम् । केचित् पुनराचार्यदेश्याः 'इदं' वश्यमाणं प्रमाणं हुवते तन्ना-नन्तरोक्तं कवहीडद्यान्तं भावयति ॥ ५८४६ ॥

अतिश्वते उग्गालो, तेणोमं श्वंत जण्ण उग्गिलसि ।

रै 'तुष्कपृह' भा॰ को॰ ॥ २ 'म् । याधायाम् "इयरस्स" ति वुंस्यनिर्देशः प्राकृत-त्वात्। अन्य' को॰ ॥ ३ 'तित। रह पद्भीनां स्थापना स्वयमेवानन्तरप्रदर्शितनीत्वा कर्तव्या ॥ ५८४५ ॥ यूरण को॰ ॥ ४ 'च्छति, जटराहिविष्यापनं च समुपक्षायते । तस्म" को॰ ॥

छड्डिजिति अतिपुण्णा, तत्ता लोही ण पुण जोमा ॥ ५८४७ ॥
गतार्था ॥ ५८४७ ॥ नैगमपक्षाश्रिताः पुनराचार्यदेशीया हत्यं बदन्ति—
तचऽत्थमिते गंधे, गलग पडिगते तहा अणाभीए ।
एते ण हाँति दोण्णि नि, ब्रहणिग्गत णातुमीगिलणा ॥ ५८४८ ॥
एको नैगमपक्षाश्रितो भणति—तते कविले बिन्दुः पतितो यथा तत्स्रणादेव नद्यति तथा ।
यह सुक्तमात्रं जीथिति हेदशमवममाहरणीयम् ॥ एवमपरः—अलामिते रश्ने यद् 'जीथिते ।
तृतीयः— गन्वेन रहितः सहितो वा यथोद्वार एति । चतुर्थः—गलकं यावद्वार जागम्य
'अनाभोगेन' अजानत एव 'प्रतिगच्छिते' म्यः प्रविश्वि हेदशं समुहिश्यताम् ॥ पुतराह—
ते द्वयेऽपि प्रकारा न भवन्ति । द्वये नाम-ये प्रथम-द्वितीया दिवाऽच्युद्वारं प्रतिषेधयन्ति ये
च त्रीय-चवार्या रावाबद्वारमन्तस्यते एते द्वयेऽपि न षटन्ते, किन्दी वेनाऽच्वस्वस्वोगानां 10

॥ ५८४८ ॥ र्षनां सङ्ग्रहगार्थां विवरीषुराह-

भणित जित ऊणमेर्च, तत्तकबक्के य बिंदुणासणता । वितिओ न संबरेर्च, तं भ्रंजसु खरें जं जिजे ॥ ५८४९ ॥ निग्गंघो उग्गालो, तितए गंघो उ एति ण उ सित्यं । अविजाणंत चडस्थे, पविसति गलमं तु जो पष्प ॥ ५८५० ॥

न हानिस्ताबदाहारियतच्यम । मखनिर्गतं बोदारं ज्ञात्वा यः प्रत्यवगिरुति तत्र सन्निनेपातः

एको नेगमनयाश्रितो भणति — यक्नां भोक्तव्यं ततस्त्रोतं कवले प्रक्षितस्योदकविन्दोस्त्रकाल-भेव यथा नशनं भवति तथा यद् भुक्तमात्रमेव जीर्यति ईंदशं भोक्तव्यम् । द्वितीयः श्राह् — 'पवम्' ईंद्रशे भुक्ते न संस्तरति तस्मात् तदीदशं भुक्ष्व यत् सूर्येऽस्तमवति जीर्येते ॥ ५८९९॥ गन्ये द्वालादेशे। एको भणति — सुर्योत्तपने जीर्ये आहारे रात्रावसस्तरणं भवति तस्मादी- २०

राग्य द्वाचार्या र क्षेत्र नेपाति स्वाद्वित उद्गार एति । द्वितीयः प्राह— यदि
गम्य उद्गारस्य 'एति' आगच्छति तत आगच्छत् यथा सिक्यं नागच्छति तथा भुद्धाम् ।
एतौ द्वावय्येक एव तृतीय आदेशः । चतुर्थे मणति—सस्तिक उद्गारो गच्छं प्राप्याविवानत
एव यावव् स्थः प्रविश्वित तावद् भुद्धाम् । एते चरवारोऽप्यतादेशाः ॥ ५८५०।। तथा चाह—
पदम-विश्विर दिया वी. उग्गालो णरिय किं प्रण निसारः ।

प्रधम (वाराय (प्रधान ) उत्तरिकार वार्य पर दुन्न । निर्दार । विदेश ते या, ते पुण दो वी अणाएसा ॥ ५८५१ ॥ मधम-द्वितीययोगदेसयोदिकाऽप्युद्धारो नालि कि पुनर्निशायाय है हत्यतस्तावनादेशो । मस्तुतीयो गम्बादेशो यश्च चतुर्थ उद्घारस्य गच्छे मतिगमनादेशः एती द्वाविष सूत्राश्चीमिनांय-विदेशेस्तावनादेशो ॥ ५८५१ ॥ कः प्रनरादेशः है हत्याहरूपः विदेशिकायस्त्री ॥ ५८५१ ॥ कः प्रनरादेशः है हत्याहरूपः

१ °या आहारे राथं प्रमाणं वद्ति । कथम् १ रखत आह—तत्तराथ कं । । २ जीयंते तावन्मानं भुज्यताम् । वृतीयो वक्ति – गग्येन कं । । ३ पति तथा भोक्तव्यम् । बतुयां मृते—सर्वे कं । । ४ °या आवार्यो दिया कं ।। ५ °म्यु यावता भुक्तेनाऽऽव कं ।। ६ अयेनां निर्मुक्तिगायां कं ।।

25

पहुपन्नऽणागते वा, संजमजोगाण जेण परिहाणी । ण वि जायति तं जाणसः साहस्स पमाणमाहारे ॥ ५८५२ ॥

'श्रखुत्वन्ने' वर्तमानेऽनागते वा कारु 'धेन' यावता सुक्तेन 'संयमयोगाना' प्रख्येश्वणादीनां परिहाणिने जायते तदाहास्य प्रमाणं साधोर्जानीहि ॥ ५८५२ ॥

> एवं पमाणजुत्तं, अतिरेगं वा वि श्रृंजमाणस्स । वायादीखोभेण व. एजाहि कहंचि उग्गालो ॥ ५८५३ ॥

एवंत्रियं ममाणुक्तं कारणे वाऽतिरिक्तमि आहारं गुझानस्य बातादिसोमेण वा कथिस-दद्वार आगच्छेत् ॥ ५८५३ ॥ ततः किम् ! हैस्यत आह—

> जो पुर्णं सभोयणं तं, दवं व णाऊण णिग्गतं गिरुति । तहियं सत्तनिवाओ. तत्थाऽऽएसा इमे होंति ॥ ५८५४ ॥

तिहसं सुचिनिवाओ, तत्थाऽऽएसा इमे होति ॥ ५८५४ ॥ पुनःशब्दो विशेषणे, स चैतद् विशिविध-चः 'तत्त्र' उद्वारमागतं परित्वज्ञति तत्त्र न मायश्चित्तम् । यस्तु 'तम्' उद्वारं सभोजनमच्छं वा द्रवमागतं ज्ञात्या मुलाद् निर्गतं गिरुति तत्र पश्चितिपातः' प्रस्तत्रज्ञत्वादानाः । तत्र चेमे आदेशैः भवन्ति ॥ ५८५४ ॥

अच्छे ससित्य चित्रय, ग्रुहणिग्गतकवल भरियहत्थे य । अंजलि पंडिते दिदे. मासादारोवणा चरिमं ॥ ५८५५ ॥

अच्छ द्रवमागतं यदि परेणाइष्टमिषिवति ततो मासल्घु, अथ दृष्टं ततो मासगृह । सितकथमागतं परेणाइष्टमाददानस्य मासगुरु, दृष्टं चतुर्ल्णु । अथ तं सिन्वधमदृष्टं चर्वेयति
ततश्चतुर्ल्णु, इष्टे चतुर्गुरु । सुलाद् निर्गतं कवरूमेकहस्तेन प्रतीप्यादष्टमापिवति चतुर्गुरु, दृष्टे
पदल्णु । अवैकं हत्तपुरं भरितमदृष्टमापिवति ततः पदल्णु, दृष्टे पहुरु । अथाल्लिल्लं मिर20तमदृष्टमापिवति पहुरु, दृष्टे च्छेदः । अल्लालि भूद्रत यद् अन्यद् यूमी पतितं तदिप अष्ट्रम्
मापिवति च्छेदः, दृष्टे मृत्य । एवं मिश्रोरुक्तम् । उपाध्यायस्य मासगुरुक्तदारुक्यमनवस्थाप्ये
तिद्यति । अवार्यस्य चतुर्ल्ल्युक्तदारुक्यं स्तमे तिद्यति । एवं मासादिक्तं चरमं यावदारोपणा
मनतस्या ॥ ५८५५ ॥ प्रकागनदिण प्राविधिवमाह—

दिय रातो लहुःगुरुगा, बितियं स्यणसहितेण दिद्वंतो । अद्धाणसीसए वा, सत्थो व पहावितो तुरियं॥ ५८५६ ॥

अथवा सरिक्थमित्वयं वा दृष्टमदृष्टं वा दिवा प्रत्यवगिरुतश्चदुरुष्ट्य, रात्रौ चतुर्गुरु । द्वितीयपदमत्र भवति — कारणे वान्तमध्यापिवेद् न च प्रावश्चितमामुवात् । तत्र च रह्मस-हितवणिजा दृष्टान्तः कर्तव्यः । कथं पुनरिदं सम्भवति १ ह्लाह् — अध्ववीर्षके मनोज्ञं भक्तं मुक्तं तत्र वान्तम् अन्यश्च न रूम्यते, साथों वा त्वरितं प्रधावितः, ततस्वदेव सुगन्धि-30द्रन्येण वासियत्वा भुक्के ॥ ५८५६ ॥ अथ रह्मसहितवणिग्दृष्टान्तमाह् —

जल-थलपहेसु रयणाणुवज्जणं तेण अडविपश्चते ।

१ इत्याह भाग्॥ २ °ण तं अच्छं वा, दर्व सभाग्॥ ३ 'आदेशाः' प्रायक्कित्तप्रकाराः अवस्ति ॥ ५८५४ ॥ के पुनस्ते ? इत्याह—अच्छे कांग्॥

निक्खणण फुट्टपत्थर, मा मे रयणे हर पळावो ॥ ५८५७ ॥ बेचुण णिसि पळायण, अडवी मडदेहमावितं तिसितो । पिबिड रयणाण भागी, जातो सयणं समागम्म ॥ ५८५८ ॥

अक्षरगमनिका—कस्यापि बणिजो जल-स्थलपथयो रजानामुगार्जनं कृत्वा 'प्रत्यन्तविषयेऽ-ट्रव्यां बहुवः सेनाः सिन' इति क्रत्या रज्ञानां कवित् भदेशे निलननं स्कृटिवमस्त्रागणं च महणम् । 'मा महीयानि रज्ञानि हृत्त' इति मञ्जपेन च भावियाः निश्चि रात्री रज्ञानि गृहीवया पञ्जयनम् । अटब्यां तृपितो सुतदेहभावितं जलंगीत्वा स्वजनवर्गं समागम्य रज्ञानामा-मागी जातः ॥ ५८५० ॥ ५८५८ ॥ एव स्थानतः, अवसर्योपनयः——

विषयत्थाणी साहू, रतणत्थाणी वता तु पंचेव । उदयसरिसं च वंतं, तमादितुं रक्खते ताणि ॥ ५८५९ ॥

वणिबस्थानीयाः साधवः, रत्नस्थानीयानि पञ्च महामतानि, तुशब्दस्यानुक्तसमुच्यार्थस्यात् तस्करस्थानीया उपसर्गाः अटनीस्थानीया द्रव्यापदादय हत्यपि दृष्टवम्, मृतोदकसदशं वान्तम्, तत् कारणे आपिबन् 'तानि' महामतान्यास्मानं च रक्षति ॥ ५८५९ ॥

कथं पुनरापिबेद् ! इत्याह---

दियरातों अण्ण गिण्हति, असति तुरंते व सत्यें तं चेव । णिसि लिंगेणऽण्णं वा, तं चेव सुगंधदव्वं वा ॥ ५८६० ॥

अध्वर्षार्षिके मनोज्ञ भुक्तं परं वान्तं ततो दिवा रात्रो वाऽन्यद् गृढ्ढीति । अलम्यमाने वा 'निक्षि' रात्रावन्यिलेक्षेत्रान्यद् गृद्धाति । तस्याप्यभावे सार्थे वा त्वरमाणे 'तदेव' वान्तं गृहीस्वा 30 चार्जुर्जातकादिना सुगन्धिद्वरुषेण वासयित्वा सङ्के, न कश्चिद् दोषः ॥ ५८६० ॥

#### ॥ उद्वारप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °क्काति । तस्याप्यसति तदेवोपाद्ते । अथवा खिलक्षेत्रास्त्रभ्यमाने "लिंगेण" ति परिकेम किशि राक्षा को ॥

## आ दार विधि प्रकृत स्

सूत्रम्-

निम्मंथस्स य गाहावइकुछं पिंडवायपिडयाए अणु-प्यिट्टस्स अंतोपिडग्गहंसि पाणाणि वा बीयाणि वा रष वा परियावजेजा, तं च संचाएइ विगिंचि-त्तप् वा विसोहित्तप् वा तं पुव्वामेव छाइया विसो-हिया विसोहिया ततो संजतामेव मुंजेज वा पिवेज वा। तं च नो संचाएइ विगिंचित्तप् वा विसोहि-त्तप् वा तं नो अप्पणा मुंजेजा नो अन्नेसिं दावए, एगंते बहुफासुए पएसे पिडेछेहित्ता पमजित्ता परि-टूवियव्वे सिया ११॥

अस्य सम्बन्धमाह---

वंतादियणं रत्तिं, णिवारितं दिवसतो वि अत्थेणं । वंतमणेसियगहणं, सिया उ पडिवक्सओ सुत्तं ॥ ५८६१ ॥

गृत्री बान्तापानं पूर्वस्ते निवारितम् , दिवसतोऽपि अंधेन निवारितम् । अनेपणीयमहणमपि साधुंभिवीन्तमेव, अतस्वदिह प्रतिविध्यते । ''सिया उ पडिवनस्वत्रो सुर्च'' ति 'स्याद्' भजनया प्रतिपक्षतो वा एत्त् सूत्रं भवति अपतिपक्षतो वा । तत्र प्रतिपक्षतो यथा—पूर्वसूत्रे रात्रौ बान्तापानं निवारितम् , इतं द्व दिवाऽनेपणीयं वान्तं निवार्थते । अपतिपक्षतो यथा—पूर्वसूत्रे बान्तं न वर्तते मत्यापाद्यमिखुक्तम् , इहाय्यनेपणीयं वान्तं न वर्तते महीद्यासख्टच्यते ॥५८६१॥ २० अनेन सम्बन्धेनायातसाख्य व्याख्या—निर्मन्यस्य गृहपतिकुळं पिण्डपाववित्तवस्य अनुय-विष्टस्यानःप्रतिमहे माणा वां बाजिन वा राजे वा परि—समन्तादापतिद्वः । 'तक्य' माणादिक्षेयदि शक्तिति विवेक्तं वा विशेषायिद्वं वा तत् 'तत्' प्राणादिज्ञातिदेकं 'छात्या' हिस्ते गृहीति विवेक्तं वा विशोषित्रद्वं वा ततः 'तत्' प्राणादिज्ञातिदेकं 'छात्या' इत्तेति विवेक्तं वा विशोषित्रद्वं वा ततः 'तत्' प्राणादिज्ञातिदेकं 'छात्या' इत्तेति विवेक्तं वा विशोषित्रद्वं वा तत् 'स्वत प्यं भव्यस्य प्रस्तेति विवेक्तं वा विशोषित्रद्वं वा तत् नात्मना सुन्नीत न वाऽन्येषां द्वात् , किन्तु । १० स्वान्ते मह्माशुक्तं प्रदेशे प्रस्तेत्र प्रस्तेत्र प्रस्तेत्र स्थादिति सुनार्थः। ।

अथ भाष्यकृद् विषमपदानि विवृणोति---

पाणग्गहणेख तसा, गहिया वीषहि सन्त्र वणकाओ । स्तमहणा होति मही, तेऊ व ण सो चिरहाई ॥ ५८६२ ॥

१ 'अग्रॅन' निर्युक्तिविस्तरादिना तदेव निया<sup>०</sup> सं॰ ॥ २ 'दुमिः प्रमण्यामाददानैर्यान्तर' सं॰ ॥ ३ 'प्रत्युपेदय' चक्षुपा निरीक्ष्य 'प्रमुज्य' रजोहरणादिना प्रतिलेख्य परि॰ सं॰ ॥

15

25

इह प्राणमहणेन श्रेसाः गृहीताः । बीजमहणेन तु सर्वोऽपि वनस्पतिकायः सूचितः । रजोप्रहणेन च 'मही' पृथिवीकायो गृहीतः, तेजःकायो वा, परं स चिरसायी न भवतीति इत्वा विवेचनादिकं तत्र न घटते ॥ ५८६२ ॥

ते पुण आणिजंते, पडेज पुर्विव व संसिया दृब्वे । आगंतु तुब्भवा वा, आगंतुहिं तिमं सत्तं ॥ ५८६३ ॥

'ते पुनः' ऋसादय जानीयमाने वा भक्ते पतेषुः, पूर्वे वा तत्र 'द्रव्ये' भक्त-पाने 'संश्रिताः' स्थिताः । ते च द्विविषाः — आगन्तुकासादुद्भवा वा । तत्रागन्तुकत्रसादिविषयम् इदं प्रस्तुतसूत्रं गन्तत्व्यम् ॥ ५८६३ ॥

अथ के तद्व्याः ? के वा आगन्तुका भवेयः ? इत्याह—

रसता पणतो व सिया, होज अणागंतुमा ण पुण सेसा। एमेव य आगंतू, पणगविवजा भवे दुविहा॥ ५८६४ ॥

ये 'रसजाः' तक-दिध-तीमनादिरसोरपत्राः इत्यादयस्रसा यश्च पनकः स्याद् एते 'अनाग-न्तुकाः' तदुद्भवा भवन्ति, न पुनः 'शेषाः' पृषिवीकायादयः। एवमेष च ये पनकविवजीः 'द्विविषाः' त्रसाः स्वावराश्च जीवाः ते सर्वेऽप्यागन्तुकाः सम्प्रवैन्ति ॥ ५८६४ ॥

सुत्तम्मि कष्ट्वियम्मि, जयणा गहणं तु पडितों दहुन्त्रो । लहुओ अपेनखणम्मि, आणादि विराहणा दुविहा ॥ ५८६५ ॥

एवं सुत्रमुक्षार्थ परच्छेदं कृत्या य एवं सुत्राधों मिणतः एतत् सुत्रमाकिपैतिमिति भण्यते । एवं सुत्रे आकिपैते सिति निर्मुक्तिवित्तर उच्यते—तेन साधुना यतनया सक्त-पानस्य महणं कर्तव्यम् । का पुनर्यतना ! इत्याह—पूर्वमेव गृहस्यहत्यावः पिण्डो नितिक्षणीयः, यदि शुद्ध- स्तितो गृह्यते । एवं यतनया गृहीतोऽपि प्रतिम्रहे पतितो दृष्टव्यः । यदि न भेक्षते ततो उक्तके 20 मासः, आज्ञादयश्च दोषाः । विराधना च द्विचिधा—तत्र संयमे त्रसादय उण्णे वा द्ववे वा पतिता विराध्यन्ते, आस्मितियाचा तु मिक्किकिदिसमिश्चे भुक्ते वक्नुलीव्याधिर्मरणं वा मवेत् । तस्मात् प्रथममेव प्रतिमहप्तितः पिण्डो द्रष्टव्यः ॥ ५८६५॥ ॥

अहिगारों असंसत्ते, संकप्पादी तु देस संसत्ते । संसजिमं तु तहियं, ओदण-सत्तु-दधि-दवाई ॥ ५८६६ ॥

अत एव यसिन् देशे त्रसपाणादिभिः संसक्तं भक्त-पानं न भवति तत्रासंसक्तेऽधिकारः, तसिन्नेव देशे विदरणीयमिति भावः । यस्त संसक्ते देशे सङ्कल्पादीनि पदानि करोति तस्य

१ 'त्रसाः' द्वीन्द्रियादयो गृही कं ॥ २ °म्, तेपामेव प्रकृतस्त्रोकस्य विवेचना-वेर्षेदमानकत्वात् ॥ ५८६३ ॥ कं ॥ ३ °वन्ति, न पुनः पनकः, तस्य तदुङ्गस्यैय सम्मवात् ॥ ५८६४ ॥ तदेवं कृता विषमपद्रव्यास्या भाष्यकृता, सम्मिति निर्युक्तिविस्तर-स्वात्यस्यः, तथा चान् सुक्तिम कं ॥ ४ °व विषमपद्रव्यास्याक्ष्यः स्वा विकं ॥ ५ 'कृष्टव्यः' परीक्षणीयः, किमयं त्रसादिसंसकः १ उत न १ हित । यदोयं परीक्षणम्-अवकोकनं न करोति ततो उन्होते सं ॥

प्रायश्चित्तम्, तचोत्तरत्र वश्यते । तत्र च 'संसजिनं' संसक्तियोग्यमोदन-सक्तु-दक्षि-द्रवादिकं द्रव्यं मन्तव्यम् ॥ ५८६६ ॥ अथ संसक्तदेशे सङ्गल्यादेषु प्रायश्चित्तमाह—

संकृष्ये पयमिदण, पंथे पत्ते तहेव आवण्णे । चत्तारि छच लहु गुरु, सङ्गाणं चेव आवण्णे ॥ ५८६७ ॥

यसिन् विषये भकादिकं प्राणिभिः संतर्यते तत्र 'सङ्कर्ष' गमनाभिग्रायं करोति चत्रुरुं प्रवित्ते करोति चतुर्जुर, संतक्तविषयस्य पन्धानं गच्छतः यद्रुष्तु, तं देशं प्राप्तस्य षहुरु । तथेव द्वीन्द्रियादेः सङ्कट्टनादिकमापत्रस्य सस्यानपायधितम् । तथथा—द्वीन्द्रियं सङ्कट्टपति चतुर्जुरु, अपदावयति चतुरुषु, अपित्याणां सङ्कट्टनादिषु चतुरुषु नित्त्राणां सङ्कट्टनादिषु चतुरुष्ठिकादारुष्यं चतुर्ष्ति ते त्रिति, चतुरिन्द्रियाणां सङ्कट्टनादिषु चतुरुष्ठुकातिकं छेदान्तमिति ॥ ५८६७ ॥' प्रतिवादिकर्षितं त तर्विष्ट पविद्याः संस्त्रियाष्ट्रं पविद्याः संस्त्रियाई पविद्यायंति । ।

असिवादिएहिं तु तहिं पविद्वा, संसिक्षिमाइं परिवजयंति । भड़दसंसिक्षिमद्व्यलंभे, गेण्डतवाएण इमेण जत्ता ॥ ५८६८ ॥

ब्रुश्करताजनय ज्यालन् न नव्हिपरिण देश वृद्धारा । स्टिन्स क्ष्याल्या परिवर्त । अथा सिक्स क्ष्याल्या परिवर्तन । अथा प्राप्यक्षाति भम्भूततालि संसजिमद्रव्याणि परिवर्तन । अथा प्राप्यक्षाति भम्भूततालि संसजिमद्रव्याणि कम्यन्ते ततोऽमुनो-पायेन 'युक्ताः' मयकारा ग्रह्मित ॥ '८६८ ॥ "

> गमणाऽऽगमणे गहणे, पत्ते पिंडए य होति पिंडलेहा । अगहिय दिद्व विवज्जण, अह गिण्हह जं तमावजे ॥ ५८६९ ॥

भिंक्षार्थं दायको मध्ये गमनं कुनैन् कीटिका मण्डूकीमभृतिनन्तुसंसक्तायां भूमी मा विराधनां कुर्यादिति सम्यग् निरीक्षणीयः । एवमैगमने भिक्षाया हस्तेन महणे च विलोकनीयः । प्राप्ते च दायके तदीयहस्तायः पिण्डः प्रस्पुरेक्षणीयः । पात्रे च पतितैः प्रस्पुरेक्षितस्यः । ततो यय-२० गृहीते कसादिकं प्राणनातं पत्रयति ततस्त्रस्तिन् दृष्टे विवर्वयति, न गृह्वातीत्यर्थः । अथ गृह्वाति ततो येन द्वीन्द्रयादिना संसक्तं गृह्वाति तिल्रिप्यतं प्रायक्षितमाययते ॥ ५८६९ ॥ अथ पुनरेवं न प्रस्युपेक्षते तत इसे दोषाः —

पाणाइ संजमर्मिम, आता मयमच्छि कंटम विसं वा । मृहंग-मच्छि-विच्छुन-गोवालियमाइया उभए ॥ ५८७० ॥

45 संयमे त्रसप्राण-पनकादयो विराध्यन्ते। आत्मविराधनायां मृतमक्षिकासम्मश्रे मुक्ते वर्ष्युठी-व्याधिः, ततश्र कमेण मरणं भवेत् , कण्टको वा विषं वा समागच्छेत्। उमयविराधनायां 'धुरक्काः' पिपीलिका मिक्षका वृक्षिक-गोपालिकात्यो वा भवन्ति । गोपालिका-ब्रह्मिकेकास्यो जीव-विशेषः। पते हि जीवा भक्तेन सह मुक्ताः संयमोपघातमात्मनश्च मेषाधुपघातं कुर्वन्ति ॥५८७०॥

१ अधात्रैय द्वितीयपदमाह इत्त्वतत्तं कां । १ 'संसजिमानि' संसक्तियोग्यानि सक्यु' कां । ॥ १ 'न्हें नेतराणि ततो कां ॥ ४ कराम् १ इति अत आह इत्त्वतर्त्व कां । ॥ ५ अकार्ष ३० ॥ ६ 'म्र' 'आगामने' आगामने कुथैन 'प्रहणे य' भिक्षां हस्ते सृक्काने दायको विको' कां ॥ ७ 'तितत्व पिण्डस्य अत्युपेक्षणा कत्तेव्या अवित । ततो य' को ॥ ( संस्यमे' संयमविराधनायां विन्समानायामप्रत्युपेक्षिते अक्त-पाने गृहीते 'प्राणाः' अस्त' कां ॥

20

### पनयणघाति व सिया, तं वियडं पिसियमहजातं वा । आदाण किलेसऽयसे, दिहंतो सेहिकब्बहे ॥ ५८७१ ॥

भवजनोपपाति वा स्वात् तद् विकटम्, पिशितं वा तत् 'स्याद्' मवेत्, 'अर्थजातं वा' खुवर्ण-सङ्गल्का-मुद्रिकादिकं कश्चिदनुकस्पया मध्यनिकत्या वा दचात्, ततः पतितं पिण्डं प्रखुपेश्चत् । तत्त्वाप्त्यपेश्वर्म गृहीतं मन्दपर्मणः कस्याप्त्यस्मवितुकाससः 'आदानम्' आजिविकाकारणं मवति, व तद् आदायोस्प्रमव्यतिव्यत्विः । अर्थजाते च गृहीते साधूनां रक्षणादिको महान् परिक्केवोऽयशो वा मवेत् । तथा चात्र ''सिट्टिक्वव्वे'' ित् राज्यपदीपविष्टकर्यस्कोपलिशतस्य काष्ट्रश्चेष्टिनो हृहान्तः, स च आवश्यकटीकातो मन्तव्यः (पत्र)॥ ५८०१॥

#### तम्हा खलु दहुन्दो, सुक्खग्गहणं अभिण्हणे लहुगा । आणादिणो य दोसा, विराहणा जा भणिय प्रन्ति ॥ ५८७२ ॥

जाजातिया च दाता, । पराहणा जा नागच पुष्य ॥ २००५ ॥ व यत एते दोषात्तसात् 'स्तुल' नियमात् पात्रकपतितः गिण्डो द्रष्टस्यः । संसक्तं च देहो शुष्कस्य कृरस्य प्रयमात्रके प्रहणं कार्यम् । अब प्रयम् न गृहाति ततश्रतुरुषु आज्ञादयश्च दोषाः, विराषना च द्विषा संयमा-ऽऽत्मविषया या 'पूर्वम्' अनन्तरमेव भणिता ॥ ५८७२ ॥ इदमेव मावयति—

> संसिक्षमिम्म देसे, मत्तग सुक्ल पिडलेहणा उनिर्र । एवं तान अणुण्हे, उण्हे कुसणं च उनिर्र तु ॥ ५८७३ ॥

संसजिमे देरो यः शुष्कः पौद्रालिकोऽनुष्णो रूम्यते स मात्रके गृहीत्वा मरपुपेक्ष्य वषसं-सक्तसदा प्रतिप्रहोपरि प्रक्षिप्यते । एवं तावदनुष्णे विधिरुक्तः । यः पुनरुष्णः कूरः कुसणं वा तद् नियमादसंसक्तमिति कृत्वा प्रतिप्रदर्शयोपरि गृष्ठते ॥ ५८७३ ॥

गुरुमादीण व जोग्गं, एगम्मितरम्मि पेहिउं उनर्रि । दोसु वि संसत्तेसुं, दुछह पुन्वेतरं पच्छा ॥ ५८७४ ॥

गुरु-ग्लानादीनां वा योग्यमेकसित् मात्रके गृखते, 'इतरसित्' द्वितीये मात्रके संसक्तं प्रख्येष्वय पतिग्रहोपरि प्रक्षित्यते। एवं तावद् यत्रैकं मक्तं पानकं वा संसक्तं तत्र विधिरुक्तः। यत्र तु द्वे अपि-मक्त-पानके संसक्ते भवतः तेत्र यद् भक्तं पानकं वा दुर्लमं तत् पूर्वे गृहन्ति 'इतरत्' सुरुमं पश्चाद् गृहन्ति ॥ ५८७९॥

एसा विही तु दिट्टे, आउट्टियनेण्हणे तु जं जत्य । अणभोगगह विभिचण, खिप्पमविधिचति य जं जत्य ॥ ५८७५ ॥

एष विधिः हैंहे गृह्यमाणे भणितः । अथाकुद्दिक्षैं। संसक्तं गृह्वाति ततो यद् यत्र द्वीन्द्रिय-परितापनादिकं करोति तत् तत्र भामोति । अथानाभोगेन संसक्तं गृहीतं ततः क्षिप्रमेव

१ °सकं सम्भवति तत्र कं॰ ॥ २ तत्र ह्योरिप संसक्तयोः सम्भवतोर्मध्ये यद् कं॰ ॥ ३ 'इष्टे' प्रत्युपेक्षितं पिण्डे गृह्यः कं॰ ॥ ४ °याऽप्रत्युपेक्षितं संसक्तमेव भक्त-पानं यु° कं॰ ॥ ५ °ति, प्रायक्षिक्तमिलार्थः । अथा पंः ॥

विवेचैनम् । अब क्षित्रं न विविनक्ति ततो यावत् परिष्ठापयति तावद् येत्र यद् विनाशमश्रुते तिकृष्पत्रं प्रायक्षितम् ॥ ५८७५ ॥ कः पनः क्षित्रकारः ! इत्याह —

> सत्त पदा गम्मंते, जावति कालेण तं भवे खिप्पं। कीरंति व तालाओ, अहुयमविलंबितं सत्ता ॥ ५८७६ ॥

यावता कालेन सप्त पदानि गम्यन्ते तत् क्षिप्र मन्तव्यम् । यावता वा कालेनाद्वतमविल-म्बितं सप्त तालाः क्रियन्ते तावान कालविशेषः क्षिपम् ॥ ५८७६ ॥

> तम्हा विविचितव्वं, आसन्ने वसिंह द्र जयणाए । सागारिय उण्ह ठिए, पमजणा सतुग दवे य ॥ ५८७७ ॥

तस्मात् तद् जन्तुसंनक्तमनन्तरोक्तक्षिप्रकालमध्य एवं विवेचनीयम् । यदि च वसितरासम्भा 10 ततस्मन्न गत्वा परित्यक्तन्यम् । अथ दरे वसितः ततः शून्यमृश्वादिषु यतनयः परिष्ठापयति । अथ सागारिके पश्यति उप्णे वा सूभागे 'स्थितो वा' ऊर्द्धस्थितः परिष्ठापयति ततो वश्यमाणं प्रायक्षित्तम् । यत्र च परिष्ठाप्यते तत्र प्रमार्जना कर्तन्या । एवमोदनस्य विधिरुकः । सक्तां द्वस्य वैवमेवारुयसागारिके प्रमृज्य छायायां परिष्ठापनं विधेयम् ॥ ५८७७॥ हैदमेव व्याचष्टे—

जावइ काले बसहिं, उवेति जति ताव ते ण विदंति ।

ा तं पि अणुण्हमदवं तो, गंतूणग्रुवस्तए एडे ॥ ५८७८ ॥

यावता कालेन वसतिसुर्येति तावता कालेन यदि 'ते' प्राणिनः 'न विद्रान्ति' न विनरयन्ति तदा तद् वसतिं नीयते । तद्य्यनुष्णमद्दवं च यदि भवति ततः प्रतिश्रयं नेतव्यम् । किसुक्तं भवति है— यदि उप्पः क्रोतं द्रवं वा संसक्तं ततः प्रतिश्रयं न नीयते, गा यावत् प्रतिश्रयं नंवितं तावत् प्राणजातीया उप्णे द्रवं वा मरिष्यत्रितं क्रस्ता । अक्षानुष्णमर्दवं च तत उपा20 श्रये गस्ता 'एडयेत्' परिष्ठाययेत् । यन् पुनरूणं द्रवं वा तत् तत्रेव शून्यगृहादो परिष्ठापनीयम् ।
अक्ष द्ररे वसतिस्तोऽनुष्णमापि शून्यगृहादिषु परिष्ठापनिवनम् ॥ '५८७८ ॥

सुण्णघरादीणऽसती, दुरे कोण वतिअंतरीभृतो ।

उकुड पमज छाया, वति-कोणादीस विक्लिरणं ॥ ५८७९ ॥

अथ शून्यगृहादीनि न सन्ति ततो दूरे एकान्तं गस्ता यत्र कोणस्थितो बुत्याऽन्तरितीभूतो 25 वा सागारिको न पश्यति तत्रोरकुटको भूत्वा ममुज्य छायायां दृतेः कोणके मिक्षपति, आदिमहणेन दृतेभेष्येऽपं विकिरति, परिष्ठापयतीत्यर्थः। प्वमोदनस्य सक्तूनां द्रवस्य वा परिष्ठापनं कर्तन्यस्य।। ५८७९॥

> सागारिय उण्ह ठिए, अपमजंते य मासियं लहुगं । बोच्छेदुइाहादी, सागारिय सेसए काया ॥ ५८८० ॥

30 अथ सागारिके उच्णे वा प्रदेशे मृत्व 'स्थितो वा' ऊर्द्धीमृतोऽप्रमार्ज्य वा परिष्ठापयति

१ 'चनीयम्। अय गा॰कां॰॥ २ 'यत्र' भक्ते पानके वा 'यत्' प्राणजातं विना' का॰॥ २ इमामेव निर्देक्तिगायां व्या' कां॰॥ ४ 'द्रवं प्रतिश्रयक्ष प्रत्यासम्नस्तत उपा' कां॰॥ ५ विकरणं करोति, परि' कां॰॥

ततश्चतुर्ध्वपि रुषुमासिकम् । सागारिके च पश्यति यदि भक्तं परिष्ठाप्यते तदा स भकः पानदानव्यवच्छेदभुङ्काहादिकं वा कुयार्ते । 'होचे हु' उष्णादित्रये परिष्ठापयतः प्रथिव्यादिकाया विराध्यन्ते ॥ ५८८० ॥

> इइ ओअण सत्तुविही, सत्त् तिहणकतादि जा तिण्णि । वीसुं वीसुं गहणं, चतुरादिदिणाइ एगत्थ ॥ ५८८१ ॥

'इति' एवमोदनस्य संसक्ताल विभित्रकः। अत्र सक्तृनां संसक्तानां विभित्रव्यते—यत्र सक्तः संसक्ता रूप्यते। अथ न संस्तानित ततसिद्विस्तरुतान् सक्तृ गृहित। आदिशब्दात् तैरप्यसंस्ररतो 'दित्रीय-तृतीयदिनकृतानित सक्तृ गृहित, ते पुनः पृथक् पृथम् गृह्यन्ते। चतुर्विवसकृताद्यस्तु सर्वेऽप्येकत्र गृह्यन्ते तेषानयं प्रस्तुषेक्षणाविधिः—रज्ञाणमधः मसीर्य तस्योपरि पात्रकवन्यं कृत्वा तत्र सक्तवः प्रकीर्यन्ते, तत कर्द्वृद्धलं पात्रकवन्यं कृत्वा तत्र सक्तवः प्रकीर्यन्ते, तत कर्द्वृद्धलं पात्रकवन्यं कृत्वा १० एकस्तिन् पार्थं नीत्वा यास्तत्र उत्रणिका रुमासा उद्धृत्य कर्षरे प्रक्षिप्यन्ते, एवं प्रसुपेक्ष्य मृयोऽपि तथेव प्रसुपेक्षन्ते॥ ५८८१॥ ततः—

नव पेहातों अदिहे, दिहे अण्णाओं होंति नव चैव । एवं नवगा तिण्णी, तेण परं संथरे उन्हों ॥ ५८८२ ॥

नववाराः प्रख्पेक्षणां क्रत्वा यदि प्राणवातीया न दृष्टाचतो भोक्तव्यासे सक्तवः, अथ 15 दृष्टाखतो सूर्योऽप्यन्या नववारा प्रख्पेक्षणा भवति, तथापि यदि दृष्टाखतः पुनरिप नववाराः प्रख्पेक्षन्ते । ततो यथेवं त्रिभिनेवकैः शुद्धाखतो अञ्जताम् । अथ न शुद्धाखदा ततः पर्र 'उज्झेत्' परिष्ठापयेत् । अथासंस्तरणं ततस्वावत् प्रख्पेक्षन्ते यावत् शुद्धीभवन्ति ॥ ५८८२ ॥

पाणजातीयानां च परिष्ठापने विधिरयम्-

आगरमादी असती, कप्परमादीसु सत्तुए उरणी । पिंडमलेवाडाण म, कातूण दवं तु तत्थेव ॥ ५८८३ ॥

या जरणिकाः प्रत्युपेक्षमाणेन दृष्टास्ता आकरादिषु परिष्ठापनीयाः । इह घरहादिसमीपे प्रमुता यत्र तुषा भवन्ति स आकर उच्यते । तस्याभावे कपेरादिषु स्वीकात् सक्तून् प्रक्षिप्य तत्रोरणिकाः स्वापयित्वा बहिरनावाचे प्रदेशे स्वाप्यन्ते । यदि च द्रवभावनं नास्ति ततो ये सक्तवः ग्रुद्धा अलेपक्रताश्च ते 'पिण्डं कृत्वा' भाजनस्थेकपार्धे चम्पयित्वा तत्रैव च द्रवं 'कृत्वा' 25 गृहीत्वा भुक्तते ॥ ५८८३ ॥ यत्र च काक्षिकं संसज्यते तत्रायं विषिः—

आयाम्र संसद्वसिणोदगं वा, गिण्हंति वा णिर्व्वत चाउलोदं।

र 'द्यापयति तदा भा॰ कं०॥ २ 'यू—महो । अभी अमणका मत्ताः यदेवं दुर्लभमा-हारं गृहीत्वा छदंयन्तीति । 'शेषे तु' कं०॥ ३ द्वितीयदिवसकृतान् यावत् त्रयो दिवसा येषां सञ्जाताः तृतीयदिवसकृता इत्ययं तानिष गृह्वन्ति, तेपां पुनः 'विष्वम्,' विष्वम्,' पृथक् पृथम् महणं कर्त्त्वम् । व्यव्वदेवस्य कं०॥ ५ ध्नते । एवं त्रीणि नयकानि मत्यु-पेक्षणानां मत्ति । ततो यथेवं कं०॥ ५ 'ते, आदिशब्दाव्यस्यान्येवंविषस्य परिम्रहः । तस्या' कं०॥ ६ 'व्युड व्यादुकोदमं । तिष्टु' तामा०॥

गिहत्यमाणेसु व पेहिजणं, मत्ते व सोहेतुवरिं छुमंति ॥ ५८८४ ॥ औयामं संस्रष्टवानकपुष्णोदकं वा 'निर्वृतं वा' प्रायुकीयृतं 'बाउकोदकं' तण्डुळपावनं गृहन्ति । प्रतेषाममाने तदेव काञ्जिकं गृहस्थमाजनेषु प्रस्त्रपेश्य मात्रके वा घोषयित्वा यद्यसं-सक्तं तदा प्रतिमहोपरि प्रक्षियन्ति ॥ ५८८४ ॥ द्वितीययदमाह—

बिहयपद अपेक्खणं त्, गेरुण्ण-ऽद्धाण-ओममादीसु । तं चेव सुक्खगहणे, दृष्टभ दव दोस वी जयणा ॥ ५८८५ ॥

द्वितीयपदे ग्लाना-ऽध्वा-ऽवमादिषु कारणेषु 'अभेक्षणे' पिण्डलामखुपेक्षणमपि कुर्यात् । 'तदेव च' म्लानलादिकं द्वितीयपदं 'शुष्कख' ओदनस्य महणे मन्तव्यम् । दुर्कमं वा द्ववं पश्चान्न रूपयते ततः पूर्वे तद् गृहीतमिति कुरवा नास्ति तद् भाजनं यत्र पृथक् शुँषकं गृष्कते । 10 ''दोसु वी जयण'' वि 'द्वयोरपि' अप्रखुपेक्षणा-शुष्कमहणयोरेणा यतना कर्तव्या । पूर्वे सङ्कराष्ट्रासमासार्थः ॥ ५८८५ ॥ साम्यतमेनामेव विवणीति —

> अचाउर सम्मृहो, वेलाऽतिकमित सीयलं होह । असहो गिण्हण गहिते, सुज्झेज अपेक्समाणो वि ॥ ५८८६ ॥

कश्चिरतीव 'आतुरस्वेन' ग्लान्स्वेन 'सम्पदः' सम्पोर्ह-समुद्रान्त्रपातस्तो यावत् प्रस्तुपेक्षते 15 तावद् वेलाऽतिकामति सीनलं वा तावना कालेन भवति, तत एवस् 'अशाठः' विशुद्धभावो गृह्वानो वा गृहीते वा पिण्डे प्रस्तुपेक्षणामकुर्वाणोऽपि 'शुष्येत' प्रायश्चित्तमण् न भवेत्॥५८८६॥

ओमाणपेहितो वेलऽतिकमो चलिउमिच्छति भयं वा। एवंविहे अपेहा. ओमे सतिकाल ओमाणे ॥ ५८८७ ॥

अध्यति वा गण्छतां सार्थः 'अवमानमेरितः' ममूनिमक्षाचराक्षीणः, यावच मस्युपेक्षते तावद् 20 वेखातिकमो भवति, स च सार्थश्चलितुमिच्छति, रष्टवते गण्छतां च भयम्, तत एवंविषे कारणेऽप्रेक्षा, प्रसुपेक्षामन्तरेणापि पिण्डं गृहीयादित्यर्थः । अवसे च प्रसुपेक्षमाणानां 'सत्कारुः' मिक्षाया देशकारुः स्किटति सूर्यो वाऽस्तमेति व्यवमानं वा—मिक्षाचराकीर्णं ततोऽप्रसुपेक्षित-मपि गृहीयात् ॥ ५८८७ ॥ एरम्—

## तो कुजा उवओगं, पाणे दङ्गण तं परिहरेजा ।

25 कुजा ण वा वि पेहं, सुज्झह अतिसंभमा सो तु ॥ ५८८८ ॥

यदि अनन्तरोक्तकारणैः प्रखुपेक्षणं न भवति तत उपयोगं कुर्योत् । इते नोपयोगे यदि प्राणिनः पश्यति ततत्तान् दृष्ट्या 'तर्यु' मक्त-यानं परिहरेत् । अयवा अत्यातुरः 'पेक्षीप्' उपयोगमि न कुर्योद् वा न वा । अनुपयुक्षानोऽपि चातिसम्प्रमादसौ साष्टुः शुध्यति । यचाधस्तादुक्तं

१ 'आयामम्' अवस्रावणं संस्पृष्णतकं-गोरसमाजनधावनम् उष्णोदकं वा-उहत्त-त्रिदण्डं 'निर्दे' कं ।। २ अथात्रेव हिती' कं ।। २ शुष्कम्-ओदनं शृक्षते, वतस्तम्भय् एव तद् गृक्षीयात् । ''दोसु कं ।। ४ 'प निर्युक्तिगाथा' कं ।। ५ मावितं ग्लानत्वे वास्तुव्यवस्त्र । अथाऽत्वा-उपमयोस्तदेव मावयति स्वकारणं कं ।। ६ 'त्रेक्सं' प्रस्युपेक्ष-णाम् उप' कं ।।

"संसक्तः शुष्कीदनः ष्टथम् गृश्वते" (गा० ५८७२) तत्राप्येतेण्येव म्हाना-ऽथ्या-ऽवमेषु कारणेषु द्वितीयपदं मन्तव्यम् ॥ ५८८८॥ तथा चाह—

वीसुं घेष्पइ अतरंतगस्स बितिए दवं तु सोहेति । तेण उ असक्खगडणं, तं पि य उण्डेयरे पेहे ॥ ५८८९ ॥

'अतरन्तगस्य' स्थानस्य बोग्यं 'विष्वग्' एकस्मिन् मात्रके गृह्यते, द्वितीये च मात्रके द्ववं व् शोधयति, ततो यत्र शुक्कोदनः पृथग् गृह्यते तत् तृतीयं मात्रकं नासीति कृत्वा शुक्कमार्द्रं वा एकत्रैव मतिम्रद्दे गृहीयात् । स्थानस्यापि यद् ओदन-द्वितीयाक्षादिकमेकस्मिन् मात्रके गृह्याति तदपि उच्चं महीतन्यम् । 'इतरत् तु' शीतलं प्रस्तुपेक्षेत, यदि असंसक्तं ततो गृह्वीयादन्यथा तु नेति मावः ॥ '५८८९ ॥

> अद्धाणे ओमे वा, तहेव वेलातिवातियं णातुं । दक्षभदवे व मा सिं. घोवण-पियणा ण होहिंति ॥ ५८९० ॥

अध्विन बाउनमैदर्ये वा वेठाया अतिपातम्—अतिकमं ज्ञात्वा तथैव ग्रुटैकं विष्वग् न गृडीयात् । दुर्छभं वा तत्र प्रामे द्रवं—पानकं ततो मा "सिं" एपां साधूनां भाजनधावन-पाने न भविष्यत इति कृत्वा पूर्वं मात्रके द्रवं गृहीतं ततो नास्ति भाजनं यत्र शुष्कं पृथम् गृह्यते अत एकत्रैव गृहीयात् ॥ ५८९० ॥ उक्तमोदनविषयं द्वितीयपदम् । अथ पानकविषयमाह्— 15

आउट्टिय संसत्ते, देसे गेलण्णऽद्धाण कक्खर्डे अखिप्यं। इयराणि य अद्धाणे, कारण गहिते य जतणाए ॥ ५८९१ ॥

यथा कारणे 'आकुट्टिकया' जानन्तोऽपि संसक्ते देशे गच्छन्ति तथा तत्र गताः सन्तः संसक्तमि पानकं गृहन्ति । गृहीत्वा च स्थानत्वेऽध्विनि 'कर्करो वा' अवसे क्षिपं न परित्यजेपुरिषे । तथाहि — स्थानत्वे यावत् संसक्तं परिष्ठापविन्त तावद् रखानत्व चेळातिकमो भवति, २०
अध्वनि सार्थात् परिभ्रवयन्ति, अवमोदयें भिक्षाकाळः स्फिटति, ततो न क्षिपं परित्यजेद्धः ।
'हतराणि च' सागारिकस्य पदयतेंः परिष्ठापनम् इत्यादीनि यानि पूर्वभतिषद्धानि तान्यप्यव्यति
वर्तमानः कुर्वोत् । एष कारणे यतन्या गृहीतत्वः संस्कल्य विवेचने विभिरत्वगन्तव्य हैति
सक्वराधासमासार्थः ॥ ५८९१ ॥ अथैनामेव विद्यणीति—

आउट्टि गमण संसत्त गिण्हणं न य विविचए खिप्पं। 25 ओम गिठाणे वेला. विडम्मि सत्थो वडकमड ॥ ५८९२ ॥

यथाऽऽकुष्टिकया संसक्तदेशे गमनं तथा तत्र गतः संसक्तमि गृहीयात् न च क्षिप्रं 'विविष्टयात्' परिष्ठापयेत् । कुतः ! इत्याहः—अवमे भिक्षाकालः स्किटति, म्लान्ये वा म्लानस्य वेलाऽतिकमेत्, 'विहे' अध्यनि सार्थो व्यतिकामति, ततः क्षिप्रं न परित्यजेत् ॥ ५८९२ ॥

१ °स्तीति, तेन कारणेन अग्रुष्कस्य-अर्द्धस्य तुराब्दात् ग्रुष्कसार्थम् ओदनस्य एकत्रैव प्रतिष्ठते प्रदर्ण कर्त्तव्यम् । म्छान° को ॥ २ 'छुष्कम्' ओदनं वि° को ॥ ३ अवमीदयो-परपर्याये "अक्षिप्रं" ति क्षिमं को ॥ ॥ ४ °तः उप्पे वा भूमाने ऊर्द्धस्थितस्य या यत् परिद्यापने तञ्जसणानि त्रीणि स्थानानि यानि को ॥ ५ इति मिर्युक्तिगाया" को ॥॥

25

### असिवादी संसत्ते, संकप्पादी पदा तु जह सुन्हें । संसद्ध सत्त चाउल. संसत्तऽसती तहा गहणं ॥ ५८९३ ॥

अशिबादिभिः कारणैर्यथा संसक्ते देशे सङ्कष्यादीनि पतानि कुर्वाणोऽपि शुज्यति तथा तत्र गतो यदि असंसक्तं पानकं न रुमते तैतः संख्ष्टपानकं तन्दुर्होदकं वा संसक्तं सक्तृत् वा ध्संसक्तान् तवैव गृद्धीयात् ॥ ५८९३ ॥ तेषां पुनः गृह्धीवानामयं विधिः—

# ओवग्गहियं चीरं, गालणहेउं घणं तु गेण्हंति ।

तह वि य असुञ्झमाणे, असती अद्धाणजयणा उ ॥ ५८९४ ॥

औपमहिकं 'षनं' तिश्छिदं चीवरं तेषां संसक्तपतकानां गालगहितोरीृहन्ति । 'तथापि' तेनापि गाल्यमानं यदि न शुज्यति न वा तण्डुरुधावनादिकमपि रुम्यैते, ततो या प्रथमोदेश-१०केऽध्वति गच्छतां ''तुवरे फले य स्क्ले॰'' (गा॰ २९२२) इत्यादिना पानकयतना भणिता सा कर्तव्या ॥ ५८९१ ॥ अथ दिधिवषयं विधिमाह—

> संसत्त गोरसस्सा, ण गालणं णेव होइ परिभोगो । कोडिदग-लिंगमादी, तहिँ जयणा णो य संसत्तं ॥ ५८९५ ॥

यदि कापि संसक्तो गोरसो रूप्यते ततसाय न गारूनं न वा परिभोगः कर्तव्यः, किन्तु 15 "कोडिदुग-र्रिंगमाइ" चि कोटिद्वयेन-विद्योभिकोट्या अविद्योधिकोट्या च भक्त-पानप्रहणे यतितस्यं याददाधाकमीपि गृष्ठते, अन्यिलिक्षमपि कृत्वा भक्त-पानमुःपायते, न पुनः संसक्तो गोरसो प्रहीतव्यः ॥ ५८९५ ॥

अथ ''इयराणि य'' (गा० ५८९१) इत्यादिपश्चार्द्ध व्याचष्टे---

सागारिय सञ्बत्तो, णित्थ य छाया विहम्मि दूरे वा । वेला सत्थो व चले, ण णिसीय-पमजाणे कुजा ॥ ५८९६ ॥

अध्वित गच्छतां सवैतोऽपि सागारिकम्, छाया च तत्र नास्ति, अस्ति वा परं दूरे, तत्र च गच्छतां वेखाऽतिकामति, सार्थो वा चलति, तत्र उष्णेऽपि भूमाँगे परिष्ठापयेत् । यत्र चोषविद्यतः सागारिकं शक्कादयो वा दोषाः अशुचिकं वा स्थानं तत्र निषदन-प्रमार्जने अपि न कुर्यात् ॥ ५८९६ ॥

॥ आहारविधिप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ तत एवमसंस्कर्य पानकस्यासित संस्कमापे संस्षृष्टपानकं तन्दुलोदकं वा संस-कान् वा सक्षृत्तयंव गृहीपात् । इट पानकाधिकारे सक्तप्रहणं संस्कत्वसाम्यात् प्रसङ्गायातिमित कृत्वा न दुष्टम् ॥ ५८९३ ॥ तेषां पुनः संसक्तपानकानां गृहीं कां ॥ २ भ्यते, तत प्रमाशुभ्यति 'असित या' अविद्यानो पानकजाते प्राप्यमाणे इत्यर्थः प्रयानो सं ॥ ३ भागे सातारिकस्य पद्यतोऽपि पिरिका

### पानक विषित्र कृत स्

सूत्रम्---

निग्गंथस्स य गाहावइकुळं पिंडवायपिडयाए अणु-प्यिवट्टस्स अंतोपिडिग्गहगंसि दगे वा दगरप वा दगफुसिए वा परियावजेजा, से य उसिणे भोयण-जाते भोत्तव्वे सिया; से य सीए भोयणजाते तं नो अप्पणा भुंजेजा, नो अन्नेर्सि दावए, एगंते बहुफासुए पदेसे परिद्वेयव्वे सिया १२॥

अस्य सम्बन्धमाह---

आहारविही बुनो, अयमण्णो पाणगस्स आरंभो ।

कायचउकाऽऽहारे, कायचउकं च पाणिम्म ॥ ५८९७ ॥

आहारविधिः पूर्वसूत्रे उक्तः, अयं पुनरन्यः पानकस्य विधिवतिषादनाय सूत्रारमः क्रियते ।
तथा आहारेउनन्तरसूत्रे भाणग्रहणेन तसा भीत्रष्ठहणेन वनस्पतिकायाः स्त्रोप्रहणेन पृषिव्यमिकायी गृहीताविति कायचबुव्यन्यक्तम् । इहापि पानके कायचबुष्कमुत्तते—तत्र सीतोदकपत्त्रे उष्णोदकमिकायः, नालिकेरपानकादिकं वनस्पतिकायः, दुग्धं स्त्रसकायः । एवं 15

चत्रारोऽषि काया अत्रापि सम्भवनतीति ॥ ५८९७॥ अनेन सम्यन्येनायातस्यास्य व्याहवा—

निर्भन्थस्य गृहपतिकुळं पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविष्टस्यान्तःप्रतिष्ठहे भक्त-पानमध्ये 'दक्कं वा' प्रभूताप्कायरूपं 'दक्करजो वा' उदक्कविन्दुः 'दक्कपर्शितं वा' उदक्कशिकराः पर्यापतेषुः । तक्षोण्यं भोजनजातं ततो भोक्तव्यं स्थात् । अथ श्रीतं तद् भोजनजातं ततस्वनास्मा भुक्कीत, नान्येषां दद्यात् , एकान्ते बहुपाशुके प्रदेशे परिष्ठापयितव्यं स्यादिति सुत्रार्थः॥ अथ भाष्यम्— 20

परिमाणे नाणत्तं, दगबिंदुं दगरयं वियाणाहि । सीभरमो दगक्रसितं, सेसं तु दगं दव खरं वा ॥ ५८९८ ॥

दकरजः मम्तिनां परिमाण्डतं नानात्वम् । तथाहि—यसावद् दकविन्दुस्तं दकरबो विज्ञानीहि । ये तु 'सीमराः' पानीयेऽन्यत्र प्रक्षिप्यमाणे उदकसीकरा आगत्य प्रपतन्ति ते दकस्पर्शितम् । 'शेषं तु' यत् प्रमुत्तमुदकं तद् दकमिति भण्यते । तच द्ववं वा सरं वा भवति २० इति विषमपदस्यास्यानं भाष्यकृता कृतम् ॥ ५८९८ ॥ सम्प्रति नियुक्तिविस्तरः —

एमेव बितियसुचे, पलोगणा गिण्हणे च गहिते च । अणमोगा अणुकंपा, पंतचा वा देंगं देखा ॥ ५८९९ ॥ अभसनाह्वारसुत्रादिदं द्वितीयसूत्रसुच्यते । तत्र द्वितीयसुत्रेऽप्येवमेव विधिर्द्रष्टव्यैः । महणे

१ पा, पश्चिमीता वा दर्गको ।। २ द्वं दे' ताना ।। ३ व्यः । कथम् ? इति अत माइ— उदकस्य प्रदेखे को ।।

गृहीते च पानके 'प्रकोकना' प्रस्तुपेक्षणा पिण्डसेव मन्तव्या । तच उदकं त्रिमिः कारणैर्द-याद् । तचया— "क्यागोगा" इत्यादि । अनाभोगेन काचिदगारी एकनैव काक्रिकं पानीयं चास्त्रीति इत्या 'काक्षिकं दास्याभि' इति बुद्धा विस्पृदिवशाज्यं दयात् । अनुकम्पया वा श्रीम्मसमये तृषाकान्तं साधुं दृष्टा 'शीतलं जलं पिनेट्'त बुद्धा कार्यविद्वदकं दयात् । अमातत्वया मस्त्रीकत्या वा काचिद् शिक्षकाधुपासिका 'पत्रीपाद्यकं न कह्पते अतो व्रतमक्षं करोमि' इति बुद्धा साध्नाप्यदकं वयात् ॥ 'प्रदेश । अधानेव विधिमाह्—

सुद्धम्मि य गहियम्मी, पन्छा णाते विगिचए विहिणा । मीसे परुविते उण्ड-सीतसंजीग चउमंगी ॥ ५९०० ॥

यदि तदुत्कं 'छुद्धे' रिके प्रतिमहि गृहीतं 'पश्चाक्ष' प्रहणान्तरं ज्ञातम् यद्या—उद्कः 10मिदपः, ततः 'विधिना' वस्यमाणेन 'विविक्ष्यात्' परिष्ठापयेत्। ''मीसे'' ति मिश्रं नाम-यत्र प्रतिमदे पुर्वमन्यद् द्वं गृहीतं पश्चाक्ष पानीयं पतितम् एतद् मिश्रमुच्यते, तत्र 'मिश्रे' उज्ज-ज्ञीतसंयोगे चत्रभेक्षाः महत्यणा कर्तव्या॥ ५९००॥

तत्र रिक्ते प्रतिम्रहे यद गृहीतं तस्यायं परिष्ठापनाविधिः---

तत्थेव भाषणम्मी, अलब्भमाणे व आगरममीवे।

सपडिग्गहं विगिच्इ, अपरिस्सव उछभाणे वा ॥ ५९०१ ॥

यतो भाजनादिवरतिकया दत्तं तत्रैव तहुरकं प्रक्षिपति । अध सा तत्र प्रक्षेतुं न ददाति तत एवनस्थमाने सा प्रच्छाते — कुत्तस्वयेदमानीतम् ! । ततो यस्मात् कृप-सरःप्रभृतेरा-करावानीतं तस्य समीगे गत्या परिप्रापिनिकानिष्कृतिकाणितेन ( गा० ४ आव० हारि० टीकां पत्र वर्षिपत्र ने भागि प्रवास परिप्रापिका परिप्राप्वेत् । अथवा सप्रतिग्रहमामे सीरद्वमस्य च्छायाधानेकानेतं । अथवा सप्रतिग्रहमामे सीरद्वमस्य च्छायाधानेकानेतं । अथवा सप्रतिग्रहमामे सावस्य च्छायाधानेकानेतं । अथवा प्रतिग्रहमामे सावस्य च्छायाधानेकानेतं । अथवा प्रतिग्रहोऽन्यो न विवाते ततो यद् अपरिश्रावि घटादिकमाई जब्दमीवितं भाजनं तत्र प्रसिष्ति ॥ ५००१ ॥ अथ पूर्वमन्यद्वत्ये गृहीते पतितं तत्र इयं वदानेक्की —

दन्त्रं तु उण्हसीतं, सीउण्हं चेत्र दो वि उण्हाहं । दण्णि वि सीताहँ चाउलोद तह चंदण घते य ॥ ५९०२ ॥

इह द्रव्यं चतुर्था, तथर्था---किखिटुष्णं त्रीतपरिणासम् १ अपरं श्लीतपुष्णपरिणामम् २ २० अन्यदुष्णपुष्णपरिणामम् २ अपरं शीतं शीतपरिणामम् १ । अधासन्नत्वात् प्रयमं चतुर्थमन्नं व्याख्याति--- ''चाउछोद'' इत्यादि । तण्डुलोदन-चन्दन-घृतादीनि द्रव्याणि 'श्लीतानि' शीत-परिणामानि ॥ ५९०२ ॥ तृतीयभन्नमाह---

> आयाम अंबकंजिय, जित उसिणाणुसिण तो विवागे वी। उसिणोदग-पेजाती, उसिणा वि तणुं गता सीता॥ ५९०३॥

१ 'त्ते 'विषिनित्तं' परिष्ठापयति ६० ॥ २ °था—"उण्हतीयं' ति "स्वनात् स्वम्" इति इत्वा किञ्चि ६० ॥ ३ 'म् ४। इह तृतीयमहे सभावपरिणामञ्सणे द्वे अपि वस्तुनी उज्ले, चतुर्षमहे तु द्वे अपि शीते । अया' ६० ॥ ४ शीतसभावानि शीतपरिणामानि मवन्तीति चतुर्थो महः॥५९०२॥ अथ प्रथम-तृतीयमङ्गावाह ६० ॥ ५ °णा उसिण तामा ॥

आयामा-ऽन्वकालिकादीनि द्रव्याणि यद्युष्णानि ततो 'विपाके' परिणामेऽपि तान्युष्णान्येव भवन्तीति कृत्वा वृतीयो भक्तः । यानि पुनरुष्णोदक-पैयादीनि द्रव्याणि तान्युष्णान्यपि 'तत्तुं' शरीरं गतानि शीतानि भवन्तीत्यनेन त्रथमो भक्तो व्याख्यातः ॥ ५९०३ ॥

अथ द्वितीयभन्नं व्याच्छे---

सुत्ताह अंबकंजिय-घणोदसी-तेल्छ-लोण-गुरुमारी । सीता वि होति उसिणा, दहेतो बुण्हा व ते होति ॥ ५९०४ ॥

मुत्तं-मिद्रासोडः देशिविशेषप्रसिद्धो वा किश्चित् द्रव्यविशेषा, तदादीनि यानि द्रव्याणि, यच अम्कं काञ्चिकम्, अम्का च धनविकृतिः, अम्कं च उँदश्चित्-तकम्, यच तैवं लवणं गुडो वा, एवमादीनि द्रव्याणि शीतान्यपि परिणामत उण्णानि भवन्तीति द्वितीयभक्कें उ-वतरित । अथ तान्युष्णानि ततः 'उष्णानि' उष्णापरिणामानीति तृतीये भक्के प्रतिषत्तव्यानीति 10 ॥ ५९०॥ आह कृतिविषः पनः परिणामः १ इति उच्यते —

परिणामो खलु दुविहो, कायगतो बाहिरो य दन्वाणं । सीओसिणत्तर्णं पि य, आगंतु तदुरुमवं तेसि ॥ ५९०५ ॥

द्रव्याणां परिणामः द्विविधः—कायगती बाह्यश्च । तत्र कावेन-शरीरेणाहारितानां द्रव्याणां यः शीतादिकः परिणामः स कायगतः, यः पुनरनाहारितानां स बाह्यः । स च बाह्यः परिणामः 15 शीतो वा स्यादुष्णो वा । तदिप च शीतोष्णात्वं द्रव्याणां द्विषा—आगन्तुकं तदुद्गवं च ॥ ५९०५ ॥ उभयमि व्याच्ये—

साभाविया व परिणामिया व सीतादतो तु दन्वाणं । असरिससमागमेण उ, णियमा परिणामतो तेसिं ॥ ५९०६ ॥

साभाविका वा परिणामिका वा श्वीतादयः पर्याया द्रव्याणां भवन्ति । तत्र साभाविका 20 यथा—हिमं सभावशीतस्य, तापोदंकं सभावादेवोष्णम् । परिणामिकास्तु पर्याया द्रव्यान्त-रादिबाबकारणजनिताः, तथा चाह—"असरिस" इत्यादि, असडरोन वस्तुना सह यः समा-गमः-मीस्कस्तेन नियमात् 'तेषां' द्रव्याणां 'परिणामः' पर्यायान्तरगमनं भवति, यथा— उदकादेः श्लीतस्याप्यभितापेन आदित्यरशिमतापेन वा उष्णतागमनम् ॥ ५९०६ ॥

एतदेव सुव्यक्तमाह---

25

30

सीया वि होंति उसिणा, उसिणा वि य सीयमं पुँणरुवेंति। दन्वंतरसंजोगं, कालसभावं च आसञ्ज ॥ ५९०७ ॥

द्रव्यान्तरेण-अभि-जर्कादिन। सयोग-सम्बन्धं कारुखः च-प्रीप्म-हेमन्तादेः स्वभावमासाध श्रीतान्यपि द्रव्याण्युण्णानि भवन्ति उण्णान्यपि च श्रीततां पुनरुपयान्ति ॥ ५९०७ ॥

एष आगन्तुकः परिणामो मन्तव्यः । अयं पुनस्तुदुद्भवः---

ताबोदगं तु उसिणं, सीया मीसा य सेसगा आवो ।

१ °हतो उपहा तामा०॥ २ "उदची तकं" इति चूर्णो विशेषचूर्णो च ॥ ३ °कं राजगृष्ट-नगरभावि सभा° कं०॥ ४ पुण भवंति तामा०॥

### एमेव सेसगाई, स्वीदव्वाई सव्वाई ॥ ५९०८ ॥

तापोदकं सभावादेवोष्णम्, 'शेषा आपः' अष्कायद्रव्याणि शीतानि 'सिमाणि वा' शीतो-ष्णोभयसमावानि मन्तव्यानि । एवमेव 'शेषाणि' अष्कायविरहितानि यानि सर्वाण्यपि रूपि-द्रव्याणि तानि कानिचिदुष्णानि यथा अग्निः, कानिचित् शीतानि यथा हिमस्, कानिचित् इत् शीतोष्णानि यथा पृथिवी ॥ ५९०८॥

एएण सुत्त न गर्त, जो कायगताण होह परिणामो । सीतोदमिस्सियम्मि उ, दब्बम्मि उ मग्गणा होति ॥ ५९०९ ॥ य एष 'कायगतानम्' आहारितानां द्रज्याणां परिणाम उक्तो नैतेन सूत्रं गतम्, किन्दुं

'बीतोवक्तिश्रितेन' सचिचोद्किमिश्रेण द्रव्येगेहाधिकारः। तत्र चेयं मार्गणा भवति ॥५९०९॥ वहतो थोवं एकेकएण अंतम्मि दोहि वी बहर्ग ।

भावगमभावगं पि य. फासादिविसेसितं जाणे ॥ ५९१० ॥

इह पूर्वगृहीते हुन्ये थदा होतोदकं पतित तदा ह्यं बहुभेक्की—"दुह्तो थोवं" ति स्तोकं स्ति पितामित प्रथमों भक्षः। ''पुकेकपूण'' ति स्तोकं बहुकं पतितमिति दितीयः, बहुति स्त्रोकं पतितमिति प्रतियः। "अंतिम्म दोहि वी बहुमंं" ति बहुनि बहु पतितमिति द्वितीयः, बहुति स्त्रोकं पतितमिति तृतीयः। "अंतिम्म दोहि वी बहुमंं" ति बहुनि बहु पतितमिति चहुवंः। 15 यद् द्रस्थं पतित यत्र वा पतित तद् भावकमगावुकं सा स्पर्शादिविशेषितं जानीयात्। किसुकं मयति!— स्पर्श-स्य-गन्धरुक्तरुप्ता यद् अपराणि द्रस्याणि स्तर्यश्रीदिभिगीवयति—परिणामयति तद् भावकर्त्त, तहिप्तितमगावुकस् । ये च स्त्रोक-बहुपदाभ्यां चत्रारो भक्षाः कृतासेषु मस्य-कमगा चत्रारो भक्षाः कृतासेषु प्रत्ये-कमगा चत्रारो भक्षाः कृतासेषु प्रत्ये-कमगा चत्रारो भक्षाः वितन् ए ॥ पर्देशः॥ स्त्रीत प्रत्यामम्— ६०००। सर्वमन्धामम्— १९८२५) शीतं पतितम् १ ॥ पर्देशः॥ प्रत्ये विभागास्

चरमे विभिचियव्वं, दोसु तु मिन्झिष्ठ पडिऍ भयणा उ । खिप्पं विविचियव्वं, मायविसुक्षेण समणेणं ॥ ५९११ ॥

चरमं नाम-भात् शीते शीतं पतितम् तत् पुनः स्तिके वा स्तोकं पतितं बहुके वा बहुकं पतितं मवेद उमयमपि क्षिप्रं 'विवेक्तव्यं' परिष्ठापियतव्यम् । 'द्वयोस्तु मध्यसयोः अन्नयोः' 25 'डणो शीतं पतितम्, शीतं उप्णं पतितम्' इतिक्शणयोर्वश्यमाणा भजना भवति । यः पुनरूषो उण्णं पतितमिति भयमो मन्नः तत्र तर्वश्यादेव सविचामावो नापगच्छतीति कृत्वा विभमेव मायाविद्यक्तम् भगोन तद् विवेचनीयम् । मायाविद्यक्तमृष्ठानेदं ज्ञापयति—शीत्रं परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थाने परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थाने परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थाने परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थाने परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थाने मन्दं मन्दं गच्छति तावत् तद् अविचानेत्र ततः परिष्ठाप् विद्याप्यति । अथ मात्रसानेन मन्दं मन्दं गच्छति विन्तयति च—तिष्ठद्व तावत् पश्चात् परिणदं परिमोश्वेः 30 एवं मायां कुत्रैतः स्विष्टळात्वांक् परिणतमित्र न कर्यते ॥ ५९११ ॥

अथ मध्यमभङ्गद्वये भजनामाह---

१ °न्तु विनेयन्युत्पादनार्थोमेदं सर्वे व्याख्यातम् । अत्र तु 'शीतो' धं॰ ॥ २ तामेव दर्शयति श्ववतर्थं भं०॥ ३ °जनां व्याख्यानयमाह् भं०॥

## थोवं बहुम्मि पडियं, उसिणे सीतोदगं म उन्हांती ।

हंदि हु जाव विगिचति, भावेजति ताव तं तेणं ॥ ५९१२ ॥

बहुके पूर्वगृष्टीते स्त्रोकं पतिवासित्वत्र यदि उच्चे बहुनि शीतीदकं स्त्रोकं पतिवं तदा नोज्यन्ति । कुतः ! इत्याह — 'हन्दि' इत्युपमदर्शने, याबद् विविगक्ति ताबत् 'तत्' स्त्रोकं शीतो-दकं 'तेन' बहुकेनोष्णेन 'भाव्यते' परिणतं कियते, ततः परिभोक्तव्यं तदिति मावः ॥५९१ २॥ ऽ

जं पुण दुहतो उसिणं, सममतिरेगं व तक्खणा चेव । मजिब्रह्मगंगएसं, चिरं पि चिट्ने वहं छटं ॥ ५९१३ ॥

यत् पुनर्द्विषाऽच्युष्णम् – उप्णे उप्णं पतितमित्यर्षः तत् परिणामतः परस्परं 'समं' तुस्यं भवेद् 'अतिरिक्तं वा' द्वयोरेकतरमधिकतरं तत्रापि तत्र्वणादेव सचिचमावो नापगच्छतीति' वावयरोपः । या तु मध्यमा हो भन्नी 'उप्णे शीतं पतितम्, शीते वा उप्णं पतितम्' 10 इतिचक्षणो तयोः स्तोके बहु प्रक्षिप्तं चिरमि सचिचं तिष्ठेत्, ततस्त्वपि क्षिप्तं चिरेण वा विवेचनीयम् ॥ ५९१३ ॥ अयोवकस्येव परिणमनच्छाणमाह्—

वण्ण-रस-गंध-फासा, जह दव्वे जिम्म उक्कडा होंति । तह तह चिरं न चिट्टह, असुमेसु सुमेसु कालेणं ॥ ५९१४ ॥

यसिम् देव्ये यथा यथा वर्ण-गन्ध-स-स्पर्शो उत्कटा उत्कटतरा भवन्ति तथा तथा तेन 15 द्रव्येण सह मिश्रितमुदकं चिरं न तिष्ठति, क्षिप्रं क्षिप्रतरं परिणमतीति भावः। किमविदोषेण १ न इत्याह—येऽग्रुभा वर्णादय उत्कटासेण्येव क्षिप्रं परिणमति, ये तु शुभा वर्णादयसेषुक्रदेषु कालेन परिणमति, चिरादित्यर्थः॥ ५९१४॥ अत्रेदं निदर्शनम्—

जो चंदणे कडरसो, संसङ्घले य दूसणा जा तु । सा सल दगस्स सत्थं. फासो उ उवग्गहं क्रणति ॥ ५९१५ ॥

दा त्यञ्ज प्राप्त ताय, कारा ठ उपनाव जुणाता । ५५८ ॥ - ४ इह तण्डुकोदकं चन्दनेन कापि मिश्रितं तत्रै च चन्दनस्य यः कटुको रत्तः स तण्डुकोदकस्य शक्षं परं यक्षतीयः स्पर्शः श्लीतकः स जकस्योपम्रहं करोतीति कृत्वा चिरेण तत् परिणमति ।

शस्त्रं परं यसदीयः स्पर्शः शीतलः स जरुस्पेपम्रहं करोतीति कृत्वा चिरेण तत् परिणमति । एवं संसष्टजरूस्पापि या 'दृषणा' अम्लरसता सा उदकस्य शस्त्रं स्पर्शस्तु शीतरूत्वादुपमहकारी अतिश्चरेण परिणमति ॥ ५९९५ ॥

धयिकद्व-विस्सगंधा, दगसत्यं मधुर-सीवलं ण घतं । कालंतरमुप्पणा, अंबिलया चाउलोदस्स ॥ ५९१६ ॥

ष्ट्रतस्य सबन्धी यः किट्टो यश्च विस्रो गन्धः ताबुदकस्य शब्सम्, यत् तु रसेन मधुरं स्पर्शेन च शीतरुं घृतं तद् उपग्रहं करोतीति शस्त्रं न भवति, अतश्चिरात् परिणमति ।

१ 'ति अतः परिष्ठापनीयं तदिति वाष्य' का । ''दुरते णाम पुज्याहितं पि उतिणं जं पि पिडतं तं पि उत्तिणं, तं परिणातते तुक्तं अविदेशं वा एगतरं ततिसकेद को न विचेतानाते ज्यागन्जति इति पास्यवेषः, ताथे क्षियं चेत्र विशेषिजवित ।'' इति चूर्णों विद्याचर्युणों व ॥ २ दृवदे ''जह' 'ति उत्तरक ''तह तह'' नि वीप्साया निर्देशादिहापि वीप्सा दृष्टक्या, ततोऽयमधं:—यथा यथा का ॥ ३ 'ष्ठ' 'ब्रन्स्वोरं' पश्चीसारक्योर्'ये प्रत्येभेदात् चन्द' भे ॥

तथा कुंकुसैः—अतिगुलिकैताण्डुळोदकस्याग्यता या काळान्तरेणोत्पना साऽप्युदकस्य शक्षं भवति ॥ ५९१६ ॥

अञ्चुकंते जित चाउलोदए छुज्मते जलं अण्णं ।
दोण्णि वि चिरपरिणामा, भवंति एमेव सेसा वि ॥ ५९१७ ॥
'अञ्चुकान्ते' अपरिणते तण्डुलोदके यद् 'अन्यद्' अपरं सचित्तं जलं मिक्षप्यते ततो है
अप्युदके चिरपरिणामे भवतः । 'शेषाण्यपि' यानि संग्रहपानक-कण्यानकादीनि तेष्वपि सचित्तोदकं यदि प्रक्षिप्यते ततः 'एवमेव' तान्यपि चिरात परिणमन्तीति ॥ ५९१७ ॥

अथ दितीयपदमाह—

थंडिक्कस्स अलंभे, अद्धाणोम् असिवे गिलाणे वा ।

10 सुद्धा अविविचंता, आउट्टिय गिण्हमाणा वा ॥ ५९१८ ॥
स्पण्डिलस्यालामेऽपरिणतपानकमपरिष्ठापयन्तोऽपि गुद्धाः । अध्वा-ऽवमा-ऽशिव-ग्लानत्वेषु
वा कारणेषु पानकस्य दुर्लमतायाम् 'अविविद्यन्तः' अपरिष्ठापयन्तः 'आकुट्टिकया वा' जानन्तोऽपि गृह्वन्तः ग्रद्धाः ॥ ५९१८ ॥

### ॥ पानकविधिप्रकृतं समाप्तम् ॥

ब्रह्म रक्षा प्रकृत म्

सूत्रम्-

15

20

25

निग्गंधीए रातो वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिंचमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजातीए वा पक्लिजातीए वा अन्नयरं इंदियजायं परामुसेजा, तं च निग्गंथी साइजेजा, हत्थ-कम्मपडिसेवणप्पत्ता आवजइ मासियं अणुग्घा-इयं १३॥

निग्गंथीए रातो वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिंचमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजातीए वा पिक्खजातीए वा अन्नयरंसि सोयंसि ओगाहिजा, तं च निग्गंथी साइजंजा, मेहुणए-

<sup>? &#</sup>x27;'कुङ्कसा-कांनगांवता तेसिचएण तेदुळोरवस्स अविकतं चिरेण कालेणं टप्पनं'' इ**ति पूर्णी।** ''कुङ्कसो-अभिकृतिको तस्त केरएणं तेदुळोययस्स अविकतं चिरेण कालेण उपपं'' इति **विदोषसूर्णी।** २ <sup>९</sup>श्चीप य रा<sup>०</sup> कं॰। एतरतुसारेणेव कां॰ टीका, दस्यता पत्रं १५६१ टिप्पणी २॥

## डिसेवणप्पत्ता आवजङ चाउम्मासियं अगुग्धा-इयं १४ ॥

अस्य सूत्रद्वयस्य सम्बन्धमाह---

पढिमिह्नुग-तित्याणं, चरितो अत्थो वताण रक्खद्वा । मेहुणरक्खद्वा प्रण, इंदिय सीए य दी सुत्ता ॥ ५९१९ ॥

'मथम-ततीययोर्नतयोः' प्राणातिपाता-ऽदत्तादानविरतिलक्षणयो रक्षणार्थं तीर्थकरानज्ञात-श्रीतोदकपरिभोगे तयोभिक्को मा मृदिति कृत्वा पूर्वसूत्रस्यार्थः 'चरितः' गतः, भणित इत्यर्थः । सम्प्रति त मैथनवतरक्षणार्थमिन्द्रियविषय-श्रोतोविषये दे सत्रे आरभ्येते ॥ ५९१९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्यै व्याख्या---निर्धन्थ्याः रात्रौ वा विकाले वा उचारं वा प्रश्रवणं वा विविश्वन्त्या वा विशोधयन्त्या वा अन्यतरः 'पराजातीयो वा' वानरादिकः 'पक्षिजातीयो 10 वा' मयूरादिकोऽन्यतरदिन्द्रियजातं 'परामृशेत्' स्पृशेत् , सा च निर्मन्यी तं च स्पर्शै 'स्राद-येत' 'सन्दरोऽस्य स्पर्शः' इत्यनुमन्येत, हस्तकर्मप्रतिसेयनप्राप्ता आपद्यते मासिकमनुद्धातिकं स्थानम् । इह निर्धन्थीनां परिहारतपो न भवतीति कृत्वा "परिहारद्राणं" ति पदं न पठनीयम् ॥

एवं द्वितीयसूत्रमपि व्याख्येयम् । नवरम्-अन्यतरस्मिन् 'श्रोतसि' योन्यादो वानरादिर-वगाहेत, सा च मैथनप्रतिसेवनप्राप्ता यदि स्वादयेत तैतश्चत्रर्गरुकमिति सत्रार्थः ॥

अथ भाष्यविस्तर:---

बानर छगला हरिणा, सुणगादीया य पसुगणा होंति । बरहिण चासा हंसा, कुकुर्डग-सुगादिणो पक्सी ॥ ५९२० ॥

वानराः छगला हरिणाः शनकादयश्च पशुगणा मन्तन्याः । वर्हिणश्चाषा हंसाः कुक्ट-ग्रुकादयश्च पक्षिण उच्यन्ते ॥ ५९२० ॥

जहियं तु अणाययणा, पासवणुचार तहिँ पडिकुर्छ । लहुगो य होइ मासी, आणादि सती कुलघरे वा ॥ ५९२१ ॥

यत्रैते पश्जातीयाः पक्षिजातीयाश्च प्राणिनः सम्भवन्ति तद् अनायतनमुच्यते, तत्र निर्प्रनथी-नामवस्थानं प्रश्रवणोश्वारपरिष्ठापनं च पतिकुष्टम् । यदि कुर्वन्ति तदा रुघुमासः, आज्ञादयश्च दोषाः । ''सई कुरुवरे व'' ति अक्तभोगिन्याध्य स्पृतिकरणं कुरुगृहे वा भ्रयस्तासां बान्य-25 वादिभिन्यनं कियते ॥ ५९२१ ॥ इदमेव व्याचछे---

> भ्रता-ऽभ्रत्तविभासा, तस्सेवी काति कलघरे आसि । बंधव तप्पक्सी वा, दहुणें लयंति लजाए ॥ ५९२२ ॥

१ °शाततदीयजीवादत्त-शीतो° कां । । २ °स्य सुत्रद्वयस्य व्याख्या-- निर्ध्रन्थ्याः चशब्दो वाक्योपन्यासे रात्री कां ।। ३ तत आपचते चात्रमांसिकमनुद्वातिकम्, चतुर्ग्रहक-मित्यर्थ: ॥ अथ कां • ॥ ४ °ड-स्यमादि रतामा • ॥ ५ °ण णयंति तामा • कां • ॥

मुक्ता-ऽमुक्तविभाषा, भुक्तमोगिन्याः स्मृतिकरणममुक्तभोगिन्याश्च कौतुकमुरपचेतेत्यर्थः । तथा "तस्सेवि" ति गृहवासे तै:-पश्जातीयादिभिः प्रतिसेविता काचित करूगृहे आसीत सा तान दृष्टा स्मृतपूर्वरता प्रतिगमनादीनि कर्यात । यदा तासां बान्धवास्तरपक्षिका वा सुद्ध-दस्ताहरोऽनायतने स्थितां तामार्थिकां हृष्टा रुज्जया भयः स्वगृहमानयन्ति ॥ ५९२२ ॥ किश्च---

आर्लिंगणादिगा वा. अणिहय-मादीस वा निसेविजा । एरिसगाण पवेसी, ण होति अंतेपरेसं पि ॥ ५९२३ ॥

ते पराजातीयादयस्तां संयतीमालिक्रेयः, सा वा संयती तानालिक्रेत्, एवमालिक्रनादयो दोषा मवेयः । अपि च-- एते वानरादयः खमावादेवानिमताः-कन्दर्पबहला मायिनश्च भवन्ति ततस्तरिनिभृत-मायिभिः सा कदाचिदात्मानं निषेवयेत । ईदृशानां च परा-पक्षजातीयानां 10 प्रवेशो राजोऽन्तःपरेष्वपि 'न भवति' न दीयते । कारणे पुनरन्यस्या वसतेरभावे तत्रापि तिहेयः ॥ ५९२३ ॥

> कारणें गमणे वि तर्हि, विविचमाणीएँ आगतों लिहेआ। गुरुगो य होति मासो. आणाति सती त स चेव ॥ ५९२४ ॥

कारणे तत्रापि स्थितानामुचारमुमी प्रश्रवणभूमी वा गत्वा 'विविश्चन्त्याः' परिष्ठापयन्त्या 15 बानरादिः समागच्छेत्, आगतश्च तामालिक्नेत्, सा च यदि 'लिह्यात' तं स्पर्श स्वादयेत् ततो गुरुमासः आज्ञादयश्च दोषाः, स्मृतिश्च सा चैव पूर्वोक्ता भवति ॥ ५२२४ ॥

अथ न खादयति ततः सा शद्धा, यतना चेयं तत्र कर्तव्या---वंदेण दंडहतथा. निग्गंतं आयरंति पद्धिचरणं ।

पविसंते वारिति य. दिवा वि ण उ काइयं एका ॥ ५९२५ ॥

'बेन्देन' दि-अपादिवतिनीसमुदायेन दण्डकहस्ता निर्गच्छन्ति. निर्गत्य च कायिकादिक-माचरन्ति, वानरादीनां च प्रतिचरणं कुर्वन्ति । ये तत्राभिद्रवन्ति तान् दण्डकेन ताडयन्ति, प्रतिश्रये च प्रविशतो निवारयन्ति । दिवाऽपि च कायिकामूमिम् 'एका' एकाकिनी न गच्छति ॥ ५९२५ ॥ व्याख्यातमिन्द्रियमूत्रम् । सम्प्रति श्रोतःमूत्रं व्याचष्टे---

एवं त इंदिएहिं, सोते लहुगा य परिणए गुरुगा।

बितियपद कारणस्मि, इंदिय सोए य आगाहे ॥ ५९२६ ॥ 25 एवं तावद इन्द्रियसूत्रे पायश्चितं विविश्चोक्तः । यत्र त पश्चातीयादयः श्रोतोऽवगाहनं कुर्वन्ति तत्र तिष्ठन्तीनां चतुर्रुषु । तेषु श्रोतोऽवगाहनं कुर्वाणेषु यदि सा सन्दरमिदमिति परिणता ततश्चतुर्गरु । द्वितीयपदे आगाढे कारणे इन्द्रिये श्रोतिस च परामर्श स्वादयेहणे । इदमुत्तरत्र भावयिष्यते ॥ ५९२६ ॥ कारणे एकाकिन्यास्तिष्ठन्त्यास्तावदिवं यतना---30

गिडिणिस्सा एगागी. ताहिँ समं णिति रत्तिमभयस्या ।

१ °वा कर्त्तव्या, ईंदरोऽनायतने स्थिताया मुक्तमोगिन्याः स्मृतिकरणम् अमुक्तमोगि-व्याश्च कौनकमृत्ययेतेत्यादि विस्तरेण वक्तव्यमित्यर्थः। तथा क्षं॰ ॥ २ ताइरो उपाश्चवे स्थिता सती 'बन्दे' कां० ॥

### दंडगसारक्खणया, वारिति दिवा य पेष्टंते ॥ ५९२७ ॥

गृहस्पनिश्रया कारणे काचिदेकािकती वसन्ती 'तािभः' अविरतिकािभः समं रात्री 'उनस्पर्स' प्रश्नवणींबारस्य न्युरसर्जनार्थं निर्पच्छति, निर्यन्ती च वानरादीतिभद्रवतो दण्डकेम संरक्षति, दिवा च प्रतिश्रयं 'पेरस्तः' प्रविदातो निवारयति ॥ ५९.२७॥ अधागाहकारणं व्याचेष्टे—

### अहाण सद्द आर्रिंगणादियाकम्मऽतिच्छिता संती । अचित्त विव अणिहत, कुछघर सङ्गादिंगे चेव ॥ ५९२८ ॥

कस्याध्यदार्थिकायाः सितिमेचोऽतिमिचो वा मोहोद्भवः सज्ञातस्तातो तिर्विकृतिकादिकायां मोहिषिकत्सायां कृतायामपि यदा न तिष्ठति तदाऽस्थाने शन्द्रभतिवद्भायां वसती सा स्थाप-नीया। ततो यत्राविरतिकालामाश्किहनादिकं क्रियमाणं दृश्यते तत्र स्थाप्यते। तथाऽप्यनुपरते मोहे पादकर्म करोति। तदप्यतिक्रान्ता सती यद् 'अचित्तं विम्यं 'हुण्डशिवार्यकं तेन प्रति-10 सेवयति। तथाऽप्यतिष्ठति योऽनिमृतस्तेनास्यानादिकं सर्वमपि कृत्या ततः कुरुकुगृहे मिग्नया आगृह्यासाया वा आलिकृतादिकं क्रियमाणं मेशते तस्मावे श्राद्धिकार्याः, तरपाति यथाभद्रिकाया अपि मेशते। प्रथममिन्द्रिये, प्रथात् श्रीतस्थिप यतनयेति॥ ५९२८॥

#### सूत्रम्---

नो कप्पइ निगांथीए एगाणियाए गाहावइकुँठं पिंडवायपडियाए निक्स्सित्तए वा पवितित्तए वा, बहिया वियारमृमिं वा विहारमृमिं वा निक्स्सित्तए वा पवितित्तए वा, एवं गामाणुगामं वा दूइजित्तए वा वासावासं वा वस्थए १५॥

एवं यावदेकपार्श्वद्वायिद्वत्रं तावत् सर्वाण्यपि स्त्राण्युचारयितच्यानि ॥ अथामीषां स्त्राणां २० सम्बन्धमाहः—

> बंभवयरक्खणद्वा, एमधिमास तु होंतिमे सुना । जा एमपाससायी, विसेसतो संजतीवरंगे ॥ ५९२९ ॥

ब्रह्मनतरक्षणार्थमनन्तरं सुनद्वयमुक्तत्, असून्यिः सुत्राणि यानदेकपार्श्वद्वाचिद्यनं तानत् सर्वाण्यापे 'एकाधिकाराणि' तस्येव ब्रह्मनतस्य रक्षणार्थमिभिषीयन्ते । ''विसेसओ संजई-25 वन्ते'' ति एतेषु सुत्रेषु किश्चिद् निर्मन्यानामपि सम्मवति, यथा—एँकाकिस्त्रस्; परं विशेषतः संयतीवर्गमिकिक्त्यासूनि सर्वाण्यापे द्रष्टस्थानि ॥ ५२२२ ॥

१ ° शोहे य सं - ॥ २ "आपे ज ग्रांत ताहे डॉडसिवेज" हति चूर्णी। "आहे ज ग्रह ताहे फुंडसिवेज" हति बिनोवचूर्णी ॥ २ व्याः आदिशास्त्रात् तह को । ॥ ४ 'कुळ अक्षाय वा पाणाप वा लिकका का । एतस्पात्रत्वारोवेन को टीका, हस्यता पत्रं १५६० टिप्पणी १ ॥ ५ 'वार्ष्याधिकार' बीति अवनित । किञ्च —"विसेरे जो - ॥ ६ एकपार्थ्यराविस्तृत्व को ॥

अनेन सम्बन्धनायातानामगीषां प्रथमसूत्रस्य तावद् व्याख्या—नो कष्पते निर्मन्थ्या एका-किन्या गृहपतिकुंकं पिण्डपातप्रतिज्ञयां निष्कमितुं वा मवेधुं वा, बहिविंचारम्मौ वा विहार-म्मौ वा निष्कमितुं वा प्रवेषुं वा, प्रामानुमामं वा 'द्रोतुं' विहर्तुं वर्षावासं वा वस्तुमिति स्त्रार्थः ॥ सम्प्रति निर्मुक्तिविक्तरः—

एगागी बबंती, अप्या त महत्वता परिचत्ता।

छहु गुरु छहुपा गुरुगा, भिक्ख वियारे वसहि गामे ॥ ५९३० ॥ एकाकिनी निर्मन्यी यदि भिक्षादी बजति तत आत्मा महाबतानि च तया परित्यकानि भवन्ति, स्तेनाचुपद्रवसम्भवात्। अतो भिक्षायामेकाकिन्या गच्छन्त्या छघुनासः, बहिविंबार्रम्सौ गच्छन्त्यां गुरुगासः, ऋतुबद्धे वर्षावासे वा वसति एकाकिनी गृह्णति चतुर्छेषु, मामानुमानमे-10 काकिनी द्रवति चतुर्गृह ॥ ५९३० ॥ इदमविशेषितं भायश्चित्तमुकत् । अथ विशेषितमाह—

मासादी जा गुरुगा, थेरी-खुड्डी-विमज्झ तरुणीणं । तव-कालविसिद्धा वा, चउसुं पि चउण्ड मासाई ॥ ५९३१ ॥

स्वैविराया एकाकिन्या भिक्षादो व्रजन्त्या मासल्यु, क्षुडिकाया मासगुरु, विनध्यमायाश्चतुर्लेयु, तरुण्याश्चतुर्ग्गर। अँथवा स्वविरा यदि एकाकिनी भिक्षायां याति ततो मासल्यु तपसा
16 कालेन च रुषुकन्, विहिर्विचारम्ये। विहारम्यो वा याति मासल्यु कालेन गुरुकम्, वसितं
गृह्णाते मासल्यु तपना गुरुकम्, मामानुमामं द्रवति मासल्यु तपना कालेन च गुरुकम् ।
क्षुडिकाया एवमेव चर्यु स्वानेच चर्वारे मासगुरूणि तपः-कालविशेषितानि कर्तव्याति ।
विमध्यमायाश्चतुर्थु स्वानेचु चर्वारि चर्जुर्ल्य्नित तपः-कालविशेषितानि । तरुण्याः स्वानचतुष्टवेऽपि तवेब तपः-कालविशेषितानि चस्वारि चर्जुर्गुरूणि ॥ ५२११॥ अथ दोषानाहा—

अच्छंती वेगागी, 'किं ण्हु हु दोसे ण इत्थिगा पावे । आमोसग तरुणेहिं, किं पुण पंथम्मि संका य ॥ ५९३२ ॥

किमेकाकिनी श्री प्रतिश्रये तिष्ठन्ती दोषान् न प्रामोति येगैवं भिक्षाटगादिकमेवैकाकिन्याः
मितिष्य्यते : इति शिष्येण पृष्टे सूरिराह—तत्राणि तिष्ठन्ती प्रामोत्येव दोषान् परम् आमोषकाः—सेनास्तरुणाः—युवानद्धोः कृता एकािकन्याः पिय गच्छन्त्या भूयांतो दोषाः, शक्का च
25 तत्र भवति— अवस्यमेषा दुःशीला येगैकािकनी गच्छिति ॥ ५९३२ ॥ किञ्च—

एगाणियाएँ दोसा, साणे तरुणे तहेत्र पिंडणीए । भिनस्वऽविसोहि महन्तत, तम्हा सवितिज्ञियागमणं ॥ ५९३३ ॥

एकाकिन्या भिक्षामटन्या पते दोषा भवन्ति —श्वानः समागत्य ददोत् , तरुणो वा कश्वि-दुपसर्गयेत् , प्रत्मनीको वा हन्यात् , गृहत्रवादानीतायां भिक्षायामनुषयुज्य गृह्यमाणायामेषणा-विद्युद्धिने भवति, कोण्टळ-विश्टरुपयोगादिना च महात्रतानि विराध्यन्ते । यत एते दोषाः खतः सद्वितीयया निर्मन्य्या भिक्षादौ गमनं कर्तरुपम् ॥ ५९३३ ॥ द्वितीयपदमाह—

असिवादि मीससत्थे, इत्थी पुरिसे य पूतिते लिंगे । एसा उ पंथ जयणा. भाविय वसही य भिक्खा य ॥ ५९३४ ॥

अधिवादिभिः कारणैः कदाचिदेकािकन्यपि भवेत् तत्रेयं यतना—आमान्तरं गच्छान्ती स्नीसार्थेन सह ब्रजति, तदमावे पुरुषसिश्रेण स्नीसार्थेन, तदपाधी सम्बन्धिपुरुषसार्थेन ब्रजति, अथवा यत् तत्र परिवाजकािदिलिकं पूजितं तद् विधाय गच्छति । एषा पथि गच्छतां यतना भणिता । आमे च प्राप्ता यानि साधुमावितानि कुलानि तेषु वसतिं गृह्णाति, मिक्षामि तेष्वेव 10 कुलेषु पर्यटिति ॥ ५९३४ ॥

### सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीए अचेलियाए द्वंतए १६॥

नो कल्पते निर्मन्थ्याः 'अचेलिकायाः' बस्नरहिताया भनितुम् । एष स्त्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्—

> वृत्तो अचेलधम्मो, इति काइ अचेलगत्तणं ववसे । जिणकप्पो वऽजाणं. निवारिओ होइ एवं तु ॥ ५९३५ ॥

अनेलको धर्मो भगवता प्रोक्त इति परिभाव्य कान्दिदार्थिका अनेलकलं 'व्यवस्वत' कर्तुम-भिरुषेत्, अतललिषेधार्थमिदं सूत्रं कृतम् । अनेलकत्वमतिषेधेन आर्थाणां जिनकस्पोऽपि 'प्वम' अनेनैव सूत्रेण निवारितो मन्तव्यः ॥ ५९३५ ॥ कृतः ! इलाह्—

> अजियम्मि साहसम्मी, इत्थी ण चए अचेलिया होउं। साहसमन्त्रं पि करे, तेणेव अइप्पसंगेण ॥ ५९३६ ॥ कुछडा वि ताव णेच्छति, अचेलयं किन्नु सई कुले जाया। चिकारंथुकियाणं, तित्थुच्छेओ दलम विनी ॥ ५९३७॥

'साध्वसे' भये तरणादिक्रतोपसर्पसमुखेऽजिते सति अचेलिका भविद्धं 'सी' निर्मन्धा न 25 शकुवाद् । अस भवति तदः 'तेनैव अतिससक्रेन' अचेलतालक्षणेन 'अन्यदिष' चतुर्थसेवादिकं साहसं कुर्याद् ॥ ५९३६ ॥ तथा—

कुरुटाऽपि ताबद् नेच्छत्यचेरुताय् किं पुनः कुले जाता 'सती' साध्वी ! । अचेरुतायति-पत्तानां चार्यिकाणां 'धिक्कार्युक्षितानां' लोकापवादजुगुप्सितानां तीर्थोच्छेदो दुर्कमा च वृत्तिर्भ-चति, न कोऽपि प्रमञ्जति न वा भक्त-पानादिकं ददातीत्यर्थः ॥ ५९३७ ॥

### गुरुगा अवेलिगाणं, समलं च दुर्गछियं गरहियं च ।

९ °न्ती सा कारणतः एकाकिनी प्रथमतः स्त्रीसार्थे कं ।॥ २ °रघुक्कि ° कं ।। °रमुक्कि ° मा॰ तारी॰ तामा॰ ॥ ३ °रघुकि ° कं ।। 'रमुक्कि भा॰ तारी॰ ॥

### होइ परपत्थणिजा, विद्यं अद्वाणमाईसु ॥ ५९३८ ॥

अत एव यबार्थका अवेलिका भवन्ति ततसासां चतुर्गुहकाः आज्ञादयश्च दोगाः । तबा चेकरहितां संगतीं 'समकां' मलदिग्यदेहां हृष्टा लोकः 'जुगुप्सतं 'जुगुप्सां कुर्यात्—वाः! कृष्टम्, इहस्रोके एवेदश्यवस्या परलोके तु पापतरा भविष्यति, 'गार्हितं च' गार्ही मववनस्य १ कुर्यात्—असारं सर्वमेतद् दर्शनमिति । अचेलिका च परस्य मार्थनीया भवति । अत्र द्विती-यपदमध्यादिष् विविक्तानां मन्तव्यम् ॥ ५९३८ ॥ अपि च—

> षुणरावित्त निवारण, उदिण्णमोहो व दहु पेल्लेजा । पिंडबंघो गमणाई. डिंडियदोसा य निगिणाए ॥ ५९३९ ॥

अचेलामार्थी दृष्ट्वा प्रवत्याभिपुसानामपि कुल्लीणां पुनराष्ट्रिक्यिति, प्रवत्यां न गृहीपुरि-10 लार्थाः । अन्यो वा कश्चित् निवारणं कुर्योत् — किमेनासां कापालिनीनां समीपे प्रवजितन ? इति । यद्वा कश्चिद्दरीर्णमोहस्तामपाष्ट्रतां दृष्ट्वा कर्मगुरुकतया प्रेरयेत् । साऽपि तत्रैव प्रतिबन्धं कुर्योत् प्रतिगमेनादीनि वा विदय्यात् । 'डिण्डिमदोषाक्ष' गर्भोलानिमभृतयो भयेषुः । यत् एते नामाया दोषा अतोऽचेल्या न भवितन्यम् । द्वितीयपदे संयत्योऽध्यनि सेनीविविका-स्रतो न किमपि वसं भवेत् , आदिशन्यत् सिक्तिचित्रा यक्षाविष्टा वा वस्ताणि परित्यमेत् , 15 एवमचेलाऽपि भवतीति ॥ ५९३९ ॥

सूत्रम्---

नो कष्पइ निग्गंथीए अपाइयाए हुंतए १७॥ नो कस्पते निर्भन्थ्याः 'क्यात्रायाः' यात्ररहिताया मनितृमिति सुत्रार्थः॥ अथ भाष्यम्—

गोणे साणे व्य वते, ओभावण खिसणा कुरुघरे य । णीसद्र खडयरुका, सुष्हाए होति दिहंतो ॥ ५९४० ॥

णीसङ्क खड्डयच्छा, सुण्डाए होति दिहुती ॥ ५९४० ॥ पात्रकमन्तरेण यत्र तत्र समुद्देशनीयम् ततो छोको स्थात् —यथा भीवत्र व चारि माम्रोति तत्रैवालक्ष्यरित, यथा वा श्वानो यत्रैव खरणमप्याहार रुमते तत्रैव तिस्वयो सुद्धे, एवमेता अपि गो-श्वानसहस्यो यत्रैव मामुवन्ति तत्रैव लोकस्य पुतः समुद्धिशन्त, अहां! अमूमिगींतरं श्वानमतं वा प्रतिपत्रमः, एवमपश्राजता भवति । "सिसणा कुळपरे य" ति तास्त्रपासुश्वाना थे हृद्धा तदीयकुळपृहे गत्वा छोकः सिसां कुर्यात्, यथा—पुण्यदीया दृहितरः स्त्रुपा वा याः पूर्व चन्द्र-सूर्येकिरणेरप्यस्प्रध्यात्रास्ताः साम्प्रतं सर्वछोकपुरतो गा इव चरन्त्यो हिण्डन्ते । युवमुके ते मुसत्ताः सगृहसानयन्ति । "नीरहं" अत्यर्थं च 'लादितं' भक्षणं लोकस्य पुरतः कुर्वाणासु लेको मुयात्—लहो ! बहुसक्का अमूः, स्रीणां च कज्ञा विमूपणं सा चैतासां नास्त्रीति । अत्र कजावा सुपाष्टपान्तो भवति । स च द्विषा—प्रशस्तोऽप्रशस्त्रश्वा ॥ ५९४० ॥

उचासणस्मि सुण्हा, ण णिसीयइ ण वि च भासए उचं। णेव पगासे भुंजइ, गृहइ वि च णाम अप्पाणं॥ ५९४१॥

१ °मनं-भूयो युहवासाभ्रयणं तद् अादिशब्दात् पार्श्वस्थादिगमनं वा बिदः को० ॥

यथा 'खुषा' वसून्त्रे आसने न निषीदति, नामि 'उत्तं' महता झब्देन आपते, न च मकारो भूमाने मुक्के, आत्मीयं च नाम 'गृहति' न मकटयति, एवं संवतीभिरिष भवितव्यव् ॥५९४१॥ अप्रश्नस्तसुषाद्रष्टान्तः पुनरवय्—

ं अहवा महापदाणि, सुण्हा ससुरी व इक्तमैकस्स । इस्तमाणामि विणासं, राजाणासेग पार्वती ॥ ५९४२ ॥

'अथवा' मकारान्तरेण खुपाइष्टान्तः कियते—'महावदानि' विक्वष्टतराणि बदानि खुपा श्वपुरश्चेकैकल परस्परं मवस्कान्तो यथा रूजानारोन विनाशं माम्नुतः तथा संयत्वपि निर्केच्या विनहयति हत्यक्षरार्थः । आवार्थस्त्वयम्—

प्रास्त विज्ञाहयस्स भज्जाए मयाए पुत्तेण से अहियाणि 'माय' ति काउं गंगं नीयाणि । इयरिहि मुण्हा-समुरिहि हास विद्वाहयं करेतिहि निक्षज्जरणजो निस्तेणि आरुहिचा अमिप्पाय-10 पुज्यगं विगिहतराहं पयाहं देंतिहि एकमेकस्स सागारियं पद्धप्पाहयं । दो वि विणद्वाहं । एवं निक्षज्जाए विणासो हुज्जा ॥ ५९४२ ॥ हितीयपदमाह—

पायांसह तेणहिए, झामिय वृढे व सावयभए वा । बोहिभए खित्ताह व, अपाह्या हुऊ बिह्यपदे ॥ ५९४३ ॥

पानस्यामाने, सेनकेन वा हृतेऽभिना वा ध्यामिते दकपूरेण वा ब्यूदे पाने, श्वापदमने 15 बोषिकभये वा शीत्रं पात्राणि परित्यत्रय नष्टा सती, क्षिप्तचित्रा वा आदिशब्दाद्र् यक्षानिष्टा वा 'अपात्रिका' पात्ररहिता द्वितीयपदे भवेत् ॥ ५२७३ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्मंथीए वोसट्टकाइयाए हुंतए १८॥ नो कल्पते निर्मन्थ्याः 'ब्युत्सृष्टकायिकायाः' मरित्यकदेहाया भवितुमिति सूत्राधः॥ अत्र भाष्यम्—

बोसटुकाय पेळ्ळण-तरुणाई गद्दण दोस ते चेव । दब्बावड अगणिम्मि य, सावयमय बीडिए वितियं ॥ ५९४४ ॥

युन्तावर्षं अपानास्य भ्रातास्य भ्रातास्य नाहित् नाहित् शरीर व्यक्तियः शरीर व्यक्तियः शरीर व्यक्तियः सम्बद्धार्य समयमित्रदेनाभिनवकायोसरीण सिता, तथासितायाधोदीर्णमोह्र्येगण-तरुणमहणाः यस्य एव 25 दोषा मन्त्रव्याः । द्वितीयपेदे तु ब्रच्यापदि अपिसम्बर्धे योषक्रमये योषक्रमये वा गाडतरे उपस्थिते ख्रुस्ट्रहकावाऽपि मवेत् ॥ ५९९४ ॥

स्वन्-

नो कप्पड़ निग्गंथीए बहिया गामस्स वा जाव सन्निवेसस्स वा उद्वं बाहाओ पगिन्झिय पगिन्झिय

१ °यपदमत्र भवति, कि पुनस्तत् ? इत्याह—द्रव्यापदि समुत्पद्मावाम् अक्रि कि ॥

सूराभिमुहीए एगपाइयाए ठिचा आयावणाए आयावित्तए।

कप्पइ से उवस्सयस्स अंतोवगडाए संघाडिपडिव-द्धाए पछंबियबाहि्याए समतऌपाइयाए ठिचा

आयावणाए आयावित्तए १९॥

नो करूरते निर्भन्थ्य बहिर्यामस्य वा यावत् सिलवेशस्य वा 'कद्भी' ऊर्द्धाभिसुली बाह्र 'भगृष्ठ भगृष्ठ' मकर्षेण गृहीता क्रुत्वेत्यर्थः सूर्याभिसुख्याः 'एकपादिकायाः' एकं पादमुर्द्धमा-कुष्ट्यापरमेकं पादं सुवि कृतवत्या एवंविधायाः सिल्वा आतापनयाऽऽतापित्वत् । किन्तु—-करूरते ''से'' तस्या उपाश्रयत्यानविभाज्ञायां प्रशन्धतनाहायाः समतलपादिकायाः स्थित्वा 10 आतापनया आतापित्वमिति सुत्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्—-

आयावणा य तिविहा, उक्तेसा मज्ज्ञिमा जहण्णा य । उक्तेसा उ णिवण्णा, णिसण्ण मज्ज्ञा ठिय जहण्णा ॥ ५९४५ ॥ आतापना त्रिविषा—उक्त्र्या मध्यमा जवन्या च । तत्रोत्क्र्या निपन्ना, निपन्नाः—द्यितो यां करोतीत्वर्थः । मध्यमा निषणस्य । जवन्या "ठिय" चि उद्धृक्षितस्य ॥ ५९४५ ॥ 15 पुनरेकैका त्रिविषा—

> तिविहा होइ निवण्णा, ओर्मेन्थिय पास तइयम्रुलाणा । उक्रोसकोसा उक्रोसमज्झिमा उक्कोसगजहण्णा ॥ ५९४६ ॥

या निषमस्पोत्क्रष्टाशापना सा त्रितिया भवति — उरक्रहोत्कृष्टा उरक्रष्टमध्यमा उत्कृष्टजयन्य। च । तत्र यद् अवाष्पुसं निषस्य आतापना कियते सा उरक्रृष्टोत्कृष्टा । या तु पार्श्वतः शयानैः २० क्रियते सा उत्कृष्टमध्यमा । या पुनरुजानशयनेन विषीयते सा 'तृतीया' उत्कृष्टजवन्या।।५९४६॥

> मज्ज्ञकोसा दुहओ, वि मज्ज्ञिमा मज्ज्ञिमाजहण्णा य । अहमुकोसाऽहममज्ज्ञिमा य अहमाहमा चरिमा ॥ ५९४७ ॥

१ वा, यावस्करणात् सेटस्य वा कर्यटस्य वा महम्बस्य वा इत्यादिपरिप्रहः, 'कर्ड्स' कां ।। २ उपाध्यस्य 'भन्तवेपडायां' वयहा नाम-पाटकस्तस्याभ्यन्तरे 'सङ्ग्रहीप्रहितं वद्यादाः' सङ्ग्रहीप्रहितं सङ्ग्रह्मित्र सङ्ग्रित्य प्रक्रियात् सङ्ग्रह्मित्र सङ्ग्रह्मात् वाहे-वाह्य यस्याः सम्प्रत्व स्थाः तथाः समत्व व तो पाते च समत्व प्राप्त स्थाः सङ्ग्रह्मित्र स्थाः स्थाः स्थाः समत्व प्राप्त सङ्ग्रह्मित्र सङ्ग्रह्मात्र स्थाः समत्व प्राप्त स्थाः एवंविध्याया आर्थिक्षात्र सङ्ग्रह्मात्र सङ्ग्रह्मात्र स्थाः समत्व प्राप्त स्थाः । एवंविध्याया आर्थिक्षात्र सङ्ग्रह्मात्र स्थाः । स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः । स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः । स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः । स्थाः स्थाः सङ्ग्रह्मात्र स्थाः स्थाः स्थाः स्थाः । स्थाः स्थाः सङ्ग्रह्मात्र स्थाः । स्थाः स्थाः सङ्ग्रह्मात्र स्थाः । स्थाः स्थाः । स्थाः स्थाः स्थाः । स्थाः । स्थाः सङ्ग्रह्मात्र स्थाः । स्

20

25

निषण्णस्य या मध्यमातापना सा त्रिधा--मध्यमोत्कृष्टा ''दुहुओ वि मज्झिम'' ति मध्य-ममध्यमा मध्यमज्ञवन्या च । ऊर्द्धस्थितस्य या जवन्या साऽपि त्रिधा-अधमीत्कृष्टा अधम-मध्यमा अधमाधमा च चरिमेति । अधमशब्दो जघन्यवाचकोऽत्र द्रष्टव्यः ॥ ५९४७ ॥

**ऐतासामिदं** खरूपम्-

पलियंक अद्ध उक्डुग, मी य तिविहा उ मज्झिमा होइ। तह्या उ हत्थिसंडेंगपाद समपादिगा चेव ॥ ५९४८ ॥

मध्यमोत्कृष्टा पर्यक्कासनसंस्थिता, मध्यममध्यमा अर्द्धपर्यक्का, मध्यमजघन्या उत्कटिका । क्रचिदादर्शे पूर्वार्द्धमित्थं दृदयते—"गोदोहकड पलियंक मो उ तिविहा उ मज्झिमा होइ" चि. तत्र मध्यमोत्क्रष्टा गोदोहिका, मध्यममध्यमा उत्कृटिका, मध्यमज्ञधन्या पर्यक्कास-नरूपा। मोशन्दुः पादपुरणे। एषा त्रिविधा मध्यमा भवति । या तः 'तृतीया' स्थितस्य 10 जवन्योत्क्रष्टादिभेदात त्रिधा भणिता सा जवन्योत्क्रष्टा 'हस्तिश्रुण्डिका' प्रताभ्यासपविष्टस्यैक-पादोत्पाटनरूपा, जघन्यमध्यमा 'एकपादिका' उत्थितस्यैकपादेनावस्यानम् , जघन्यजघन्या 'समपादिका' समतलाभ्यां पादाभ्यां स्थित्वा यद ऊर्द्धस्थितैराताप्यते ॥ ५९४८ ॥

कथं पनः शयितस्योत्क्रष्टातापना भवति ? इति उच्यते---

मञ्बंगिओ पतावो, पताविया घम्मरस्सिणा भूमी । ण य कमइ तत्थ वाओ, विस्सामी णेव गत्ताणं ॥ ५९४९ ॥

भमी निवन्नस्य सर्वाक्रीणः 'प्रतापः' प्रकर्षेण तापो लगति, धर्मरदिमना च मनिः प्रकर्षेण-अत्यन्तं तापिता, न च 'तत्र' मूमौ वायुः 'कमते' प्रचरति, न च 'गात्राणाम्' अज्ञानां विश्रामी भवति. अतो निपन्नस्पोत्क्रष्टातापना मन्तन्या ॥ ५९४९ ॥

अधाममां मध्यादार्थिकाणां काऽऽआतापना कर्त कल्पते ! इत्यत आह---

एयासि णवर्ण्ड पी, अग्रुणाया संजर्दण अंतिहा ।

सेसा नाणकाया. अट्र त आतावणा तासि ॥ ५९५० ॥ एतासां नवानामप्यातापनानां मध्याद 'अन्तिमा' समपादिकास्था आतापना संयतीनामन-जाता । 'शेषाः' अष्टावातापनास्तासां नानुज्ञाताः ॥ ५९५० ॥

कीहरो पनः स्थाने ता आतापयन्ति ? इति उच्यते---

पालीहिं जत्थ दीसइ, जत्थ य सेंहरं विसंति न जुवाणा। उग्गहमादिस सञा, आयावयते तहिं अजा ॥ ५९५१ ॥

यत्र प्रतिश्रयपालिकाभिः संयतीभिरातापयन्ती दृश्यते. यत्र च 'खैरं' खच्छन्दं यदानो न प्रविशन्ति तत्र सानेऽवप्रहा-ऽनन्तकादिभिः सङ्घाटिकान्तैरुपकरणैः 'सज्जा' आयुक्ता आर्थिका प्रलम्बतबाहुयुगळा आतापयति ॥ ५९५१ ॥

१ पतासां यथाकममिवं का । २ चुर्णिकता विशेषचूर्णिकता वैष एव पाठ शाहतोऽस्ति । तयाहि-"मिजिसमुक्तीसा मिज्सममिजिसमा मिज्यनजहका गोदोहिया उक्कडगा प्रत्यंका स्थासकाम" इति ॥ ३ °म्द डमयोरपि पाठयोः पाद' कां ।। ४ सहरं वयंति ण जुवाणा तामा ।।

किमर्थमक्महानन्तकादिसञ्जा ! इति चेद् कत आह-

क्षेज्छाएँ निषडिताए, वातेण सम्रद्धते व संवरणे । गीतरमजयणदोसा. जे बुसा ते उ पाविजा ॥ ५९५२ ॥

तस्या आतापयन्त्याः सरतरातपतम्पर्कपरितापितायाः कदाचिद् मूच्छी सङ्गायैत तथा च ठनिपतितायाः, वातेन वा 'संवरणे' प्रावरणे सम्रद्धते, अवश्रष्टानन्तकादिमिर्विना गोचरचर्या-यामयतनया मिन्दृष्टाय ये दोषास्तृतीबोद्देशके उक्तास्त्रान् मासुयात्, अतस्तैः माङ्गता आतापर्यते ॥ ५९५२ ॥

सैत्रम--

10

20

नो कप्पइ निगांथीए ठाणाययाय हुंतए २०॥
नो कप्पइ निगांथीए पडिमट्टाइयाए हुंतए २१॥
एवं नेसिक्जियाए २२ उक्कुडुगासिणयाए २३ वीरासिणयाए २४ दंडासिणयाए २५ छगंडसाइयाए २६
ओसंथियाए २७ उत्ताणियाए २८ अंबखुक्जियाए २९
एगपासियाए ३०॥

15 नैतंकरपते निर्मन्ध्याः स्थानायताया भवितुम्। एवं प्रतिमास्थायिग्या नैषधिकाया उत्कटि-कासनिकाया वीरासनिकाया दण्डासनिकाया रूगण्डशायिग्या भवान्युलाया उत्तानिकाया आमञ्जिकाया एकपार्थशायिग्या इति स्वाहरसंस्कारः ॥

अत्र भाष्यकारो विषयपतानि स्यास्यानयति---

उद्धहाणं ठाणायतं तु पडिमाउ होति मासाई । पंचेत णिसिजाओ, तासि विमासा उ कायन्त्रा ॥ ५९५३ ॥ वीरासणं तु सीहासणे व जह मुक्तजण्युक णिविहो । दंडे लगंड उनमा, आयत सुजाय दुण्टं वि ॥ ५९५४ ॥

स्थानायतं नाम ऊर्दूस्थानरूपमायतं स्थानं तद् बस्थामस्ति सा स्थानायतिका । केचित्तु "ठाणाइयाए" इति पठन्ति, तत्रायमधैः—सर्वेषां निषदनादीनां स्थानीनां आदिम्तमृद्धस्था-२० नत्त्, अतः स्थानानामादौ गच्छतीति खुत्पस्या स्थानादिगं तत् उच्यते, तथोगान् आर्थिकाऽपि स्थानादिगैति व्ययदिस्यते । प्रतिमाः मासिक्यादिकाः तासुं तिष्ठतीति प्रतिमास्थायिनी ।

र मुच्छाप विवक्षियाते, वातेण समुद्धिते व तानाः ॥ २ "म्रां—"णो कपा लिगंबीए अवायतिमा होयए। एवं तब्बे म्राता उवारेयन्या वाव उतावतात्यए।" इति चूर्णो विशेषकूर्णो व ॥ ३ वंदवितायेकादश स्वाणि। सम्बन्धा प्राप्ता प्रधानीमा वाववान नो कस्ति कोः ॥ ४ वंदवितायेकादश स्वाणि। सम्बन्धा प्राप्ता प्रधानीमा वाववान नो कस्ति कोः ॥ ४ विताये वाववान स्वाप्ता प्रदान स्वाप्ता स्व

"नेसज्जियाय" ति निषद्याः पञ्चेव भवन्ति तासां विभाषा कर्तव्या । सा चेयम---निषद्या नाम-उपवेशनविशेषाः, ताः पश्चविधाः, तद्यथा-समपादयता गोनिषधिका हस्तिशण्डिका पर्यक्राऽर्धपर्यक्रा चेति । तत्र यस्यां समी पादी पती च स्प्रशतः सा समपादयता. यस्यां त गौरिवोपवेशनं सा गोनिषधिका, यत्र पुताभ्यामुपविश्यैकं पादमुत्पाटयति सा हिस्तिग्रण्डिका, पर्यक्का प्रतीता, अधपर्यक्का यस्यामेकं जानुसुत्पाटयति । एवं विषया निषद्यया चरतीति नैष- 5 धिकी । उत्कटिकासनं तु सुगमत्वाद भाष्यकृता न व्याख्यातम् ॥ ५९५३ ॥<sup>9</sup>

वीरासनं नाम यथा सिंहासने उपविष्टो भून्यस्तपाद आस्ते तथा तस्यापनयने क्रतेऽपि सिंहासन इव निविष्टो मुक्तजानुक इव निरारुम्बनेऽपि यद आसी । दुष्करं चैतद, अत एव वीरस्य-साहसिकस्यासनं वीरासनमित्युच्यते, तद् अस्या अस्तीति वीरासनिका । तथा दण्डासनिका-रुगण्डशायिकापदद्वये यथाकमं दण्डस्य रुगण्डस्य चायत-कुक्तताभ्यामुपमा 10 कर्तव्या । तद्यथा--दण्डस्येनायतं-पादप्रसारणेन दीर्ध यद आसनं तद दण्डासनम् , तद अस्या असीति दण्डासनिका । रुगण्डं किल-दःसंस्थितं काष्टम् , तद्वत् कुडातया मस्तक-पाणिणकानां अति लगनेन प्रष्रस्य चालगनेनेत्यर्थः, या तथाविधाभिमहविशेषेण शेते सा लगण्डशायिनी । अवाद्धाखादीनि तु पदानि सुगमत्वाद न व्याख्यातानीति द्रष्टव्यम् । एते सर्वेऽप्यभिग्रहविज्ञोषाः संयतीनां प्रतिषिद्धाः ॥ ५९५४ ॥

पतान प्रतिपद्यमानानां दोषानाह---

जोणीखन्मण पेळ्ला, गुरुगा भ्रताण होइ सइकरणं। गुरुगा सर्वेटगम्मी, कारणें गृहणं व धरणं वा ॥ ५९५५ ॥

ऊर्द्धस्थानादौ स्थानविदोवे स्थिताया आर्थिकाया योनेः क्षोभो भवेत , तरुणा वा तथा-श्वितां दृष्टा 'मेरयेय:' प्रतिसेवेरन् । अत एवेतानभिमहान् प्रतिपद्यमानायास्तस्याश्चत्र्गरु । 20 भक्तभोगिनीनां च येन कारणेन स्मृतिकरणमितरासां कीत्रकं च जायेते । तथा वक्ष्यमाणसन्ने प्रतिषेधयिष्यमाणं सर्वेण्टकं तम्बकं यदि निर्प्रत्यी ग्रह्मति तदा चतुर्गुरु, स्मृतिकरणादयश्च त एव दोषाः । कारणे त तस्यापि महणं धारणं चानज्ञातम । एतचामस्त्रतमपि लाघवार्थं स्मृतिकरणादिदोषसाम्यादत्र भाष्यकृताऽभिहितमिति सम्भावयामः, अन्यथा वा सुधिया परिभाव्यम् ॥ ५९५५ ॥ 25

वीरासण गोटोही. मतं सब्दे वि ताण कप्पंति । ते पण पड़न चेट्टं. सत्ता उ अभिग्गहं पप्पा ॥ ५९५६ ॥

अनन्तरोक्तासनानां मध्याद् वीरासनं गोदोहिकासनं च मुक्तवा शेषाण्यद्भेत्थानादीनि सर्वाण्यपि तासां करपन्ते । आह-सूत्रे तान्यपि प्रतिषिद्धानि तत् कथमनुज्ञायन्ते ! इत्याह—'तानि पनः' शेषाणि स्थानानि चेष्टां प्रतीत्य करूपन्ते, न पुनरभिष्रहविशेषम् : 30 सूत्राणि पुनरभिमहं 'प्राप्य' प्रतीत्य प्रवृत्तानि, तत इदमुक्तं भवति — अभिमहविशेषादुर्द्ध-

१ वीरासनादीनि त पदानि विवणोति इसवतरणं कां॰ ॥ २ °यते अतो न प्राह्मा पतेऽ-भिग्रहा आर्थिकयेति । तथा बक्य कां ।।

25

स्मानादीनि संबतीनां न करपन्ते, सामान्यतः पुनरावश्यकादिवेखायां बानि किस्पन्ते सानि करपन्त एव ॥ ५९५६ ॥ परः प्राह—ननु चानिमहादिक्तपं तपः कर्मनिजैरणार्थयुक्तप् ततः किमेवं संस्तीनां तत् मतिबिच्यति ! उच्यते—

तवो सो उ अणुण्णाओ, जेण सेसं न छप्पति ।

अकामियं पि पेल्लिजा, वारिओ तेणऽभिग्गहो ॥ ५९५७ ॥

तपसादेव भगविद्गरनुज्ञातं येन 'होरं' ब्रक्सचर्यादिकं गुणकरचकं न कुप्यते । कबं पुनः होरं कुप्यते ! इत्याह—''अकामियं'' इत्यादि, दण्डायतादिखानखितामार्थिकां द्रष्टा किंध-दुदीर्णकर्मा ताम् 'अकामिकाम्' अनिच्छन्तीमपि 'मेरयेत्' मतिसेवेत । तेन कारणेन बारित एताइकसासामिश्रदः ॥ ५९५७ ॥ किञ्च—

> जे य दंसादओ पाणा, जे य संसप्पमा भ्रुवि । चिद्वस्सम्मद्विया ता वि, सहंति जह संजया ॥ ५९५८ ॥

इह द्विधा कायोस्तरी:—विद्यायानिभये चे । तत्राभिगवकायोस्तरीस्तासां प्रतिविद्ध इति कृत्वाऽभिषीयते—ये च दंश-मञ्जकादयः प्राणिनो ये च भुवि 'संसर्पकाः' सम्बरणशीखा उन्दुर-कीटकादयस्तैः कृतानुग्रद्वान् यथा संयताः सहन्ते तथा 'ता अपि' आर्थिकाश्रीहाका-15 योस्तरीस्तिता आवस्यकादिवेख्यां सम्बन्ध सहन्ते, तत पत्रं ता अपि कर्मनिर्वतं कुर्वन्ति ॥ ५९५८ ॥ आह—यदि उदीर्णकर्मणा तक्णादिना प्रेर्यमाणाऽपि सा संयती न सादयति ततः किमिति येनाभिग्रहविशेषण वहत्रा कर्मनिर्वतं स वार्थते ! उच्यते—

विसक्ता वंगचेरंती, श्रुजमाणी तु कादि तु । तहावि तं न प्यंति. थेरा अयसमीरुणी ॥ ५९५९ ॥

20 यथपि 'काचियु' आर्थिका घृति-बल्युका 'मुग्यमाना' प्रतिसेल्यमानाऽपि भावतो ब्रह्मचर्ये बसेत् तवापि 'स्वविराः' गौतमादयः स्रयः प्रवचनापयशः भवादभीत्वक्ता न पूजयन्ति, न प्रशंसन्तीलर्थः ॥ ५९५९ ॥ किञ्च —

तिब्बाभिग्महसंजुचा, थाण-मोणा-ऽऽसणे रता । जहा सुन्त्रंति जयओ, एगा-ऽपेगविहारिणो ॥ ५९६० ॥ रुजं बंभं च तित्यं च, रबसंतीओ तवीरता । गच्छे बेब विसन्त्रंती, तहा जणसणाविहिं ॥ ५९६१ ॥

तीत्रैः-ह्रव्यादिविषयैरिभिप्रदेः संयुक्ताः, स्थान-मीना-ऽप्रताविह्नोषेषु तताः, 'प्रता-ऽनेकवि-हारिणः' केचित् प्रकाकिनिहारिणो जिनकिश्कादय इत्यर्थः, केचिचानेकिनहारिणः स्यविर-कश्यिका हत्यर्थः, प्रवेविधा यतयो यथा ग्रुध्यन्ति तथा निर्मन्थ्योऽपि ठ्यां व्रक्षमर्थे तीर्बे ३)च सुचोक्कविधिना रक्षन्त्यः 'तपोरताः' साध्यायादितयःकर्मेश्रयणा गण्छ एव चसन्त्योऽनश्च-

र 'च्यते ? किं तासां कर्मनिर्जरया न कार्यम् ? उच्य' कं॰ ॥ २ च । उमयोरिषे स्वकपमितम् — सो उस्सम्मो दुविहो, चेट्टाए कमिमवे य नायच्यो । निक्कायरियार् पदमो, उवसम्मऽभिञ्जंजने बीजो ॥ ( जाय० निर्यु० गा० १४५२ ) तजाभि॰ कं॰ ॥

25

नादिभिर्वचोचितैसापेभिः शुञ्जन्ति, न तीनैरिमग्रहैः ॥ ५९६० ॥ ५९६१ ॥ व्यपे च— जो वि दाहिषणो हुजा, इत्यिचिंघो तु केतली । वसते सो वि गच्छम्मी, किन्न त्यीवेदसिंघणा ॥ ५९६२ ॥

वसत सा वि गच्छान्या, किन्नु त्वावदासचणा ॥ ५५६२ ॥ बोऽपि 'दम्पेन्थनः' भस्रसात्कृतवेदमोहनीवकर्मा 'स्नीचिहः' बहिःसीळ्झणळसितः केवली भवति सोऽपि गच्छवासे वसति किं पुतर्वा संगती स्नीवेदेन सेन्यना है, सा मुतर्स गच्छे ऽ वसेदिति भावः ॥ ५९६२ ॥

यदप्युक्तम्—'यदि न स्नादयति ततः को नाम तत्या अभिग्रहमहणे दोषः !' तदप्य-युक्तम्, प्रतितेन्यमानाया आसादनस्य यादच्छिकत्वात् । कथम् ! इति चेद् उच्यते—

अलायं षड्डियं ज्झाई, फुंफुना इसहसायई । कोवितो वडती बाढी, इत्थीवेदे वि सो गमो ॥ ५९६३ ॥

कोवितो बहुती बाही, इत्यीवेदे वि सो गमी ॥ ५९६३ ॥ 10 'अलातम्' उल्मुकं 'घट्टितं' वालितं सद् यथा 'ध्यायति' मज्वलति, यथा वा फुस्फुका घट्टिता 'हसहसायति' सृतं दौष्यते, यथा वा व्याधिरपध्यासेवनादिना कोषितो वर्धते, स्वीवेदस्यापे स एव गमो मन्तव्यः, सोऽपि घट्टितः प्रज्वलतीत्यर्थः । अतो यादच्छिकमासावनमिति॥५९६३॥ आह—संयतीनां प्रतिषद्धा अमी अभिग्रहाः परं संयतानां का वार्ता ! अतोच्यते—

कारणमकारणिम य, गीयत्थिम य तहा अगीयिम । एए सब्वे वि पए, संजयपनको विभासिका ॥ ५९६४ ॥

यानि एतानि खुत्युष्टकायिकेत्वादीनि पदान्युक्तानि तानि 'कारणे' सिंहादिभिरिभम्तृतस्य देवलाकम्पनिनिमंत् वा गीतार्थस्यागीतार्थस्य वा कल्पन्ते । अकारणे पुनरगीतार्थस्य न कल्पन्ते । अकारणे पुनरगीतार्थस्य न कल्पन्ते । अवेक्स्तादिकमापे गीतार्थस्य जिनकस्यं प्रतिपद्यमानस्य कल्पते । एवं संयतपक्षे 'एतानि' अवेक्स्तादीनि सर्वाण्यपि 20 पदानि विभाषयेत् ॥ ५९६४ ॥

सूत्रम्-

नो कप्पइ निग्गंथीणं आकुंचणपद्दगं धारित्तए वा परिहरित्तप् वा । कप्पइ निग्गंथाणं आकुंचणपद्दगं धारित्तप् वा परिहरित्तप् वा ३१ ॥

पवं वावव् दास्ट्ण्डकसूत्रम् ॥ अभानीपां सृत्राणां सम्बन्धमादः— वंभवयपालगङ्गाः, तहेव पद्दाद्या उ समणीणं । विद्यपदेण जर्दवं, पीडम-फलए विवजित्ता ॥ ५९६५ ॥

१ 'भिः अयबद्धचनामाच्याचेव 'ग्रुप्यन्ति' कर्ममठायमातो निर्मेठीनवन्ति न तीवे' को॰ ॥ २ 'कत्य-प्रामादिवश्चैः प्रदेशातायनाम्बल्बस्थ्वीनि चदस्युकानि तानि 'कारणे' सिहादिनिर्मिश्चलस्य तष्टुरयोषह्वग्रसमननिर्मित्तं वा कं०॥ १ 'बिभायवेत्' वधासन्त्रवं प्रतिपादवेत् ॥ ४९ ६४॥ कं० ॥

यथा ब्रह्मनतपालनार्थमचेलत्वादीनि न कत्यन्ते तथा ब्रह्मचर्यरक्षणार्थमेन अमणीनां पद्यदयोऽपि दारुदण्डकान्तां न करुपन्ते । द्वितीयपदे तु यतीनां करुपन्ते परं पीठ-फलकानि वर्जियत्वा,
तानि साधूनामपवादमन्तरेणापि करुपन्त एवेत्यर्थः । अत एतेषां सूत्राणामारम्भः ॥ ५९६५ ॥
अनेन सम्बन्धेनायातानार्मापां प्रथमसूत्रस्य व्याख्या—नो करुपते निर्भन्धीनाम् 'आकुइचनप्रद्रं' पर्वेस्तिकापद्रं धारयितुं वा परिहर्तुं वा । करुपते निर्भन्धानामाकुखनपद्रं धारयितुं
वा परिहर्तुं वेति सत्रार्थः ॥ अथ आव्यम—

गम्बो अवाउडचं, अणुवधि पित्रमंथु सत्थुपरिवाओ । पद्ममजालिय दोसा. गिलाणियाए उ जयणाए ॥ ५९६६ ॥

वैर्थितिकापट्टं परिद्रभानामार्थिकां दृष्ट्वा होको बृथात्— अहो ! अस्याः कियान् गर्वो यदेवं 10 महेलाऽपि मवन्ती पर्वेतिकां करोति । अपावृता वा पर्येतिकां कुनीणा भवेत् । "अणुविह" । जिय उपकारे वर्तते स उपिक्टक्यते, स च तासापुर्यकारं नायानीति कृत्वाऽनुप्रिः । उभय-कालं प्रत्युपेक्षमाणे च तस्मिन् सुत्रार्थपरिमन्यः । शास्तुश्च-तीर्थकृतः परिवादः, यथा— गृनमसर्वज्ञोऽसो येनतासां पर्यक्तिकापट्टो च मतिषिद्धः । द्वितीयपदे या पंत्रती स्वित्रिरा काता वा तथा 'यतन्या' अस्पमागारिके पर्यक्तिकापट्टः परिधातस्यः, उपरि चान्यत् मादर्याण्यम् । 15 कारणे च गृक्षमाणे अस्पमागारिके पर्यक्तिकापट्टः परिधातस्यः, जालसद्दरे नु द्युपिरदोषाः । पर्वं निर्मन्यानामयकार्ये पर्यक्तिकाप्तः कृत्योणानां चतुर्केषु गर्वोदयश्च त एव दोषाः ॥ ५०.६६ ॥ कृत्येण प्रनर्थ विधिः—

थेरे व गिलाणे वा, सुत्तं काउम्रुवरिं तु पाउरणं । सावस्त्तए व वेट्टो, पुट्वकतमसारिए वाए ॥ ५९६७ ॥

२० सूत्रपौरुषाम् उपरुक्षणस्त्राद् अर्थपौरुषी च 'कतुँ' शिष्याणां दातुमि,यर्थः स्विते । स्तानो वा वाचनाचार्यः पर्यक्तिकां कृत्वा उपिर प्राष्ट्रण्यात् । उत्तरार्द्धं पश्चाद् व्यास्यास्यते ॥

स च पर्थस्तिकापट्टः कीदशः ? इत्याह---

फल्लो अचित्तो अह आविओ वा, चउरंगुळं वित्थडो असंघिमो अ । विस्सामहेडं त सरीरगस्सा, दोसा अवृहंभगया ण एवं ॥ ५९६८ ॥

१ 'न्ता वक्ष्यमाणाः पदार्थाः न करपन्ते । यतीनां तु ते पद्दादयः "विद्यपदेण" नि विभक्तिव्यत्ययात् द्वितीयपदे प्राप्ते सति करपन्ते परं पीठ' कं । । २ 'मीयां स्त्राणां मध्यात् मयमस्त्रस्य तावद् व्याक्या — नो करपते निर्मन्यीनाम् 'आङ् अनपटः' पर्यन्ति-कापटः, कोऽषः ' सूत्रे नपुंसकत्वनिर्देशः प्राष्ठतत्वात्, सः 'धारियतुं ना' लसस्तायां स्वापितुं 'पिद्वतुं वा' परिमोद्धम्, न करपते इति सरमन्धः ॥ इत्यं निर्मन्यीविषयं निषेधस्त्रमभिधाय सम्प्रति निर्मन्यविषयं विधिस्त्रमाह—"कप्पद्द" इत्यादि, करपते निर्मम्याना" का ॥ १ निर्मन्यी यदि परिस्त्रापद्दं ग्रुक्काति परिभुद्धे वा तदा चतुर्युरुकाः। तथा पर्यं का ॥ ४ नी नुष्डसभावानामिप परिस्त्रस्य स्विति वा तया का स्वित्रस्य।

फहाद जात: फील: सौत्रिक इत्यर्थ: "अचित्रः" अकर्ब्र: । अथ सौत्रिको न प्राप्यते तत आविको वा । स च चतुरङ्गरुं 'विस्तृतः' पृथुरुः 'असन्धिमध्य' अपान्तराले सन्धिरहितः, एवंत्रिषः पर्यस्तिकापटः शरीरस्य विश्रामहेतोर्गृद्धते । ये चावष्टम्भगतीः "संचरकंशहेहिय" (ओधनिर्यु० गा० ३२३) इत्यादिका दोषास्तेऽपि 'एवम्' आकुश्चनपट्टे परिधीयमाने म भवन्ति ॥ ५९६८ ॥

सत्रम---

नो कप्पइ निग्गंथीणं सावस्सगंसि आसणंसि आस-इत्तए वा तुयदित्तए वा। कप्पड निग्गंथाणं सावस्त्रयंति आसणंति आस-इत्तए वा तहियत्तए वा ३२॥

सावश्रयं नाम-यस्य प्रष्रतोऽबष्टम्भो भवति एवंविधे आसने निर्मन्थीनां नो कल्पते आसितं वा स्वर्ग्वर्तितं वा । कल्पते निर्मन्थानां सावश्रये आसने आसितं वा त्वम्बर्तितं वा । निर्मन्थ्यस्त ताहरो आसने यदि उपविशन्ति शेरते वा तदा त एव गर्वादयो दोषाश्चतर्गरु च प्रायश्चितम् । द्वितीयपदेऽस्पसागारिके स्थविरा ग्लाना वा उपविशेत । निर्धन्थानामैपि न करपते । यदि . उपविशन्ति तदा चतुर्रुषु । सूत्रं तु कारणिकम् ॥ तदेव कारणमाह--

''सावस्सए'' इत्यादि पश्चार्द्धम् । यो बृद्ध आचार्यः सः 'पूर्वकृते' गृहस्यैः स्वार्थे निष्पादिते सावश्रयेऽप्यासैने उपविष्टः 'असागारिके' एकान्ते 'बाचयेत' विनेयानां वाचनां दबात्॥ ५९६७॥

सत्रम---

नो कप्पड़ निग्गंथीणं सविसाणंसि पीढंसि वा 20 फलगंसि वा आसइत्तए वा तुयद्वित्तए वा । कप्पइ निग्गंथाणं सविसाणंसि पीढंसि वा फलगंसि वा आसडत्तए वा तयत्तिहए वा ३३॥

सविषाणं नाम-यथा कपाटस्योभयतः शृहे भवतः एवं यत्र भिसिकादौ पीठे फरूके वा विषाणं-श्वक्तं भवति तत्र निर्भन्यीनामासितं वा शयितं वा न कल्पते । निर्भन्थानां त ०४ करुपते। निर्मन्थ्यस्त सविषाणे पीढे फरूके वा यद्यपत्रिशन्त शेरते वा तदा चतुर्गरु आज्ञादयश्च दोषाः ॥ तथा----

१ फाल्यः इति चुर्णौ विशेषचुर्णौ च ॥ २ एतदनन्तरम् ग्रन्थाग्रम् — ७००० कां॰ ॥ ३ °मपि सावश्रमे जासितं न क' का ॥ ४ 'सने सिंहासनापरपर्याये "बिट्टो" सि उप' का ॥ ५ भा० विनाडन्यत्र-वा त्वावितं वा न कां ।।

सविसाणे उड्डाहो, पाकम्मादी य तो पडिकुई । वेरीए वासासं, कप्पड छिण्णे विसाणम्मि ॥ ५९६९ ॥

सिबिशो आसने उपविश्वन्त्यामार्थिकायामुङ्काहो भवति, पादकर्मादयस्य दोषाः सम्मवन्ति, ततः मैतिकुष्टं सन्नोपवेशनिमिति गम्यते । द्वितीयपदे वर्षाम्य पीठ-फरुकहुर्कभतानां सविषाणमपि ठ ग्रुवते, तस्य च विषाणं छित्त्वा परिष्ठाप्यते । एवं छिन्ने विषाणे स्वविरायां अन्यस्या बा करुपते ॥ ५९६९ ॥

> जं तु न लम्भइ छेत्तुं, तं बेरीणं दलंति सनिसाणं । छायंति य से दंढं. पाउंछण महियाए वा ॥ ५९७० ॥

यत् 'तु' पुनश्केतुं न रूभ्यते ततः सविषाणमपि तदासनं खविरसाध्वीनां साधवः प्रयच्छन्ति, 10तदीयं च दण्डं पादमोन्छनेन घनं छादयन्ति, तेन वेष्टयिक्ता स्यूटनरं कुनैन्तीत्यर्थः; सृविकया वा परिवेष्टयन्ति । निर्मन्यानां सविषाणमपि करूपते ॥ ५९७० ॥ कतः ! इत्याह्न---

> समणाण उ ते दोसा, न होंति तेण तु दुवे अणुण्णाया । पीढं जासणहेजं, फलगं पुण होइ सेजहा ॥ ५९७१ ॥

श्रमणानां पुनः 'ते' पादकर्मादयो दोषा न भवन्ति ततः 'द्वे अपि' पीट-फल्के सविषाणे 15 अप्यनुज्ञाते । तत्र पीठमासनहेतोः फल्कं पुनः 'शय्यार्थे' शयननिमित्तं वर्षाषु गृह्यते ॥ ५९७१ ॥ अथ किमर्थे वर्षाषु तत्रोपवेशनं शयनं वा क्रियते ! हत्याह् —

> कुष्कण आय दयद्वा, उज्ज्ञायगमरिस-नायरक्सद्वा । पाणा सीतल दीहा, रक्लद्वा होइ फलगं तु ॥ ५९७२ ॥

आद्रांयां मूमी स्वाप्यमानाया निषवायाः कोथनं भवति, शीतकायां व मूमावुगविशतां 20 धान्यं न जीवेति ततो ग्लात्वेत आत्माविराधना, 'दयार्थं व' जीवदयानिमित्तं वर्षोद्ध सूमी नोपवेष्टव्यस्, ''दज्जाव्यां'' ति भूमेरार्द्रमावेव मलिनीमृतस्वोपचेर्जुपुप्यनीयता स्मात्, अशांसि वा क्षुप्रयेष्ठः, वातो वाऽधिकत्तरं मकुप्येत्, तत्त एतेषां रक्षार्थं पीठकं महीतव्यस् । तथा शीतकायां मूसी वहवः कुन्यु-पतकपस्वतः प्राणिनः सम्स्व्टेंद्यः ततो सूसी शयानानां तेषां विराधना भवति, दीर्षजातीया वा मूमोर्निगत्य दशेषुः, उपलक्षणमिदस्, तेनोपधिकोधना- 25 ऽजीर्णतादयोऽपि दोषा भवन्ति, एतेषां रक्षार्थं वर्षाद्ध कलकं गृक्षते ॥ ५९७२ ॥

सूत्रम्---

मो कप्पइ निग्गंथीणं सर्वेटगं लाउयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा । कप्पइ निग्गंथाणं सर्वेटगं लाउयं भारित्तए वा परिहरित्तए वा ३४ ॥

र 'म्रतिकुष्टं' मतिविद्धं संवतीनामनेन स्त्रेण सविवाणस्मासनस्य प्रहणसिति गम्ब

अस्य स्याख्या सुगमा । नवरम्---'सवेष्टकं' चालयुक्तं असाबुकं तद निर्धन्यीनां न करूपते । निर्धन्यानां त करूपते ॥ अत्र भाष्यम्---

ते चेव सर्वेटिंग, दोसा पादिंग जे त सविसाणे । अहरेग अपिकलेहा, बिहय गिलाणोसहद्रवणा ॥ ५९७३ ॥

त पत्र 'सबन्तेऽपि' सनालेऽपि अलाबमये पात्रे दोवा मन्तव्या से सविवाणे आसने ठ पादकर्मादय उक्ताः । द्वितीयपदे त धारयेदपि । तेत्राध्वनि घतं वा तेले वा सखेनैवापरिग-लदखते. ग्लानाया वा योग्यं तत्रीवधं प्रक्षिप्तमास्ते । तच सब्दन्तकं प्रवर्तिनी स्वयं सारयति । निर्मन्थानामपि निष्कारणे न कल्पते । यदि धारयन्ति ततोऽतिरिक्तोपकरणदोषः, सवन्तके च प्रत्यपेक्षणा न श्रध्यति । द्वितीयपदे ग्लानस्य योग्यमीवधं तत्र स्थापनीयमिति करवा प्रही-तब्यम् ॥ ५९७३ ॥ 10

सूत्रम्---

नो कप्पड़ निग्गंथीणं सर्वेटियं पादकेसरियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा । कप्पड निग्गंथाणं सर्वेटियं पादकेसरियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ३५॥

नो करुपते निर्श्रन्थीनां सब्दितका पाँदकेसरिका धारयितं वा परिहर्ते वा। करूपते निर्श्रन्थानां 15 सब्दिना पादकेसरिका धारियतं वा परिहर्ते वा ॥ अय केयं सब्दन्ता पादकेसरिका ! इत्याह-

लाउयपमाणदंडे. पहिलेहणिया उ अग्गए बद्धा । सा केसरिया भन्नइ, सनारुए पायपेइट्टा ॥ ५९७४ ॥

यत्रामिनवसङ्कटमुखे अलाबुनि हस्तो न माति तस्यालाबुनो यद् उच्चत्वं तत्प्रमाणो दण्डः कियते. तस्याग्रभागे बद्धा या प्रत्युपेक्षणिका सा पादकेसरिका सङ्कता भण्यते । सा च कारण-20 गृहीतस्य सनारुस्य पात्रस्य प्रत्यपेक्षणार्थं गृह्यते । तां यदि निर्भन्थ्यो गृह्वन्ति तदा चतुर्गरुः. सैव च प्रतिसेवनादिका विराधना । निर्मन्थानामध्यस्तर्गतो न कल्पते । द्वितीयपदे सनाल-मलावुकं तथा प्रत्यपेक्ष्य ततो सुखं कियँते ॥ ५९७४ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पड़ निग्गंथीणं दारुदंडयं पायपुंछणं धारित्तए वा परिव्रतिस्य वा । कप्पड निग्गंथाणं दारुदंडयं जाव परिहरित्तए वा ३६॥

१ तत्र सनाले तुम्बकेऽध्वनि घृतं वा तैलं वा सुखेनैय वृत्तं हस्तेन गृहीत्वा भूमाव-परि° कां ।। २ "पादकेसरिया णाम डह्रयं चीरं । असईए चीराणं दावए बज्यति" इति चूर्जी ॥ ३ वा। सूत्रे व हितीयानिर्देशः प्राकृतत्वात् प्रथमार्थे द्रष्ट्र यः ॥ अथ केयं का • ॥ ४ °यते, यतवर्थे साऽपि प्रहीतव्या ॥ ५९७४ ॥ कां• ॥ ५ ° द्वयं पायपंत्रकं भारित्तव वा परि° कां• ॥

अस ब्याख्या—यत्र दाहमयस्य दण्डस्याप्रभागे अर्णिका दशिका बध्यन्ते तद् दाहदण्डकं पादमोन्छनसुच्यते । तद् निर्प्रन्थीनां न कल्पते, निर्प्रन्थानां तु कल्पते ॥ अत्र भाष्यम्—

> ते चेव दारुदंडे, पाउंछणगम्मि जे सनालम्मि । दुण्ह वि कारणगहणे, चप्पडए दंडए कुआ ॥ ५९७५ ॥

वे सनाले पीत्रे दोषा उक्तास्त एव दाहदण्डकेडिप पादमोञ्छनके भवन्ति । 'ह्रयोरिप च' सनालपात्र-दाहदण्डकचोः कारणे निर्मन्यीनामपि महणं भवति । तत्र च महणे क्वते 'चप्पड-कान' चतप्पलान् दण्डकान् ऋयीत् ॥ ५९७५ ॥

### ॥ ब्रह्मरक्षापकृतं समाप्तम् ॥

मो कप्रकृतम्

सूत्रम्---

10

15

25

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अन्नमन्नस्स मोयं आइयत्तए वा आइमित्तए वा, नन्नत्थै गाढा-ऽगाढेसु रोगायंकेसु ३७॥

अस्य सम्बन्धमाह---

वंभवयपालणद्वा, गतोऽहिगारो तु एगपक्सम्मि । तस्सेव पालणद्वा, मोयाऽऽरंभो दुपक्से वी ॥ ५९७६ ॥

ब्रह्मव्रतपारुनार्थमेकस्मिन्-संयतीरुक्षणे पक्षे पूर्वसूत्रेषु योऽधिकारः स गतः, समर्थित इत्यर्थः । सम्प्रति द्व 'तस्वेव' ब्रह्मवतस्य पारुनार्थ 'द्विपक्षेऽपि' संयत संयतीपसृद्धयविषये मोकस्मृत्रारम्भः क्रियते ॥ ५९७६ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्यास्था—नो करुपते निर्धन्थानां वा निर्धन्यीनां वा 'अन्यो-न्यस्य' परस्परस्य मोकमापातुं वा आचितितुं वा । कि सर्वेथैव ! न इत्याह्ं—गादाः—अहि-तिप-विसूचिकादयः अगादाश्च—ज्वरादयो रोगातक्कासेम्थोऽन्यत्र न करुपते, तेषुं तु करुपत इत्यर्थः । एष सूत्रार्थः ॥ सम्प्रति निर्मुक्तिविस्तरः—

> मीएण अण्णमण्णस्स आयमणे चउगुरुं च आणाई । मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा भावसंबंधो ॥ ५९७७ ॥

'अन्योन्यस्य' संयतः संयतीनां मोकेन संयती वा संयतानां मोकेन निशाकस्य इति क्रत्वा रात्री यद्याचमति तदा चतुर्गुरु, आज्ञादयश्च दोषाः, मिध्यास्यं च भवेद् न यथावादी

१ पात्रे पादकर्मकरणादयो दोषा कं॰॥ २ 'त्थ आगाडा-ऽणाता' कं॰। एतलाशत्वतारेणैत कं॰ शिका, इस्कां टिप्पणी १ ॥ २ 'ह —आगाडाः-अहि-विष-विस्चिकादयः अनागाडाध-ज्वरा' कं॰॥ ४ 'वृत्त मोकमापातमाचिमितं वा परस्परस्य कर्य' कं॰॥

To 155

कश्रकारिति कृत्वा । यहा कथिदिभावधर्मा तद् निरीक्ष्य सिष्टवालं गच्छेत् — अहो ! अभी समस्य इति । उड्डाहश्च भोगिनी-चाटिकादिह्यापने भवति । विराधना च संयमस्यात्मनो वा भवति । तत्र संयमस्यात्मनो वा भवति । तत्र संयमस्याधना तेन स्पर्धेनैकतरस्य भावसम्बन्धे भवेत् , ततश्च प्रतिगमनादश्चे दोषाः । आस्मविराधना तु "विंतेइ दहुमिच्छइ" (गा० २२५८) इत्यादिकमण ज्वर-बाहादिका ॥ ५९७७ ॥ किथ् —

दिवसं पि ता ण कप्पइ, किम्रु णिसि मोएण अण्णमण्णस्स । इत्यंगते किमण्णं, ण करेज अकिचपडिसेवं ॥ ५९७८ ॥

दिनसेऽपि तावक करूपते क्योग्यस्य मोकेनाऽड्यमितुं किं पुनः 'निश्चि' रात्री !। 'इत्यक्कते हि' परस्परं मोकाचमनेऽपि कृते किं नाम तदकृत्यमस्ति यस्य प्रतिसेवैं। न कुर्याताम् !॥ ५९०८ ॥

बुतुं पि ता गरहितं, किं पुण घेतुं जें कर बिलांओ वा । घासपहड्डो गोणो, दुरक्खओ सस्सअन्मासे ॥ ५९७९ ॥

बक्तुमपि ताबदेतद् मोकाचमनं गर्हितं कि पुनः संयत्याः कराद् 'बिळाद् या' भगादित्यवैः मोकं प्रहितुष् ? । अपि च वासः-चारी तत्याक्षरणार्थं गौः मिवष्टः सन् 'सत्याश्यारो' धान्य-मूळे चरत् द्रको भवति, धान्यमदन् दुःखेन रक्ष्यत इत्ययैः, प्वमयमपि संयत्या मोकेनाचमन् 15 प्रसक्तः शेपामपि कियां कुवेन् न वारयितुं शक्य इति भावः ॥ ५९७९ ॥

दिवसओं सपनेखें लहुगा, अद्धाणाऽऽगाढ गच्छ जयणाए । रांच च दोहिं लहुगा, विद्दं आगाढ जयणाए ॥ ५९८० ॥ दिवसतः 'सपक्षेत्र' संयतः संयतानां संयती ॥ संयतीनां मोकेन यदि आवमति तदा चतुर्केषु । शैक्षाणां तदवलोकनादन्ययामावो मवेत् । गृहस्य-परतीर्थिकाश्चोड्डाहं कुर्युः ॥ <sup>20</sup> कृषम् ! इत्याह—

> अद्विसरक्ता वि जिया, लोए णत्थेरिसऽन्नधम्मेसु । सरिसेण सरिससोही. कीरङ कत्थाङ सोहेजा ॥ ५९८१ ॥

अहो । अमीभिः श्रमणकेरेवं मोकेनावमद्भिरस्थितरज्ञका अपि जिताः, असिंकोकेऽत्ये बहवी धर्मा विद्यन्ते परं कुत्रापि ईटशं शौवं न दृष्टम् । सदरोन च सदशस्य या शोधिः कियते <sup>25</sup> सा किं कुत्रचित् 'शोधनेत्' शुद्धं कुर्याव् ! अशुचिना धाव्यमानमर्श्युचि न शुष्यतीति भावः ॥ ५९८१ ॥

द्वितीयपदे अध्वनि वर्तमानस्य गच्छस्यापरस्मिन् वा आगाढे कारैंगे यतनया दिवा स्वपक्ष-मोकनाचमेत् । अथ रात्रौ निष्कारणे मोकेनाचमति ततश्चतुर्रुषु 'द्वाभ्यामपि' तपः-कारु।भ्यां

१ °दिकामविषयदशादशकानुसवनम् ॥ ५९७७ ॥ कं॰ ॥ २ °स्य सासु-साध्यीनां परस्पत्स मोके कं॰ ॥ ३ °वां तो सासु-साध्यीनती न कु? कं॰ ॥ ४ °ठाहेहिं। वास ताम॰ ॥ ५ °मृ?। "जे" इति पादपूर्णे। अपि कं॰ ॥ ६ °ग्रुचि कथं नु नाम गुध्य° कं॰ ॥ ७ °च्छे वस्यागणकाले यत्त कं॰ ॥

20

रुषु । ''रिपि दने वि रुहुन'' वि पाठान्तरम्, तत्र रात्रौ द्रवं-पानकमाचमनार्ये यदि परिवासयति ततश्चतुर्केषु, सम्चय-पनकसम्मूर्च्छनादयश्चानेकविधा दोषाः । आह च चृद्द-द्भाष्यकृत्—

र्रांच दवपरिवासे, ल्हुगा दोसा हवंतऽणेगाविद्दा । इति । वितीयपदे आगादे कारणे यतनया रात्राविष मोकेनाचमेद् द्रवं वा परिवासयेत् ॥५९८०॥ तत्राष्ट्रति द्वितीयपदं व्याचष्टे—

> निच्छुभई सत्थाओ, भत्तं वारेह तकरदुगं वा । फासु दवं च न लब्भह, सा वि च उच्चिद्वविज्ञा उ ॥ ५९८२ ॥

यदि अष्यिन प्रतिपन्नं गच्छं प्रत्यनीकसार्थवाहादिः सार्थाद् निष्काशयितं, भक्तं वा 10 वारयितं, यद्वा 'तस्करद्विकम्' उपि-शरीरस्तेनद्वयमुपद्रोतुमिच्छतिः तत्र कस्यापि साघोराभि-चारका विद्या समस्ति यथा परिजिपतया स आवर्त्यते, स च साधुस्तदानीं संज्ञालेषकृत्युतः, माशुक्तं च द्ववं तत्र न रुभ्यते, साऽपि चोच्छिष्टविद्या, ततो मोकेनाचम्य तां परिजपेत् ॥ ५९८२ ॥ अथागादपदं न्याहमाति—

अनुकडे व दुक्खे, अप्पा वा वेदणा खवे आउं। तत्थ वि स चेव गमो, उचिद्रगमंत-विजाऽऽस ॥ ५९८३ ॥

अखुक्तरं वा शूलदिकं दुःखं कस्याप्युस्तनम्, 'अल्पा वा वेदना' सर्पदशनादिरूपा सञ्जाता या शीष्रमायुः क्षिपेत्, ततस्त्रजापि स एव गमो मन्तन्त्रः, प्राशुक्तद्वाभावे मोकेनाचमेदि-त्यर्थः। तत उच्छिष्टं मम्नं विद्यां वा परिजय्य तं साधुं आशु-शीष्रं प्रगुणं कुर्यात् ॥ ५९८३॥ अत्र यतनामाह—

मत्तग मोयाऽऽयमणं, अभिगऍ आइण्ण एस निसिकप्पो । संफास,झाहादी, अमोयमचे भवे दोसा ॥ ५९८४ ॥

कायिकामात्रके मोर्क गृहीत्वा तेनाचमनं कर्तव्यम्, 'अभिगतत्व' गीतार्थत्याचीणेमेतत्, एष च निशाकत्य उच्यते, पानकामावेन रात्रावेव प्रायः क्रियमाणत्वात् । अय मोकमात्रकं विना मोर्क त्वपक्षतागारिकाद् गृहन्ति ततः संस्वरों ह्वाहादयो दोषाः । एवं रात्रौ मोकेनाचम-28 नीयम्, न पुनस्तदर्थं द्रवं स्वापनीयम् । द्वितीयपदे स्वापयेदिष ॥५९८॥ कथम् ! हत्वाह—

पिट्टं को वि य सेहो जह सरई मा व हुज से समा। जयणाएँ ठवेंति दवं, दोसा य भवे निरोहम्मि॥ ५९८५॥

यदि कोऽपि शैक्षः पिट्टं सरति, अतीव ब्युरसर्जनं करोतीत्वर्थः । स चाधापि मोकाचम-नेनामावित इति कृत्वा तदर्षं यतनया द्ववं स्थापयन्ति । सामान्यतो वा मा 'तस्य' शैक्षस्य 30 रजन्यामकस्माद् ब्युरसर्जनं भनेद् इति कृत्वा द्ववं स्थापयन्ति । अथ न स्थाप्यते ततः स राज्ञी संज्ञासम्यवे पानकाभौवे निरोषं कुर्योत् , निरोधे च परिताय-मरणादयो दोषा भवेयुः ॥५९८५॥

र पा वश्यमाणलक्षणया रात्रा कं ।। २ भावे संज्ञाया वेगस्य निरोधं कं ।। ३ पर-महादुःस-मर कं ।।

एवं ताबदाचमने भणितम् । अथापिवतां दोषानाह-

मोयं तु अञ्चनसस्त, आयमणे चउगुरुं च आणाई। मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा देविदिद्वतो ॥ ५९८६ ॥

अन्योन्यसं मोकं यदि आपिचति तदा चतुर्गेत, आज्ञादयश्च दोषाः, मध्यालं च सागा-रिकादिसदवरुकोषय गच्छेत, उज्जादो वा मवेत, विराधना च संयमस्यात्मनो वा भवति । 5 तत्र च देवीदद्यान्तः ॥ ५९८६ ॥ तमेवाहः—

> दीहे ओलंहभावित, मोयं देवीय पित्रओ राया । आसाय पुच्छ कहूँणं, पिडसेवा ग्रुच्छिओ गलितं ॥ ५९८७ ॥ अह रक्षा त्रंते, धुंक्खन्गहणं तु पुच्छणा विज्ञे । जह सुक्खमस्थि जीवह, खीरोण य पित्रओ न मुजो ॥ ५९८८ ॥

ण हु अवस्थारय जावक, सारण य पाजमा न मजा । १२८८ । गण्या गाया महाविसेणं अहिणा सहजो । विज्ञेण मणियं—जह परं मोयं आह्यह तो न मरह । तओ देवीतणयं ओसहेंहिं वासेकण दिलं । तेण बोवाबसेसं आसाइयं । तओ पउणो पुच्छह—किं ओसहं ! तिहिं कहियं । सो राया तेण वसीकओ दिया रिंच च पडिसेविडमारद्धो । देवीए नायं—'मजो होहिइ' ति मुक्कं कप्पासेण सारवियं । अवसाणे नीसहो जाओ मरिउमारद्धो । विज्ञेण भणियं—जह एयस्स चेव मुक्कं अलिय तो जीवइ । 15 तीए मणियं—अलिय । खीरेण समं कढेउं दिसं । पउणो जाओ ॥

अधाक्षरगमनिका—'दीर्घेण' अहिना मक्षितो राजा । देव्याः सम्बन्धि मोकमौषधमावितं पायितः । तत आखादे ज्ञाते पृच्छा कृता । ततः कथनम् । तेतो दिवा रात्री च मितिसेबां मूर्चिळतः करोति । प्रमूतं च शुक्रं गलितम् ॥

'अथ' अनन्तरं राज्ञि मरणाय त्वरमाणे देव्या गुक्रमहणम् । वैद्यस्य प्रच्छा—यदि २० गुक्रमित ततो जीवति । एवं कथिते क्षीरेण समं तदेव गुक्रं पायितत्वतो न मृतः । एवमेव संयत्याः मोकेन पीतेन साधुरिष वशीक्रियेत, वशीक्रतश्चावमाषेत, प्रतिगमनादीनि वा कुर्योत् , तस्माद् नाऽऽपातव्यम् । कारणे पुनराचमनमाषानं वा कुर्योत् ॥ ५९८७ ॥ ५९८८ ॥

तथा चाह---

सुत्तेणेवऽववाओ, आयमइ पियेज वा वि आगाढे । आयमण आमय अणामए य पियणं त रोगम्मि ॥ ५९८९ ॥

आयमण आमय अणामए या प्यणा तु रागाच्मा। ५९८५ ॥ सुत्रेणैवापवादो दर्श्वते—''आगाँढे रोगातक्के आचमेत् आपिवेद्या'' इति यदुक्तं सूत्रे तत्र 'आचमनं' निर्केषनम् 'आमये' रोगे 'अनामये च' निशाकरूँ मवति ! पानं तु रोग एव

१ 'अन्योग्यस्य' सापुः संयत्याः संयती च साधोः सत्कं मोकं कां ॥ २ ओसहरचितं, मोयं तामाः कां । । चूर्णिकृता विद्रोषचूर्णिकृता वाधमेव पाठ आरतोऽसि । तपाहि—"ओसहरचियं देवीव तपापं मोयं विष्णं दिते ॥ २ 'इटां, अरसेवा तामाः । एतत्वाठाउदारो व माः कां ० टीका, दश्यतं टिप्पणी ५ ॥ ४ सुक्कटुवणं तु तामाः ॥ ५ ततः 'असिसेवा' दिवा माः कां ० ॥ ६ 'याहे उपरु-सृणस्वाद् अनागाहे च रोगा' कां ॥ ७ 'व्यं मच्चरिक्षपवादी वा मागुक्कनुव्यो मच' कां ॥

सम्भवति नान्यदा ॥ ५९८९ ॥ तत्रायं विधिः---

### दीहाइयणे गमणं. सागारिय प्रच्छिए य अइगमणं ।

तासि सगारज्ञयाणं, कप्पइ गमणं जिंह च भयं ॥ ५९९० ॥

दीर्घेण कस्यापि साथोः अदने-भक्षणे कृते खपक्षमोकामावे संयतीयतिश्रये गमनम् । वतत्त्वासां सागारिके पृष्टे सति 'अतिगमनं' प्रवेद्यः कर्तव्यः । अत्र संयत्याः सर्पद्यानं जातं ततत्त्वासां सागारिकयुक्तानां साधुवसती गमनं करुपते । यत्र च भयं तत्र दीपको महीतव्य इति वाक्यदोषः । पृष्टं सङ्ग्रद्याधासमासार्थः ॥ ५९९० ॥ साध्यतमेनामेव विवृणोति—

### निद्धं भ्रुत्ता उववासिया व वोसिरितमत्तगा वा वि ।

सागारियाइसहिया. सभए दीवेण य समहा ॥ ५९९१ ॥

अहिना शिक्तः साषुः लयक्ष एव साधूनां मोकं पाय्यते । अथ तेषां नास्ति मोकम्, कुतः ? इत्याह—िक्वयमाहारं तिह्वसं भुक्ता उपयासिका या ततो नास्ति मोकम्, अथवा व्युत्सप्टमायकास्ते, तत्क्षण एव मोकं रहुत्सप्टममरं च नास्तीति भावः, ततो निर्मन्धीनां मतिश्रये गान्तव्यम् । यदि निर्मयं तत एवमेव गम्यते । अथ समयं ततः सागारिकादिना केनचिद् हितीयेन दीपकेन च सहिताः सशब्दा गम्छितः । ततः संयतीवसितं प्रविशन्ते यदि नैषेपिकी । अर्थे । १९९१ ॥ तथा—

### तुसिणीए चउगुरुगा, मिच्छत्ते सारियस्स वा संका । पडिबुद्धबोहियासु व, सागारिय कअदीवणया ॥ ५९९२ ॥

तूष्णीका अपि यदि प्रविश्वान्त तदा चतुर्गुरु । सिध्यात्वं वा कश्चित् तूष्णीभावेन प्रविश्वतो हृष्ट्वा गच्छेत् । सागारिकस्य वा शङ्का भवति—किमत्र कारणं यदेवममी अवेलायामागताः है थण्डित, 'स्तेना अमी इति वा मन्यमागो प्रहणा-ऽऽक्षणादिकं कुशीद् आहन्याद्वा । ततस्तृष्णी-कैरपि न प्रवेष्टव्यं किन्तु प्रथमं सागारिक उत्थापनीयः, ततस्तेन प्रतिबुद्धेन-उत्थितेन भोषिताष्ठ संयतीष्ठ सागारिकस्य कार्यदीपना कर्तव्या—एकः साध्ररिहेना दृष्टः, इह चौषधं साधितस्रति तद्ये वयमागताः ॥ ५९९२ ॥ ततः प्रवर्तिनी भणिन

मोर्च ति देह गणिणी, थोर्च चिय ओसर्ह लहुं णेहा। मा मम्मेज समारो, पढिसेहे ना वि बुच्छेओ ॥ ५९९३ ॥

अहिदष्टसीषधं मोकभिति प्रयच्छत । ततः 'गणिनी' प्रवर्तिनी यतनया मोकं गृहीत्वा साधूनां ददाति भणति च—स्तोकमेवेदगीषधमेतावदेवासीत् , नातः परमन्यदत्तीत्वर्धः , अतः 'रुखु' श्रीष्रं नयत । क्रिमधंभित्यं कथयति ! इत्याह—मा सागारिकः 'ममाणि एतदौषधं प्रयच्छत' इत्येवं मार्गयेत् । यदा तु 'नास्यतः परम्' इति प्रतिषेधः क्रृतस्तदा व्यवच्छेदः 30कृतो भवति , न भूयो मार्गयतीत्यर्थः ॥ ५९९३ ॥

## न वि ते कहंति अमुगी, खड्ओ ण वि ताव एय अमुईए।

१ 'च्छिऊण अइ' तामा॰ ॥ २ 'दीर्घेण' सर्पेण रात्री कस्यापि को॰ ॥ ३ 'व निर्युक्ति-

षेतुं णयणं खिप्यं, ते वि य वसिंह सयमुवेति ॥ ५९९४ ॥

ते सांधवी न कथवन्ति, यथा—अमुकः सांधुराहिना सादितः । ता अप्यार्थिका न कथ-यन्ति, यथा—एतन्मोकममुकत्याः सत्कमिति । गृहीत्वा च क्षिप्रं नयनं कर्तव्यम् । प्विक्तिन च विषिना ते 'स्वकाय' आत्मीयां वसतिम् उपयान्ति ॥ ५९९॥ आह—'यदि अमुकः सांधुर्दष्टः, अमुकस्या वा मोकमिदम्' इति कथ्यते ततः को दोषः ! हत्याह—

जायति सिणेहों एवं, भिण्णरहस्तत्त्वा य वीसंभी ।

तम्हा न कहेयव्वं, की व गुणी होइ कहिएणं ॥ ५९९५ ॥
एवं कथ्यमाने तयोः क्षेहो जायते, भिन्नाहस्यता च भवति, रहस्ये च भिन्ने विश्रम्भो
भवति । यत एते दोषास्तसाद् न कथ्यितन्यम् । को वा गुणस्तेन कथ्यितेन भवति ! न
कोऽपीत्यर्थः ॥ ५९९५ ॥ यदा संवती दीर्षजातीयेन द्रष्टा भवति तदाऽयं विधिः—

सागारिसहिय नियमा, दीवगहत्था वए जईनिलयं।

सागारियं तु बोहे, सो वि जई स एव य विही उ ॥ ५९९६ ॥ आर्थिका नियमात् 'सागारिकसहिताः' शस्यातरसहायाः सभये च दीपकहस्ता यतीनां निरुषं ब्रजेयुः । स च संयतीसागारिक इतरं संयतसागारिकं बोषयति । सोऽपि प्रतिबुद्धः साधून् बोषयति । अत्रापि स एव विधिमोंकदाने द्रष्टव्यः ॥ ५९९६ ॥

॥ मोकपकृतं समाप्तम् ॥

प रिवासित प्रकृत मृ

सूत्रम्--

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासि-यस्स आहारस्स जाव तयप्पमाणमित्तमवि भृहप्प-माणमित्तमैवि विंदुप्पमाणमित्तमवि आहारं आहा-रित्तप्, नन्नत्थै आगाढेसु रोगायंकेसु ३८॥

अस्य सम्बन्धमाह---

उदिओऽयमणाहारी, इमं तु सुत्तं पहुच आहारं ।

अत्थे वा निसि मोर्य, पिजति सेसं पि मा एवं ॥ ५९९७ ॥
'अयं' मोकळझणोऽनाहारः पूर्वेसूत्रे 'उदितः' मणितः, इदं तु सूत्रं आहारं प्रतीत्यारभ्यते । अँथेतो वा 'निश्चि मोकं पीयते' इत्युक्तम् अतः 'शेषमिं' आहारादिकमेवं मा रात्री आहा-रवेदिति मस्तुतं सुत्रमारभ्यते ॥ ५९९७ ॥

१ भिवि तोयविंदुष्य कां विता । एतस्याञ्चसारेचैव कां विता टीका, हरवतां पत्रं १५८४ टिप्पणी १ ॥ २ ९२४ आगादा-उणागार्षे कां । एतत्याञ्चसारेचैव कां टीका, हरवतां पत्रं १५८४ दिप्पणी २ ॥ २ 'अर्थे' अर्थतो वादाब्दात् सुत्रतोऽभि 'निश्चि कां ॥

जनेन सम्बन्धेनायातस्पास्य व्याख्या—नो करुपते निर्धन्यानां वा निर्धन्योनां वा 'परिवा-सितस्य' रजन्यां स्यापितस्याहात्स्य मध्यात् स्ववभयाणमात्रमपि भृतिप्रमाणमात्रमेपि घिन्दुप्रमाण-मात्रमपि यावदाहारमाहर्तुम् । इह स्ववप्रमाणमात्रं नाम-तिरुद्धपत्रिभागनात्रम् तच्चाशनस्य घटते, भृतिप्रमाणमात्रं सक्तुकादीनां नेयम् , बिन्दुप्रमाणमात्रं पानकस्य । इदमेवापवदेति—जागावेभ्यो 5 रोगा-ऽऽतक्केभ्योऽन्यत्र न करुपते, तेषु पुनः करुपते इति सुत्रार्थः ॥ अथ निर्धुक्तिविस्तरः—

परिवासियआहारस्स मग्गणा आहारो को भवे अणाहारी।

आहारो एगंगिओ, चउन्विहो जं वऽतीह तर्हि ॥ ५९९८ ॥ परिवासितस्याहारस्य 'मार्गणा' विचारणा कर्तन्या । तत्र शिष्यः माह—वयं तावदैतदेव न जानीमः—को नामाहारः १ को वाऽनाहारः १ इति । स्रिराह—'एकाक्रिकः' शुद्ध एव यः 10 क्षुषां शमयति स आहारो मन्तन्यः । स चाशनादिकश्चतुर्वियः, यद्वा तत्राहारेऽन्यव् रुवणा-दिकं 'अतियाति' मविशति तदप्याहारो मन्तन्यः ॥ ५९९८ ॥

अधैकाक्किकं चतुर्विधमाहारं व्याचष्टे-

क्रो नासेइ छुहं, एँगंगी तक-उदग-मजाई।

स्वाइमें फल-मंसाई, साइमें महु-फाणियाईणि ॥ ५९९९ ॥

अञ्चने कूरः 'प्रकाहिकः' शुद्ध पव क्षुषं नाशयति । पाने तकोदक-मचादिकमेकािककमिप तृषं नाशयति आहारकार्यं च करोति । सादिमे फल-मांसादिकं सादिमे मधु-फाणितादीनि केवळान्यप्याहारकार्यं कुर्वन्ति ॥ ५९९९ ॥ "जं वर्ऽहें ह तिह्ँ" ति पदं व्याख्याति—

जं पुण खुहापसमणे, असमत्थेगंगि होइ लोणाई।

तं पि य होताऽऽहारो, आहारजुयं व विजुतं वा ॥ ६००० ॥ ० यत् पुनरेकाक्षिकं क्षुधामशमनेऽसमर्थे परमाहारे उपयुज्यते तदप्याहारेण संयुक्तमसंयुक्तं वा आहारो भवति । तच रुवणादिकम् । तत्राशने रुवण-हिङ्ग-जीरकादिकमुपयुज्यते ॥६०००॥

उदए कप्पूराई, फलि सुत्ताईणि सिंगबेर गुले।

न य ताणि खर्विति खुहं, उबगारित्ता उ आहारी ॥ ६००१ ॥

उदके कर्पूरादिकसुगयुज्यते, आम्रादिफलेषु सुरादीनि द्रव्याणि, 'शृक्षचेरे च' गुण्ड्यां गुरु 26 उपयुज्यते । न चैतानि कर्पूरादीनि क्षुपां क्षपयन्ति, परसुपकारित्वादाहार उच्यते । शेषः सर्वोऽप्यनाहारः ॥ ९००१ ॥

अहवा जं अक्लत्तो, कहमउवमाह पक्लिवह कोहे।

सच्चो सो आहारी, ओसहमाई पुणी भहती ॥ ६००२ ॥ अथवा बुमुक्षया आर्तः यत् कर्दमीपमया मृदादिकं कोष्टे पक्षिपति । कर्दमीपमा नाम— ''अपि कर्दमपिण्डानां, कर्योत क्रांसि निरन्तस्य ।''

जाप कर्नापण्डामा, कुषात् कुला निरन्तस् । स सर्वेऽप्याहार उच्यते । औषधादिकं पुनः 'भक्तं' विकल्पितम् , किश्चिदाहारः किश्चिचा-

१ 'मपि तोयबिन्दु' कां विना ॥ २ 'दिति-आगादा-उनागाडेस्यो रो' कां ॥ ३ एगाणी पाणगं तु मर्ज्जाई तामा ॥ नाहार इत्यर्थः । तत्र शर्करादिकमोषभगाहारः, सर्पदष्टादेश्वीतकादिकमोषभगनाहारः ॥६००२॥ जं ना श्रेकसत्तरस उ. संकलमाणस्स देइ अस्सातं ।

ज वा सुक्खत्तस्य उ, सकसमाणस्य दह अस्तात । सच्चो सो आहारो, अकामऽणिष्ठं चऽणाहारो ॥ ६००३ ॥

यद् वा द्रव्यं बुशुक्षातंस्य 'सङ्क्षयतः' प्रसमानस्य कवरुपश्चेपं कुर्वतः इत्यर्थः 'आखादं' रसनाह्मदकं खादं प्रयच्छति स सर्वं आहारः । यत् पुनः 'अकामप्' अभ्यवहरामीत्येवमन-ऽ भिरुषणीयम् 'अनिष्टं च' जिह्नाया अरुष्यम् ईहरः सर्वमनाहारो भण्यते ॥ ६००३ ॥

तचानाहारिममिदम्---

अणहारों मोय छल्ली, मै्लं च फलं च होतऽणाहारो । सेस तय-भृइ-तोयं बिंदुम्मि व चउगुरू आणा ॥ ६००४ ॥

'मोकं' कायिकी 'छक्षी' निम्बादित्वग् 'मूकं च' प्रबम्, कादिकं 'कर्क च' आमकक-हरी-10 तक-विमीतकादिकम्, एतत् सर्वमनाहारो भवतीति चूर्णिः । निय्तीधचूर्णां चु—''या निम्मादीनां 'छक्षी' त्यम् यव तेषामेव निम्बोठिकादिकं फर्क यव तेषामेव मूक्म्, एवमादिकं सर्वमयनाहारः' इति व्यास्थातम् । ''सेसं'' ति 'रोचम्' आहारः । तस्याहारस्य परिवासितस्य यदि तिळतुषस्यमान्नमप्याहरति, सक्तृकादीनां ग्रुष्कचूर्णानामेकस्थामङ्क्ष्णै यावती स्तृतिमात्रा कराति तावस्मात्रमप्य यदि अश्वाति, तोयस्थ-पानस्य विन्दुमात्रमप्य यचापिवति तदा चतुर्गुक्, 10 आज्ञा च तीर्थक्वतां कोषिता भर्वति ॥ ६००४ ॥ एते चापरे दोषाः—

मिच्छत्ता-ऽसंचइए, विराहणा सत्तु पाणजाईओ । सम्प्रच्छणा य तक्कण. दवे य दोसा इमे हॉति ॥ ६००५ ॥

अश्तीदि परिवासमानं दृष्टा शिक्षोऽन्यो वा मिथ्यात्वं गच्छेत्, उङ्काहं वा कुर्यात्— अहो ! अमी असञ्चयिकाः । परिवासिते तु संयमा-ऽऽत्मविराधना भवैति । सकुकादिषु 20 धार्यमाणेषु उत्तणिकादयः माणजातयः सम्मूच्छेन्ति, पूषितकादिषु बाळादिसम्मूच्छेना व भवति, उन्दरो वा तत्र 'तर्कणप्' अमिळापं कुर्वन् पार्थतः परिभमन् मार्जारादिना भक्ष्यते, एवमादिका संयमविराधना । आत्मविराधना तु तत्राशनातौ ठाळाविषः सर्पे छाळा सुखेत्, स्विग्वे वा जिश्रम् निःश्वासेन विषीकुर्यात्, उन्दरो वा छाळां सुखेत् । द्रवे वाहारे एते वस्यमाणा दोषा भवन्ति ॥ ६००५ ॥ अथ ''मिच्छत्तमसंचह्य'' ति पदं व्याख्याति—

सेह गिहिणा व दिहे, मिच्छचं कहमसंचया समणा। संचयमिणं करेंती, अण्णत्य वि नृण एमेव।। ६००६।। शैक्षेण गृहिणा वा केनापि तत्राशनादी परिवासिते हुष्टे मिथ्यात्वं भवेत —एवंविषं सम्बयं

१ शुंजंतस्सा, संकममाण तामा । १ मूळ कट्ट फळ तामा । ॥ २ भां कडुकसूसाणां 'छही' का । ॥ १ भति । अत एव प्रथमतो रजन्यामाहारः परिवासिबिद्वमि न कस्पते ॥ ६००४ ॥ यदि परिवासयिति तत एते दोषाः—मिच्छ' का ।॥ ५ १ माहिक रजन्यां परि का ॥ ६ १ वर्ष । तत्र संयमिष्टिराधना भाव्यते—सक्कृ का ॥ ॥ १ द्वारे राजी परिवास्यमाने पते का ॥

वे कुर्वन्ति कथं ते श्रमणा असम्बद्धा अवन्ति ! । यथा ''सैर्वसाद् रात्रिभोजनात् बिरमणप्र'' इत्यिमग्रहं गृहीत्वा त्रुम्यन्ति तथा 'नृत्'सिति विवर्कवाम्यहम्—'अन्यत्रापि' प्राणिवधादावेव-मेव समाचरन्ति ॥ ६००६ ॥ अध 'द्रवे दोषा अमी अवन्ति' हति पदं व्याचष्टे—

निद्धे दवे पणीए, आवज्रण पाण तक्कणा झरणा ।

आहारें दिह दोसा, कप्पइ तम्हा अणाहारो ॥ ६००७ ॥

इह बस्यमाणे अभ्यक्ष्मसूत्रे भणितं यद् घृतादिकं तैल-बसावर्जितं अद्भवं भवति तदेब क्रिम्बसुच्यते । यत् तु सौवीरद्रवादिकं अलेपकृतं यच दुग्ध-तेल-बसा-द्रवचृतादिकं लेपकृतं तदमयमणि द्रविमस्च्यते ॥ तथा चाढें

> सुत्तमणियं तु निद्धं, तं चिय अदवं सिया अतिस्न-वसं । सोवीरग-दृद्धाई, दवं अलेवाड लेवाडं ॥ ६००८ ॥

च्यास्यातार्था ॥ ६००८ ॥ प्रणीतं नाम-गृदक्षेहं घृतपुरादिकं आर्द्रालायकम्, यहा बहिः क्षेष्ठेन अक्षितं मण्डकादि अपरं वा खेहावगादं कसणादि प्रणीतसच्यते । तथा चाह---

> गूढ़िसेषोहं उस्त्रं, तु खज्जगं मिक्लयं व जं वाहिं। नेहागाढं क्रसणं, त एवमाई पणीयं त ॥ ६००९ ॥

। इ. गतार्था।। ६००९॥

प्वंविषे क्रिप्ये द्वे प्रणीते च रात्री स्थापिते कीटिकैत्यः प्राणजातीया आपद्यन्ते, पतनतीत्यर्थः, तत्र गृहकोलिकादितकैणपरम्परा वक्तव्या । "झरणा य" वि स्यन्दमाने भाज-नेऽष्रसात् प्राणजातीयाः सम्पतन्ति । परः प्राह—नन्वेते दोषा आहारे दृष्टास्तसादनाहारः परिवासयितुं कस्पते ॥ ६००७ ॥ सूरिराह—

अणहारो वि न कप्पह, दोसा ते चेव जे भणिय पुर्वित । तहिवसं जयणाए, बिड्चं आगाढ संविग्ने ।। ६०१० ।।

र्जनाहारोऽपि न करूपते स्वापयितुम् यदि स्वापयित ततश्चतुर्छेतु, 'त एव वं' विराधनादयो दोषा ये 'पूर्वम्' आहारे भंगिताः, तस्मादनाहारमपि न स्वापयेत् । यदी प्रयोजनं तदा तद्विवर्षं विभीतक-हरीतकादिकं मार्थते । अथ न रुम्यते, दिने दिने मार्गयन्तो वा गर्हितास्त्रतो यत-१०नया यथा अगीतायो न पश्यन्ति तथा द्वितीयपदमाश्रित्यागाढे कारणे संविम्रो गीतार्थः स्वापयिति, घनविष्ते चर्मणा वा वर्दरयति, पार्थतः क्षारणावगुण्डयति, उभयकारुं प्रमार्ज-यति ॥ ६०१०॥

> जह कारणें अणहारो, उ कप्पई तह भवेज इयरो वी। वीच्छिण्णम्मि मदंबे, विद्यं अद्धाणमाईसु ॥ ६०१९ ॥

अ० सम्मा कारणेऽनाहारः स्थापियुं कस्पते तथा 'इतरोऽपि' आहारोऽपि कारणे कस्पते

१ ''छड़े अंदे! वए उनदिओं में सञ्जाओ राहगोयणाओं देरमणं'' इति हि पाश्चिकसूचनवनम् ॥ २ 'ह बृहद्भाष्यकृत्— सुत्त' कां० ॥ ३ 'का-मिश्चकात्यः सं० ॥ ४ न केवलसाहारः सृता' सं० ॥ ५ च संयमा-ऽऽत्मविरा' सं० ॥ ६ 'दा न्छानादिमयो' कां० ॥

स्वापियतुम् । कथम् ! इत्याह—व्यवच्छिके महन्ते कारणे स्विताः सन्तो द्वितीयपदं सेक्ते । तथाहि—तत्र पिप्पस्यादिकं दुर्कमम् मत्यासकं प्रामादिकं च तत्र नास्ति ततः परिवासयेदपि । यथा कारणे पिप्पस्यादिकं स्वापयन्ति तथा द्वितीयपदेऽशनाधाप स्वापयेत् । ''अद्वाणमादीखु'' जि अध्वपपक्षाः सन्तोऽध्वकरूपं स्वापयेयुः, आदिशब्दात् प्रतिपन्नोचमार्थस्य स्कानस्य वा योग्वं पानकादिकं स्वापयेत् ॥ ६०११॥ व्यवच्छिन्नमङम्बपदं व्यास्थाति—

बुच्छिण्णास्मि मडंबे, सहसरुगुप्पायउवसमनिमित्तं । दिहत्थाई तं चिया गिण्डंती तिविह मेसअं ॥ ६०१२ ॥

च्यविष्ठले महत्त्वे वर्तमानानां सहसा शुरू-विश्वविद्यालया स्तर्भ । र-१२ ॥

च्यविष्ठले महत्त्वे वर्तमानानां सहसा शुरू-विश्वविद्यालया स्वर्थ ह्यायोः—गीतार्थो आदिशब्शत् संविधीदिगुणयुक्तस्वेऽनागतसेव वदेव द्वव्यं गृह्वन्ति

थेनोपशमो भवति । तच्च भैषजद्वव्यं 'विविधम्' वात-पिच-केष्मभैषज्ञभेदात् त्रिप्रकारं 10
ज्ञेयम् ॥ ६०१२ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पद्व निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासि-एणं आलेवणजाएणं आलिंपित्तए वा विलिंपित्तए वा, नन्नतथ आगाँढोहीं रोगायंकेहीं ३९॥

एवं म्रक्षणसूत्रमप्युचारणीयम् । अस्यं सम्बन्धमाह---

जह श्रुतुं पढिसिद्धो, परिवासे मा हु को वि मक्खद्वा। बुत्तो वा पक्खेवे, आहारों इमं तु लेविम्म ॥ ६०१३॥

यदि परिवासित आहारो भोक्तं प्रतिषिद्धस्तरः मा कश्चिद् मक्षणार्थं परिवासयेदिति मस्तु-तस्त्रमारम्यते । यद्या पूर्वसूत्रे 'पक्सेव'' ति मुस्तप्रक्षेपणद्वारेणाहार उक्तः, हेंदं तु सूत्रमाले-20 पविषयं पोच्यते ॥ ६०१३ ॥

> अब्भितरमालेबी, बुत्ती सुत्तं इमं तु बज्झम्मि । अहवा सी पक्खेबी, लीमाहारे इमं सुत्तं ॥ ६०१४ ॥

अथवा आभ्यन्तरः 'वालेपः' जाहाररुखणः पूर्वेत्तृत्रे उक्तः, इदं तु सूत्रं बाषालेपविषयमु-च्यते । अथवा 'सः' पूर्वेतृत्रोक्तः मक्षेपाहारः, इदं तु सूत्रं लोमाहारविषयमारम्यते ॥६०९२॥ 2० एभिः सम्बन्धेरायातस्यास्य व्याख्या—नो करपते निर्मन्यानां वा निर्मन्यीनां वा परिवा-

ए।मः सम्बन्धरावातसास्य व्याख्या---मा करुपता निमन्याना या निमन्याना या पारवा-सितेनालेपनजातेन 'आलेपयितुं वा' ईषष्ठेपर्यितुं 'विलेपयितुं वा' विशेषेण लेपयितुम् , नान्य-

१ °कमर्घत्तीययोजनामन्तरे तत्र कां । ॥ २ °इता-मियधर्मतादिगुण कां । ॥ ३ 'गाढा-ऽणागाविद्धिं कां । एतावाज्ञवारेण कां २ तिक, रस्तां टिपणी ६ ॥ ४ 'स स्त्रह्मयस सम्ब्र कां ५ ५ १६ त्वारालेप' कां ॥ ६ °द्धं वणादिक तित मस्यते, विकेषित्रे वां विदेशेण केपणितुम्, नान्यत्रापाढा-ऽनागाविस्यो रोगा-ऽऽतङ्केश्य इति स्त्रार्थः ॥ अय भाष्य-कारस्राक्ता-अर्थव्यानकस्रणं व्याव्याद्वयं द्वीयहाह—अन्त्रे कां ॥ अय भाष्य-कारस्राक्ता-अरथव्यानकस्रणं व्याव्याद्वयं द्वीयहाह—अन्त्रे कां ॥

त्रागिहरूपी सेगासके स्य इति स्त्रार्थः ॥ अय मार्प्यम्---

मक्सेजर्ण लिपाइ, एस कमो होति वंगतिगिष्छाएँ । जह ते ग तं पमार्ण, मा कुण किरियं सरीरस्स ॥ ६०१५ ॥

करः प्राहं — नतु नगचिकित्सायां पूर्वं नगो अक्षित्वा ततः पिण्डीयवानेन आरिष्यते, एवं 5 कमः, ततः प्रथमं अञ्चलखन्तसत्त्वा पश्चादार्लेपनसूत्रं भणितुसुचितमिति भावः । वदि चैतत् 'ते' तव न प्रमाणं ततो मा शरीरस्य कियो कार्षीरिति ॥ ६०१५॥ सरिराह —

आलेवमेण पडणइ, जो उ वणी मॅक्समेण किं तत्थ ।

होहिंद वणी व मा में, आलेवी दिखई समर्ण ॥ ६०१६ ॥
नायमेकान्तः यद् जवस्यं त्रणे अक्षणमालेषनं च द्रयमपि भवति, किन्तु कुत्रविदेकतर्रे
१७ कुत्राऽप्युमर्यम्, तती यः किरु त्रण आलेपेन प्रगुणीमवित तत्र किं अवणेन कार्यम् ! न
किञ्चिदित्यर्थः । यद्वा मा मे त्रणो भविष्यति इति कृत्वा प्रथममेवालेषः 'शमनम्' औषशं
वीयते ॥ ६०१६ ॥ किञ्च—

अचाउरे उ कजे, करिति जहलाम कत्थ परिवाडी । अखुदुब्वि संतविमवे, जुजह न उ सन्वजाईसु ॥ ६०१७ ॥

७ 'अत्यादुरे' आगादे कार्ये यथालामं आलेपो ब्रक्षणं वा यः प्रथमं लभ्यते तेनैव चिकित्सां कुर्वन्ति । कुत्र नाम 'परिपाटिः' कमो विधते ? । इतमेव व्यनिक्त —यः 'सद्विभवः' विध-मानविमृतित्तत्रत्र चिकित्साशास्त्रमणिता परिपाटिः 'युज्यते' चिकित्साशास्त्रमणिता परिपाटिः 'युज्यते' घटते, न पुनः सर्वजातिषु, अतः किमत्र कमनिरीक्षणेन ? इति ॥ ६०१७ ॥ "

सुत्तम्मि कड्वियम्मि, आलेव ठविति चउलहू होंति । आणाइणो य दोसा. विराहणा इमेहिँ ठाणेहि ॥ ६०१८ ॥

स्वार्थकम्मेन सूत्रे आकृष्टे सति निर्देकितिस्तर उच्यते—यदि आहेपं रात्री स्वापयति तदा चतुर्छम्, आज्ञादयश्च दोषाः, विरापना चामीभिः स्वानैभवति ॥ ६०१८ ॥

> निद्धे दवे पणीय, आवज्रण पाण तक्षणा झरणा । आर्यक विवचासे, सेसे लहुगा य गुहुगा य ॥ ६०१९ ॥

श्वितंत्रे द्वते प्रणीते आलेपे खाणिते प्राणिनामापतनं तर्कणं 'क्षरणं च' तत्य द्रवादेः सन्दर्न मनति । अत्र वीषभावना प्राम्यत् । 'आतक्के च' रोगे विपयीसेन क्रियाकरणे वक्ष्यमाणं आये- खिल्लेष्य । ''सेसि'' वि आगाडा-आगाडकारणमन्तरेण यदि परिवासयित ततः प्राशुकादौ स्वाच्यमाने अनुर्केषु, अधाशुकादौ चतुर्गुरु ॥ ६०१९ ॥ इदमेव व्याचक्के---

र 'निस बायुर्वेदविदः। कुत्र कां ।। २ प्रदर्शितायाक्षेप-परिहारी आध्यकृता। सम्प्रति त्रित्रुकिसिसरः इतकारणं कां ।। ३ तान्येय दर्शयति इतकारणं कां ।। ४ क्षित्रंच द्ववं व्यक्तिं च त्रयक्षत्यत्मरत्वेत्रं व्यक्त्यातम् । एवंत्रिये त्रिविधेऽपि कालेपे स्थापिते 'अपिना' मक्षिकाक्षकृतीनामापतमं 'तर्कणं च' कृदकोलिकादीनां तान् प्रति वमिन्छान्। 'अरणं च' तस्य द्ववारि मोजनात् स्थन्तं कां ।।

ति किम संचयदोसा, तसाविसे काठ विकस दिस्सं हा। अविभूयं विदय, उन्हामणुज्यंति जे दोसा ॥ ६०२० ॥

त एव सम्बयादयो दोषां मनतव्याः, स्वविषः सर्पः स्ट्रोत् , छाळाविचो वा विद्वया लेहनं कुर्यात् , द्वितीये च दिनेऽम्डीमृतं तदुज्ङ्यते, अनुज्झतो वा ये दोषास्तान् मामोति॥६०२०॥ यत एते दोषास्ततः—

> दिवसे दिवसे गहणं, पिद्दमपिट्ठे य होइ जयणाए । आगाढे निक्लवणं, अपिद्व पिट्ठे य जयणाए ॥ ६०२१ ॥

जागांह ानास्वायम, जायह १४६ य जयनाए ॥ ५०२६ ॥ यदा म्हानार्थमाल्पेन प्रयोजनं भवति तदा दिवसे दिवसे प्रहणं विधेयस् । तत्र प्रथमं पिष्टस्य पश्चादपिष्टसापि यतनया प्रहणं कर्तव्यं मवति । आगादे च म्हानस्ये आस्त्रिस्य निहेषवं परिवासनमपि कुर्योत् , तद्य्यपिष्टस्य पिष्टस्य वा यतनवा कर्तव्यम् ॥ ६०२९ ॥ १० अथालक्ष्यस्थाते व्यास्त्याति—

हब्बस्यासं व्याख्याति-

आगार्दे अणागारं, अणगारे वा वि कुणइ आगारं।

एवं तु विवचासं, कुणइ व वाए कर्कातिभिष्कं ॥ ६०२२ ॥ आगाउं म्लानतेऽनागाडां कियां करोति चतुर्गुर । अनागाउं वा आगाडां करोति चतुर्रुचु । यद्वा वाते चिकित्सनीये कफचिकित्सां करोति, ⊲ उँगरुक्षणभिवम् , सेन कफे चिकित्सनीये 1० वातं चिकित्सने इत्याविष द्रष्टयम् । ⊳ एव विषयीसो मन्तस्यः ॥ ६०२२ ॥

अथ "सेसे लहुगा य गुरुगा य" (गा० ६०१९) ति पदं ज्याचक्के-

अभिलाणो खलु सेसी, दन्बाईतिविहआवहजाही वा । पच्छिने मग्गणया, परिवासितिसिमा तस्त ॥ ६०२३ ॥

'होषो नाम' य आगाढोऽनागाढो ना ग्लानो न भवति, यो वा द्रव्य-क्षेत्र-कारूपञ्चेदात् विदि-20 धया आपर्दो 'जढः' मुक्तः स होष उच्यते । तत्त्व परिवासयत हुयं श्रावश्चित्रवार्गणा ॥६०२३॥

कासुगमकासुमे वा, अन्तिक चित्ते परिचडनीते वा ।

असिषेह सिथेहराए, अणहाराऽऽहार लहु-गुहगा ॥ ६०२४ ॥ मामुकं स्थापयति चतुर्वेह, अपाशुकं स्थापयति चतुर्वेह। असिष्ठे स्थाप्यमाने चतुर्वेह, सम्बिषे चतुर्वेह। परिते चतुर्वेह, अमन्ते चतुर्वेह। असेहे चतुर्वेह, 'सेहयते' सेहाकामहे 25 चतुर्वेह। अनाहारे चतुर्वेह, आहारे चतुर्वेह। ६०२४॥

सूत्रम्---

नो कपड़ तिगांथाण वा निगांथीण वा पारियासि-एणं तिस्रेण वा घषण वा नवणीएण वा ससाय वा

रे जाः पूर्वेष्यपेकाः सन्त्रवाः । तथा त्यन्तियः सर्पः स्पूर्धेतः । "स्पूतः कार्य-केर फीकाकिम केरा" त्यादि (सिन्धदे० ८४-१८२) वयसार् स्पूतः क्रिकारेकः । सस्त्र संक्षः ॥ २ से संत्रयाः ५८०सकियायासास्त्राया तीया चं-॥ ३ चं ० प्रतिकारतेतः एक सं-प्रतिकार विकास प्रकास वार्याया स्त्राया सिविधारमुक्तस्य स्त्रास्त्री स्त्रीस्त्रीः संक्री

# गायं अब्भंगित्तए वा मक्खित्तए वाः नम्नत्थ आगा-ढेहिं रोगायंकेहिं ४०॥

अस्य सम्बन्धमाह—

किएप्यते ! सरिराह----

35

20

ससिणेही असिणेही. दिजह मक्खित वा तर्ग देंति ।

मध्यो वा णालिप्पर्स, दुहतो वा मबखणे छ्या ॥ ६०२५ ॥ आलेपः सब्होऽब्रेहो वा दीयते, ततो यथा ब्रेहेन प्रक्षणं क्रियते न वा तथाऽनेनाभिधीयते। यद्वा व्रणं प्रक्षित्वा 'तक्कर्' अनन्तरस्त्रोत्तकालेपं प्रयच्छितः । न वा सर्वोऽपि व्रण आलेप्यते । दिधा वा अक्षणे स्वा कृता, वणोऽपि प्रस्यते आलेपोऽपि प्रसिद्धं दीयत इति भावः ॥६०२५॥ अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य च्यास्था—नो कह्मत विद्यासितेन तैलेन वा घृतेन वा १०नवनीतेन वा वसया वा गात्रम् 'अभ्यक्तिश्चं वा' बहुकेन तैल्लादेना 'प्रक्षितुं वा' व्यक्तेन तैल्लादेना 'प्रक्षितुं वा' व्यक्तेन तैल्लादेना 'प्रक्षितुं वा' व्यक्तेन तैल्लादेना न कृष्यते । दोषाश्चात्र तप्य सश्चवादयो मन्तव्याः ॥ आहा—यथेवं परिवासितेन न कृष्यते अथितं तत्तस्रिक्षवानीतेन

तिह्वसमन्स्वणिम्म, लहुओ मासो उ होइ बोघव्वो । आणाइणो विराहण, पृलि सरन्स्वे य तसपाणा ॥ ६०२६ ॥

तिह्वसानीतेनापि यदि प्रक्षयति तदा छम्नासः आज्ञादयश्च दोषाः, विराधना च संय-मस्य भवति । तथाहि—प्रक्षिते गांत्रे पूर्लिङेगति, 'सरजस्को वा' सचितरजोरूपो वातेनोद्भूतो रुगति, तेन चीवराणि मलिनीकियन्ते, तेषां धावने संयमविराधना, स्नेहगन्धेन वा त्रसमाणिनो रुगन्ति तेषां विराधना भवेत ॥ ६०२६॥

धुवणा-ऽधुवणे दोसा, निसिभत्तं उप्पिलावणं चेव । बउसत्त सम्रह तलिया, उन्त्रङ्गणमाह पलिमंथो ॥ ६०२७ ॥

खेहेन मिलनीकृतानां चीवराणां गात्राणां वा धावना-ऽधावनयोरुमयोरिप दोषाः, तथाहि— येदि न षाव्यन्ते तदा निशिभक्तम्, अय धाव्यन्ते ततः प्राणिनामुख्यावना मवेत् , उपकरण-शरीरयोर्षकुश्चतं च भवति । "समुद्र" ित स पव हेवाको लगति । प्रक्षिते च गात्रे पादयोमीं 20 पृत्री लगिष्यतीति कृत्वा तलिकाः पिनश्चति, तत्र गर्वे निर्मार्दवतिसादयो (गा० ३८५६) वोषाः । यावच्च गात्रस्पोद्धर्तनादिकं करोति तावत् सुत्रार्थपरिमन्यो भवति ॥ ६०२७॥

र आताहाणागाहै कं । । २ वणस्यालेपः सक्तेहोऽक्षेहो वा तीयते। तत्र यथाऽक्षेहो तात्रवस्ताया पूर्वसूत्रे उक्तम्। सक्षेहे त्यालेपे तत्त्वयं यथा क्षेहेन प्रकृष क्रियते न वा तयाऽनेन स्वेण विधिरमिषीयते। यहा वर्ण प्रक्लित्या 'तक्तम्' अनन्तरस्वित्रकालेपं प्रयस्कालेपं अवस्थाने क्षेत्रकालेपं प्रयस्कालेपं अवस्थाने विधित्रकालेपं कित्रकालेपं कित्रकालेपं कित्रकालेपं कित्रकालेपं कित्रकालेपं विधान वा प्रकृष्टे क्षेत्रकालेपं विधान विधान वा प्रकृष्टे स्वा क्षेत्रकालेपं विधान वि

#### तिह्वसमक्त्रणेण उ, दिद्वा दोसा जहा उ मिक्सुआ। अद्वाणेणुन्वाए, वाय अरुग कच्छ जयणाए॥ ६०२८॥

तिह्वसभक्षणेन जितता एते दोषा दृष्टाः । द्वितीयपदे यथा मक्षयेत् तथाऽभिषीयते— षष्ट्यगमनेनातीव 'उद्वातः' परिश्रान्तः, वातेन वा कटी गृहीता, 'अरुः' व्रणं तद्वा घरीरे जातस्, 'कच्छुः' पामा तथा वा कोऽपि गृहीतस्ततो यतन्या प्रकृपेदिषि ॥६०२८॥ तामेवाह्— ६

### समाईकयकजो, धुविउं मक्खेउ अच्छए अंतो ।

परिपीय गोमयाई, उन्बद्धण घोव्वणा जयणा ॥ ६०२९ ॥

संज्ञागमनम् आदिशब्दाद् भिक्षागमनादिकं च कार्ये कृतं येन स संज्ञादिकृतकार्यः, सर्वाणि बहिर्गमनकार्याणि समाप्येव्ययः । स यावन्मात्रं गात्रं प्रश्नणीयं तावन्मात्रमेव धावित्वा प्रक्षाच्य तत्तो अक्षयति । अक्षयित्वा च प्रतिश्रयसान्तः तावदास्ते यावत् तेन गात्रेण सत् १० तैकादिकं अक्षणं परिपीतं भवति । ततो गोमयादिना तस्योद्धर्तनं कृत्वा यतन्या यथा प्राणिनां प्रावना न भवति तथा धावनं कार्यम् ॥ ६०२९ ॥

जह कारणें तिहवसं, तु कप्पई तह भवेज इयरं पि । आयरियवाहि वसमेहि पुन्छिए विज संदेसी ॥ ६०३० ॥

यथा कारणे तिह्वसानित प्रवणं करूरते तथा 'इतरहि' परिवासितं प्रवणं कारणे 16 करूरते । कथप् ! इतरहि' परिवासितं प्रवणं कारणे 16 करूरते । कथप् ! इति चेद् अत आह—आवार्यस्य कोऽपि व्याधिरुराजः, तती कुपैभैदेवः पूर्वोक्तंत विधिना प्रष्टवः ! तेन च प्रष्टेन 'सन्देवाः' उपदेशो दत्तो भवेत्, यथा— शतपाका- . दीनि तैकानि यदि भवन्ति ततिश्चिरुस्ता किथते ॥ ६०२०॥ ततः किं कर्तव्यम् ! हत्याह—

सयपाग सहस्तं ना, सयसहस्तं न हंस-मरुतेछं।

द्राओ वि य असई, परिवासिका जयं धीरे ॥ ६०२१ ॥ 20 शतपाकं नाम तैलं तद् उच्यते यद् औषधानां द्यातेन पच्यते, यद्वा एकेनाप्यौषधेन शतवाराः पक्ष्य । एवं सहस्रपाकं शतसद्वस्रपाकं च मन्तव्यम् । हंसपाकं नाम हंसेन-औषष-सम्मारस्रतेन यत् तैलं पच्यते । मर्सतेल-मरुदेशे पर्वताद्वरप्यते । एवंतिषानि दुर्लम-द्रन्याणि भ्रममं तदेशिकानि मार्गणीयानि । अध दिने दिने न लच्यन्ते ततः पश्चकपरिहाण्या चतुर्शस्यानीय 'धीरः' गीतायों 'थतन्या' अरुपसागिदिकं स्थाने मदनचीरेण 25 वेदिस्ता परिवासित (॥ ६०२१ ॥ इतमेव सत्यन्याः अरुपसागिदिकं स्थाने मदनचीरेण प्रकासाह—

एयाणि मन्स्तणहा, पियणहा एव पतिदिणालंभे । पणहाणीए जहुरं, चुउगुरुपत्ती अंदोसाओ ॥ ६०३२ ॥

'प्तानि' शतपाकादीनि तैकानि ब्रक्षणार्थे पानार्थे वा मतिदिनं यदि न क्रम्यन्ते ततः पश्चकपरिहाण्या यतित्वा चतुर्भुककं यदा माष्टो अवति तदा परिवासयकापि 'अदोपः' न माय- ३० व्याचमाक् । सर्ववेबाकामे गुरूणां हेतोरात्मनाऽपि यतनया पचन्ति ॥ ६०३२ ॥

### ॥ परिवासितप्रकृतं समासम् ॥

१ °म् । यया यतना मन्तव्या ॥६०२९॥ जह कां ।॥ २ अदोसाय ताभा । अदोसो उभा ।॥

#### न्य व हार म कृत म्

सूत्रम्---

परिहारकप्पट्टिए भिष्मन् बहिया थेराण वेयाविक्ष-याए गच्छेजा, से य आहन्म अहकमिजा, तं च थेरा जाणिजा अप्यापो आगमेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुन्ना, ततो षच्छा तस्स अहालहुसए नाम ववहारे पटुनेयच्चे सिया ४१॥

श्रास सम्बन्धमाह---

क्रिकारणप्रहिलेकी, अजयणकारी व कारणे साहू । अदवा चिअत्तकिचे, परिहारं पाउषे जोगो ॥ ६०३३ ॥

निष्कारणे गात्रमक्षणारिकं प्रतिसैनिज्ञं शीक्रमखेति निष्कारणप्रतिसेनी सः, तथा कारणे वा यो 'अन्तत्मकारी' पूर्वोक्त्वतनां निना गात्रमक्षणविधायी साधुः, अथवा यः 'त्यक्तः कृष्यः' नीक्तग्रेतोऽपि तदेव अक्षणादिकसुवनीनित स परिहारतवः प्राप्तुवादिति 'योगः' सम्बन्धः ॥ ६०६३ ॥

15 अनेन सम्बन्धेनायातखास व्याख्या—परिहारकल्यक्षितो भिश्चः 'बहिः' अन्यत्र नगरादी 'स्वित्राणाय' आवार्याणामादेरोन वैयाहत्यार्थं गच्छेत् । किन्नुकं भविति ?— अन्यस्मिन् गच्छे केषाधिदाचार्याणां वादी नास्तिकादिक उपस्थितः, तेषां च नास्ति वादळिअसम्पन्नः, ततसे येष्मुसाचार्याणां सापीदारिकस्वामान्तिकं सङ्घाटकं भेषयन्ति, स च सङ्घाटकं। मृत्—वादिनं कृत्रमि मुक्कस्यत । प्रसुक्ते ते आचार्याः परिहारिकं परवादिनिम्रहस्तं मत्त्वा तमे भेषयन्ति । 20 स्तस्त्वानुक्त्रक्रावाद्वी परिहारतयो बहुमान एव तत्र गच्छेत् । इदं च महत् प्रवचनस्य वेषावृत्तं सङ्घान्ति परवादिनिम्रहणम्, तत्रस्तद्वत्रं गतः 'सः' परिहारिकः ''भाह्य' कदाचिद् 'स्वित्राः' सेखान्याः 'स्वाद्वित् 'स्वित्राः' सोखावार्यं आद्यान् 'स्वामिष्ट्' पादचानित्रकं मतिनेवतं, 'तथ' प्रतिसेवनं 'स्वविद्यः' भीत्रवार्यो आद्यान् 'आपामोन' खबच्याविदायान्तेनान्येषां वाऽन्तिकं क्षुला जानीपुः। 'ततः पश्चात्' तस्यान् ज्ञानान्तर्तं 'तसः' परिहारिकस्य 'स्वारुक्तको नाम' सोकस्रायश्चित्रक्रमे व्यवहारः मस्याप्यत्वर्याः स्वाद्वितं स्वार्थः ॥ स्वा माण्यस्—

पिकारिको व बच्छे, आसम्बे गच्छ वाहणा कर्त्र । अन्यक्रमं सर्वि गममं. कारण परिसेवला नाम ।) ६०३४ ॥

परिहारिकः कानि बच्छे लिचते, कविकासनेऽज्याच्छे वादिना कार्यस्यस्मम्, ततः 'तत्र' गच्छे 'आगमनम्' अभ्यस्च्छात् सङ्गाटक आगतः, तेन च 'वादी प्रेप्यताम्' हस्युके १९ कोरोक्टकः विद्यारत्योवहसारसेव तस्य तत्र यमतस्, तत्र गतेन तेन प्रवासी समस्वास-

\$6

म**र्के निष्णिष्टमभ**्याकरणः कृतः, ततः प्रवेचेनिस् महेती प्रभावना समजनि, तैने च वेविस् कारणेऽमनि प्रतिसैन्तितानि मवेयः ॥ ६०२४ ॥

पाया व देता व सिया उ घीया, वा-बुद्धिहेर्तु व पणीयमंत्री । तं वातिनं वा मह-सत्तहेर्तु, समाजयहाँ सित्तयं व सुके ॥ ६०३५ ॥

पादी वा दन्ता वा प्रवचनजुगुस्तापरिहारार्थं धोताः 'खुः' भवेषुः । 'फंणीतमर्कं वा' <sup>5</sup> पृत-दुम्बादिकं ''वा-बुद्धिहेतुं व'' ति वाग्वेतोबुद्धिहेताश्च कुक्तं मवेद्दं, ''कृतिन वर्धते मेथा'' इत्यादिवचनार्थे । 'वातिकं नाम' विकटं तक्का मतिहेताः सम्बद्धतावी सैवितं मीवत् । मतिनीम-परबाधुम्बस्तस्य साधनस्याप्वीपृत्र्वेतृष्वणोहासमको ज्ञानवित्रेवः, सक्वं-अभूतं मृत्त्वारंमपणे प्रवद्धताव आत्तर उत्साहिवत्रोवः । समाज्यायाय वा शुक्कं 'सिच्यं' वक्षं प्रावृत्तं संभित्तं भीवतः भीवतं समावता समा' इति वचनात् ॥ ६०२५ ॥

थेश पुण जार्णती, आगमओ अहव अन्तओं सुना। परिसाए मन्द्रामिंम, पहुबणा होइं पन्छिते॥ ६०३६ं॥

प्यमादिकं तेन प्रतिसेवितं 'खाविराः' सूरवः पुनरांगमतो जानीयुः, अथवा अन्यतः श्रुत्वा, ततस्त्रसः मृयः समागतस्य पर्यन्मध्ये प्रायध्यितस्य प्रसापना कर्तव्या भवति ॥ ६०६६॥ इतमेव व्याचष्टे—

नव-दस-चउदस-ओही-मणनाणी केवली य आगंमिउ ।

सो चेवऽण्णो उ भवे, तदणुचरो वा वि उवगो वा । ६०ई७ ॥ वे खितरा नवपूर्विणो दवपूर्विणश्चद्वर्वप्रपृविणोऽविधिज्ञानिनो मनःपर्योचज्ञानिनाः केवर्वज्ञानिनो वा ते 'आगम्य' अतिरायेन ज्ञात्वा प्रायश्चितं दुष्टा । अन्यो नाम 'स एव' परिहारिक-स्वाद्धारोचाहारोण श्रुता, यहा ये तस्य-परिहारिक-सानुवराः—सहायोः भिवतार्थोः किष्-१० तम् ; 'उवको नाम' अन्यः कोऽपि तियेगागतिनो मिटितः, नेषां गच्छसको नाम' न मवर्तिस्थैयः, तेन वा कथितम् , यथा—एतेनाग्चकं पादघावनादिकं प्रतिसिवितम् ॥ ६०३७ ॥ तत्र-

तेसि पचयहेउं, जे पेसविया सुयं व तं जेहिं।

भयहेउ सेसगाण य, इमा उ जारोवणारवणा ॥ ६०३८ ॥ ये तेन सार्द्ध प्रेषिता वैर्वाऽप्रेषितरिष प्रतिसेवनं श्रुतं 'तेषाम्' उनयेषामप्यपरिणामकानं 25 प्रत्यवहेतीः 'शेषाणां च' अतिपरिणामिकानां भयोत्पादनहेतीरियम् 'आरोपणारचना' व्यवहार-प्रसायमा सिमिः कर्तव्या ॥ ६०३८ ॥

गुरुओ गुरुजतराजो, अहागुरुओ य होई वंबहारी । लहुजो लहुपतराजो, अहालह होई ववहारी ॥ ६०३९ ॥ लहुसो लहुसतराजो, अहालहुसी अ होई ववहारी । एतेसि पच्छिपं, बुच्छामि अहाणुपुच्चीए ॥ ६०४० ॥ व्यवहारिकविधः, तथया—गुरुको लघुको लघुकास्थ । तत्र जो गुरुकः स त्रिविधः,

१ घोषा, बुद्धीय हेतुं तामा॰ ॥ २ 'तु । 'तदिति' सोकासिक 'वातिक नाम' बार ने

25

वध्या—गुरुको गुरुतरको यथागुरुकथ । रुपुकोऽपि त्रिविधः, तद्यथा—रुपुरुकुतरो यथा-रुपुथ । रुपुलकोऽपि त्रिविधः, तद्यथा—रुपुलको रुपुलतरको यथारुपुलकथ । एतेशां व्यवहाराणां 'यथानुपूर्वा' यथोक्तगरिपात्र्या प्रायक्षित्तं वश्यामि । किन्नुकं भवति !—एतेषु व्यवहारेषु समुपक्षितेषु यथापरिपात्र्या प्रायक्षितपरिमाणमभिषास्य ॥ ६०३९ ॥ ६०४० ॥ ठ यथाप्रतिज्ञातस्य करोति—

# गुरुगो य होइ मासो, गुरुगतरागो भवे चउम्मासी ।

अहगुरुगो छम्मासो, गुरुगे पन्खम्मि पडिवत्ती ॥ ६०४१ ॥

गुरुको नाम व्यवहारः 'मासः' मासपरिमाणः, गुरुके व्यवहारे समापतिते मास एकः प्रायश्चितं वातव्य इति भावः । एवं गुरुतरको भवति 'चतुर्मासः' चतुर्मासपरिमाणः । यथा-10 गुरुकः 'षण्मासः' षण्मासपरिमाणः । एषा 'गुरुकपक्षे' गुरुकव्यवहारे त्रिविचे यथाकमं प्राय-श्चित्तपतिः ॥ ६०४१॥ सम्प्रति लघुक-लघुत्तकव्यवहारविवयं प्रायश्चित्तपरिमाणमाह—

तीसा य पण्णवीसा, वीसा वि य होइ लहुयपक्खम्मि । पन्नरस दस य पंच य, अहालहसगम्मि सद्धो वा ॥ ६०४२ ॥

ल्युको व्यवहाराक्षित्रहिवसपरिमाणः, एवं ल्युतरकः पश्चित्रिशतिदिनमानः, यथाल्युको 15 विश्वतिदिनमानः, एषा ल्युकव्यवहारे त्रिविधे यथाक्रमं मायश्चित्रपतिपतिः। ल्युस्वको व्यवहारः पश्चदशदिवसमायश्चित्रपरिमाणः, एवं ल्युस्वतस्को दशदिवसमानः, यथाल्युलकः 'पञ्चदिव-सानि' पश्चदिवसमायश्चित्रपरिमाणः। यद्वा यथाल्युलके व्यवहारे 'शुद्धः' न प्रायश्चित्तमाक् ॥ ६०४२ ॥ अथ कं व्यवहारं केन तपसा पूरयति ! इति म्रतिपादनार्थमाह—

गुरुगं च अट्टमं खढु, गुरुगतरागं च होइ दसमं तु ।

अहगुरुग दुवालसमं, गुरुगे पक्त्विम पडिवत्ती ॥ ६०४३ ॥

गुरुकं व्यवहारं मासपरिमाणमध्मं कुर्वन् पूर्यति । किपुक्तं भवति ! —गुरुकं व्यवहारं मासपरिमाणमध्मेन वहति । तथा गुरुकतरकं चतुर्मासपरमाणं व्यवहारं दशमं कुर्वन् पूर्यति, दशमेन वहतीत्यर्थः । यथागुरुकं पण्मासप्रमाणं 'द्वादशं कुर्वन्' द्वादशेन वहन् पूर्यति । पण 'गुरुक्पश्वे' गुरुक्पश्वेरापूर्णविषये तपःप्रतिपत्तिः ॥ ६०२३ ॥

छहं च चउत्थं वा, आयंबिल एगठाण पुरिमहं।

निब्बीयं दायव्वं, अहालहुसगम्मि सुद्धो वा ॥ ६०४४ ॥

ल्युकं व्यवहारं त्रिंशिह्नपरिमाणं षष्ठं कुनैन् पूर्यति, लयुतरकं पश्चविंशतिदिवसपारिमाणं व्यवहारं चतुर्यं कुनैन् पूरयति । एषा ल्युकितिदिवसमानमाचाम्लं कुनैन् पूरयति । एषा ल्युकितिविध्यवहारपूरणे तपःप्रतिपिदः । तथा लयुकितव्यवहार् पश्चदशदिवसपरिमाणमेक-१० स्वानकं कुनैन् पूरयति, लयुक्षतरकं व्यवहारं दशदिवसपरिमाणं पूनौई कुनैन्, यथालयुक्षकः व्यवहारं पश्चदिनप्रमाणं निर्वेकृतिकं कुनैन् पूरयति । एतेषु गुरुतरादिषु व्यवहारेच्ननैने कमेण तपो दातव्यम् । यदि वा यथालयुक्षकः व्यवहारं पश्चपितव्यम् । यदि वा यथालयुक्षकः व्यवहारं पश्चपितव्यमे स्वतिविद्यम् । यदि वा यथालयुक्षकः व्यवहारं प्रसापितव्ये स प्रतिपन्नपरिहारतपः-

१ एतदनन्तरम् **मन्धात्रम् ७**५०० इति कां० ॥

प्रायक्षित एवमेवालीचनापदानमात्रतः शुद्धः क्रियते, कारणे यतनया प्रतिसेवनात ॥६०४४॥ पवं प्रस्तारं रचयित्वा सूरयो भणन्ति-

> जं इत्थं तह रोयइ. इसे व गिण्हाहि अंतिसे पंच। हत्यं व भमाडेउं, जं अक्सिते तमं वहह ॥ ६०४५ ॥

यदु 'अत्र' अमीषां प्रायश्चित्तानां मध्ये तव रोचते तदु गृहाण, अमूनि वाऽन्तिमानि पश्च-5 रात्रिन्दिवानि गृहाण । एवसके स यथारुष्टसकं प्रायश्चितं गृह्वाति । अथवा हस्तं भ्रामयित्वा यत् प्रायश्चितं गुरव आकामन्ति तकद् गृहाति ॥ ६०४५ ॥ स्रयश्चेदं तं प्रति भणन्ति-

> उच्मावियं पवयणं, थोवं ते तेण मा पुणी कासि । अंइपरिणएस अन्नं, वेड वहंती तमं एयं ॥ ६०४६ ॥

त्वया परवादिनं निग्रहता प्रवचनमुद्धावितं तेन स्तोकं ते पायश्चित्तं दत्तम् . मा पुनर्भूयो-10 ऽप्येवं कार्षाः । अंथातिपरिणता अपरिणताश्च चिन्तयेयः--'एव तावद एतावन्मात्रेण सक्तः' इति ततो यदि तस्य 'अन्यद्' अपरं प्राचीनं तपोऽपूर्णं तदा तदेव वहमानोऽतिपरिणामिका-दीनां परतो गुरून भणति-एतत प्रायश्चितं युष्माभिर्दतं वहामीति ॥ ६०४६ ॥

# ॥ व्यवहारप्रकृतं समाप्तम् ॥

प्रलाक भक्त प्रकृत स

15

20

सत्रम---

निग्गंथीए य गाहावइक्रुळं पिंडवायपडियाए अणु-प्पविद्वाप् अन्नयरे पुलागभत्ते पडिग्गाहिए सिया, सा य संथरिजा, कप्पइ से तदिवसं तेणेव भत्तद्वेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पड़ दुर्च पि गाहावडकुलं पिंडवायपडियाए पविसित्तए; सा य नो संथरेजा, एवं से कप्पइ दुइं पि गाहावइकुलं पिंडवायपडि-याए पविसित्तए ४२॥

अस्य सम्बन्धमाह----

उत्तरियपचयद्वा, सुत्तमिणं मा हु हुज बहिभावी । जससारक्खणम्भए. सत्तारंभी उ वहणीए ॥ ६०४७ ॥ 25

१ अपरिण्णयस्य असं तामाः । एतदनुसारेणैव न्वर्णिः । दश्यतां टिप्पणी २ ॥ २ अधाति-परिणताक्रिन्त मो े छे । "जित य अपरिणामया चितेजा-एस एतिल्लएणं मुक्को" इत्यादि चार्णी । "अतिपरिणया चितेजा-एस एतिहरणं सक्षी" इत्यादि विद्योचनार्णे ॥

केंकोचरिकाणाम्—अपरिणामका-ऽतिपरिणामकानां प्रत्यवार्थं स्त्रैमिदसनन्तरसुक्तम्, मा तेषां बहिर्मावो भवेदिति क्वत्वा । अयं तु वतिनीविषयः प्रस्तुतस्त्रस्यारम्भः 'उमये' लोके कोकोचरे च यशःसंरक्षणार्थं कियते ॥ ६०४७ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य ब्याख्या—िनर्भन्य्या गृहपतिकुलं पिण्डपातमतिज्ञयाऽनुमिन-5 ष्ट्या 'अन्यतरद्' धान्य-गन्ध-रसपुरुकानां वछ-विकट-दुम्धादिरूपाणामेकतरं पुरुक्तभक्तं प्रतिगृहीतं स्यात्, सा च तेनेव भुक्तेन 'संस्तरेत' दुर्भिक्षायमावाद् निवेहेत्, ततः करुपते तस्यालिह्यतं तेनैव भक्तार्थेन 'पर्युषिद्युं' निर्वाहयितुष् । नी 'स्तेर' तत्याः करुपते द्वितीयमपि वारं गृहपतिकुलं पिण्डपातमतिज्ञया मवेषुम् । अथ सा न संस्तरेत् ततः करुपते तस्या द्वितीयमपि वारं गृहपतिकुलं पिण्डपातमित्रज्ञया प्रवेष्टमिति स्रत्रार्थः ॥

#### 10 अथ निर्यक्ति-भाष्यविस्तरः---

#### तिविहं होइ पुलागं, धण्णे गंधे य रसपुलाए यै। चउगुरुगाऽऽयरियाई, समणीणुहहरुगहणे ॥ ६०४८ ॥

त्रिविधं पुळाकं भवति, तद्यथा— धान्यपुळाकं रान्यपुळाकं रानपुळाकं चेति । एतत् सूत्र-माचार्यः प्रवर्तिन्या न कथयति चतुर्पुरु, आदिशन्दात् प्रवर्तिनी निर्मन्थीनां न कथयति 10 चतुर्पुरु, निर्मन्थ्यो न प्रतिशृष्यन्ति मासल्धु । श्रमणीनामणि कर्ज्वदर्रे-गुभिन्ने पुळाकं गृह्णतीनां चतुर्पुरु ॥ ६०४८ ॥ अय त्रीष्यपि धान्यपुळाकादीनि व्याचष्टे—

#### निष्फावाई धन्ना, गंधे वाइग-पलंडु-लसुणाई।

स्वीरं तु रसपुलाओ, चिंचिणि-दक्लारसाईया ॥ ६०४९ ॥

निष्पाबा:-बङ्कासदादीनि धान्यानि धान्यवुक्तकम् । तथा वाइगं-विकटं पळाः इ-ळगुने 2)च-प्रतीते तदादीनि यान्युरकटगन्यानि द्रव्याणि तद् गन्धपुळाकम् । यत् पुनः क्षीरं यो बा चिश्चिणिकाया:-अस्क्रिकाया रमो दाक्षारसो वा आदिशब्दात् अवस्मापे यद् भुक्तमतिसारयति तत् सर्वमापे रसपुळाकम् ॥ ६०४९ ॥ अथ किमर्थमेतानि पुराकान्युच्यन्ते ! दर्जाह्—

# आहारिया असारा, करेंति वा संजमाउ णिस्सारं ।

निस्सारं व पवयणं, दहुं तस्सेविणि बिति ॥ ६०५० ॥

३६ इह पुळाकमसारमुच्यते, तत आहारितानि सन्ति बङ्गादीनि यतोऽसाराणि ततः पुळाकानि भक्यन्ते । 'संयमाद्वा' संयममङ्गाकृत्य यतः क्षीरादीनि निःसारां साध्वीं कुर्वन्ति तत्ततात्यिप पुळाकानि । प्रवचनं वा निःसारं यतः 'तत्सिविनी' तेपां–विकटादीनां सेवनशीळां संयतीं हृद्वा जना बुवते तत्ततानि पुळाकानि उच्यन्ते ॥ ६०५० ॥ एषु दोषानाह----

आणाइणो य दोसा, विराहणा मञ्जगंध मय खिसा। निरोहेण व गेलण्णं, पढिगमणाईणि लजाए॥ ६०५१॥

र "उत्तरिय" ति परैकदेशे परसमुदायोपचाराद् लोको का । २ व्यम् 'इदम्' परिद्वारिकविषयमनन्तर का ॥ ३ य । उद्दर्दे निगोधीण गेण्हणे चउगुर आयरिय-मारी॥तामा ॥ ४ व्याशक्वाह का ॥ एकां त्रयाणामिष पुरुक्तानां ग्रहणे आज्ञादयो दोषाः, विराधना च संयगा-ऽऽस्मविषया भवति । तथा गम्पपुरुक्ते पीते सति मद्यगम्धमात्राय मदिबहुळां वा तां दृष्टा क्रोकः विसां कुर्यात् । धान्यपुरुक्ते पुनराहारिते वायुक्तायः प्रमुतो निर्गच्छति, ततो यदि भिक्षार्थं मविद्या तस्य निरोधं करोति तत उज्जाहो भवेत, उज्जाहिता च ळज्जया प्रतिगमनादीनि कुर्योत् । एवं रसपुरुक्तेऽिष श्रीरावौ पीते मिक्षां प्रविद्या विदि विस्तानाम्हरूनी निरुणदि ततो व्यानत्वम्, अथ न निरुणदि ततो व्युत्स्वजनती केनापि दृष्टा रूज्ज्या प्रतिगमनादीनि कुर्योत् ॥ ६०५१ ॥ किक्क्ष —

वसहीए वि गरहिया, किस्रु इत्थी बहुजणस्मि सक्खीवा। लाहकं पिछणया, लजानासो पसंगो य ॥ ६०५२ ॥

'श्ली' निर्मरणी 'सक्षीवा' मध्यमदयुक्ता वसताविष वसन्ती गहिंता कि पुनर्वेहुजने पर्ययन्ती ! 110 तथाहि— तां मदविहुळां आपतन्तीं मपतन्तीं आल्माळानि च प्रख्यन्तीं हृष्टा लोकः प्रवचनस्य ''खाहुकं'' छात्रवं कुर्योत्— अहो ! मचवालपासण्डमिद्यमित्यादि ! मदेन चाचेतना सक्षाता सत्ती प्रार्थनीया सा भवति । तत उद्धारकादयस्तासाः 'मेरणां' प्रतिसेवना कुर्युः । मदवदोन च यदि तदि प्रख्यन्त्या ळ्ळाना ग्रीत्ते । तत् प्रसुप्त स्वत्यात्माः स्वात् ॥ ६०५ २॥

घुनइ गई सदिही, जहा य रत्ता सि लोयण-कवोला । अरहइ एम पुताई, णिसेवई सज्झए गेहे ॥ ६०५३ ॥

तां तथामदभावितां दृष्टा छोको झूबात्—यथाऽस्या गतिः 'सहष्टिः' दृष्टिपुक्ता बूर्णते, यथा चास्या छोचन-कपोला रक्ता दृश्यन्ते तथा नृतमर्दृत्येषा 'पुताकी' देशीवचनस्वाद् उद्धा-मिका ईदशीं विडम्बनामनुगवितुम् या 'सम्बज्जोहै।नि' कस्पपालगृहाणि निषेवते ॥६०५२॥ त्रिविपेऽपि पुलोके यथायोगमभी दोषाः—

> छकायाण विराहण, वाउभय-निसम्मओ अवस्रो य । उज्झावणसुज्झंती, सह असह दवम्मि उड्डाहो ॥ ६०५४ ॥

मंदिबिह्ना षण्णामिष कायानां विराधनां कुर्यात् । घान्यपुडाकेन शीरेण वा युक्तेन वायु-काय उभयं च-संज्ञा-कायिकीरूपं समागच्छेत् , ततो मिक्षां हिण्डमाना यदि तेषां निसर्गं करोति ततः प्रवचनस्यावणीं भवेत् , परावम्रदे वा च्युत्स्प्रष्टं पुरीषादिकमवमहस्वामिनस्तस्याः 25 पार्धात् उज्ज्ञापयन्ति स्वयमेव वा ते गृहस्था उज्ज्ञान्ति । "सह असह दविम उङ्काहु" चि अस्ति द्वं परं क्रुषं स्तोकं वा नास्ति वा मूच्त एव द्वं तेत उभयथाऽपि प्रवचनस्योङ्काहो

१ अत्र क्षीयो मत्त इति यदाय्येकार्यो दाव्दी तथान्यत्र क्षीयशब्दो भावप्रधानतया मदपर्यायः, ततोऽयमधैः—'क्षी' क्षं ॥ १ °छा। तत्त ति पत्त सुत्ता, णिसेवई तामा ॥ १ °द्वानि पत्त नि पत्त सुत्ता, णिसेवई तामा ॥ १ विद्यानि प्रदा' को । ''सम्बाग क्षाविनेदां' इति सूर्णो विद्योगस्त्री निवास क्षाविनेदां' इति सूर्णो विद्योगस्त्री निवास क्षाविनेदां स्ति स्त्री सदि सदि स्वत्री स्वाम क्षाविनेदां विद्यानां स्वापानां विद्यानां कृषीत् । विद्यादिकप्रधान्यपुद्धकेन क्षीरेण वा सुकेन यथाक्रमं वायुं के ॥ ५ तत पर्ष संब्राच्युत्सर्गानन्तरं सति असति वा द्ववे उमें कि ॥

भवेत्॥ ६०५८ ॥

हिजो अह सक्सीवा, आसि ण्हं संखवाइभजा वा ।

भग्गा व णाए सुविही, दुदिह कुलम्मि गरहा य ॥ ६०५५ ॥

'धः' करुये अन्यक्षित् दिने, 'अय' इति उपदर्शने, इयं 'सक्षीवा' मद्यमदयुक्ता आसीत् । 5''क्हं'' इति वाक्यारुङ्कारे । एवं गन्यपुर्वाकं सुकावतीं संवतीं जना उपहसन्ति । वायुकाय-शब्दं च क्षुत्वा ज्ञवीरन् — अही । इयं शङ्क्षवादकत्व मार्यो पूर्वेमासीत् ; यद्वा भमाऽनया इत्यं वायुकायेनाश्चात्तं प्रत्यन्या ''सुविद्दी'' अङ्गणमण्डिपका एवं प्रपञ्चयेषुः । ''दुहिङ्क कुल्मिम गरिहा य' चि दुष्टपर्माणो अमी, कुल्युह्दं चैताभिरास्तीयं महिलीकृतम् , एवं गर्हा भवति । नतक्ष प्रतिगत्मकावयो दोषाः ॥ ६०५५॥ यत एवमतः—

> जिह एरिसों आहारो, तिह गमणे पुन्ववण्णिया दोसा । गहणं च अणाभोए, ओमे तहकारणेण गया ॥ ६०५६ ॥

यत्र विषये 'ईहशः' पुरुषक आहारी रूम्यते तत्र निर्मन्यीभिर्नैव गन्तव्यम् । यदि गच्छन्ति तदा त एव पूर्ववर्णिता दोषाः । अथावमा-ऽशिवादिभिः कारणैर्गता भवेयुः, तत्र चाना-भोगेन पुरुषकभक्तस्य महणं भवेत् ॥ ६०५६ ॥ ततः किम् १ हत्याह —

गहियमणाभोएणं, बाइग वर्झ तु सेस वा श्रंजे।

भिच्छिपियं तु शुतुं, जा गंधो ता न हिंडंती ॥ ६०५७ ॥

यदि अनाभोगेन पुलाकं गृहीतं भवति तदा ''बाहगं'' विकटं तद् वर्जायता 'दीवं 'वा' विभाषमा भुक्कीरत् । कियुक्तं भवति ?—यदि तदपर्याप्तमन्यच भक्तं रुभ्यते तदा न भुक्कते किन्तु तत् परिष्ठाप्यान्यद् भक्तं गृहितः, अथ पर्याप्तं तदा भुक्कते, भुक्तवा च तेनैव भक्तार्थेन १० पर्युषयन्तिः, विकटं द्व सर्वयेव न भोक्तव्यप् । भिक्षप्तियं नाम-पर्यण्ड तत् पुनर्भुक्तवा यावत् तदीयो गन्य आगच्छिति तावद् न हिण्डन्ते ॥ ६०५७ ॥

कारणगमणे वि तर्हि, पुन्वं घेत्र्ण पच्छ तं चेव । हिण्डण पिछण विहए, ओमे तह पाहुणहु। वा ॥ ६०५८ ॥

र्जंबमादिकारणेर्गतानामपि मध-पर्जाण्डु-रुक्तान्येकान्तेन मतिपिद्धानि । अथ पूर्वमनाभो-25 गादिना गृहीतं ततस्तद् गृहीत्वा पश्चात् तदेव भुक्वा तेनैव भक्तार्थेन तिह्वसमासते न भूयो भिक्षामटन्ते । द्वितीयपदे द्वितीयमपि बारं भिक्षार्थे मिक्षोत् । 'अवमं' दुभिंसं तत्र पर्याप्तं न रुम्यते प्राष्ट्रणिका वा संयत्यः समायातास्ततो भूयोऽपि भिक्षाहिण्डनं कुर्वाणानामियं यतना— "पिक्कण" कि धान्यपुकाके आहारिते यदि वायुकाय आगच्छेत् तत्रकं पुनः पार्थं प्रेयं वायु-

१ कि अ इत्यवताणं कं । । २ 'निन । घान्यपुटाकं च युक्तवत्यास्तस्या वायु कं । । ३ अध 'अवमे ' दुर्निक्ष ''तहकारणेण'' चि तथारूपेणान्यन वा अशिवादिना कारणेन वाता कं । । ४ 'शेमें धान्यपुटाकादिकं 'वा' इति विभा' कं । । ५ इत्तेव सविशेषमाह इत्यवत्यं कं । ॥ ६ 'तत्र 'ताहशेऽचमादिकारणैगीमने सआतेऽपि मद्य-पट्टाण्डु-छग्नना-रीनि गन्यपुटाकान्येकान्तेन कं ।।

कायं निछ्जनित । उपरुक्षणमिदय्, तेनै यदा संज्ञासम्भवस्तदा यदि अन्यासां संयतीनामासका वसतिस्तदा तत्र गन्तव्यम् । तदभावे भावितायाः श्राद्धिकायाः पुरोहदादौ व्युत्सर्जनीयम् ॥ ६०५८॥

### एसेव गमो नियमा, तिविह पुलागम्मि होइ समणाणं । नवरं पुण नाणत्तं, होइ गिलाणस्स वहयाए ॥ ६०५९ ॥

एए एव 'गमः' प्रकारो नियमात् त्रिविधेऽपि पुछाके श्रमणानामपि भवति । नवरं पुनरत्र नौनात्वम् — ग्लानस्य दुग्धादिकमानेतुं त्रिजिकायां साधवी गच्छेयुः, तत्र च गताः संखरन्त आत्मयोभं रसपुछाकं न गृहन्ति, अथ न संखरित ततः श्लीरादिकं शुक्ता न भूयो भिक्षा-मटित । कारणे तु भूयोऽप्यटन्तस्ययेव यतनां कुर्वन्ति ॥ ६०५९ ॥

#### ॥ पुलाकभक्तप्रकृतं समाप्तम् ॥

10

### ॥ इति श्रीकल्पाध्ययनटीकायां पञ्चमोद्देशकः समाप्तः ॥

श्रीमब्िणंवचांसि तन्तव हह ज्ञेयास्त्रया सहुरो-रामायो नङकस्तुरी वुधजनोपास्युद्भवा चातुरी । ईत्येतैर्विततान साधकतमेः श्रीपञ्चमोद्देशके, जाक्यापोह्यदीयसीमहमिमामन्छिद्धदीकायटीस् ॥

15

१°न रसपुळाके भुक्ते सति यदा कं०॥ २ वधा निर्मन्यानासमुमेव विधिमतिदि-शकाह स्ववतर्ण कं०॥ ३ नानात्वं भवति—तेषां विधिमपि पुळाकं गृहतां चतुर्लेषुकाः मायक्षित्रम्, निर्मन्थीनां तु चतुर्पुरुकमुक्तमिति विशेषः । तथा द्वितीयपदे ग्ळानस्य कं०॥ ४ हस्ते रचिताऽत्र साधकतमेः श्रीपञ्चमोदेशके, जाक्यापोइपदीयसी सन्यर-योरसीय मैकापदी कं०॥

| अस्पनास.                                                                                                                                                           | मृत्यम्.                                                                                                     | प्रन्थनामः मृत्यम्.                                                                                                                                                                                                            |  |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--|
| ५८ महाबीरचरियम्<br>५९ कौमुदीमित्रानन्दं नाटकस्                                                                                                                     | 9- 0-0<br>0- 5-0                                                                                             | x७३ कल्पसूत्रं किरणावस्त्रीटीकोपेतस् ०- ०-०<br>७२ योगदर्शैनं सटीकं                                                                                                                                                             |  |
| ६० प्रवृद्धरीहिणेयनाटकम्<br>६१ धर्माभ्युत्यनाटकं  <br>स्कावछी च }<br>६२ पक्किमध्यीप्रकरणम् सटीकम्                                                                  | 0- 4-0<br>0- 8-0                                                                                             | योगविधिका च सटीका १- ८-०<br>७३ मण्डलप्रकरणं सटीकम् ०- ६-०<br>७४ देवेन्द्रनरकेन्द्रमकरणं सटीकम् ०-१२-०<br>७५ चन्द्रवीरश्चमा-धर्मधन-सिबदुत्तकः                                                                                   |  |
| ६६ स्यणसेहरीकहा<br>६६ स्यणसेहरीकहा<br>६६ सिद्धमान्द्रतं सटीकम्<br>६५ तानप्रतीपः                                                                                    | 0- E-0<br>0-10-0                                                                                             | पिङ-सुमुखनुषाविभाग्रवाहुक्ष्माः ०-११-०<br>७६ जैनसेघदूतकाव्यं सटीकस् २- ०-०<br>७७ आवक्पमेविधिमकरणं सटीकस् ०- ८-०                                                                                                                |  |
| ६६ बन्धहेत्यश्रिभक्षीप्रकाणं सरीका<br>अवन्धीरकृष्टपदे एककालं गुणस्था<br>केषु बन्धहेतुमकरणं सरीकः<br>चतुर्देशजीवस्थानेषु जवन्धीरकृष्ट<br>युग्धहम्बहेतुमकरणं च सरीकः | र,<br>न-<br>र,<br>दि                                                                                         | ७८ गुरुतस्वितिश्वयः सदीकः २ - ०-०<br>७९ गृँदस्तृतिश्वतृविस्तिका सदीका ०- ४-०<br>८० वसुत्वहिष्कीयधनमागः १- ८-०<br>८१ वसुत्वहिष्कीयदिनीयभागः १- ०-०<br>८१ हुरूक्वप्सूत्रं सदीकं प्रथमो मागः १-० ०-०<br>११ ,,, हितीयो भागः १- ०-० |  |
|                                                                                                                                                                    | तिक्षा जिनमण्डनीया १- ०-० ८५ सटीकाः चरवारो नव्यक्मेंप्रम्थाः<br>तक्षतस्थानक- ८६ पश्चम-पृष्ठकमेप्रम्थां सटीको |                                                                                                                                                                                                                                |  |
| ६९ चेड्डयनंदणमहाभासं छाबाटिप्य-<br>णीयुतम्<br>७० प्रकारद्वतिः                                                                                                      | 5-12-0<br>0- 2-0                                                                                             | तिभागः ६- ८-०<br>८८ वृहत्करपसूत्रं सटीकम् पञ्चमो<br>तिभागः ५- ४-०                                                                                                                                                              |  |

### श्रीआत्मानन्द-जैनग्रन्थरत्नमालायां मुद्यमाणा ग्रन्थाः।

बृहत् कक्पसूत्रं सटीकं पहो विभागः

धर्मा स्युद्धमहाकाच्यम् (सङ्गपतिचरितम्)

श्रीआत्मानन्द्-जैनग्रन्थरत्रमालायां सुद्रयिष्यमाणा ग्रन्थाः। बसुदेवहिण्डी तृतीयो विभागः मरुवगिरिशब्दानुशासनस्

### श्रीआत्मानन्व-जैनग्रन्थरस्रमालायामचाविष सुद्रितानां ग्रन्थानां सूची।

|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | _  |                |                                  |                 |
|------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----|----------------|----------------------------------|-----------------|
|      | थनाम.                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     |    | यम्.           |                                  | मूखम्.          |
|      | समवसरणस्तवः सावचूरिकः                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | •- | 9-0            | ×२८ सम्बन्धकोसुदी                | 0-15-0          |
| ×₹   | <b>ञ्जुह्यक मवाव छि</b> -                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |    |                | ×२९ श्राद्युणविवरणम्             | 1- 0-0          |
|      | प्रकरणम् सावच्रिकम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                       |    | 1-0            |                                  | 0-15-0          |
|      | छोकनाछिद्वात्रिंदिका सटीका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |    | <b>२−</b> 0    | ×११ करपसूत्रं सुबोधिकारुवया      |                 |
|      | योत्तिस्तवः सावचृरिकः                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | 0- | 9-0            | ब्यारूययोपेतम्                   | 0- 0-0          |
| ×ч   | कारुसप्ततिका-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |    |                | ×३२ उत्तराध्ययनसूत्रं सटीकम्     | 4- 0-0          |
|      | प्रकरणम् सावचूरिकम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                       |    | 3-6            | ; ×३३ उपदेशसप्ततिका              | 0-93-0          |
|      | देहस्थितिस्तवः सावच्रिकः                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  |    | 4-0            | ×३४ कुमारपाळप्रवन्धः             | 3- 0-0          |
|      | सिद्धर्णिडका सावसूरिका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                    |    | 9-0            | ×३५ आचारोपदेशः                   | o- 3-0          |
|      | कायस्थितिस्ततः सटीकः                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      |    | \$- o          | ×३६ रोहिण्यशोकचन्द्रकथा          | 0- 2-0          |
|      | भावप्रकरणं सदीकम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                         |    | <del>5</del> 0 | ×३७ गुरुगुणषदत्रिंशन्षदत्रि-     |                 |
|      | नवतस्वप्रकरणं भाष्यटीकोपेतम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              |    | 35-0           | शिकाकुलकं सटीकम्                 | 0-10-0          |
|      | विचारपञ्चादिका सटीका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      |    | <b>9-0</b>     | ×३८ ज्ञानसारः सटीकः              | 1- 8-0          |
|      | वन्धपदत्रिंशिका मटीका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                     | 0- | ₹ <b>-</b> 0   | ३९ समयसारप्रकरणं सटीकम्          | 0-10-0          |
| ×13  | परमाणुखण्डपद्क्षिका<br>पुद्रलपद्विका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      |    |                | x४० सुकृतसागरमहाकाव्यम्          | 0-18-0          |
|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | _  |                | ×४१ धस्मिलकथा                    | 0- 8-0          |
|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | •- | <b>\$-0</b>    | ४२ प्रतिमाशनकं छघुटीकायुतम्      | o- c-o          |
| XIS  | श्रावकवत्रमङ्ग-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | _  |                |                                  | 0- 2-0          |
|      | प्रकरणम् सावचूरिकम्<br>देववन्दनादिभाष्य-                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  | -0 | 4-0            | ×४४ चतुर्विशतिजिनस्तुतिसंग्रहः   | 0- 4-0          |
| X 13 | त्रवं सावसूरिकम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                          | •- |                | ×४५ रीहिणेयकभानकम्               | o- <del>-</del> |
|      | सिद्धपञ्जाशिका सटीका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                      |    | ₹-0            | ×४६ ळचुक्षेत्रसमासप्रकरणं सटीकम् | 9- 0-0          |
|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |    | ₹~0            | ×४७ बृहस्संप्रहणी सटीका          | R- 6-0          |
|      | विचारसप्ततिका सावचूरिका                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                   |    | ₹-0            | x४८ आदविधिः सटीका                | ₹- ७-0          |
|      | अस्पबहुत्वविचारगर्भितं महाबीर                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |    | 4-0            | ×४९ षहदर्शनसमुख्यः सटीकः         | \$- 0-0         |
| ",   | स्तवनं महादण्डकस्तोत्रं च                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |    |                | xuo पञ्चसंप्रहपूर्वार्तं सटीकम्  | à- 6-0          |
|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | ١. | ₹-0            | X43 सुकृतसंकीर्तनम्              | 0- 6-0          |
|      | सावचूरिकम्<br>पञ्चसृत्रं सटीकम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |    |                | x५२ चरवारः प्राचीनाः             |                 |
|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |    |                | कर्मप्रन्थाः सटीकाः              | <b>₹</b> - ८-0  |
|      | जम्बूस्वामिचरित्रम्<br>रम्बारसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम |    | 8-0            | ×५३ सम्बोधसप्ततिका सटीका         | 9-9-0           |
|      | रस्रपालनुपकथानकम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                         |    | 4-0<br>8-0     | ×५१ कुवलयमालाकवा                 |                 |
|      | सृक्तरबावली<br><del>चेत्रसम्बद्धाः</del>                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  |    |                | ५५ सामाचारीप्रकरणं आराधक-        | 1- 4-0          |
|      | मेधदूतसमसा <b>ले</b> सः                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                   |    | 8-0            | विराधकचतुर्भेङ्गी च सटीका        |                 |
|      | चेतोत्तम्                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |    | 8-0            |                                  | 0- 6-0          |
|      |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |    | <b>€</b> ~•    | ५६ करुणावज्रायुधनाटकम्           | 0- 8-0          |
| X39  | चम्पक्रमाङाकथा                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            | 0- | <b>€-</b> 0    | X40 कुमारपाकमहाकाव्यम्           | 0- 6-0          |

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय
२२: अद्

नीवंक चेहर व्यक्ष सूत्रत्र